28

नु[illegible]क ।

[illegible]हित.

॥ श्रीः ॥

भिषग्वरवृन्दप्रणीत-

वृन्दवैद्यक.

भाषाटीकासमेत ।

जिसको

श्री १०८ महाराजाधिराज श्रीरामनारायणसिंहजू देव बहादुर राजधानी पदुमा जि० हजारीबागकी कृपासे नन्द-प्रयाग बदरिकाश्रमनिवासी महेशानन्द शर्माने प्राप्तकर महाराष्ट्रवंशावतंस पं० सदानन्दजीद्वारा भाषाटीका कराय मुद्रण प्रकाशनार्थ प्रदान किया ।

वही

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

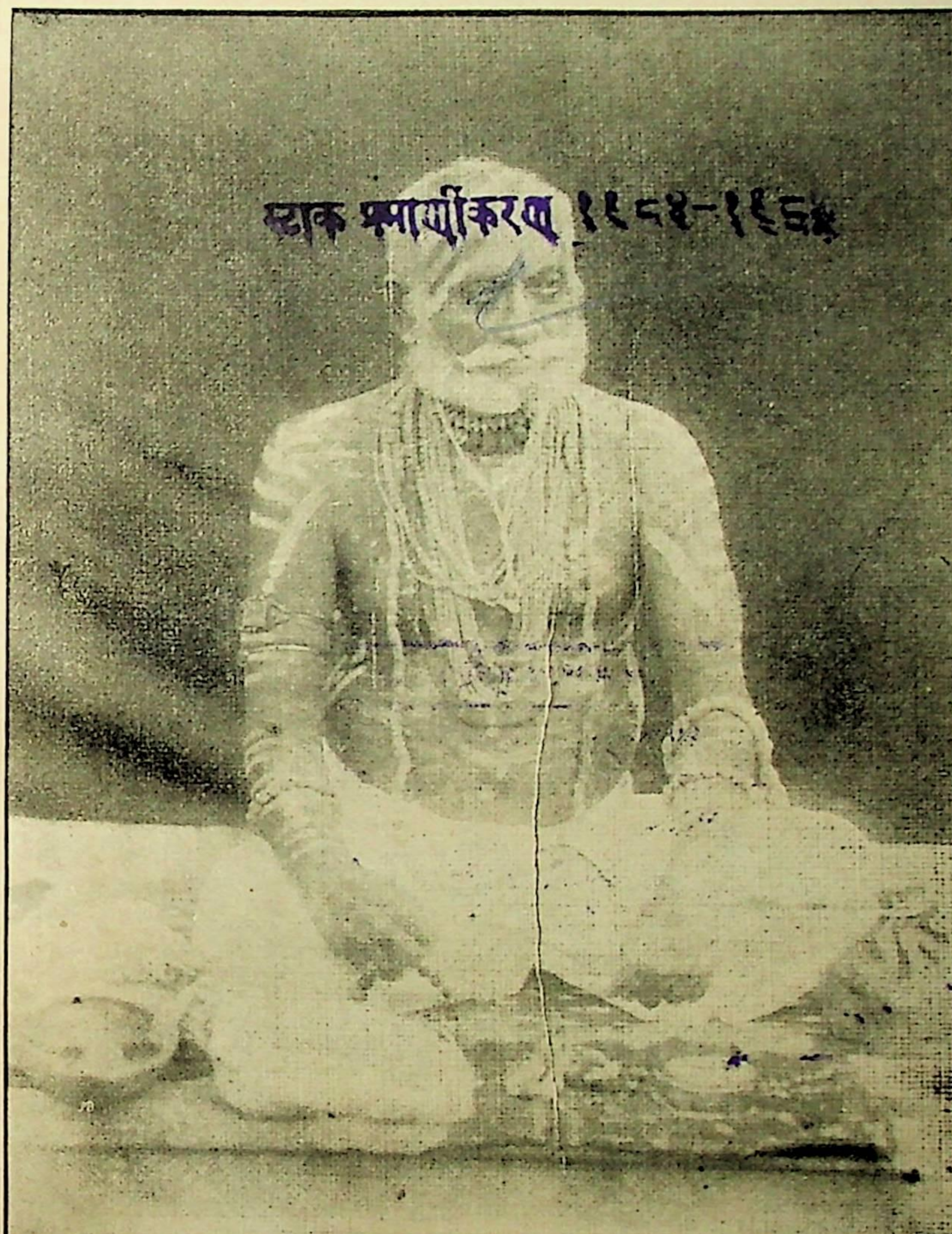
खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६७, शके १८३२.

श्रीमान्‌का पूजाके समयका चित्र ।



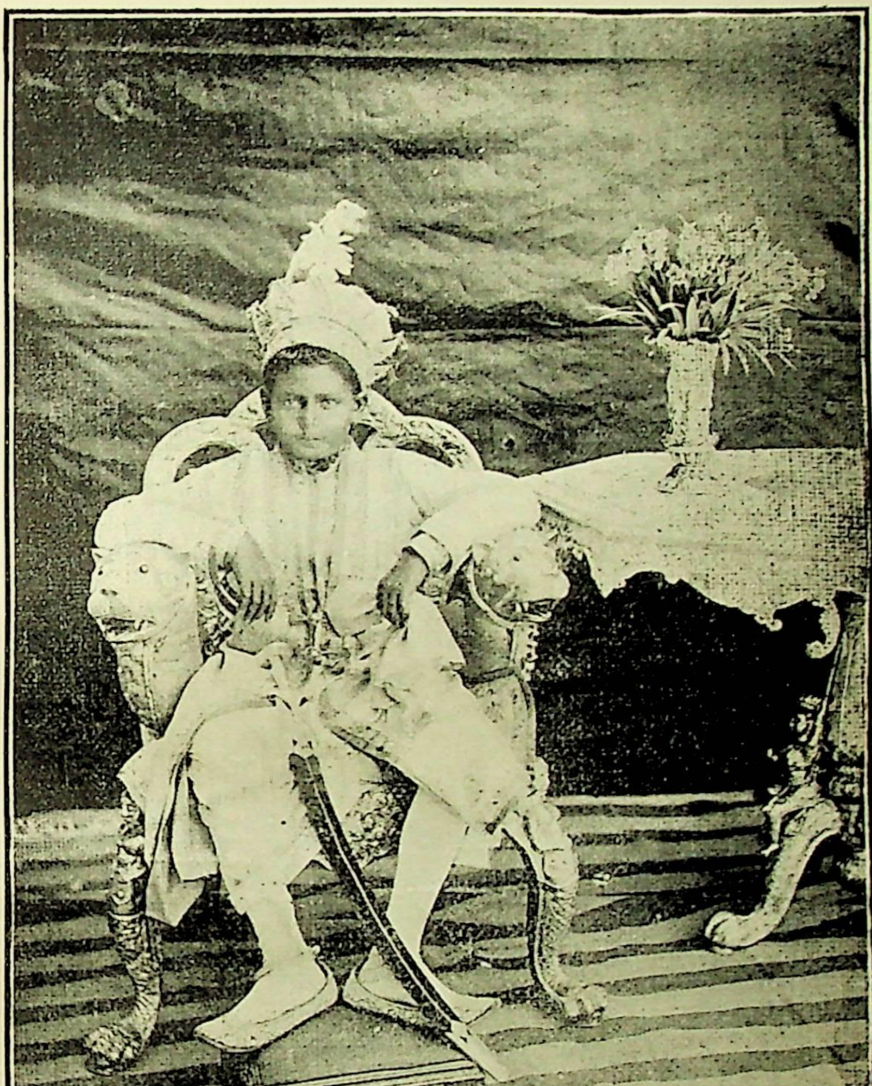
श्रीमान् स्वर्गवासी महाराजाधिराज श्री १०८ नामनारा-
यणसिंहजूदेव बहादुर राज्य पदुमा हजारीबाग ।
(जन्मसंवत् १८८७ वि०)



श्रीमान् महाराजकुमार टिकैत श्रीरामेश्वरनारायणसिंह जी साहब बहादुर।
(महाराजके कनिष्ठ भ्राता)

श्रीमान् महाराजाधिराज श्री १०८ श्री रामनारायणसिंहजू देव बहादुर राज्य पदुमा हजारीबाग।
(जन्मसंवत् १९२२)

श्रीमान् टिकैत (युवराज) पदमा हजारीबाग।



श्री श्री श्रीमान् चिरंजीव सरदार श्रीलक्ष्मीनारायण
सिंहजू देव बहादुर।

(जन्म विक्रमसंवत् १९५५)

भूमिका।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं स्मृतम् ।

श्रीमान् गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक श्री १०८ महाराजाधिराज **श्रीरामनारायणसिंहजू देव** बहादुर राजधानी पदुमा जिला हजारीबाग बंगालको कोटिशः धन्यवाद प्रदान किये जाते हैं जिनकी अतुल कृपासे मनुष्यमात्रके उपकारके लिये बहुसंख्यक अलभ्य ग्रन्थ भाषाटीकासहित प्रकाशित होनेको **"श्रीबद्रिनारायणभक्तिरसामृत कार्य्यालय"** में उपस्थित हैं।

उन्हीं ग्रन्थोंमेंसे यह **"वृन्द"** अलभ्य प्राचीन और प्रमाणिक वैद्यक ग्रन्थ उत्तम **भाषा-टीकासहित** प्रकाशित होकर विद्वन्मंडलीका आदरणीय हुआ है। जिस आयुर्वेद (वैद्यक-शास्त्र) के द्वारा आयुका शुभाशुभ और रोगोंका निदान तथा उनको दूर करनेके उपाय जाने जातेहैं, विद्वद्वर इसी परम कल्याणकारी शास्त्रके द्वारा संसारका मंगल करतेहैं। इसमें संदेह नहीं है कि, आधुनिक समयमें अविद्या देवीके राज्यके कारण भारतसंतान अपने सर्वस्वरूपी शास्त्रोंकी महिमाको भूलगयेहैं उनका सार ग्रहण करनेकी उनमें सत्ता नहीं रही वे विदेशी अपवित्र औषधोंपर ही अकारण मुग्ध होकर तन धनको नाश करनेपर कटिबद्ध होरहेहैं यह उनकी बडी भूल क्या उनकी होनहार है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि, इस देशमें प्रादुर्भूत मनुष्योंके स्वभावके अनुकूल इसी देशकी उत्पन्न औषधियाँ हैं, परन्तु समयके फेरसे जब हिन्दुराज्य परिवर्तित होनेलगा तबसे अनेक शास्त्र और विद्या लोप होने लगी हैं तथा चिकित्साके ग्रंथ भी यहांतक लोप हुए कि, इने-गिने २।४ ग्रन्थ शार्ङ्गधर, माधवनिदानादि ही चिकित्साके लिये बस समझे जाने लगे, जिससे आयुर्वेदविद्याका लोप ही हुआ चाहताथा किन्तु सद्विद्याका लोप कदापि नहीं होसक्ता, क्रम २ से बहुसंख्याक ग्रन्थ प्रकाशित होनेलगे जिससे पुनः आयुर्वेद विद्याके जीउठनेके शुभ लक्षण लक्षित होने लगेहैं। श्रीमान् महाराजा बहादुरके प्राचीन संगृहीत पुस्तकालयसे वैद्यकके १०।२० ग्रन्थ योगरत्नाकरादिक प्राप्त हुएहैं जिन महद् ग्रन्थोंका आज तक कितने ही विद्वानोंने भी नामतक न सुना होगा। महाराजा बहादुरकी परमोदारतासे बडे २ विद्वान् उन ग्रन्थोंकी सरल भाषाटीका कर रहेहैं जो समय पाकर विद्वन्मंडलीके दृष्टिगोचर होवेंगे ही। महाराजा साहब चाहतेहैं कि, इनका प्रचार भारतके घरघरमें हो जिससे प्रत्येक भारतवासी अपनी प्राचीन वैद्यकविद्याका गौरव जानकर उसके प्रयोगोंसे पूर्ण लाभ उठाकर दीर्घजीवी हों, बलिष्ठ हों, अल्प-मृत्युसे बचें। इसके लिये श्रीमान्ने सम्यक् प्रकारसे अर्थसहायता दी है और भी विशेष योग्य व्यय करनेकी आज्ञा है।

यह वृन्द ग्रंथ वैद्यजनोंके शिरोमणीभूत **वृन्द** महाशय जो पुराकालके भिषग्वर थे उन्होंने जगत्‌के उपकारके लिये सर्व आयुर्वेद तथा तन्त्रशास्त्रोंको अच्छी रीतिसे अपनी कुशाग्र उत्कृष्ट बुद्धिके द्वारा मंथन करके सर्वांगसंपन्न ग्रन्थ तैयार कियाथा। यह रत्न आजतक प्रकाशित नहीं हुआथा इसके लाभ उठानेको सर्वजन असमर्थ थे अब आशा कीजातीहै कि, विद्वज्जन इस अमूल्य रत्नको धारण करके जगत्‌का उपकार करेंगे और श्रीमान् महाराजा बहादुरका उपकार मानकर महाराजा बहादुरकी आयु संतति तथा वैभवकी वृद्धिके लिये जगदीश्वरके समक्ष प्रार्थना करेंगे।

मुझसरीखी क्षुद्र व्यक्तिको श्रीमान्‌ने प्रायः ४०० ग्रन्थ विविध विषयके प्रकाशित करनेको दियेहैं जिनमेंसे इस समय २९।३० पुस्तकोंकी भाषाटीका बडे २ विद्वान् सज्जन कररहेहैं, मेरा कर्तव्य था कि हाथोंहाथ इन रत्नरूपी अप्राप्त ग्रन्थोंको भाषाटीका समाप्त होते ही प्रकाशित करूं, कारण श्रीमान् सरीखे परमोदार महाराजा बहादुर सहायक मेरे शिर पर हाथ धरेहुए खडे हैं। किन्तु मुझको फिर भी दुःखके साथ कहना पडताहै कि, इस समय हिन्दीका संसार कृतघ्न वृत्ति पर आरूढ है, वह विचार नहीं करताहै कि, हिन्दीके लेखक किस परिश्रमसे उसका साहित्य संग्रह कररहेहैं, उनको चाहिये था कि, उत्तम अलभ्य पुस्तकोंको संग्रह करके ज्ञान प्राप्त करें तथा प्रकाशकोंका उत्साह बढावें। जिस वस्तुके ग्राहक नहीं हैं वह किस प्रकार जीवित रहकर संसारकी सेवा करसक्तीहै, कार्य्यालय तभीतक चलताहै जबतक उसके खरीददार (चाहना रखनेवाले) मौजूद हों, उत्साह रखतेहों, इससे पहले श्री**केदारकल्प भा० टी०** (कैलासकी आश्चर्य्यजनक सृष्टिकी अद्भुत पौराणिक कथाओंका समूह) तथा **राजरहस्य** (अनेक शास्त्रमथित मानव धर्म नीतिका बृहद् वर्णन) २।३ सालसे छपकर तैयार हैं किन्तु उनकी बिक्री (प्रकाशित) होनेकी जैसी आशा थी वह देखी नहीं जाती जिससे भविष्यत्‌का काम धीमी-चालसे चलरहाहै. यह संकोच हिन्दीरसिकोंकी ही निन्दाका कारण होगा। अन्य भाषाभाषी सज्जनोंके बीच चाहे कूडा करकटसे भरीहुई किताब ही प्रकाशित होतीहो तो वे लोग उसको भी सादर खरीदके प्रकाशकको उत्तम पुस्तक प्रकाशित करनेका उत्साह प्रदान करके अपने साहित्यका भंडार पूर्ण करवारहेहैं किन्तु हिन्दीका अधमरा संसार ऐसा काम कररहाहै कि, सर्वो-त्तम पुस्तकोंकी ओर भी नहीं झांकता जिससे प्रकाशकोंका उत्साह भंग हो जाता है।

इस ग्रन्थके टीकाकार काव्यतीर्थ विद्वद्वर पं० **सदानन्दजी** डबराल भी धन्यवादके भागी हैं जिन्होंने अनेक सद्वैद्योंकी सहायता लेकर तथा अपने महान् परिश्रमसे इस ग्रन्थकी सर्वोत्तम **भाषाटीका** करदीहै। उपसंहारमें गुणज्ञ सज्जन पाठकोंकी सेवामें निवेदन है कि, यद्यपि इस ग्रन्थकी भा० टी० सज्जनानुमोदित हुईहै तथापि मानवधर्मानुसार त्रुटियोंका रहजाना संभव ही है उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूं।

नन्दप्रयाग
श्रीबद्रिनारायण.
१५।४।०९.

विनीतप्रार्थी (द्विजनन्दन)
पं० महेशानन्दशर्म्मा.
श्रीबद्रिनारायण भक्तिरसामृत कार्यालय.
नन्दप्रयाग, जि० गढ़वाल.

॥ श्रीः ॥

अथ वृन्दवैद्यकविषयानुक्रमणिका।

विषयाः — पृष्ठांकाः

अथ सामान्यज्वरचिकित्साधिकारः १.

अथ वातादिज्वराधिकारः २.

अथ सन्निपातज्वराधिकारः ३.

अथ जीर्णज्वराधिकारः ४.

विषयाः पृष्ठांकाः

अथ मदात्ययाधिकारः २२

अथ दाहाधिकारः २३.

अथोन्मादाधिकारः २४.

अथापस्माराधिकारः २५.

अथ वातरोगाधिकारः २६.

अथ वातरक्ताधिकारः २७.

अथोरुस्तम्भाधिकारः २८.

अथामवाताधिकारः २९.

अथ सविशेषोदरयकृत्प्लीहाधिकारः ४१.

अथ शोथोदराधिकारः ४२.

अथ शोथाधिकारः ४३.

अथ वृद्धिब्रध्नाधिकारः ४४.

अथ गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदापचीचिकित्साधिकारः ४५.

अथ श्लीपदाधिकारः ४६.

अथ विद्रधिरोगाधिकारः ४७.

अथ व्रणशोथाधिकारः ४८.

अथ सद्योव्रणाधिकारः ४९.

अथ भग्नाधिकारः ५०.

अथ नाडीव्रणाधिकारः ५१.

विषयाः			पृष्ठांकाः

इति पं० महेशानन्दलिखिता वृन्दवैद्यकविषयाऽनुक्रमणिका समाप्ता ।

विषमशब्दार्थसूची ।

त्रिक्षार—जवाखार, सज्जीखार, सुहागा ।

त्रिकटु—शोंठ, मिरच, पिपली ।

त्रिफला—हरड, बहेडा, आंवला ।

त्रिलवण—सेंधानोन, चोहारकोडा, विरियासञ्चरनोन ।

त्रिसुगन्ध—इलायची, दालचीनी, तेजपात ।

दशमूल—बेल, शोनापाठा, कंभारी, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, दोनों कटेरी, गोखरु,

लघुपञ्चमूल-सालवन, पिठवन, छोटी कँटेरी, वडी कँटेरी, गोखरु ।

बृहत्पञ्चमूल—बेल, कंभारी, पाढल, शोनापाठा, अरणी ।

पञ्चतृण—कुशा, काँस, रामशर, डाभ, ईख ।

पञ्चवल्कल—बडकी छाल, पाखरकी छाल, गूलर, तथा पीपल और बेतकी छाल ।

पञ्चपल्लव—आमके पत्ते, जामनके पत्ते, कैथके पत्ते, बिजोरेके पत्ते, बेलके पत्ते ।

त्रिसम—हरड, शोंठ, गुड ।

त्र्यञ्जन—कालाञ्जन, पुष्पाञ्जन, रसोत

त्रिमधु—घृत, सहत, शक्कर ।

त्रिलोहक—सोना चांदी, तांबा ।

त्रिवर्ग—त्रिफला, त्रिकटु ।

त्रिजातक—इलायची, दालचीनी, तेजपात ।

त्रिकंट—बृहती, अग्निदमनी, जवासा ।

त्रिकार्षिक—शोंठ, अतीस, मोथा ।

त्रिमद—मोथा, चीता, वायविडङ्ग ।

पञ्चलोहक—सोना, चांदी, ताँबा, रांग, सीसा ।

पञ्चशूरण—अत्यम्लपर्णी, कांडवेल, मालाकन्द, सूरन, सफेद सूरन ।

पञ्चलवण—कचलोन, सेंधानोन, समुद्रनोन, विरियासंचरनोन, कालानोन

पञ्चरत्न—सोना, हीरा, नीलमणि, पद्मराग, मोती ।

पञ्चसिद्धौषधी—तैलकन्द, सालममिश्री, वाराहीकन्द, रुदन्ती, सरहठी ।

पञ्चामृतयोग-गिलोय, गोखरु, मुसली, गोरखमुंडी, शतावरी ।

पञ्चाम्ल-बेर, अनार, विषाविल, अमलवेत, बिजोरानीबू ।

पञ्चसुगन्धक-लौंग, शीतलचीनी, अगर, जायफल, कपूर ।

पञ्चमूत्र-गाय, बकरी, भैंस, भेड, गधी-इनके मूत्र ।

पञ्चपित्त-सूकर, बकरी, भैंसा, मच्छ, मोर-इनके पित्त ।

पञ्चतिक्त-नीम, गिलोय, वांसा, परवल, कटेहरी ।

पञ्चकोल-पिपली, पिपलामूल, चव्य, चीता, शोंठ ।

पञ्चकर्म-वमन, विरेचन, नस्य, निरूह, अनुवासन ।

दशमूत्र-हाथी, भैंस, ऊंट, गाय, बकरा मेंढा, घोडा, गधा, मनुष्य, स्त्री-इनके मूत्र ।

षडूषण-शोंठ, मिरच, पीपल, पिपलामूल, चव्य, चीता ।

अष्टमूत्र-मनुष्य और स्त्रीके मूत्र रहित पूर्वोक्त मूत्र ।

अष्टक्षीर-बकरी, भेड, गाय, स्त्री, घोडी, ऊंटनी, हथिनी, गधी-इनके दूध ।

काकोल्यादिगण-काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, गिलोय, मुगवन, मषवन, पद्माख, वंशलोचन, ककराशिंगी, पुंडरिया, जीवन्ती, मुलहठी, दाख ।

सप्तधातु-रस, रक्त, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र ।

चातुर्जातक-इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर ।

द्विनिशा-हलदी, दारुहलदी ।

चतुःसम-चन्दन, अगर, कस्तूरी, केशर ।

चतुर्बीज-मेथी, हालं, कालाजीरा, अजमायन ।

अष्टवर्ग-काकोल्यादिगणीय प्रारंभिक आठ औषधी ।

कल्क-जल आदिके संग पीसीहुई औषधकी विकृति ।

स्वरस-पीसीहुई औषधीका रस ।

परिमाणवाचकशब्दार्थसूची।

कर्ष–२ तोले।

अक्ष–२ तोले।

कोल–१ तोला।

पल–४ तोले।

कुडव–३२ तोले।

आढक– ८ सेर वा ४ प्रस्थ।

प्रस्थ– २ सेर।

तुला– १०० [illegible]

द्रोण– ३२ सेर वा १६ प्रस्थ।

नल्वन– ३२ सेर।

पात्र– ८ सेर।

अर्मण– ३२ सेर (द्रोण)।

[1]बिल्व– ८ तोले।

घट– १ द्रोण (३२ सेर)।

---

१ कहीं २ देशभेदसे परिमाणमें भी भेद है।





शुद्धशिलाजीत।

इस समय पाश्चात्य औषधियोंके मुकाबलेमें आयुर्वेदीय औषधियां हमारे आलस्यसे पीछे होरहीहैं, हमारे भारतके हिमालयोंकी बहुतसी महोषधियोंमें चिरप्रसिद्ध "प्राणसञ्जीविनी शिला-जतु" भी प्रत्येक रोगोंमें अनुपान विधानसे प्रत्यक्ष चमत्कार दिखानेमें एक ही महारसायन है। इस समय धूर्त विज्ञापनबाजोंने सर्वसाधारणको धोखा देना शुरू कियाहै जिससे आयुर्वेदके विश्वासियोंको शुद्ध पदार्थ मिलने मुशकिल होगये हैं—किन्तु यह भी नहीं है कि संसारमें रत्नगर्भा वसुन्धरा रत्न-हीन होगई हो, नहीं नहीं, अपने बापके सच्चे पुत्र अब भी निष्कपट व्यापारके लिये अप्राप्तवस्तु-ओंको भी प्राप्त करके सर्वसाधारणके समक्ष उपस्थित करके संसारका उपकार कररहेहैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस समय भारतभरमें **पं० महेशानन्दशर्म्मा नन्दप्रयाग श्रीब-द्रीनारायण** वालोंका शिलाजीत कार्य्यालय सन् १८९४ से स्थापित होकर श्रीमान् आयु-र्वेद महोपाध्याय शङ्करदाजी शास्त्री पदे संस्थापक आयुर्वेद विद्यापीठ से, भारतीय विद्वान् वैद्य-शिरोमणियोंकी संमतिसे हिमालयमेंही उत्तम शिलाजीतको एकत्रित करके शास्त्र सम्मतिसे अनेक महौषधोंमें भावित करके सूर्य्यतापमें शुद्ध करके उचित मूल्यसे सर्वसाधारणको पहुंचारहेहैं, इस बातके लिये राजा, प्रजा, वैद्य, डाक्टर तथा बड़े २ समाचारपत्रोंकी भी यही सम्मति है। जो यहांपर प्रकाशित की नहीं जा सकती, किन्तु दो एक समाचारपत्रोंने उनकी शिलाजीतके लिये जो कुछ लिखा है उसका सारांश मात्र नीचे प्रकाशित हुआ है।

श्रीमान् श्री १०८ महाराजा बहादुर पदमा रामगढ़ाधीश लिखते हैं।

पं० महेशानन्दशर्मा नन्दप्रयाग गढ़वालकी "शुद्ध शिलाजीत" हमारे दरबारमें बरती जाती है जो प्रत्येक रोगमें आशातीत उपकार करतीहै।

श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार ता० २१। २। १९०८ में लिखा है, पं० महेशानन्दशर्म्माजीकी शुद्ध शिलाजीत हमारे कार्य्यालयमें प्रतिवर्ष आया करतीहै, जिसको इस्तेमाल करके वह बलवीर्य्य-दायिनी ज्ञात हुईहै, इनकी शुद्ध शिलाजीत अपने सच्चे गुणोंके लिये सुख्याति पाचकीहै।

भारतमित्र ता० २९ । १२ । ०९ पं– महेशानन्दशर्म्माजीकी शुद्ध शिलाजीत हमने सेवन की, वह धातुसम्बन्धी प्रत्येक रोगोंको गुणकारी है ।

हिन्दीवङ्गवासी ता० ९ । ५ । १९१० असली शिलाजीत न मिलनेसे लोगोंको धोखा होता था यह अभाव पं० महेशानन्दजीने मेंट दियाहै, अर्थात् उनकी शुद्ध शिलाजीत सर्वोत्तम है ।

यह नं० १ से ४ तक मिलतीहै । सर्वोत्तम रसायनिक प्रक्रियासे सूर्य्यतापमें तैयार कीहुई नं० १ का मू० १||) रु० तोला । नं० २ का |||) तोला । नं० ३ का ≡) तोला और खानसे निकाली हुई नं० ४ का ~) तोला ।

मिलनेका पता–**पं० महेशानन्दशर्म्मा,**

"शुद्ध शिलाजीत कार्य्यालय"

पो० नन्दप्रयाग (बद्रिकाश्रम) जि० गढ़वाल.

॥ श्रीः ॥

अथ वृन्दवैद्यक.

अथवा

सिद्धयोग ।

भाषाटीकासहित ।

अथ सामान्यज्वरचिकित्साधिकारः ।

युग्मम्—ध्यात्वा शिवं परमतत्त्वविचारवेद्यं चण्डीमभीष्टफलदां सगणं गणेशम् ॥
धन्वन्तरिं मुनिवरं मुनिसुश्रुतादीनत्यन्तमुच्चतपसो मनसा प्रणम्य ॥ १ ॥
नानामतप्रथितदृष्टफलप्रयोगैः प्रस्तावेवाक्यसहितैरिह सिद्धयोगः ॥
वृन्देन मन्दमतिना सुहितार्थिनाऽयं संलिख्यते गदचिकित्सकतः क्रमेण २

भाषाटीकाकारमङ्गलाचरणम् ।

श्रीरागतुल्यमहिमानमुदारहासं साशंशमंसलमलङ्कृतभालभासम् ॥
पात्रं श्रियां जडमनोवनलब्धमोदं वन्दे सुमङ्गलनिधिं बदरीविशालम् ॥ १ ॥

भा० टी०—उत्कृष्ट तत्त्वज्ञानसे जाननेके योग्य सदाशिव तथा अभीष्टफलको देनेवाली शिवपत्नी पार्वती एवं गणसहित शिवपुत्र गणेशका ध्यान करके तथा महर्षि धन्वन्तरि और श्रेष्ठ तपस्यासम्पन्न सुश्रुतादिक (आयुर्वेदोद्धारक) महर्षियोंको मनसे प्रणाम करके परोपकारको चाहनेवाला मन्दमति वृन्दकवि अनेक महर्षियोंके मतोंसे निर्णीत और प्रचलित तथा अनुभवसिद्धःप्रयोगोंसे सम्पन्न, एवं अनेक रोगोंके प्रतीकारों (इलाजों) से सनाथ किये हुए इस सिद्धयोगनामक वैद्यक ग्रन्थको क्रमशः प्रस्ताव वाक्य सहित लिखताहै ॥ १ ॥ २ ॥

रोगपरीक्षा ।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ॥ ततः कर्म भिषक् पश्चा-ज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ३ ॥ यस्तु रोगमविज्ञाय कर्म्माण्यारभते भिषक् ॥ सोऽसिद्धो विधिवेत्ता यस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ ४ ॥ यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ॥ देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ५ ॥ आदावन्ते रुजो ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः ॥ साध्यासाध्यविशेषज्ञस्ततः कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–वैद्यको उचित है कि, प्रथम रोगकी परीक्षा कर तदुत्तर विचारपूर्वक गुणकारी औषधका प्रयोग करे ॥ ३ ॥ जो वैद्य रोगको न जानकर प्रयोगको आरम्भ करताहै उसके प्रयोगमें सिद्धि नहीं होती । विधिको जाननेवाले वैद्यके प्रयोगमें स्वतः सिद्धि है ॥ ४ ॥ एवं जो वैद्य रोगोंके रहस्यको जाननेवाला तथा सब प्रकारकी चिकित्सा करनेमें चतुर और देशकालका प्रमाण जानता हो उसके प्रयोगमें निःसन्देह सिद्धि जानो ॥ ५ ॥ साध्याऽसाध्यभावको जाननेवाले वैद्यको उचित है कि, प्रथम रोगके आद्यन्त जाननेका प्रयत्न करे तब साध्य प्रतीत होनेपर उचित भैषज्यको करे ॥ ६ ॥

नाऽस्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः ॥ अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥ ७ ॥ भैषज्यकरणे दक्षो न जिह्रीयात् कदाचन ॥ नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवस्थितिः ॥ ८ ॥

भा० टी०–विना पित्तकोपादिक दोषोंके कोई रोग नहीं होता अतः विचारशील वैद्यको उचित है कि, उन उन दोषोंके चिह्नोंसे निदान जानकर अनुक्त (जिसका शास्त्रमें विशेष विवरण नहीं किया गया) रोगके दूर करनेके उपचारोंको भी करे ॥ ७ ॥ कदाचित् भी चतुर वैद्य ऐसे रोगोंकी चिकित्सा करनेमें संकुचित न होवे क्योंकि यावन्मात्र विकारोंकी स्थिति निरन्तर नहीं रहती है ॥ ८ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् ॥ साध्यासाध्यविभेदेन द्विविधोऽसौ प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥ कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते॥असाध्योऽपि द्विधा बोध्यो याप्योऽयाप्यश्च भूरिशः१०॥

भा० टी०–नेत्र तथा मुखके विकारको देखना, हाथ आदिक अङ्गोंका स्पर्श करना, शीत, दाह आदिक तथा पथ्याऽपथ्य भोजनके विषयमें रोगीसे प्रश्न करना इन तीनं प्रकारोंसे

१ चिकित्सा ।

रोग जाना जाता है। साध्य, असाध्य भेदसे रोग दो प्रकारका कहा है ॥ ९ ॥ तहां साध्य रोगके भी दो भेद हैं। एक तो कृच्छ्रोपाय (जो कठिन उपायसे सिद्ध हो) और दूसरा सुखोपाय (जो सहज उपायसे सिद्ध हो) है। इसी प्रकार असाध्यके भी दो भेद हैं एक तो याप्य (दूर किये जाने योग्य) और दूसरा अयाप्य (जो दूर न किया जाय) ॥ १० ॥

स्वभावाद्व्याधयः साध्या असाध्यास्त उपेक्षिताः ॥ असाध्या अपि साध्याः स्युर्भिषग्भिरनुपेक्षिताः ॥११॥ प्रकृत्यवस्थयोर्देशकालयो-रनुसारिणाम् ॥ सुभद्राणां बुद्धिमतां जितेन्द्रियवतां नृणाम् ॥१२॥

भा० टी०–प्रत्येक रोग स्वभावतः साध्य हुआ करते हैं, परन्तु अवहेलना करनेसे साध्य भी असाध्य होजाते हैं, और झटिति सावधानीसे वैद्योंके द्वारा प्रयोग कराये जानेपर यदि रोगाक्रान्त पुरुष देश, काल, प्रकृति, अवस्थाके अनुसार चलें तथा जिह्वा उपस्थ प्रभृति इन्द्रियोंको वशमें करलें तो ऐसे बुद्धिसम्पन्न रोगियोंके असाध्य रोग भी साध्य होजातेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ क्रमशो वृद्धिमापन्नो व्यापादयति देहिनम् ॥ १३ ॥ स्थानान्तरगतश्चाऽपि विकारान्कु-रुते बहून् ॥ निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनाऽऽयाति हेतुना ॥१४॥

भा० टी०–रोग, अग्नि, शत्रु और विष तनिक होनेपर भी क्रमशः वृद्धिगत होते हुए महान् विकार करते हैं, यहांतक कि, अन्तमें देहधारियोंको मार डालते हैं ॥ १३ ॥ रोग अपनी कोटिसे च्युत होनेपर भी अनेक विकारोंको करता है, किंवा हटजाने परभी थोडेही निमित्तसे फिर आपहुँचता है ॥ १४ ॥

अथ नाडीपरीक्षा।

(करस्याऽङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥ तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥१५॥ नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकःसर्प-योर्गतिम् ॥ कुलिङ्गकाकमण्डूकगतिं पित्तप्रकोपतः ॥ १६ ॥ हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥ लावतित्तिरिवर्त्तीरगमनं सन्निपाततः ॥ १७ ॥ कदाचिन्मन्दगमना कदाचिद्वेगवाहिनी ॥ द्विदोषकोपतो ज्ञेया हन्ति च स्थानविच्युता ॥१८॥ स्थित्वास्थि-त्वा चलति या सा स्मृता प्राणघातिनी ॥ अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हन्त्यसंशयम् ॥१९॥ ज्वरकोपे तु धमनी सोष्णा वेगवती मता ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्ताभयप्लुता ॥ २० ॥

मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च मन्दान्मन्दतरा भवेत्॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ २१ ॥ लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ॥ सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती स्मृता ॥ ॥ २२ ॥ चपला क्षुधितस्य स्यात्तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ नाडीज्ञानमिदं प्रोक्तं संक्षेपेण भिषग्वरैः ॥ २३ ॥

भा० टी०–हाथके अंगुष्ठमूलमें जो नाडी है वह जीवसाक्षिणी कहलाती है उसीकी चेष्टाके द्वारा शारीरिक सुख वा दुःख जानना ॥ १५ ॥ वातदोषमें वह नाडी जोंक और सर्पकी भांति चलती है तथा पित्तदोषमें कुलिंगपक्षी, कौआ और मेंडक इनकी चाल चलती है ॥ १६ ॥ कफके प्रकोपसे हंस और कबूतरकी भांति धीरे २ बहती है । सन्निपातसे लाव, तीतर । बटेर इनकी गतिको धारण करती है ॥ १७ ॥ दो दोषोंके कोपमें वह नाडी कभी धीरे और कभी वेगसे बहती है । और अपने स्थानसे च्युत होनेपर जीवधारीको मार भी देती है॥१८॥ जो नाडी ठहर ठहर कर चलती है अर्थात् कुछ चलकर ठहरते चले वह प्राणनाशिका जाननी, एवं अत्यन्त क्षीणरूप और शीतल नाडी भी निःसन्देह प्राणघातिनी होती है ॥ १९ ॥ ज्वरके प्रकोपमें वह गरम होकर वेगसे चलती है । इसी प्रकार काम क्रोधके कारणसे भी वह वेगवाहिनी ही जाननी । चिन्ता और भयके विप्लवमें वह क्षीणप्राय रहती है॥ २० ॥ जिस मनुष्यकी जठराग्नि मन्द और धातु क्षीण हैं उसकी नाडी अतिमन्द होती है, आमदोषसे नाडी रक्तपूर्ण तथा कुछ गरम और भारी रहाकरती है ॥ २१ ॥ जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त है उसकी नाडी हलकी और गंभीररूप वेगसे बहनेवाली होती है । सर्वथा सुखी मनुष्योंकी नाडी स्थिर और बलयुक्त जाननी ॥ २२ ॥ भूखे मनुष्यकी नाडी चञ्चल और तृप्तहुएकी नाडी स्थिररूपसे बहती है । यह नाडीज्ञान वैद्यवरोंने संक्षेपसे कहा है ॥ २३ ॥)

क्षीणो मार्गी गदो यावत्सूक्ष्मदाहोऽतिनिर्ज्जवः ॥ तावत्तमनुबध्नीयात्प्रयोगेनाऽनुयायिना ॥ २४ ॥ यावन्न प्रकृतिस्थाः स्युर्गदिनो देहधारिणः ॥ व्याधितत्त्वपरिज्ञात्रा कर्तव्यो रोगनिग्रहः ॥ २५ ॥

भा० टी०–जबतक रोग क्षीणदशामें रहकर मार्गपर (दावमें) आया हुआ सूक्ष्म दाह करनेवाला अपने वेगसे रहित है, तभी अनुकूल प्रयोगसे उसे अपने वशमें कर ले ॥ २४ ॥ जबतक रोगी प्राणी, अपनी प्रकृति (चैतन्य) में स्थित नहीं होते तबतक रोगतत्त्वको जाननेवाले वैद्यको रोगके दमन करनेका उपाय करतेही रहना चाहिये ॥ २५ ॥

एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥ २६ ॥ कर्मदोषोद्भवाश्चाऽन्ये कर्मजा नाश-

हेतुकाः ॥ यथाशास्त्रन्तु निर्णीतं यथाव्याधि चिकित्सया ॥ २७॥

भा० टी०–यही वैद्यका वैद्यपन है, वैद्य आयुका स्वामी नहीं हो सकता, क्योंकि कोई रोग तो ऐहिक और प्राक्तनके अत्युत्कट कर्मोंसे उत्पन्न होते हैं और कोई शीत पित्तादिकके दोषसे ॥ २६ ॥ कोई कर्म और दोष इन दोनोंसे उत्पन्न होते हैं तहां उत्कट कर्मजन्य रोग प्रायः नाश करनेके लिये ही उद्यत रहता है। यदि शास्त्रके निर्णयानुसार तथा रोगके अनुसार चिकित्सा करनेसे भी– ॥ २७ ॥

न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ स्वल्पदोषो गरीयान्यः स ज्ञेयः कर्मदोषजः॥ २८ ॥ औषधीभिरुपायैस्तैः कर्मदोषहरैरपि ॥ कर्मदोषोद्भवो याति कर्मदोषक्षयात्स्वयम् ॥ २९ ॥

भा० टी०–रोग शांतिको प्राप्त नहीं हो तो जान लेना कि, यह कर्मजन्य रोग है। जिसमें दोष थोडे हों, परन्तु स्वयं गरिष्ठ हो ऐसा रोग कर्म और दोष दोनोंसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ २८ ॥ कर्म और दोषके हरनेवाले तत्तत् उपाय और औषधोंसे जब कर्म दोषका क्षय होता है तब कर्मदोषजन्य रोग स्वयं दूर होजाता है ॥ २९ ॥

विषशस्त्राग्निवज्राद्या मृत्यवः कर्मसम्भवाः ॥ एतत्परिहरं प्रोक्तं बुधैः सञ्जीवनामृतम् ॥ ३० ॥ याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ॥ सा चिकित्सा विकाराणां कर्म्म तद्भिषजां मतम् ॥ ३१॥

भा० टी०–विष, शस्त्र, अग्नि, वज्र प्रभृति मृत्यु तो केवल कर्मजन्य हैं। ऐसी मृत्युओंका हरण करनेवाला तो केवल एक सञ्जीवनामृत ही पंडितोंने कहा है ॥ ३० ॥ शरीरमें जितने धातु (रक्त, मज्जा, वसा आदिक) हैं उन सबोंका क्रियाके द्वारा सम होजाना ही रोगविकारोंकी चिकित्सा है, वैद्योंका प्रशंसनीय कर्म भी यही है ॥ ३१ ॥

उत्पद्यते हि वैषम्यं रोगाणां क्रियया यथा ॥ तदकार्य्यं वर्ज्जनीयं गर्हितं भिषजां वरैः ॥ ३२ ॥ स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वांगग्रहणं तथा ॥ युगपद्यत्र रोगे स्यात्स ज्वरो व्युपदिश्यते ॥ ३३ ॥

भा० टी०–जिस क्रियासे रोगोंकी विषमता (कठिनता) उत्पन्न होती हो उस क्रियाका नाम अनर्थ है अतः वह छोड देना योग्य है क्योंकि, वैद्यवरोंसे यह निन्दित है ॥ ३२ ॥ अब ज्वरका निदर्शन करते हैं–जिस रोगमें सहसा स्वेद (पसीना) रुकजावे, सर्वाङ्गमें सन्ताप हो तथा समस्त शरीर जकड गया हो उसका नाम ज्वर कहाजाता है ॥ ३३ ॥

सामान्यज्वरचिकित्सा।

स एष वै जगद्व्यापी सर्वरोगाग्रजो बली ॥ ज्वरः प्रधानो रोगा-

णामुक्तो भगवता पुरा ॥ ३४ ॥ अविपाकस्य वैरस्यं हानिश्च बल-
वर्णयोः ॥ शीतवैकृतमल्पेऽपि ज्वरे लङ्घनमाचरेत् ॥ ३५ ॥

भा० टी०—यह ज्वरनामक रोग सर्वरोगोंके प्रथम उत्पन्न होकर अधिक बलधारी हुआ, पूर्वकालमें सदाशिवजीने इसको वर दिया है कि, तुम सब रोगोंके ज्येष्ठ और श्रेष्ठ रहोगे ॥ ३४ ॥ तनिक ज्वरके होनेपर भी अग्निमान्द्य और मुखका नीरस होजाना, बल और कांतिकी हानि तथा शीतविकार इत्यादि इत्यादि चिह्न होते हैं अतः इसकी शांतिके लिये प्रथम लंघन करे॥३५॥

लंघनेन क्षयं नीते दोषे सन्धुक्षिते ज्वरे ॥ मृदुत्वं च लघुत्वं च
क्षुधैवाऽस्योपजायते ॥ ३६ ॥ सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सामे
विशेषतः ॥ वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ ३७ ॥

भा० टी०—लंघन करनेसे दोष नाशको प्राप्त होकर जब ज्वर शान्त होगया हो तब शरीरमें कोमलता, लघुता (हलकापन) और भूख उत्पन्न होजाती है ॥ ३६ ॥ वाग्भटकी संमति है कि, विशेषकर आमाशयको लेकर उत्पन्न हुए ज्वरमें वमनोचित अवस्थावाले रोगीको पथ्यके अनन्तरही वमन कराना ॥ ३७ ॥

आमाशयं ह्यो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान्न विधापयन् ॥ विदधाति ज्वरं
दोषस्तस्माल्लङ्घनमाचरेत् ॥ ३८ ॥ वमितं लङ्घयेन्नैव लङ्घितं
च न वामयेत्॥वमनं क्लेशबाहुल्यं विना लङ्घनकार्षितम्॥३९॥

भा० टी०—प्रथम दिन आमाशयमें रहनेवाले अग्निको नाशकर स्वयं उस स्थानको आक्रमण करके व्याप्ति मार्गोंका सान्निध्य करता हुआ दोष ज्वरको उत्पन्न करता है अतएव अग्निवर्द्धक लंघन करना योग्य है॥ ३८ ॥ परन्तु ध्यान रहे कि, जिसके वमन होचुका उसको लंघन देना योग्य नहीं, एवं जिसने लंघन कर लिया उसको वमन न देवे, क्योंकि वमन अधिक क्लेशकारी होताहै अतः लंघनसे थकित पुरुषको छोड रोगीको वमन देना उचित है॥३९॥

अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम् ॥ ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षावर्द्धकं
रक्तशोधकम् ॥४०॥ अवेक्ष्य दोषं प्राणं च कार्य्यं स्यादपतर्पणम्॥
तद्धि मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ॥४१॥ कार्य्यं न बाले वृद्धे
वा गर्भिण्यां न च दुर्बले ॥ चिन्तापरिश्रमक्रोधशोककामक्षयज्वरे ४२

भा० टी०—जिस रोगीपर दोषका अग्नि पूर्ण आक्रमण न करसका, उसके लिये दिया हुआ लंघन दोषको काढता है। ज्वरको नाश करता है। अग्नि और रुचिको बढाता है। दूषित रुधिरको शुद्ध करता है ॥ ४० ॥ परन्तु दोष और प्राण (साहस, शक्ति) के प्रमाणको

विचार करके वमन लंघन कराना उचित है । वायुरोग तथा भूख, प्यास, मुखशोष और मूर्च्छासे युक्त रोगीपर यह प्रयोग करना ठीक है, एवं बालक, वृद्ध: और गर्भिणी स्त्री क्षीण दुर्बल पुरुष इनमें पूर्वोक्त प्रयोग वर्जित है । इसी प्रकार चिन्तासे, परिश्रमसे, क्रोधसे, शोकसे, कामविकारसे, क्षयसे उत्पन्न हुए ज्वरमें भी लंघन वर्जित है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणे ज्वरे ॥ हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ ४३ ॥ बलाविरोधमालोच्य वमनेनोपपादयेत्॥ बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ४४ ॥

भा० टी०–जिन रोगियोंकी दोषावस्था वर्तमान नहीं और रोग तरुणावस्थामें पहुँच गया है इस दशामें दिया हुआ वमन हृद्रोग तथा श्वास और आनाह (अफारा–हिचकी) तथा मूर्च्छाको उत्पन्न करता है ॥ ४३ ॥ वमनसे ताकतको किसी प्रकारका विरोध पडते हुए न देखकर, उसका प्रयोग करना योग्य है क्योंकि बलही आरोग्यका मुख्य आधार है जिसके निमित्त इतनी चिकित्साका प्रपञ्च है ॥ ४४ ॥

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे ॥ हृदयोद्गारकण्ठास्यविशुद्धौ स्वस्थतां गते ॥ ४५ ॥ स्वेदे जाते रुचौ वाऽपि क्षुत्पिपासामहोदये ॥ कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चाऽन्तरात्मनि ॥ ४६ ॥

भा० टी०–जब रोगीका अधोवायु और मलमूत्रका उद्गार ठीक है एवं शरीरमें हलकापन तथा हृदयमें उत्साह और कण्ठ व मुखमें सरसता हो, स्वयं एक प्रकार स्वास्थ्यको प्राप्त होगया हो, एवं स्वेद (पसीना) हो और भोजनादिकमें रुचि, किंवा भूख प्यासका जोर हो तथा अन्तरात्मामें एक प्रकारका आनन्द हो तब इस दशामें लंघन वर्जित किया गया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च काशः शोषो मुखस्य च ॥ क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ ४७ ॥ अनाह्लादो मतिभ्रंश ऊर्द्ध्ववातस्तमो हृदि ॥ देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ ४८ ॥

भा० टी०–शरीरकी प्रत्येक ग्रन्थियोंमें भिन्नता (शैथिल्य), समस्त शरीरमें पीडा, खांसी, मुखका सूख जाना, भूखका नाश होजाना, अरुचि, प्यासका अधिक होना, कान और नेत्रोंमें दुर्बलताका आना, मनमें किसी प्रकारका आह्लाद (खुशी) न होना, बुद्धिका नाश, तथा वायुका ऊर्ध्व सञ्चार होना, हृदयमें तमोगुणका प्रादुर्भाव, शरीर, जठराग्नि और बलमें हानि पहुंचना इत्यादिक दोष लंघनके व्यभिचारसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

विण्मूत्रवातसरणे तनुलाघवे च तन्द्राक्लमे च सरसे शिरसि प्रजाते ॥

उद्गारवक्त्रविवरोदरहृद्विशुद्धौ स्वेदोद्गमे सति भवत्यशनाभिलाषे ॥ ॥ ४९ ॥ इत्येतदातुरसुलंघितालिंगमग्र्यं सिद्धं स्वतो यदि विलंघन-मर्थशून्यम् ॥ सम्यग्विविच्य सुधियां भिषजां वरिष्ठः प्रत्येकयोगनिवहं प्रथयेत्पृथिव्याम् ॥ ५० ॥

भा० टी०–अतः मल, मूत्र तथा अधोवायुके सञ्चार तथा सुखनिद्रासे आलस्य और शिरका सरस होना, कफ प्रभृतिका निकलना, मुख तथा इन्द्रियगण और उदर, हृदयका शुद्ध होना, पसीनाका निकलना, भोजनमें रुचि होना, इतने चिह्नोंके होनेपर लंघन देना निरर्थक है, क्योंकि जब यह स्वतः (बिना लंघन दिये ही) सिद्ध हैं तो फिर क्या ? बुद्धिमान् वैद्यवरको उचित है कि, रोगी पर ठीक प्रकारसे विवेचना करके प्रत्येक प्रयोगको करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

दोषदेशवयःकालविकाराणां समत्वतः॥ पथ्यमौषधमुत्पाद्यं सानुपानं प्रयत्नतः ॥५१॥ कफोत्क्लेशः सहृद्ह्रासः ष्ठीवनं च मुहुर्मुहुः ॥ शारीरकं गरिष्ठत्वं तन्द्रा स्याद्धीनलङ्घने ॥ ५२ ॥

भा० टी०–उन २ दोष देश, अवस्था, समय तथा रोगविकारकी इनकी तुल्यताके अनुसार प्रयत्नपूर्वक अनुपान सहित औषधि और पथ्यका निर्माण करै ॥ ५१ ॥ लंघनके योग्य रोगीको लंघन न देनेसे कफजनित क्लेश, मनकी न्यूनता, बार बार थुकार, शरीरमें गरिष्ठता और आलस्य इतने दोष उत्पन्न होते हैं ॥ ५२ ॥

विनाऽपि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ॥ न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ ५३ ॥ यवाग्वामोदनं क्षुद्वानश्नीयाद् भृष्टतण्डुलम् ॥ अन्नकाले हिता पेया दीपनी पाचनी च सा ॥ ५४ ॥

भा० टी०–चिकित्सा किये विनाही, पथ्यमात्रके सेवनसे रोग हटजाता है । पथ्यहीन रोगीके रोग सैकडों उपायोंसे भी नहीं हटते ॥ ५३ ॥ भूखवाला रोगी यवागू (षड्गुणजलमें पकीहुई लपसी) के साथ भुनेहुए चावलोंका भात खावे. क्योंकि यवागू अग्नि बढानेवाली, अन्नको पचानेवाली रुचिकर वस्तु है अतः भोजनकालमें वह हित है ॥ ५४ ॥

मदात्यये घर्मनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके ॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागू न हिता ज्वरे ॥ ५५ ॥ दाहच्छर्द्यर्दिते वैद्यो ज्वरघ्नैः फलवारिभिः ॥ शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ ५६ ॥

भा० टी०–मदात्यय (मद्यपान करनेसे उत्पन्नहुए रोग) में, ग्रीष्मऋतुमें, पित्त कफके अधिक होनेमें, रक्त पित्तके उर्द्धस्थानमें प्रवृत्त होनेसे, दाह और छर्दिकी पीडामें, यवागू प्रभृति

पेया हित नहीं हैं ॥ ९९ ॥ शेषज्वरावस्थामें ज्वरके नाश करनेवाले फलोंके रस तथा शक्कर और मधुसे संयुक्त लाजतर्पण (सत्तूका रस) को पिलावे ॥ ९६ ॥

ज्वरे श्रमोपवासान्ते रसमंडौदनं हितम् ॥ मुद्गयूषौदनं चापि देयं कफसमन्विते ॥ ५७ ॥ तदेव सरसं स्निग्धं शीतपित्तज्वरे हितम् ॥ मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तात्मके हितः ॥ ५८ ॥

भा० टी०–परिश्रम और उपवासके अन्तमें तथा साधारण ज्वरमें सरस मांड और भात हितकारी है। मूँगसे सिद्ध किये हुए चावलोंका भात, कफवाले रोगीको हित है ॥ ९७ ॥ वही मुद्गौदन सरसता और स्निग्धताके साथ सिद्ध किये जानेपर शीत पित्तके ज्वरमें हितकारी होता है। मूँग, आंवलेका काढा (रस) वातपित्तवाले रोगीको हित है ॥ ९८ ॥

**निम्बः पटोलयूषस्तु हितः पित्तकफात्मके ॥
ह्रस्वमूलकयूषस्तु हितो वातकफात्मके ॥ ५९ ॥**

भा० टी०–नीम, पटोल, (मूँगका) काढा यह पित्तकफवाले प्राणीको हितकारक हैं। वातकफ वालेको लाल ईख और मूँगका काढा गुणकारी होता है ॥ ९९ ॥

**पटोलपत्राणि निशाघनानि सनिम्बचर्मत्रिफलाः कटूनि ॥
व्याघ्री तथा देवतरुः किलैषां क्काथस्त्रिदोषज्वरहारकः स्यात् ॥ ६० ॥**

भा० टी०–परवलके पत्ते, हलदी, नागरमोथा, नीमकी छाल, त्रिफला, कुटकी कटेहली, देवदारु इनका क्काथ त्रिदोष (वात पित्त कफ जनित) ज्वरको हरता है ॥ ६० ॥

**सनागरं पौष्करमूलमुत्तमं गुडूचिका सद्गुणकण्टकारिका ॥
समीरणश्लेष्मघनं ज्वरं हरेच्छ्वासं च कासं कथिता यथाविधि ॥ ६१ ॥**

भा० टी०–सोंठ सहित पोहकरमूल, गिलोय तथा गुणकारी कटेहली इनका क्काथ श्वास खांसी और वातपित्ताधिक सन्निपातज्वरको हरता है ॥ ६१ ॥

**मधूकप्रसूनं परूषं च मृद्वी सहोशीरतिक्तं फलानां त्रयश्च ॥
तथा काश्मरीत्येतदानन्दनीरं हरेत्सेवितं सर्वतापानुपेतान् ॥ ६२ ॥**

भा० टी०–महुआके फूल, फालसा, मुनक्का, दाख, त्रायमाण, खश, कुटकी, त्रिफला, खम्भारी इनका आनन्दनीर (ठंढायूष) सेवन किये जानेपर सब प्रकारके तापको हरता है॥ ६२॥

**मलावेष्टितान्त्रो द्विजाङ्गी फलानां त्रयं त्रायमाणा गुडद्राक्षिकश्च ॥
पिबेत्क्काथमेषां भवेदामयेन भयेनाऽतिहीनः सदीनोऽपि रोगी ॥ ६३ ॥**

भा० टी०–बद्ध मलवाला रोगी पुरुष कुटकी, त्रिफला, त्रायमाण, गुड, दाख इनका क्काथ पीनेसे निर्भय हो रहता है ॥ ६३ ॥

कफव्याकुलो नैव पेयाद्धि पेयां श्रुतोक्तां हि रोगान्तरापायकर्त्रीम् ॥
कफं वर्द्धयेत्सा तथा भोजनान्ते निपीतञ्च नीरं नराणाममीषाम् ॥६४॥

भा० टी०–कफ रोगसे व्याकुल हुए मनुष्यको उचित है कि, कफातिरिक्त रोगोंको नाश करनेवाली उक्त पेयाको पान न करै । भोजनके अन्तमें पान किया हुआ जल और पेया कफाकुल रोगीके कफको बढाते हैं ॥ ६४ ॥

निस्तुषानां यवानाञ्च भोजनं गुणकारकम् ॥ सम्यक् संसाधितं श्लेष्मोत्तरतापहतात्मनाम् ॥ ६५ ॥ यूषान् कुलत्थचणकदाडिमादिकृताँल्लघून् ॥ रूक्षाँस्तिक्तरसोपेतान्हृद्यान् रुचिकरान् पटून् ॥ दद्यात्तेषां हितार्थाय हितमिच्छुर्भिषग्वरः ॥ ६६ ॥

भा० टी०–कफाधिक ज्वरसे क्षीण शरीरवाले मनुष्योंके लिये फोलर उतारे (छिले) हुए जवका भोजन भले प्रकारसे सिद्ध किये जाने (पकाये जाने) पर गुणकारी होता है ॥ ६५ ॥ कुलथी, चना, अनारदाना इनमें सिद्ध किये हुए हलके यूष वा रूखे कडुवे रसोंसे युक्त स्निग्ध, रुचिकर यूषको उक्त रोगियोंके हितके लिये हितैषी वैद्य प्रदान करै ॥ ६६ ॥

घृतं दोषेषु पक्वेषु मतं पीयूषसन्निभम् ॥
अन्यथा रोगिणां तद्वै भवेद्धालाहलोपमम् ॥ ६७ ॥

भा० टी०–पकेहुए दोषोंमें दियाहुआ घृत अमृतके समान है, अन्यथा रोगियोंके लिये हलाहल विषके तुल्य होता है ॥ ६७ ॥

व्यतीते तु दशाहे स्याद्भवेत्परिणतो ज्वरः ॥
प्रायः श्लेष्मोत्तरो धीमान्प्रयुञ्जीत घृतं ततः ॥ ६८ ॥

भा० टी०–दश दिन बीत जानेपर प्रायः श्लेष्माधिक ज्वर परिपक्व होता है तभीसे बुद्धिमान् वैद्य घृत देना प्रारम्भ करै ॥ ६८ ॥

ज्वरान्वितो वा ज्वरहीनगात्रो दिनान्तकाले लघुभोजनी स्यात् ॥
श्लेष्मक्षतेरूष्मबलातिवृद्धेरुत्पादकेऽभीप्सुरभीष्टवीर्य्यम् ॥ ६९ ॥

भा० टी०–अभीष्ट पराक्रमको चाहनेवाला रोगी वा अरोगी मनुष्य सायंकालमें हलका भोजन करै क्योंकि, वह समय कफकी न्यूनता और अग्निकी वृद्धिको उत्पन्न करता है ॥ ६९ ॥

कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासवे ॥
विधिवत्साधितान्वैद्यस्तान्यूषादिरसानपि ॥ ७० ॥

भा० टी०–कफवातजन्य ज्वरमें प्यासयुक्त मनुष्यके लिये गरम जल और विधिपूर्वक सिद्ध कियेहुए यूषआदि रसोंको भी देवे ॥ ७० ॥

पित्तमद्यविषोत्थे तु तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥
मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनैर्दिव्यनागरैः ॥
शृतंशृतं जलं दद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ ७१ ॥

भा० टी०–पित्त और मद्यके विषसे उत्पन्नहुए ज्वरमें तिक्तक (परवल, चिरायता, कृष्णखैर) से काढेहुए जलको, वा मोथा, पित्तपापडा, खस, कुटकी, चन्दन, तथा दिव्यनागर (शोंठ) इनसे कढेहुए जलको प्यास और ज्वरकी शान्तिके लिये देवे ॥ ७१ ॥ (इति षडंगः)।

मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणे ज्वरे ॥ तोये पेयादिसंस्कारे निर्दोषं भेषजं भवेत् ॥ ७२ ॥ पादशेषः कषायः स्याद्यः षोडश-गुणेऽम्भसि ॥ क्वथितोऽन्तः षडङ्गादेर्न निषेधो नवज्वरे ॥ ७३ ॥

भा० टी०–तरुण ज्वरमें औषधियोंका प्रयोग करना निषेध किया है, केवल संस्कारसे सिद्ध कियेहुए पेया आदिके जलप्रयोग करनेमें दोष नहीं होता ॥ ७२ ॥ अतः षडङ्गमें कहीहुई औषधियोंका कषाय सोलहगुने जलमें क्वथित कियेजानेसे जब चतुर्थांश रहजाय तब उसको तरुण ज्वरमें प्रयुक्त करै ॥ ७३ ॥

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥
मध्यमं द्वादशाहन्तु पुराणमत उत्तरम् ॥ ७४ ॥

भा० टी०–ज्वर सात दिन तक तरुण, बारह दिन तक मध्यम और इससे उपरान्त प्राचीन कहाता है ॥ ७४ ॥

मृदौ ज्वरे लघौ देहे चलितेषु मलेषु च ॥
अचिरज्वरितस्याऽपि प्रयुञ्जीतौषधीं मताम् ॥ ७५ ॥

भा० टी०–जिस समय ज्वर शान्त,और शरीर हलका तथा मल चलायमान हो तब तरुण वरवाले मनुष्यपर भी ओषधीका प्रयोग करलेवे ॥ ७५ ॥

दोषप्रकृतिवैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम् ॥ वातिकः सप्तरात्रेण दशरा-त्रेण पैत्तिकः ॥ श्लैष्मिको द्वादशाहेन परिपाकमुपैति हि ॥ ७६ ॥ (केषाञ्चिन्मते) रोगं साधनसाध्यन्तु यं विद्याद्दोषदुर्बलम् ॥ तं समीक्ष्य भृशं कुर्य्याद्दोषप्रच्यावनं शनैः ॥ ७७ ॥ पक्वोऽप्य-निर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन् निहन्त्ययम् ॥ विषमं वा ज्वरं कुर्य्याद्बला-द्व्यापादयेद्बलम् ॥ ७८ ॥

भा० टी०-जब दोषोंकी मूलप्रकृतिमें विकार पहुंचने लगता है तब जानिये कि दोष परिपक होगये हैं। अथवा कोई इस प्रकार कहते हैं कि वातदोष सातदिनमें, पित्तदोष दशदिनमें, कफदोष बारह दिनमें परिपक होता है ॥७६॥ वैद्यको उचित है; जिस रोगको दुर्बलदोषवाला तथा औषधिसाध्य समझै, विचारपूर्वक उसके दोषको दूर करै॥७७॥क्योंकि जो दोष दूर नहीं कियागया, वह परिपक होताहुआभी शरीरमें रहनेसे रोगीको मारडालता है, अतः वैद्यको उचित है कि, दोषको नष्ट करै वा ज्वरको विषम बनावे जिसकिसी उपायसे ज्वरदोषके बलको घटावे ॥७८॥

दिनत्रयात्परं केचिन्मन्यन्ते देयमौषधम् ॥
दशरात्रात्परं केचिद्दातव्यमिति निश्चितम् ॥ ७९ ॥

भा० टी०-कोई तीन दिन और कोई दश दिनके अनन्तर रोगीको औषधि देना कहते हैं॥ ७९ ॥

केचिदाहुः कषायं तमदेयं तरुणे ज्वरे ॥
कषायेनाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ ८० ॥

भा० टी०-कोई इसप्रकार कहते हैं कि, तरुण ज्वरमें कषाय देना योग्य नहीं है क्योंकि दोष कषायसे शरीरमें संकुल हुआ करते हैं संकुल होनेपर फिर वे किसी प्रकार नहीं जीतेजाते हैं॥ ८० ॥

अथ नागरादिपाचनं सर्वज्वरे ।

नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ८१ ॥

भा० टी०-रोगीके लिये प्रथम शोंठ, मोथा, देवदारु, धनियाँ, बृहतीद्वय (कण्टकारी, कटेहरी) इनके ज्वरनाशक, पाचनको देवे ॥ ८१ ॥

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च सेव्यम् ॥
रोगं चिकीर्षुभिरतीव बलेन हीनमात्मानमीप्सुभिरतीव बलोपपन्नम् ८२॥

भा० टी०-पथ्य अन्न खानेसे, प्रथम ही सेवन कीहुई औषधीका बल अधिक हुआकरता-है, अतः रोगको निर्बल तथा अपनेको बलिष्ठ चाहनेवाले, बाल, वृद्ध, युवा, युवति, तथा सुकुमारजनोंने पथ्यसे प्रथमही औषधी सेवनी चाहिये ॥ ८२ ॥

भुक्तानन्तरमौषधमानयते क्लान्तिनैर्बल्यम् ॥
न करोति रोगशमनं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ८३ ॥

भा० टी०-भोजन करनेके अनन्तर सेवन कीहुई औषधी शरीरमें म्लानता और निर्बलता लाती है, एवं रोगोंको शान्त करनेकी अपेक्षा अधिक कुपित करती और बढाती है ॥ ८३ ॥

भेषजानन्तरं पथ्यमभुक्तं वन्ध्यमेव तत् ॥
पथ्यावृतेनौषधेन द्राग्दोषः पच्यते बलम् ॥ ८४ ॥

भा० टी०–इसीप्रकार औषधीके अनन्तर पथ्य न खानेसे औषधी निष्फल होती है। पुनः पथ्याक्रान्त औषधीसे शीघ्र ही दोष पकाया और बल बढाया जाता है ॥ ८४ ॥

निर्वृत्ते भेषजे साङ्गे स्वस्थे रोगिणि वैद्यराट् ॥
विजनेऽवातसञ्चारे शुद्धे संस्वेदयेत्स्थले ॥ ८५ ॥

भा० टी०–पथ्यसहित औषधी होनेसे रोगी कुछ स्वस्थ हो, तब वैद्यको उचित है कि, वायुरहित शुद्ध मनोहर एकान्त स्थानमें रोगीको स्वेदित करे ॥ ८५ ॥

अनेन विधिना मात्रामानपूर्वप्रयोगतः ॥
रोगी रोगाद्विमुच्येत यशोभागी भिषग्भवेत् ॥ ८६ ॥

भा० टी०–इसप्रकार औषधीको अवस्थोचित मात्राप्रमाणपूर्वक, प्रयोग करते रहनेसे, रोगी रोगसे छूटजायगा और वैद्य यशका भागी होगा ॥ ८६ ॥

ज्वरागमममनीप्सुश्चेन्मिताहारो भवेन्नरः ॥
तथा मितविहारः स्यादपि व्यायामतत्परः ॥ ८७ ॥

भा० टी०–रोगमुक्त मनुष्य यदि फिर रोग वा ज्वरके आगमनको न चाहे तो प्रमाणपूर्वक आहार, विहार और यथाशक्ति व्यायाम (कसरत) करे ॥ ८७ ॥

अभिरक्ष्य बुभुक्षां यो यथाकालान्नसेवकः ॥
प्रकृतेरनुकूलश्च मिताहारः स उच्यते ॥ ८८ ॥

भा० टी०–जो मनुष्य भूख बचाकर ठीक समयमें उपयोगी भोजन करता एवं जिन पदार्थोंसे प्रकृतिको विकृति न हो उनके अनुकूल चलता है वही मिताहार कहाता है ॥ ८८ ॥

सन्ध्ययोरुभयोर्घस्रे निद्राविजय एव च ॥ स्वप्नजागरणं काले इन्द्रियाणां च संयमः ॥ ८९ ॥ व्यायामो मुख्य एवाऽयं गौणस्तु भ्रमणादिकम् ॥ ऋतौ सर्वांगसौन्दर्य्योत्तमनैरुज्ययाऽऽत्मनः॥९०॥ प्रियया सह सम्भोगी रात्रौ शक्तिधरः पुमान् ॥ उक्तो मितविहारी स ह्यजरामरतां भजेत् ॥ ९१ ॥

भा० टी०–दोनों सन्ध्याकाल और दिनके समयमें निद्राको जीतेरहना, ठीक समयमें शयन करना और जागजाना, एवं इन्द्रियोंको वशमें रखना ॥ ८९ ॥ मुख्य व्यायाम, और भ्रमण परिश्रम आदिक गौण व्यायाम कहाता है। जो ऋतुकालमें सर्वाङ्गसुन्दरी नीरोग निजपत्नीके

(परदाराके नहीं) साथ शक्ति बचाकर रात्रिमें (न कि दिनमें) सम्भोग करता है वह मनुष्य मितविहारी कहाता और अजरअमरभावको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

प्रातःकालके जलपानसे महान् लाभ ।

निशान्ते वारिपानं यः साक्षादमृतपानवत् ॥
सुप्तोत्थितः सदा धत्ते सोऽजरामरतां भजेत् ॥ ९२ ॥

भा० टी०-जो मनुष्य प्रातःकाल शयनसे उठतेही साक्षात् अमृतके समान गुणकारी निर्म्मल शीतल जलको नित्य पान करै वह अजर अमरभावको प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥

प्रातर्वारि मनोहारि राजयक्ष्मादिहारि तत् ॥
कान्तिकारि च कण्डूनिवारि कुष्ठप्रहारि च ॥ ९३ ॥

भा० टी०-प्रातःकालका मनोहर जल भलीप्रकार सेवन कियेजानेपर राजयक्ष्मा आदि कठिन रोगोंको हरता है, शरीरकी खुजलीको हटाता है, कुष्ठरोगपर प्रहार करता और शरीरकी छविको बढाता है ॥ ९३ ॥

व्यायामान्ते भोजनान्ते मैथुनान्ते जिजीविषुः ॥
शर्करामधुसंयुक्तं क्षीरं सेवेत नोदकम् ॥ ९४ ॥

भा० टी०-व्यायाम, भोजन और मैथुनके अन्तमें जीवन चाहनेवाला मनुष्य शक्कर व मधुसे मिश्रित दुग्धको पानकरै जलको नहीं ॥ ९४ ॥

यौवनारम्भकाले तु सुकुमारवयोन्वितः ॥ मूढो ह्यपरिणामज्ञः कर्म दुष्टं करोति हि ॥ ९५ ॥ जायन्ते येन शारीराः क्षीणप्राया हि धातवः ॥ ओजोबुद्धिकरा ये ते देहाधिष्ठानदेवताः ॥ ९६ ॥ क्रमशः क्षीणवीर्य्यस्य यौवनान्ते भवन्ति हि ॥ कर्मजानि फला-न्येतान्यतिघोराणि देहिनः ॥ ९७ ॥ नैर्बल्यं मूढता कान्तिबु-द्धिस्मृतिविहीनता ॥ दौर्भाग्यमथ नैराश्यं रुग्णता निधनं ततः ॥ ॥ ९८ ॥ अतस्तथाविधावस्थः प्रबुभूषुः कदाचन ॥ न कुर्य्या-द्दुष्कृतं येन जीवनं स्यान्निरर्थकम् ॥ ९९ ॥

भा० टी०-परिणामको न जाननेवाला मूर्ख कुमार (लडका) यौवनके प्रारंभ होतेही ऐसे कुकर्म करने लगता है ॥ ९५ ॥ कि जिनसे शरीरकी वह सब धातु नष्ट होजाती हैं जिनसे बल, बुद्धि बढती है, एवं जो शरीरकी अधिष्ठातृदेवता (ओजरूप) हैं ॥ ९६ ॥ जब मनुष्यका वीर्य कुकर्मके बलसे क्षीणप्राय होजाता है, तब उसको यौवनके अन्तमें अपने

कर्मजनित भयंकर फल क्रमशः भोगने होते हैं ॥ ९७ ॥ वे फल यह हैं—निर्बलता, मूढता, कांति, बुद्धि और स्मृतिका नाश, अतएव दौर्भाग्य, दौर्भाग्य होनेसे नैराश्य निरुत्साहता निरुत्साहतासे रोगाक्रान्त होना और रोगाक्रान्त होनेके कारण अन्तमें मरण है ॥ ९८ ॥ अतः सुकुमार अवस्थावाला यदि जीवन भर पराक्रमी और भाग्यसम्पन्न होना चाहै तो कभी ऐसा कुकर्म न करै जिससे धातु क्षय होकर समस्त जीवन व्यर्थ हो ॥ ९९ ॥

क्रोधचिन्ताभिमानेर्षाज्वलज्ज्वलनदग्धता ॥
गतायुषं प्रकुरुते ततस्तान्न समाश्रयेत् ॥ १०० ॥

भा० टी०—क्रोध, चिन्ता, अभिमान, ईर्षा इनकी प्रज्वलित अग्निके दाहसे व्याप्त रहना भी अल्पायुका कारण है अतः बुद्धिमान् पुरुष इन दोषोंका आश्रय न करै ॥ १०० ॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंसडवरालोपाह्वपण्डितदामोदरसूनुसदानन्दकृतप्रसाद-भाषाटीकासहिते वृन्दे सामान्यज्वरचिकित्साधिकारः ॥ १ ॥

अथ वातादिज्वराधिकारः २.

वातादि तथा द्वन्द्वजज्वरचिकित्सा ।

अथ वातज्वरादीनां क्रमशो वच्मि भेषजम् ॥
बलबुद्धिकरं पुंसामायुषः कारणं महत् ॥ १ ॥

भा० टी०—अब मैं क्रमशः वातज्वर आदि रोगोंकी औषधियोंको जो बल बुद्धिको बढ़ाने वाली तथा आयुकी परम कारण हैं—कहताहूं ॥ १ ॥

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥
कषायः साधितः सम्यग्वातज्वरविनाशकः ॥ २ ॥

भा० टी०—चिरायता, मोथा, अमृता (गिलोय, हरीतकी पिप्पली) सुगन्धवाला, दोनों बृहती, गोखुरू इनसे सिद्ध किया हुआ कषाय वातज्वरको हरता है ॥ २ ॥

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः ॥
कृतः कषायः सगुडो वातज्वरविनाशकः ॥ ३ ॥

भा० टी०—पिप्पली, सालसा, दाख, सौंफ, हरेणुनामक गन्धद्रव्यविशेष, तथा गुड खजूरके रसका काथ) सहित इन औषधियोंका कषाय वातज्वर नाशक होता है ॥ ३ ॥

द्राक्षागुडूचीकाश्मर्य्यत्रायमाणाः ससारिवाः ॥
निष्काथ्य सगुडः क्वाथो वातज्वरविनाशनः ॥ ४ ॥

भा० टी०—दाख, गिलोय, कम्भारी, त्रायमाण, सालसा इनका काथ खजूररसके काथसे युक्त किये जानेसे वातज्वरको नाश करता है ॥ ४ ॥

सक्षौद्रं पाचनं पैत्ते तिक्ताब्देन्द्रयवैः कृतम् ॥ लोध्रोत्पलामृतापद्मसारिवाभिः सशर्करः ॥ ५ ॥ क्काथः पित्तज्वरं हन्यात्साक्षादमृतविग्रहः ॥ निम्बकेशरवंशाम्बुधन्याघृष्टौषधं तथा ॥ ६ ॥

भा० टी०–कुटकी, मोथा, इन्द्रयव, इनका क्काथ मधुयुक्त किये जानेसे पित्तज्वरमें गुणकारी होता है । एवं लोध, कूठ, गिलोय, पुष्करमूल, सालसा, इन करके किया हुआ क्काथ शक्कर सहित होनेसे पित्तज्वरको नाश करता है क्योंकि यह साक्षात् अमृतरूप है । एवं नीम, केशर, वंशलोचन, धनियाँ इनकी संघर्षित औषधीभी पित्तज्वरको नाश करतीहै ॥ ५ ॥६॥

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम् ॥
क्काथं पिबेच्छर्करयाऽवगाढं तृष्णातिपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ७ ॥

भा० टी०–दुरालभा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, चिरायता, अडूसा कुटकी इनके क्काथको शक्करमें औटाकर तृष्णा, पित्तज्वर तथा दाहसे युक्त मनुष्य पान करे ॥ ७ ॥

पटोलयवनिष्क्काथो मधुना मधुरीकृतः ॥
तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ८ ॥

भा० टी०–परवलके पत्ते, इन्द्रयव इनके क्काथको सहदमें मीठा बनाकर पान करनेसे अत्यन्त तीक्ष्ण पित्तज्वर तथा दाह और तृष्णा नष्ट होती है ॥ ८ ॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशने ।
किम्पुनर्यदि युज्येत चन्दनादिव्यनागरैः ॥ ९ ॥

भा० टी०–एक पित्तपापडा, पित्तज्वरके नाश करनेके लिये निर्भर है यदि उसके साथ गौरीसर, दिव्य (हरिचन्दन) नागर (सोंठ, मोथा) इतनी वस्तु भी मिलाई जायँ तो क्याही कहना है ॥ ९ ॥

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम् ॥
पीतं सुशीतलं वारि तृट्च्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ १० ॥

भा० टी०–सोंठ, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, खश, मोथा, चन्दन इन करके सिद्ध किये हुए ठण्ढे जलके पानसे तृषा, छर्दि, ज्वर, दाह ये सब दूर होते हैं ॥ १० ॥

विधिवत्साधितः स्त्रीणां क्काथः पित्तज्वरं जयेत् ॥
द्राक्षारग्वधयोश्चाऽपि काश्मर्य्यस्य च निश्चितम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–दाख, अमलतास, कम्भारी इन तीनोंका क्काथ विधिपूर्वक सिद्ध किये जानेसे पित्तज्वरको जीतता है ॥ ११ ॥

द्राक्षाभयापर्पटकांश्च तिक्तां निष्क्वाथ्य सम्याकफलं प्रयुञ्जेत् ॥
मोहप्रलापभ्रमदाहशोषतृष्णान्विते पित्तजतापतप्ते ॥ १२ ॥

भा० टी०—दाख, हरीतकी, पित्तपापडा, कुटकी, अमलतास इनके क्वाथको, पित्तज्वरसे सन्तप्त तथा मूर्च्छा, प्रलाप, भ्रांति, दाह, शोष (मुखका सूखना) तथा तृषासे पीडित रोगीके लिये प्रयुक्त करे ॥ १२ ॥

पर्य्युषितं धान्यजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् ॥
अन्तर्दाहं शमयेत्प्रवृद्धमपि पैत्तिके तापे ॥ १३ ॥

भा० टी०—शक्करयुक्त पर्य्युषित (प्रथम दिनका रक्खा हुआ) धनियांका जल प्रातःकालमें पान किये जानेसे पित्तज्वरजनित बढे हुए तापको भी शान्त करता है ॥ १३ ॥

अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पालाशतरुजैर्दिहेत् ॥
विभीतकैरस्थिमज्जादाहे शस्ततरं भवेत् ॥ १४ ॥

भा० टी०—अमलतास, सीसक, पीतचन्दन वा छोटाप्लक्ष, तमालपत्र, वहेडा इनका लेप हड्डी और मज्जाके दाहमें गुणकारी होता है ॥ १४ ॥

बदरीपल्लवोत्थेन फेनेन परिसाधितैः ॥ विदारीदाडिमं लोध्रं दधित्थं बीजपूरकम् ॥ १५ ॥ एभिः प्रदिह्यान्मूर्द्धानं त्रिर्दाहार्तस्य देहिनः ॥ १६ ॥ (एतत्पुराणज्वरे ज्ञेयम्)

भा० टी०—बेरके पत्रसे उठे हुए फेनसे सिद्ध किये हुए विदारीकन्द, अनार, लोध, कैथा, बीजपूर इनका तीनवार मस्तकपर लेप करनेसे दाहपीडित मनुष्यका दाह दूर होताहै । (यह चिकित्सा जीर्णज्वरसम्बन्धी दाहमें जाननी) ॥ १५ ॥ १६ ॥

उत्तानसुप्तस्य हि पल्लवेषु कांश्यादिपात्रं प्रणिधाय नाभौ ॥
नवाम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥ १७ ॥

भा० टी०—केले वा नीमके पत्तोंके आस्तरणमें उत्तान होकर पडे हुए रोगीकी नाभिमें कांश्य आदिके पात्रको रखकर उसके ऊपरसे गिराई जाती हुई नव शीतल जलकी विशाल धारा शीघ्रही दाहको हर लेती है ॥ १७ ॥

हारावलीमण्डितकण्ठदेशा बालाः शुभाश्चन्दनचर्चिताङ्ग्यः ॥
आलिङ्गिताः पीनपयोधरोरुनितम्बबिम्बाः प्रहरन्ति दाहम् ॥ १८ ॥

भा० टी०—हारमालासे जिनका कण्ठदेश शोभायमान है एवं जिनके अङ्ग प्रत्यङ्ग शीतल चन्दनसे चर्चित हो रहे हैं, तथा जिनके स्तन, जघन और नितम्बबिम्ब पुष्ट हैं ऐसी कल्याणरूपवाली नवयुवति आलिङ्गन किये जानेपर दाहको दूर करती हैं ॥ १८ ॥

वाप्यः कमलहंसिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः ॥
वामाश्चन्दनदिग्धाङ्गयो दाहदैन्यहरा मताः ॥ १९ ॥

भा० टी०-कमलगण तथा हंसगणसे सम्पन्न, एवं जलयंत्र (फुहारा) से युक्त वापिका और चन्दनसे चर्चित अङ्गवाली सुखदायिनी स्त्री दाहदैन्यको हरनेवाली होती हैं ॥ १९ ॥

हर्म्ये शुभ्राभ्रसंकाशे शशाङ्ककरशीतले ॥
चन्दनोदकसिक्ते च सुप्यात्पित्तज्वरी नरः ॥ २० ॥

भा० टी०-अथवा पित्तज्वरवाला मनुष्य ऐसे महलमें शयन करै, जो निर्जल मेघके समान शुभ्र और स्वच्छ एवं चन्द्र किरणोंसे शीतल तथा चन्दनजलसे सींचा हुआ हो ॥ २० ॥

लोमत्वक्तालुरसनाशोषे मूर्ध्नि च दापयेत् ॥
केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ २१ ॥

भा० टी०-यदि बाल, त्वचा, तालु, जिह्वा यह सूख रहे हों तो शहद और सेन्धा लवणके साथ बीजपूरकी केशरको मस्तकपर लेपै ॥ २१ ॥

हरीतकी प्रियंगुश्च पिप्पली लोध्रमेव च ॥ दार्वी हरिद्राऽऽमलकं सक्षौद्रं क्षालयेन्मुखम् ॥ २२ ॥ एभिः कटुकभावश्च मुखरोगश्च शाम्यति ॥ वक्त्रं विशदतामेति भक्तच्छन्दश्च जायते ॥ २३ ॥

भा० टी०-हरीतकी, प्रियंगु, पिपली, लोध, दारुहल्दी, हल्दी, आंवला इनमें शहद मिलाकर गण्डूस (कुल्ला) करावे ॥ २२ ॥ ऐसा करनेसे मुखका कडवापन और रोग शान्त होता है, एवं मुखशुद्धि होनेसे अन्नमें भी रुचि होती है ॥२३॥ ॥ इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ॥

अथ कफज्वरचिकित्सा ।

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलश्चाऽपि साधितम् ॥
पिबेन्मारिचसंयुक्तं सक्षौद्रं श्लैष्मिके ज्वरे ॥ २४ ॥

भा० टी०-कूठ, इन्द्रयव, मरोरफली, परवल इनके कषायको कालीमिरच और मधुके साथ कफज्वरवाला पान करे ॥ २४ ॥

त्रिफला पटोलयुक्ता छिन्नरुहातिक्तरोहिणीषड्ग्रन्थाः ॥
मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः ॥ २५ ॥

भा० टी०-परवल सहित त्रिफला, गिलोय, कूडा, कुटकी, बच इनका, वा दशमूली (शालपर्णी १ पृश्निपर्णी २ खम्भारी ३ गोखुरू ४ बेल ५ श्योनाक (शोनापाठा) ६ पाढल ७ अरणी ८ दोनों कटेरी ९।१०), वांसा इनका क्वाथ मधुके साथ कफज्वरमें हित होता है॥२५॥

मात्रां क्षौद्रघृतादीनां क्वाथस्नेहेषु साधयेत् ॥
क्षौद्रं कार्त्तिकजं प्रोक्तं घृतं प्राचीनमुत्तमम् ॥ २६ ॥

भा० टी०-स्नेहसंज्ञक क्राथोंमें मधु, घृत आदिकी मात्राको भी सिद्ध करै तहां मधु कार्तिकका और घृत अति प्राचीन निर्मल होना उचित है ॥ २६ ॥

अथाऽऽमलक्यादिः ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः ।
सर्वज्वरकफातङ्कभेदी दीपनपाचनः ॥ २७ ॥

भा० टी०-आंवला, हरीतकी, पिपली, चित्रक यह गण अग्निवर्द्धक, दोषपाचक तथा सबप्रकारके ज्वर और कफके आतंकको दूर करनेवाला है ॥ २७ ॥

अथ चातुर्भद्रिकलेहः ।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृङ्गी च मधुना सह ॥
श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ २८ ॥

भा० टी०-कायफल, पोहकरमूल (कमलगट्टा), पिपली, काकडसिंगी इन चार वस्तुओंका लेह मधुके साथ सेवन कियेजानेसे श्वास, कास, कफ और ज्वरका नाश करता है ॥२८॥

चातुर्भद्रिकलेहोऽयं कासश्वासज्वरापहः ॥
प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानां च प्रशस्यते ॥ २९ ॥

भा० टी०-यह चातुर्भद्रिक लेह कास, श्वास और ज्वरके नाश करनेके अतिरिक्त फेहारोग और हिचकीको दूर करता है एवं बालकोंकोभी गुणकारी है ॥ २९ ॥

कर्षञ्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाञ्च सर्वशः ॥
द्रवः शुक्त्याऽवलेढव्यश्चातुर्भद्रिकसंज्ञकः ॥ ३० ॥

भा० टी०-पूर्वोक्त औषधियोंके चूर्णकियेहुए कल्ककी गोलियोंकी मात्रा कर्ष (पांच रत्ती) प्रमाणसे सेवनी चाहिये, एवं उनके आर्द्ररसको सीपीसे चाटे ॥ ३० ॥

अथवा बुद्धिमान्वैद्यो दोषमग्निं बलं वयः ॥
तथा द्रव्यबलं कोष्ठं वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

भा० टी०-अथवा बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, ज्वरदोष, औदरिक अग्नि, शारीरिकबल, अवस्था, औषधका बल, आमाशय इनका विचार करके तदनुसार मात्रा बनावे॥ ३१ ॥

अथ कृष्णादिगणः ।

कृष्णग्रन्थिकचव्यचित्रकविषाविश्वौषधाजाजिभिः पाठारामठरेणुका-

**मधुरसासिद्धार्थतिक्तासमैः ॥ द्वेकाशक्रयवाजमोदत्रुटिभिर्भार्गीविडं-
गान्वितैरेभिर्विंशतिभिः कफामयहरः कृष्णादिरुक्तो गणः ॥ ३२ ॥**

भा० टी०–पिप्पली, करीर, चविका, चित्रक, अतीस, शोंठ, काला और श्वेत जीरक, पाठा, हींग, रेणुका, दाख, सफेद सर्सों, कुटकी, महानिम्ब, इन्द्रजौ, अजमोद, छोटीइलायची, भारङ्गी, वायविडङ्ग–इन २० वस्तुओंसे सिद्धकियाहुआ कृष्णादिगण कफरोगका हारक कहा है ॥ ३२ ॥

अथ वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

**संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमथ पाचनम् ॥
त्रिफला शाल्मली रास्ना राजवृक्षाटरूषकैः ॥ ३३ ॥
शृतमम्बु हरेच्चूर्णं वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ३४ ॥**

भा० टी०–मिश्रितदोषोंमें मिश्रित औषधियोंका पाचन (दोषपाचक कषाय वा क्वाथ) हितकारी होता है. त्रिफला, शालमलि, रासना, अमलतास, बाँसा इनसे कढाहुआ जल वात-पित्तके ज्वरको शीघ्रही हरलेता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

**विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः ॥
कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ३५ ॥**

भा० टी०–अतीस, गिलोय, मोथा, चिरायता, लघुपञ्चमूल, (सालवन, पिठवन, दोनों कटेहरी, गोखरु,) इनसे सिद्धकियाहुआ कषाय शीघ्रही वातपित्तके ज्वरको हरता है ॥ ३५ ॥

**किराततिक्तामममृतां द्राक्षां सामलकीं सठीम् ॥
निष्क्वाथ्य पित्तानिलजे तं क्वाथं सगुडं पिबेत् ॥ ३६ ॥**

भा० टी०–वातपित्तके ज्वरमें चिरायता, गिलोय, दाख, आंवला, कचूर इनका क्वाथ बनाकर गुडके साथ पीवे ॥ ३६ ॥

**निदिग्धिकाबलारास्नात्रायमाणासमन्वितैः ॥
मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ३७ ॥**

भा० टी०–कटेरी, खिरैंटी, रासना, त्रायमाण, लाल कचनार इनका क्वाथ वातपित्तके ज्वरको जीतता है ॥ ३७ ॥

**गुडूची पर्पटो मुस्ता किरातं विश्वभेषजम् ॥
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ ३८ ॥**

भा० टी०–गिलोय, पित्तपापडा, मोथा, चिरायता, सोंठ इनसे सिद्धहुआ पञ्चभद्रनामक क्वाथ वातपित्तके ज्वरमें देना योग्य है ॥ ३८ ॥

किराततनागरं मुस्ता गुडूची च कफाधिके ॥
पाठोदीच्यमृणालैस्तु सह पित्ताधिके पिबेत् ॥ ३९ ॥

भा० टी०–चिरायता, सोंठ, मोथा, गिलोय इनके क्वाथको कफाधिकज्वरमें पानकरे इसी क्वाथको पाठा, नेत्रवाला, खस वा कमलगट्टा इनके साथ पित्ताधिकज्वरमें पानकरे ॥ ३९ ॥

ऊर्द्धगं तु गदं हन्यात्सा पश्चादवलेहिका ॥
अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता ॥ ४० ॥

भा० टी०–यह अवलेहिका भोजनके अनन्तर सेवन कियेजानेसे उर्द्धसञ्चारी रोगको नाश करती है, और भोजनसे पूर्वही सेवन करनेसे अधःसञ्चारी रोगको हरती है ॥ ४० ॥

पाठा रास्नामृता शुण्ठी मुस्तकैरातपौष्करम् ॥
सन्धिशूलज्वरश्वासकाशहिक्कारुचिप्रणुत् ॥ ४१ ॥

भा० टी०–पाठा, रासना, गिलोय, सोंठ, मोथा, चिरायता, पुष्करमूल इनका क्वाथ, सन्धिशूल, ज्वर, श्वास, कास, हिचकी तथा अरुचिको दूर करता है ॥ ४१ ॥

कण्टकार्यादिक्काथः ।

कण्टकार्य्यमृता भार्ङ्गी नागरेन्द्रयवासकम् ॥ भूनिम्बचन्दनं मुस्ता पटोलकटुरोहिणी ॥ ४२ ॥ पीतः कषायवर्य्योऽयं पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ४३ ॥

भा० टी०–कण्टकारी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्र (कूडा), जवासा, चिरायता, चन्दन, मोथा, परवल, कुटकी इनका श्रेष्ठकषाय पान किये जानेसे पित्तश्लेष्मजनित ज्वरको एवं दाह, तृष्णा, अरुचि, छर्दि, कास तथा पशली–शूलको दूर करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ गुडूच्यादिक्काथः ।

गुडूचीनिम्बधान्याकं चन्दनं पद्मकान्वितम् ॥
एष सर्वज्वरे देयो गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥ ४४ ॥

भा० टी०–गिलोय, नीम, धनियां, चन्दन, पुष्करमूल यह गुडूच्यादि क्वाथ अग्निदीपन करता है अतः सब प्रकारके ज्वरमें देना उचित है ॥ ४४ ॥

गुडूची चन्दनं मुस्ता पद्मनागेन्द्रवासकम् ॥ अभयानागरोशीरं पाठा धान्याम्बुरोहिणी ॥ ४५ ॥ कषायं पाययेदेतं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ कासश्वासज्वरच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥ ४६ ॥

भा० टी०–गिलोय, चन्दन, मोथा, कमलगट्टा, पान, कूडा, वासा, जङ्गीहरड, सोंठ, खश, पाठा, धनियां, सुगन्धवाला, कुटकी ॥ ४५ ॥ इनके कषायको पिपली और मधुके साथ चटावे, क्योंकि यह कषाय कास, श्वास, ज्वर, छर्दि, प्यास, तथा दाहको नाश करता है ॥४६॥

अथ पटोलादिः ।

पटोलचन्दनं मूर्वा पाठातिक्ताऽमृतागणः ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहग्लानितृषापहः ॥ ४७ ॥

भा० टी०–परवल, चन्दन, मरोरफली, पाठा, कुटकी, गिलोय यह पटोलादिगण पित्त-कफजनित ज्वर, छर्दि, दाह ग्लानि, प्यास इनको दूर करता है ॥ ४७ ॥

अथ वासकादिः ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षुद्रसितायुतः ॥
कफपित्तज्वरं हन्ति छिन्नपित्तं सकामलम् ॥ ४८ ॥

भा० टी०–पत्र पुष्पसहित वांसेका कथित रस, क्षुद्रशर्करा (यावनालशर्करा वा शीरखिस्त) के साथ पान किये जानेसे छिन्नपित्त और कामलारोग कफसहित पित्तके ज्वरको हरताहै ॥ ४८ ॥

तामेकमात्रां कटुकां नियमेनोष्णवारिणा ॥
पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ४९ ॥

भा० टी०–केवल कुटकीको उष्णजलके साथ नियमपूर्वक पान करनेसें रोगी कफपित्तके ज्वरको जीत सकता है ॥ ४९ ॥

पटोलपिचुमन्दश्च त्रिफलामधुकम्बलम् ॥
एतत्कषायः सुहितः पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ५० ॥

भा० टी०–परवल, नीम, त्रिफला, मुलहटी, बरना इनका कषाय पित्तकफके ज्वरमें गुण-कारी होता है ॥ ५० ॥

गुडूचीन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ॥
नागरं चन्दनं मुस्ता पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ ५१ ॥
अमृताष्टकमेतद्धि पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ५२ ॥

भा० टी०–गिलोय, इन्द्रयव, नीम, परवल, कुटकी, सोंठ, चन्दन, मोथा इनसे सिद्ध किया हुआ अमृताष्टक क्वाथ पित्तकफके ज्वरको नाश करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ बालुकास्वेदः ।

मृण्मयखर्परभृष्टपुटस्थितकाञ्जिकसिक्तो हि वालुकास्वेदः ॥
शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ५३ ॥

भा० टी०–मिट्टीके खप्परपर सन्तप्त की हुई बालुकाको शय्याके अधःपुटमें रक्खे हुए पर्युषिततक्रजलमें छितरानेसे उत्पन्न हुआ स्वेद वात, कफ, शिरका शूल, तथा अङ्ग भङ्ग आदिक रोगोंको शान्त करता है ॥ ५३ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ॥
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ ५४ ॥

भा० टी०–उक्त प्रकारका वालुकास्वेद नाडियोंके सोतको कोमल बनाकर अतएव अग्निको आमाशयमें पहुंचाकर वातकफके स्तंभको नष्ट करके ज्वरको हटाता है ॥ ५४ ॥

अथ कवलविधिः।

मातुलुङ्गफलकेशरो धृतः सिंहपुष्पमरिचान्वितो मुखे ॥
हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०–बीजपूरके फलका केशर लालसैंजनेका फूल मिरचके साथ मुखमें धारण किये जानेके कारण वात,कफ,मुखरोग,मुखशोष, जडता, अरुचि इन सब दोषोंको नष्ट करता है ॥५५॥

अथ पञ्चकोलकः।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ॥
दीपनोयं स्मृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ ५६ ॥

भा० टी०–पिपली, पिपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ यह पञ्चकोलनामक वर्ग अग्निवर्द्धक तथा कफवातके ज्वरका नाशक है ॥ ५६ ॥

अथाऽऽरग्वधादिः।

आरग्वधो ग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः कथितः कषायः ॥
सामेऽथ शूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितः पाचनदीपनश्च ॥ ५७ ॥

भा० टी०–अमलतास, करीर, मोथा, कुटकी, हरड इनसे कथित किया हुआ कषाय आमाशयके शूल और कफवातके ज्वरमें गुणकारी एवं पाचक और दीपन होता है ॥ ५७ ॥

अथ पिप्पलीकषायः।

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि पाचनम् ॥
वातश्लेष्मविकारघ्नं ज्वरघ्नं प्लीहनाशनम् ॥ ५८ ॥

भा० टी०–पिप्पलियोंसे कढाहुआ जल अनभिष्यन्दि (नेत्ररोगको नाश करनेवाला) तथा पाचक होनेसे वातकफका विकार और ज्वर फीहाको नाश करता है ॥ ५८ ॥

अथ मुस्तादिः।

मुस्तपर्पटदुस्स्पर्शगुडूचीविश्वजं जलम् ॥
कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहम् ॥ ५९ ॥

भा० टी०–मोथा, पित्तपापडा, जवासा, गिलोय, सोंठ इनसे कढाहुआ जल कफ, वात, अरुचि, छर्दि, दाह, शोष और ज्वरको नाश करता है ॥ ५९ ॥

अथ क्षुद्रादिः ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे ॥
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे ज्वरे त्रिदोषप्रभवे च शस्यते ॥६०॥

भा० टी०–कटेरी, गिलोय, सोंठ, पुष्करमूल इनसे सिद्ध कियाहुआ कषाय कफ वाताधिक ज्वर, वा श्वास, कास, अरुचि, पशलीपीडा करनेवाला ज्वर वा त्रिदोषज्वरमेंभी गुणकारी कहागया है ॥ ६० ॥

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले ॥
अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासयोः ॥ ६१ ॥

भा० टी०–कफवातके ज्वरमें, अरुचिमें, अतिनिद्रामें पशलीपीडा और श्वासकासमें दशमूली (सरिवन, पिठवन, बेल, सोनापाठा, पाढल, कम्भारी, अरणी, छोटीकटेरी, बडीकटेरी, गोखरु) का रस पिप्पलीके साथ सेवन करना ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाराष्ट्रवंशावतंसदामोदरसूनुसदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते
वृन्दे वातादिज्वराधिकारः ॥ २ ॥

अथ सन्निपातज्वराधिकारः ३.

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्य्यात्त्रैदोषिके ज्वरे ॥
तस्य निग्रहतः सम्यक् सुजयौ पित्तमारुतौ ॥ १ ॥

भा० टी०–(वात पित्त कफ इन तीन दोषोंका युगपत् बलिष्ठ वा विलोम होजानेका नाम सन्निपात है) सन्निपात ज्वरमें प्रथम कफका ही निग्रह करना योग्य है क्योंकि उसके भलेप्रकार निगृहीत होजानेसे वात--पित्तका जीतना सुगम होता है ॥ १ ॥

दुर्गेऽम्भसि यथा मज्जद्भाजनं त्वरया बुधः ॥
गृह्णीयाद्बुद्धिवेगेन तथाऽभिन्यासपीडितम् ॥ २ ॥

भा० टी०–बुद्धिमान् वैद्यको योग्य है कि, गंभीर जलमें डूबतेहुए पात्रके नाईं सन्निपातसे पीडित मनुष्यको, बुद्धिबलसे शीघ्रही अवलम्ब देकर निकासे ॥ २ ॥

सञ्जातलाघवं सद्यस्तृष्णाविरहितं तथा ॥
निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणं विंद्याद्धतौजसम् ॥ ३ ॥

भा० टी०–जब शरीर हलका और तृष्णा शान्त हो और निद्रा आने लगे, तब जानलेवे कि, सन्निपात निर्वीर्य और क्षीण होगया है ॥ ३ ॥

लङ्घनं वालुका स्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्रयोज्यानि त्रिदोषजे ॥ ४ ॥

भा० टी०–सन्निपातके ज्वरमें लंघन, पूर्वोक्त प्रकारवाला वालुकास्वेद, नस्य (सूंघने योग्य द्रव्य) गण्डूष, अवलेह, अञ्जन इतने प्रयोग करने उचित हैं ॥ ४ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथाऽपि वा ॥ लङ्घनं सन्निपातेषु कुर्य्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ५ ॥ दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता ॥ न कश्चन जिते दोषे सहते लङ्घनादिकम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–तीन रात्रि वा पांच रात्रि वा दश रात्रि वा आरोग्यदर्शनपर्यन्त सन्निपातमें लंघन करे ॥ ५ ॥ क्योंकि लंघनोंको सहन करनेकी जो शक्ति है वही दोषोंकी शक्ति कहाती है, दोषोंके जीते जानेपर लंघनादिकको कोई नहीं सह सकता ॥ ६ ॥

कफपित्ते द्रवौ धातूत्सहेते लङ्घनं महत् ॥
आमक्षयादूर्द्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–कफ और पित्त यह दोनों धातु द्रव्य होनेके कारणसे बहुकालिक लंघनको सह सकते हैं परन्तु वायु तो जीते जानेके अनन्तर भी क्षणभर आमाशयको नहीं सहता ॥ ७ ॥

आर्द्रकस्य रसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् ॥
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनःपुनः ॥ ८ ॥

भा० टी०–अदरखके रसयुक्त सेन्धा लवण और त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल,) को बार बार कण्ठ पर्यन्त मुखमें भरकर कुल्ला करै ॥ ८ ॥

तेनास्य हृदये श्लेष्मा शनैः पार्श्वशिरोगलात् ॥
लीनोपाकृष्यते शुष्को लाघवं चाऽस्य जायते ॥ ९ ॥

भा० टी०-इस विधिसे रोगीके हृदयमें कुपित होकर छिपा हुआ शुष्क, कफ, पशली, शिर और कण्ठसे धीरे धीरे खींचा जायगा और मन्द होगा ॥ ९ ॥

पर्वभेदो ज्वरोऽनिद्रा श्वासकाशगलामयाः ॥
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ १० ॥

भा० टी०-एवं ग्रन्थिभेद, ज्वर, निद्राका न आना, श्वास, काश, कण्ठरोग, मुख और नेत्रोंकी विकरालता, जडता (अचैतन्य) उत्क्लेश यह सव उपद्रव शान्त होजायँगे ॥ १० ॥

सकृद्द्वित्रिचतुः कुर्य्याद्दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–दोषोंका बलाबल देखकर तदनुसार एक दो वा तीन चार बार उक्त गण्डूष-विधि करावे। सन्निपातज्वरवाले मनुष्योंकी यही एक परम चिकित्सा है ॥ ११ ॥

अथ सन्निपाते नस्यदानम् ।

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम् ॥
अन्यद्वा सिद्धिविहितं तीक्ष्णं नस्यं प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०–बीजपूर और अदरखके रसको कुछ उष्ण करके उसमें त्रिलवण (सेंधानोन, विरिया सोंचरनोन, कालानोन,) को मिलानेसे नस्य सिद्ध होता है, इस नस्यको वा किसी दूसरे अनुभव सिद्धतीक्ष्ण नस्यको सन्निपातमें प्रयुक्त करे ॥ १२ ॥

तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते ॥
शिरोहृदयकण्ठास्यपार्श्वरुक् चोपशाम्यति ॥ १३ ॥

भा० टी०–नस्यके प्रयोगसे शुष्क कफ फट जाता और फटनेपर गीला होजाता है इसके अतिरिक्त शिर, हृदय, कण्ठ, मुख और पशलीका रोग भी शान्त होजाता है ॥ १३ ॥

भूनिम्बकारवीतिक्तावचाकट्फलकं रजः ॥
उद्धूलितं त्रिदोषोत्थस्वेदाभिष्यन्दशोषकम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–चिरायता, कालाजीरक, कुटकी, वचा, कायफल इनके चूर्णको रोगीके अङ्गमें उद्धूलन करनेसे त्रिदोषजनित स्वेदस्राव सूख जाता है ॥ १४ ॥

सौराष्ट्रिकासावरकृष्णजीरकं किराततिक्तं कटुरोहिणी वचा ॥
जीर्णं सुसिद्धं लवणानि पञ्च स्वेदापहं गुण्डनमेतदुक्तम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–गोपीचन्दन, लोध, कालाजीरक, चिरायता, कुटकी, वचा, भूरिछरील, पञ्चलवण (सेंधानोन, समुद्रनोन, खारीनोन, सोंचरनोन, कचलोन) इन करके सिद्ध किया हुआ गुण्डनभी सान्निपातिक स्वेदस्रावको हरता है ॥ १५ ॥

अथाञ्जनम् ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ॥
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ १६ ॥

भा० टी०–शिरीषके बीज, गोमूत्र, पिपली, कालीमिरच, सेंधानोन, लशुन तथा मैनशिल और वचा इनसे सिद्ध किया हुआ अञ्जन चैतन्यके लिये होता है ॥ १६ ॥

अथावलेहः सन्निपाते ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी कोषं यासश्च कारवी ॥
श्लक्ष्णं चूर्णीकृतञ्चैतत्क्षौद्रेण सह लेहयेत् ॥ १७ ॥

भा० टी०–कायफल, पुष्करमूल, काकडासिंगी, व्योष (सोंठ, मिरच, पीपल) भूरिछरील । इनका सुन्दर चूर्ण बनाकर मधुके साथ चटावे ॥ १७ ॥

एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ॥
हिक्कां श्वासं च कासं च कण्ठरोधं नियच्छति ॥ १८ ॥
तच्च योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः ॥ १९ ॥

भा० टी०–यह अवलेहिका दारुण सन्निपातके नाश करनेके अतिरिक्त हिचकी, श्वास, कास, और कण्ठरोधकोभी निगृहीत करती है ॥ यह पूर्वोक्त चूर्ण कफाधिक सन्निपातमें अदरखके रसके साथ प्रयोजित करना योग्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ हरिद्रादिः सान्निपाते ।

हरिद्रा भद्रमुस्तं च त्रिफला कटुरोहिणी ॥
पिचुमन्दपटोलश्च देवदारुनिदिग्धिका ॥ २० ॥

भा० टी०–हलदी, भद्रमुस्त (एकप्रकारका नागरमोथा) त्रिफला, कटुकी, नीम, परवल, देवदारु, कटेरी ॥ २० ॥

एषां कषायः पीतस्तु सन्निपातज्वरापहः ॥
अविपक्तिप्रसेकश्च कासं शोषमरोचकम् ॥ २१ ॥
नाशयेज्ज्वरपक्षान्हि गिरिपक्षान्पविर्यथा ॥ २२ ॥

भा० टी०–इनका कषाय, पान कियेजानेसे सन्निपातज्वरको नाश करता है एवं अविपाक, स्वेदस्राव, कास, शोष, अरुचि ज्वरके इन सब सहायक रूप उपद्रवोंको कैसे नष्ट करता है, जैसे वज्र पर्वतके परोंको ॥ २१ ॥ २२ ॥

सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवतारयेत् ॥
शीतोपचायि क्षौद्रं स्यात्क्षीरं चाऽत्र विरुद्ध्यते ॥ २३ ॥

भा० टी०–सभी सन्निपातोंमें मधुका प्रयोग न करे, क्योंकि यह शीतको बढाता है एवं दूधभी सन्निपातमें निषिद्ध है ॥ २३ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः साङ्कर्य्यमिह शस्यते ॥
भिन्नरूपाः क्रियास्तत्र नूनं कुर्व्वन्ति दूषणम् ॥ २४ ॥

भा० टी०-त्रैदोषिक ज्वरमें दोषबलके अनुसार तुल्यरूपवाली क्रियाओंका मेल करना भला है, क्योंकि भिन्नरूपवाली क्रिया (औषधिप्रयोग) दोषवर्द्धक होती हैं ॥ भावार्थ–वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंकी समता वा न्यूनाधिकता, जैसे भी हो उसीप्रकारसे तत्तद्दोषोंके उचित अंशवाले भैषज्यको करे ॥ २४ ॥

शस्तः सुलंघितस्यादौ विहितः कवलग्रहः ॥ लाजसक्तुकपथ्यं

स्यात्सैन्धवेनाऽवचूर्णितम् ॥ २५ ॥ केचित्पित्तहितत्वेन दाहज्वर-हरत्वतः ॥ सक्तवः शीतवीर्य्याः स्युर्लाजपूर्वा हिता जले ॥२६॥

भा० टी०–सन्निपातज्वरकी प्रारम्भिक दशामें भलीप्रकार लंघन करनेके अनन्तर कवल-ग्रह अच्छा होता है । अतः सेंधानोनके साथ पीसाहुआ लाजासत्तूका पथ्य हित है, पित्तमें हित पहुंचाने और दाहज्वरको दूरकरानेके निमित्तसे कोई इसप्रकार कहते हैं कि, जलमें सिद्ध कीहुई लाजासत्तू शीतल और हित होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ सन्निपाते पञ्चमुष्टिकयूषपथ्यम् ।

पञ्चमुष्टिकयूषेन त्रिकण्टविहितेन च ॥
आदोषशमनात्पथ्यं त्रिकण्टेनैव साधितम् ॥ २७ ॥

भा० टी०–त्रिकण्ट (बृहती, अग्निदमनी, जवासा,) वा केवल गोखरूके साथ सिद्धकिया हुआ पञ्चमुष्टिकयूष ही दोषोंकी शान्तिपर्य्यन्त सन्निपातमें गुणकारी पथ्य है ॥ २७ ॥

पञ्चकोलं कुलत्थानां मुद्गमूलकयोः किल ॥ एकैकं मुष्टिमाहृत्य पचेदष्टगुणे जले ॥ २८ ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफाधिके ॥ शस्येत गुल्मशूले च श्वासकासक्षयज्वरे ॥ २९ ॥

भा० टी०–पञ्चकोल (पिपली, पिपलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ[1],) तथा कुलथी, मूंग, पुष्करमूल इनमें प्रत्येकका एक एक मुष्टिप्रमाण अंशको चूर्ण करके अठगुणे जलमें पकानेसे पञ्चमुष्टिक यूष सिद्ध होता है ॥ २८ ॥ सो यह यूष, वातपित्तकफाधिक सन्निपातमें, गुल्म-शूलमें, तथा श्वास कास और क्षयज्वरमें गुणकारी कहा है ॥ २९ ॥

अथ द्वात्रिंशाङ्गक्काथः ।

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्प्पटैः ॥ देवदार्व्यभयाशृङ्गी कलाभूनिम्बनागरैः ॥ ३० ॥ भार्ङ्गीकलिङ्गकटुकाशठीधान्याक-कत्तृणम् ॥ दशमूली सह क्काथः पिप्पल्यार्दकहिंगुकैः ॥ ३१ ॥

भा० टी०–कायफल, मोथा, वचा, पाठा, पुष्करमूल, कालाजीरक, पित्तपापडा, देवदार, हरीतकी, काकडासिङ्गी, बहेडा, चिरायता, सोंठ, भारङ्गी, कूडा, कटुकी, कचूर, धनियां, रोहि-ससोधिया, दशमूली (शालवन, पिठवन आदिक १० मूल) पिपली, अदरख, हींग इन ३२ वस्तुओंसे सिद्धकियाहुआ क्काथ द्वात्रिंशाङ्ग कहाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं कफामयम् ॥
कर्णमूलं त्रिदोषञ्च हन्ति पर्वगलामयान् ॥ ३२ ॥

---

१ एक मुष्टि प्रमाण सोंठ, और एकमुष्टिप्रमाण शेष चार वस्तु, यह प्रमाण है ।

भा० टी०—यह द्वात्रिंशांग क्वाथ, गलगण्ड, गण्डमाला, स्वरभेद, कफ, कर्णमूल, सन्निपात, ग्रन्थिरोग, कण्ठरोग इन सब उपद्रवोंको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

अथ चतुर्भद्रकपञ्चमूलम् ।

पञ्चमूलीकिरातादिगणो योज्यस्त्रिदोषजे ॥
पित्तोत्कटे मधुरया कणया च कफाधिके ॥ ३३ ॥
(वाताधिके सौवर्चलम्)

भा० टी०—लघुपञ्चमूल, और किरातादिगण (चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ) इनका क्वाथ पित्ताधिक सन्निपातमें सौंफके साथ और कफाधिक सन्निपातमें पीपलके साथ प्रयुक्त करना योग्य है । (कफाधिकमें कालानोनके साथ) ॥ ३३ ॥

नागरातिविषा मुस्तं त्रयमेतत्त्रिकार्षिकम् ॥
गुडूचीसंयुतश्चैव चातुर्भद्रिकमुच्यते ॥ ३४ ॥

भा० टी०—सोंठ, अतीस, मोथा इन तीनोंके तीन कर्षप्रमाण अंश और गिलोयसे युक्त चातुर्भद्रिक क्वाथ कहाता है ॥ ३४ ॥

बिल्वश्योनाकगम्भारीपाटलागणिकारिकाः ॥
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं स्मृतम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०—बेल, सोनापाठा, खंभारी, लाललोध, अगेयुवृक्ष, इनसे सिद्ध कियाहुआ क्वाथ बृहत् पञ्चमूलसंज्ञक होता है यह अग्निवर्द्धक और कफवातका नाशक है ॥ (इति बिल्वादिः ॥) ॥ ३५ ॥

अथ दशमूलम् ।

शालपर्णी पृथक्पर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥
वातपित्तहरं वृष्यं करीषे पञ्चमूलकम् ॥ ३६ ॥

भा० टी०—दशमूलोंमेंसे सालवन, पिठवन, बृहती, कण्टकारी, गोखरू यह पञ्चमूल सूखे गोबरके साथ साधित कियेजानेसे वातपित्तको हरता और वीर्य्यको पुष्ट करता है ॥ ३६ ॥

सहावशिष्टमूलं तु सन्निपातज्वरापहम् ॥
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥ ३७ ॥

भा० टी०—शेष पञ्चमूलों सहित पूर्वोक्त पञ्चमूल सन्निपातज्वरको नाश करता और श्वास, कास, तन्द्रा (निद्राजाड्य), एवं पसलीशूलमें भी उत्तमगुणकारी कहागया है ॥ ३७ ॥

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥
संशीलितं नियमतः कं न विप्लवमाचमेत् ॥ ३८ ॥

भा० टी०-एवं पीपलके चूर्णके साथ नियमपूर्वक सेवन कियेजानेसे कण्ठग्रह, हृदयग्रहको नाश करता है, अथवा किस उपद्रवको शान्त नहीं करता ? ॥ ३८ ॥

त्रिभिरथ परिवृद्धं पञ्चभिः सप्तभिर्वा दशभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥ परिपिबति पुमान् यस्तस्य वै श्वासकासज्वरजठरगरार्शोवह्निमान्द्यानि न स्युः ॥ ३९ ॥

भा० टी० पिपलीयुक्त एरण्डके रसको एकोत्तरवृद्धिके क्रमसे तीन, पांच, वा सात, दश दिन पर्य्यन्त पानकरनेवाले मनुष्यके कास, श्वास, ज्वर, पेटका गर, बवासीर तथा अग्निमान्द्य यह रो नहीं रहते ॥ ३९ ॥

अथ चतुर्दशाङ्गः ।

पित्तज्वरे वातकफोल्वणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलयुक्तः ॥
किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ ४० ॥

भा० टी०-पित्तज्वरमें, वातकफके उपद्रवमें, तथा सन्निपातमें, दोषोंके शोधनको चाहनेवाले मनुष्यके लिये दशमूल करके युक्त किरातादिगणको निशोथके साथ प्रयोजित करना उचित है॥ ४० ॥

अथाष्टादशाङ्गः ।

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् ॥ भार्ङ्गी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ४१ ॥ अष्टादशांग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ॥
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ ४२ ॥

भा० टी०-दशमूली, कचूर काकडासिङ्गी, पुष्करमूल, दुरालभा, भारङ्गी, कूडाके बीज, परवल, कटुकी ॥ ४१ ॥ इन १८ वस्तुओंसे साधित रस अष्टादशाङ्गसंज्ञक होता है, यह रस त्रैदोषिकज्वर तथा श्वास, कास, हृदयग्रह, पशलीपीडा, हिचकी, एवं छर्दिको दूर करता है ॥ ४२ ॥

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः ॥
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ४३ ॥

भा० टी०-चिरायता, देवदार, दशमूल, सोंठ, मोथा, कूडाके बीज, धनियां, नागकेशर, पिप्पली इनका कषाय निद्राजाड्य, प्रलाप (व्यर्थ बकना), कास, अरुचि, दाह, मूर्च्छा, श्वास इत्यादिउपद्रवोंसे युक्त सबप्रकारके ज्वरको शीघ्रही नाश करदेता है ॥ ४३ ॥

अथ मुस्ताद्यो गणः।

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम् ॥ त्रिफला धन्वयासश्च नीली कम्पिलकं त्रिवृत् ॥ ४४ ॥ किराततिक्तकं पाठा वचा कटुकरोहिणी ॥ मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्तादिर्गण उच्यते ॥ ४५ ॥

भा० टी०—मोथा, पित्तपापडा, खस, देवदार, सोंठ, त्रिफला, जवासा, नील, कवीला-औषधी, निशोथ चिरायता, पाठा, वचा, कटुकी, मुलहटी, पीपलामूल यह मुस्तादिगण कहागया है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अष्टादशांगमुदकमेतद्वा सन्निपातनुत् ॥
पित्तोत्तरे सन्निपाते हितश्चोक्तं मनीषिभिः ॥ ४६ ॥

भा० टी०—अष्टादशाङ्गका रस और यह मुस्तादिगण सन्निपातको दूर करता है सही, परन्तु वैद्यकशास्त्रके विद्वानोंने प्रायः पित्ताधिक सन्निपातमें गुणकारी कहा है ॥ ४६ ॥

अथ श[illegible]याादिः।

शठी पुष्करमूलञ्च गुडूची विश्व [illegible]जम्॥ तिक्तकं त्रायमाणां च सदुरालभपिप्पली ॥ ४७ ॥ व्याघ्री पर्पटकं रास्नाऽभया कटुकरोहिणी ॥ देवदारु च भाङ्गी च समभागप्रकल्पितः ॥ ४८ ॥ बृहत्शठ्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः ॥ कासश्वासदिवानिद्रा रात्रौ जागरणं तथा ॥ ४९ ॥ मुखशोषं च तृष्णाञ्च दाहं प्रशमयत्यपि ॥ ५० ॥

भा० टी०—कचूर, पुष्करमूल, गिलोय, सोंठ, परवल, त्रायमाण, दुरालभा, पिपली ॥४७॥ कटेहली, पित्तपापडा, रासन, हरड, कुटकी, देवदार, भारङ्गी इनके सम भागोंसे सिद्ध किया हुआ ॥ ४८ ॥ बृहत्शठ्यादिगण सन्निपातको नाश करके कास, श्वास, दिवास्वाप, रात्रिजागरण, मुखशोष तथा दाह इन उपद्रवोंको भी शान्त करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ योगराजरसः।

नागरं धान्यकं भार्ङ्गी पद्मकं चन्दनान्वितम् ॥ पटोलपिचुमन्दौ च त्रिफला मधुकं बला ॥ ५१ ॥ शर्करा कटुका मुस्तं गजाह्वा व्याधिघातकम्॥ किराततिक्ताऽप्यमृता दशमूलं निदिग्धिका॥५२॥ योगराजाभिधः क्काथः सन्निपातज्वरापहः । सन्निपातसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ५३ ॥

भा० टी०–सोंठ, धनियां, भारङ्गी पुष्करमूल, चन्दन, परवल, नीम, त्रिफला, मुलहटी, खरेंटी, ॥ ॥ ९१ ॥ खांड, कुटकी, मोथा, गजपिप्पली, गेंठी वा अमलतास, चिरायता, गिलोय, दशमूल, कटेरी ॥ ९२ ॥ इनसे सिद्ध किया हुआ योगराज नामक क्वाथ सन्निपातज्वरको नाश करता है अथवा सन्निपातको उत्पन्न करनेवाले समीपस्थ मृत्युको भी जीत लेता है ॥ ९३ ॥

अथ कारव्यादिः ।

कारवी पौष्करैरण्डत्रायन्ती वासकामृता ॥ दशमूली शठी शृङ्गी वासं भार्ङ्गी पुनर्नवा ॥ ५४ ॥ तुल्या मूत्रेण निष्क्वाथ्याः पीतः शोथे विशेषतः॥अभिन्यासज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥५५॥

भा० टी०–कारवेल, पुष्करमूल, एरण्ड, त्रायमाण, वांसा, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, तेजपात, भारङ्गी, पुनर्नवा (विषखपरा) ॥ ९४ ॥ इन सबके सम भागोंको गोमूत्रके साथ क्वथित करनेसे सिद्ध हुआ क्वाथ विशेषकर सूजन रोगमें पियेसे हित होता और अत्यन्त उद्धत तथा भयंकर सन्निपातको भी शीघ्र नाश करता है ॥ ९५ ॥

स्वेदोद्गमे भृष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं शस्तमिति ब्रुवन्ति ॥ मृत्युश्च तस्मिन्बहुपिच्छिलत्वात्प्रान्ते च शीते परितः सरत्वात् ॥ ५६ ॥

भा० टी०–सन्निपातसम्बन्धी दुष्टस्वेदके प्रादुर्भाव हुएमें भुनी हुई कुलथीका चूर्ण छितराना भला कहा है क्योंकि अति आर्द्र और प्रान्त भागोंमें समन्तात् पसरनेवाले शीतल स्वेदके होते मृत्यु होनेमें शङ्का नहीं ॥ ९६ ॥

स्वेदो ललाटेऽतितरां हि शीतः शीतार्दितस्येति सुपिच्छिलश्च ॥ कण्ठस्थितो यस्य च याति वक्षोऽयमन्तकागारमुपैति मर्त्यः ॥ ५७ ॥

भा० टी०–सन्निपातमें स्वयं शीत पीडित होते हुए जिस मनुष्यके ललाटमें अत्यन्त शीतल और गीला स्वेद हो किंवा उक्त प्रकारका स्वेद जिसके कण्ठमें उत्पन्न होकर वक्षःस्थलकी ओर पिघले वह मनुष्य अवश्य यमलोकको पधारता है ॥ ९७ ॥

त्रिवृद्विशाला त्रिफला कटुकारग्वधैः कृतः ॥ सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥ ५८ ॥

भा० टी०–निसोथ, इन्द्रायण, त्रिफला, कुटकी अमलतास इन करके सिद्ध किया हुआ सर्वज्वरापहारी दोषभेदी क्वाथ जवाखारके साथ पान करना उचित है ॥ ९८ ॥

पित्तकफानिलवृद्धया दशदिवसद्वादशाहसप्ताहान् ॥ हन्ति त्रिदोषमाशु सँस्कुरुते धातुमलपाकम् ॥ ५९ ॥

भा० टी०–यह पूर्वोक्त क्वाथ पित्ताधिक सन्निपातमें दशदिन पर्यन्त एवं कफाधिकमें बारह

दिन पर्यन्त और वाताधिकमें सात दिन पर्यन्त सेवन किये जानेसे शीघ्रही त्रिदोषको नाश करके दोषदूषित रक्तमज्जादि धातु और मलको पकाता है ॥ ५९ ॥

सप्तमी द्विगुणा यातु नवम्येकादशी तथा ॥
एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ ६० ॥

भा० टी०–निगृहीत मनुष्यको छोडदेने वा मारदेनेके लिये संनिपातकी अवधि ७।९।११। १४ वा १८ वा २२ दिन हैं ॥ ६० ॥

सन्निपातात्प्रकम्पन्तं विलपन्तञ्च यो नरम् ॥
भोजयेत्पिशितं कस्मात्स वैद्यपदमर्हति ॥ ६१ ॥

भा० टी०–जो वैद्य संनिपातके समावेशसे कांपते और प्रलाप करते हुए मनुष्यको मांस खिलाता है वह वैद्यपदको कैसे प्राप्त होसकता है ॥ ६१ ॥

सन्निपाते च दाहार्त्तं यः सिञ्चेच्छीतवारिणा ॥
आतुरः स कथं जीवेद्वैद्यो वा स कथं भवेत् ॥ ६२ ॥

भा० टी०–जो वैद्य संनिपातज्वरमें दाहपीडित मनुष्यको शीतल जलसे सींचता है वह वैद्य कैसे होसकता है ? और आतुर कैसे जी सकता है ? ॥ ६२ ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं समुद्धरति यो नरम् ॥
कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥ ६३ ॥

भा० टी०–जो वैद्य संनिपातरूपी गम्भीर समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यका उद्धार करता है, कहिये उस वैद्यने कौन धर्म नहीं किया ? और वह किस पूजाके योग्य नहीं ? ॥ ६३ ॥

मृत्युना सह युद्धं यत्सन्निपाते चिकित्सनम् ॥
यश्च तत्र भवेज्जेता स जेताऽऽमयसंहतेः ॥ ६४ ॥

भा० टी०–संनिपातमें चिकित्सा करना कालके साथ युद्ध करना है। अतः जो संनिपातको जीतेगा वही रोगसमूहका पराजय करनेवाला होगा ॥ ६४ ॥

कदाचिज्जीयते वैद्यः सन्निपातेन रोगिणः ॥
तृष्णादाहाभिभूतस्य न दद्याच्छीतलं जलम् ॥ ६५ ॥

भा० टी०–कदाचित् प्रयोग करते करते वैद्य हार जाय, तो भी तृष्णा और दाहसे व्याकुल होते हुए सन्निपातीके लिये शीतल जलका प्रयोग न करे ॥ ६५ ॥

सन्निपातज्वरस्याऽन्ते कर्णमूले सुदारुणः ॥
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ६६ ॥

भा० टी०—संनिपातज्वरके अन्तमें कानोंके मूलपर दारुण सोजा उत्पन्न हुआ करता है। सो इसकी यन्त्रणासे विरलाही बचता है ॥ ६६ ॥

नक्तावसेवनैः पूर्वं सर्पिःपानैश्च तं जयेत् ॥
प्रदेहैर्वातपित्तघ्नैर्नवीनैः कवलग्रहैः ॥ ६७ ॥

भा० टी०—कलिहारीके सेवन व घृतपानसे उसको जीते, पुनः वातपित्तके नाश करनेवाले लेप और तत्काल साधित कवलग्रहोंका प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

सनागरं देवदारु रास्ना चित्रकपेषितम् ॥
प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं कर्णशोथनिवारणम् ॥ ६८ ॥

भा० टी०—सोंठ, देवदार, रासन, चीता इनको पीसकर लेपन करनेसे कानोंका सोजा दूर होता है ॥ ६८ ॥

कुलत्थं कट्फलं शुण्ठी कारवी च समांशिकैः ॥
कवोष्णं लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ६९ ॥

भा० टी०—कुलथी, कायफर, सोंठ, कारवेल इनके चूर्णको जटामांसीके साथ उष्ण बनाकर मन्दोष्ण होनेपर बार बार कर्णमूलमें लेप करना उचित है ॥ ६९ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् ॥
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहसम्भवान् ॥ ७० ॥

भा० टी०—अभिचार (मन्त्र यन्त्र जादू) तथा गुरुजनोंके शापसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको होम वा देवताके अर्चन आदि शुभ कर्मोंसे जीते, एवं उत्पात ग्रह, आदिसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको दान, स्वस्तिवाद तथा अतिथिसत्कारसे दुरावे ॥ ७० ॥

औषधीगन्धविषजौ पित्तदुर्विषबाधनैः ॥
जयेत्कषायैर्मतिमान्देशकालविचारवान् ॥ ७१ ॥

भा० टी०—देशकालके विचारसे सम्पन्न बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, मादक वनस्पतियोंके गन्ध और विषसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको पित्तोपयोगी और विषोपयोगी (विषको दूर करनेवाले) कषायोंके द्वारा जय करे ॥ ७१ ॥

क्रोधजोऽभीष्टलाभेन कामजः क्रोधतस्तथा ॥ आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ७२ ॥ हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः ॥ ७३ ॥ जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःशान्त्या च मानसम् ॥ न हि ज्वरोऽनुबध्नाति मारुताद्यैर्विनाऽऽमयैः ॥ ७४ ॥

भा० टी०–क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर, मनोरथकी प्राप्तिसे शान्त होता है एवं कामजन्य ज्वर, क्रोध वा कामोपभोगसे शान्त जानिये । अथवा काम, शोक, भयसे उत्पन्न हुए ज्वर, आश्वासन देने, इष्ट वस्तुके पाने, और मनके प्रफुल्लित करनेसे दूर होते हैं । बन्धन, आवेशन, ताडन प्रभृति उपाय जो भूतविद्यामें दरशाये हुए हैं उनके द्वारा भूताभिषंगसे उत्पन्न हुए ज्वरको जीते इन ज्वरोंपरभी यह ध्यान रहे कि, ये विना वातादि दोषोंके आवेश हुए उत्पन्न नहीं होते ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

माहेश्वरधूपः ।

श्रीवेष्टदारुबाह्लीकं मुस्ताकटुकरोहिणी ॥ सर्षपो निम्बपत्राणि मदनस्य फलेन च ॥ ७५ ॥ बृहत्यौ सर्पनिर्मोककार्पासास्थियवास्तुषः ॥ गोशृंगखुररोमाणि बर्हिपिच्छं बिडालविट् ॥ ७६ ॥

भा० टी०–सरलका गोंद, देवदार, हींग, मोथा, कटुक, (सुगन्धिततृण) कटुकी, सरसों, नीमके पत्ते, मैनफल, दोनों बृहती, सर्पकी केंचुली, बिनौले, जव, बहेडा वा धानोंकी भूसी, गौके सींग, खुर और बाल, मोरपंखा, बिल्लीकी बीट ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

छागरोमघृतं चेति वत्समूत्रेण भावयेत् ॥
एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः ॥ ७७ ॥

भा० टी०–एवं बकरीके बाल और घृत इनको गोवत्सके मूत्रके साथ सिद्ध करनेसे माहेश्वरधूप सिद्ध होता है, यह धूप सब प्रकारकी भूतग्रहबाधाको दूर करता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंसदामोदरसूनुसदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे सन्निपातज्वराधिकारः ॥ ३ ॥

अथ जीर्णज्वराधिकारः ४.

जीर्णज्वरचिकित्सा ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥
जीर्णज्वरान्ते कफकासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १ ॥

भा० टी०–कटेरी, सोंठ, गिलोय इनसे सिद्ध किये हुए क्वाथको पिप्पलीके साथ मिलाकर जीर्णज्वरमें तथा कफ, कास, श्वास, शूल, अग्निमांद्य, एवं नासिकारोगमें पान करे ॥ १ ॥ इति निदिग्धिकादिः ॥

कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत् ॥
जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली ॥ २ ॥

भा० टी०–कास, श्वास, अजीर्ण, अरुचि, पाण्डुरोग, कृमिरोग इन सब उपद्रवोंको गुडपिप्पली दूर करती है और जीर्णज्वर तथा अग्निमान्द्यमें भी गुणकारिणी होती है ॥ २ ॥

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नोद्भवोद्भवः ॥
जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीघृतं च वा ॥ ३ ॥

भा० टी०–पीपलचूर्णसे मिलाहुआ गिलोयका क्वाथ, वा पञ्चमूलीघृत, जीर्णज्वर और कफको नाश करता है ॥ ३ ॥

शिरोगौरवशूलघ्नमिन्द्रियप्रतिबोधनम् ॥
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ४ ॥

भा० टी०–कालीअगरका जुलाब शिरके भारीपन और शूलको नाश करता है, इन्द्रियोंको सचेत बनाता और जीर्णज्वरमें रुचि बढाता है अतः इसको रोगीपर प्रयुक्त करे ॥ ४ ॥

सततं विषमे वाऽपि जीर्णे च सुचिरोत्थिते ॥
ज्वरसम्भोजनैः पथ्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥ ५ ॥

भा० टी०–निरन्तर विषम वा बहुकालिक जीर्णज्वरमें ज्वरनाशक उचित पथ्यका उपचार करै ॥ ५ ॥

तण्डुलीयकवास्तूकवालमूलकपर्पटान् ॥
पटोलममृतापत्रं शाकार्थं दार्विपत्रिका ॥ ६ ॥

भा० टी०–चौलाई, बथुआ, छोटीमूली, पित्तपापडा, गिलोय और परवलके पत्ते, इनका शाक जीर्णज्वरवालेको उपयोगी होता है ॥ ६ ॥

प्रयुञ्जीताऽप्यलाब्वादीन् सह पुत्र्या विचक्षणः ॥ ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ॥७॥ कामन्तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्ये शमलादिषु ॥ ८ ॥

भा० टी०–चतुरवैद्यको उचित है कि, पुत्री (शाकभेद) के साथ तुम्बीप्रभृति गुणकारी शाकोंकोभी रोगीको प्रयुक्त करे, यह भी ध्यान रहे कि, ज्वरसे क्षीणहुए मनुष्यको वमन, विरेचन, गुणकारी नहीं होते किन्तु दूध वा निरूहकर्मके द्वारा मलोंको दूर करे। अरुचि और शरीरकी दुर्बलताके रहते मल मूत्र आदिकमें विवर्णता रहाकरती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

शान्ते ज्वरेऽपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयान्नरः ॥ जीर्णे ज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ॥ ९ ॥ तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कफविद्रावकं मतम् ॥ १० ॥

भा० टी०–अतः ज्वरके शान्तहुएमें भी पुनरागमनके भयसे रोगीका शोधन करना उचित है। ज्वरके जीर्णहोने और कफके क्षीण होनेपर दूध अमृतके समान है ॥ ९ ॥ परन्तु

वही दूध तरुणज्वरमें पानकियाहुआ विषके समान मनुष्यको मारडालता है, पिपलीचूर्णसे मिश्रित दूध कफनाशक मानागया है ॥ १० ॥

कासश्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ॥
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ ११ ॥

भा० टी०–लघुपञ्चमूलसे निकसेहुए दूधको पान करनेसे रोगी मनुष्य कास, श्वास, शिरःशूल, पशलीशूल, नासिकारोग इन सब उपद्रवोंसे मुक्त होता है ॥ ११ ॥

त्रिकण्टकवचाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ॥
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोषज्वरहरं पयः ॥ १२ ॥

भा० टी०–गोखरु, वचा, कटेरी, गुड, मोथा इनसे सिद्धकियाहुआ रसदूध शोष, ज्वरको हरनेवाला एवं मलमूत्रके निरोधका नाशक है ॥ १२ ॥

दद्यादष्टगुणं जीरं जीरात्तोयं चतुर्गुणम् ॥
जीरावशेषः कर्तव्यो जीरपाके त्वयं विधिः ॥ १३ ॥

भा० टी०–जीरपाकमें अठगुणा जीरा और जीरेसे चौगुना जल देवे पीछे पकाते २ जीरा ही शेष रहजावे यही जीरपाककी विधि है ॥ १३ ॥

जीरपाकोऽयमत्यन्तं शोथश्वासकफापहः ॥
जीर्णज्वराशनिर्नूनमग्निमान्द्यहरः परः ॥ १४ ॥

भा० टी०–यह जीरपाक जीर्णज्वरके लिये वज्रतुल्य, तथा सूजन, श्वास, कफ और अग्निमान्द्यको भी हरता है ॥ १४ ॥

कृशानां ज्वरमुक्तानां मिथ्याहारविहारिणाम् ॥
दोषः स्वल्पोऽपि सन्नद्धो देहिनामनिलेरितः ॥ १५ ॥

भा० टी०–ज्वरसे मुक्त होनेपरभी कृशदशाको प्राप्तहुए, एवं मिथ्याहार विहार करतेहुए देह-धारियोंके ज्वरदोष स्वल्प होनेपर भी वायुसे प्रेरित होकर यथावत् सन्नद्ध होजाते हैं ॥ १५ ॥

अहोरात्रादहोरात्रात्स्थानात्स्थानं प्रपद्यते ॥ कालिंगकापटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥ १६ ॥ पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ॥ निम्बं पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सजौ ॥ १७ ॥ किराततिक्तोऽप्यमृता चन्दनं विश्वभेषजम् ॥ गुडूच्यामलकं मुस्तमिति पञ्चविधाः पृथक् ॥ १८ ॥

भा० टी०–वे दोष प्रतिरातदिन एक स्थानसे दूसरे स्थानको घेरतेहुए व्याप्त होते हैं इसदशामें यह प्रयोग करना योग्य है। इन्द्रजौ, परवलके पत्ते, कटुकी (१), वा परवल, सरिवन, मोथा, पाठा, कुटकी (२) वा नीम, परवल, त्रिफला, दाख, मोथा, कूडा (३), वा चिरायता, गिलोय, चन्दन, सोंठ (४), वा गिलोय, आंवला, मोथा (५), यह पांच-प्रकारके कषाय भिन्न २ सिद्ध कियेजावें ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

कषायाः शमयन्त्याऽऽशु पंच पंचविधं ज्वरम् ॥
आनयन्ति बलं सम्यक् प्रत्यंगं कार्श्यशालिनाम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–यह पञ्चकषाय ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, सम वा वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रैदोषिक, इन पांच प्रकारके ज्वरोंको शान्त करके रोगसे कृशहुए मनुष्योंके प्रत्यंगमें सुन्दर बल लाते हैं ॥ १९ ॥

अजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी ॥
अग्निसादं जयेत्सम्यग्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥ २० ॥

भा० टी०–गुडके साथ कालीजीरकका सेवन करनेसे वह विषमज्वरको नाश करतीहै एवं अग्निमान्द्यको जीतती और वातरोगोंको हरतीहै ॥ २० ॥

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ॥
गुडूचीमुस्तधात्रीणां कषायं वा समांशिकम् ॥ २१ ॥

भा० टी०–विषमज्वरसे पीडितहुये मनुष्यको उचित है कि, गुडके साथ काढ़े हुए त्रिफलाका क्वाथ, वा गिलोय, मोथा, आंवला इनके समभागिक कषायको पान करे ॥ २१ ॥

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथः ॥
पीतोऽथ कणाचूर्णो मधुना हंति ज्वरं विषमम् ॥ २२ ॥

भा० टी०–मोथा, आंवला, गिलोय, सोंठ, कटेरी इनके क्वाथको पान करने वा मधुके साथ पिप्पलीको सेवन करनेसे विषमज्वर नाश होताहै ॥ २२ ॥

पटोलसारिवामुस्तं पाठा तिक्तकरोहिणी ॥
कषायाः शमयन्त्याऽऽशु सततं सततज्वरम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–परवल, सरिवन, मोथा, पाठा, चिरायता, कटुकी इनके कषाय निरन्तर रहनेवाले ज्वरको शीघ्रही शान्त करतेहैं ॥ २३ ॥

निम्बः पटोलत्रिफलामृद्वीकामुस्तवत्सकैः ॥
अन्येद्युस्कं ज्वरं हन्ति क्वाथः शीघ्रं प्रयोजितः ॥ २४ ॥

भा० टी०–नींब, परवल, त्रिफला, दाख, मोथा, कूडा इनका क्वाथ दूसरे दिनमें आनेवाले ज्वरको शीघ्रही नाश करताहै ॥ २४ ॥

प्रातः प्रातः ससर्पिश्च रसोनमुपयोजयेत् ॥
पिप्पलीवर्द्धमानं वा पिबेत्क्षीररसाशनः ॥ २५ ॥

भा० टी०–किंवा उक्तप्रकारज्वरवाले मनुष्यको उचित है कि, नित्य प्रातःकाल लशुनको घृतके साथ उपयोगमें लावे, वा दूधके साथ पिप्पली और एरण्डके रसको पीवे ॥ २५ ॥

क्षीरेण पञ्चवृद्ध्या वा क्षीरान्नाशी कणां पिबेत् ॥
यावत्पूर्णं शतं तत्स्यात्तां तथैवाऽपकर्षयेत् ॥ २६ ॥

भा० टी०–अथवा पांच पिप्पलियोंसे प्रारम्भ करके क्रमशः बढा २ कर सौ पिप्पली पर्य्यन्त दूधके साथ सेवन करै और क्षीरान्नकाही पथ्य भी रक्खै, जब सौ पिप्पली पूर्ण होजायं तब फिर उसीप्रकार घटाते २ पांचपर समाप्त करे ॥ २६ ॥

वातासृक्श्वासपाण्डुवर्शोगुल्मशोथोदरापहम् ॥
विषमज्वरवृष्यं च पिप्पलीवर्द्धमानकम् ॥ २७ ॥

भा० टी०–पिप्पली और एरण्डका तैल वात, रक्तपित्त, श्वास, पाण्डुरोग, बवासीर, गुल्मरोग, सूजन इन सब उपद्रवोंको नष्ट करता और विषमज्वरमेंभी बलकारी होताहै ॥ २७ ॥

एकांतर–चातुर्थिकज्वरचिकित्सा।

दिनमेकं तु विश्राम्य प्रत्येति स ततीयकः ॥
दिनद्वयं तु विश्राम्य प्रत्येति स चतुर्थकः ॥ २८ ॥

भा० टी०–एकदिन विश्रांम लेकर जो फिर लौट आतारहै वह त्र्याहिक, और दो दिन विश्राम लेकर आनेवाला ज्वर चातुर्थिक कहाताहै ॥ २८ ॥

कर्म साधारणं जह्यात्तृतीयकचतुर्थके ॥
द्रविणौ तौ हि कर्तव्यौ सविशेषैश्चिकित्सितैः ॥ २९ ॥

भा० टी०–त्र्याहिक चातुर्थिक ज्वरमें सामान्य प्रयोगका काम नहीं है इनको विशेष प्रयोगोंके द्वारा द्रवीभूत करै ॥ २९ ॥

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः ॥
क्काथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥ ३० ॥

भा० टी०–सोंठ, गिलोय, मोथा, चन्दन, उशीर, धनियां इन करके सिद्ध कियाहुआ क्काथ–शकर और मधुके साथ उपयुक्त कियेजानेसे त्र्याहिक ज्वरको हरताहै ॥ ३० ॥

अपामार्गजटां कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः ॥
बद्ध्वा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०–रविवारमें रक्तवर्णवाले सात सूत्रोंसे अपामार्गकी जडको कटिदेश (कमर) में बांधनेसे त्र्याहिकज्वर शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ ३१ ॥

गंगायामुत्तरे कूले ह्यपुत्रस्तापसो मृतः ॥
तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्यैकाहिकज्वरः ॥ ३२ ॥

भा० टी०–गङ्गाके उत्तरी तटपर एक अपुत्र तपस्वी मरगयाथा उसके लिये तिलाञ्जलि देनेसे ऐकाहिक ज्वर छूटजाताहै ॥ ३२ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च ॥
वाराणस्याञ्च यद्वृत्तं तन्न स्मरसि रे ज्वर !॥ ३३ ॥
एतेन मन्त्रेणाऽश्वत्थपत्रं हस्ते समर्पयेत् ॥

भा० टी०–अरे ज्वर ! अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग तथा सौराष्ट्र, मगधदेशोंमें, एवं वाराणसीमें जो बात हुई थी क्या उसको भूलगयाहै इसमन्त्रसे पीपलके पत्तेको रोगीके हाथमें अर्पण करे ॥ ३३ ॥

वानरस्य मुखं दिव्यं सूर्य्यरश्मिसमप्रभम् ॥
ज्वरमैकाहिकं घोरं स्मरणादेव नाशयेत् ॥ ३४ ॥

भा० टी०–सूर्य्यकिरणके समान अरुणछविसम्पन्न; वानरके दिव्य मुखको स्मरण करनेहीसे घोर ऐकाहिक ज्वरको नष्ट करे ॥ ३४ ॥

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः ॥
सितामधुयुतः क्वाथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ ३५ ॥

भा० टी०–वाँसा, आंवला, शालपर्णी, कटहलदी, हरड, सोंठ इनकरके सिद्धकियाहुआ शक्कर और मधुके साथ सेवन कियेजानेसे चातुर्थिक ज्वरको दूर करता है ॥ ३५ ॥

अगस्तिपत्रस्य रसेन नस्यं निहन्ति चातुर्थिकमुग्रवीर्य्यम् ॥
अत्यन्तजीर्णेन घृतेन साकं बाह्लीकसंशीलनमप्यवश्यम् ॥ ३६ ॥

भा० टी०–हथियावृक्षके पत्तोंके रससे सिद्ध कियाहुआ नस्य बडे उत्कट चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है एवं अतिप्राचीन घृतके साथ हींगको सेवन करनेसे भी चातुर्थिक ज्वर दूर होताहै ॥ ३६ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्तः ॥
विमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण वातामयैश्चाऽपि सुघोररूपैः ॥ ३७ ॥

भा० टी०-जो मनुष्य विषम ज्वरसे पीडित हो, वह यदि लशुनके छिलकेको तिलोंके तेलमें मिलाकर नित्य सेवन करे तो अवश्य विषमज्वर वा भयङ्कर वातरोगोंसे मुक्त होता है॥३७॥

पलंकषा निम्बपत्रं वचा कुष्टं हरीतकी ॥
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ ३८ ॥

भा० टी०-गोगल, नीमके पत्ते, वचा, कूडा, हरड, सरसों, जव, घी इनकरके सिद्ध-कियाहुआ धूप भी विषम ज्वरको नष्ट करता है ॥ ३८ ॥

वैडालं वा शकृद्योज्यं वेपमानस्य धूपने ॥
पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः ॥
भूतज्वरेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्योऽपराजितः ॥ ३९ ॥

भा० टी०-अथवा ज्वरसे कांपतेहुए मनुष्यको धूप देनेकी विधिमें नागरमोथा, गन्धेजतृण, वचा, सालकी राल, नीम, अर्क, अगुरु, देवदार इनकरके युक्त बिल्लीकी विष्टाका प्रयोग करना। भूतके समावेशसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंमें प्रायः लशुनिया घासकी धूप प्रयुक्त करनी उचित है ॥ ३९ ॥

अजाग्रचर्मरोमाणि वचाकुष्ठपलङ्कषम् ॥
निम्बपत्राणि समधु धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ ४० ॥

भा० टी०-बकरीके चमडा और बाल, वचा, कूडा, गोगल, नीमके पत्ते, इनकरके सिद्धकियाहुआ मधुमिश्रित धूप ज्वरनाशक होता है ॥ ४० ॥

ॐ रूँ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्योऽथ सर्वतः ॥ सर्वेभ्यो नमस्तेभ्योऽस्तु रुद्ररूपेभ्यो हुँ नमः॥ ॐ वज्रहस्तो महाकायश्चतुर्भुज-महेश्वरः ॥ हतोऽसि वज्रतुण्डेन भूमौ गच्छ महाज्वर ॥ ४१ ॥ ॐ ठः ठः ठः सः सः हुं हः-इत्येतानि मन्त्रपदानिभूर्जपत्रे लिखित्वा बन्धनीयानि विषमार्तस्य दक्षिणभुजे ॥ ४२ ॥

भा० टी०-इन पूर्वोक्त मन्त्रपदोंको भूर्जपत्रमें लिखकर विषमज्वरसे पीडित हुए मनुष्यके दक्षिणभुजामें बांधदेवे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

ॐ हूँ हूँ हूँ विकृतानन ! अमुकस्य ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं ज्वरं नाशय २ इति च पत्रे लिखित्वा बन्धनीयम्॥४३॥

भा० टी०-इस मन्त्रपदको भी पत्रमें लिखकर रोगीपर बांधदेवे ॥ ४३ ॥

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ॥
पूजयेत्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ४४ ॥

भा० टी०–अनुचर गणों सहित सोमदेव और मातृमण्डलसहित सदाशिवकी पूजा करनेसेभी मनुष्य शीघ्रही विषमज्वरसे मुक्त होता है ॥ ४४ ॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं भुवः ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ ४५ ॥

भा० टी०–अथवा हजारों शिरवाले विष्णुभगवान् जो चराचर संसारके स्वामी हैं सहस्रनामसे उनकी स्तुति करताहुआ मनुष्य सम्पूर्ण ज्वरोंको दूर करसकता है ॥ ४५ ॥

मूलं भूमिजयन्त्या वा सहदेवोद्भवं तथा ॥
तण्डुलीयकमूलं वा बद्धं मूर्ध्नि ज्वरापहम् ॥ ४६ ॥

भा० टी०–भुंईजैत, वा खिरैंटी, वा चौलाई इनकी जडको शिरपर बांधनेसे भी ज्वर नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

मधुना वाऽभया लीढा हन्त्याशु विषमज्वरम् ॥
शुण्ठीप्रयोगः सुमहांस्तद्वदन्नजलाशने ॥ ४७ ॥

भा० टी०–अथवा मधुके साथ सेवन की जातीहुई हरीतकी भी शीघ्रही विषमज्वरको नष्ट करती है, एवं भोजन और जलपानके समयमें सोंठका उपयोग भी ज्वरनाशक जानिये ॥ ४७ ॥

ज्वरवेगं च कालञ्च चिन्तयञ्ज्वर्य्यते तु यः ॥
तस्येष्टैरद्भुतैर्वाक्यैर्विषयैर्नाशयेत्स्मृतिम् ॥ ४८ ॥

भा० टी०--जो मनुष्य ज्वर आनेके समयमें ज्वरके वेग तथा कालको चिन्तन करताहुआ अत्यन्त सन्तप्त होवे, विचित्र और अभीष्ट वाक्योंके द्वारा उसके उस भावको दूर करै ॥ ४८ ॥

अथ पिप्पल्याद्यं घृतम् ।

घृतं द्वादशरात्रञ्च देयं क्षीणकफज्वरे ॥ पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ॥ ४९ ॥ कलिङ्गास्तमती धात्री सारिवाऽतिविषा स्थिरा ॥ द्राक्षाऽऽमलकबिल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका ॥५०॥ सिद्धमेतद् घृतं सद्यो ज्वरं सर्वं व्यपोहति ॥५१॥

भा० टी०–क्षीण कफवाले ज्वरमें बारहरात्रिपर्यन्त निम्नलिखित घृत देवे । पिप्पली चन्दन, मोथा, उशीर, कटुकी, इन्द्रयव, शालपर्णी, आंवला, कालीसर, अतीस, काकोल,

दाख, कर्करा, बेल, त्रायमाण, कटेरी इतनी वस्तुओंसे सिद्ध किया हुआ घृत सब प्रकारके ज्वरको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

क्षयं कासं शिरःशूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥
अंगाभितापमग्निञ्च विषमं सन्नियच्छति ॥ ५२ ॥

भा० टी०–इसके अतिरिक्त यह घृत क्षयरोग, कास, मस्तकशूल, पशलीशूल, अरुचि, समस्त शरीरमें जलन और दाह तथा विषमज्वर इन सब उपद्रवोंका दमन करता है ॥ ५२ ॥

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काथश्चतुर्गुणः ॥
काथाच्चतुर्गुणं वारि घृतसिद्धौ प्रदीयते ॥ ५३ ॥

भा० टी०–घृतसाधन विधिमें कल्क (औषधिपिष्ट) से चौगुना स्नेह, स्नेहसे चौगुना काथ और काथसे चौगुना जल दिया जाता है ॥ ५३ ॥

मृदौ चतुर्गुणं दद्यात्कठिनेऽष्टगुणं तथा ॥
कठिनात्कठिनं यच्च देयं षोडशिकं जलम् ॥ ५४ ॥

भा० टी०–मृदुविधिमें चौगुना जल और तीक्ष्णविधिमें अठगुणा जल, तथा तीक्ष्णसे तीक्ष्णविधिमें सोलहगुना जल देना उचित है ॥ ५४ ॥

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरैः पंचकोलकैः ॥
सक्षारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०–दशमूलीके रसमें घी, दूध, क्षार, (जवाखार, सज्जीखार, सुहागा) तथा पिप्पली आदि पञ्चकोल इनसे सिद्ध किया हुआ घृत ज्वर, कास, और अग्निमान्द्यको नष्ट करता है ॥ ५५ ॥ इति दशमूलीघृतम् ॥

वातपित्तकफव्याधीन्प्लीहानं चाऽपि पाण्डुताम् ॥
निहन्ति बलमंगेषु कान्तिरारोग्यमेधते ॥ ५६ ॥

भा० टी०–यह घृत वात, पित्त, कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग इन सब उपद्रवोंको नाश करता है । अतएव प्रत्यङ्गमें बल कांति आरोग्य बढते रहते हैं ॥ ५६ ॥

पुनरपि मन्त्रादयः प्रोच्यन्ते ।

"ॐ नारदग्रामान्नारदपत्तनान्नारदो भिक्षुर्नारदगुहायां सर्वज्वरान् समादिशति, वातिकपैत्तिकश्लेष्मिकसान्निपातिकैकाहिकद्व्याहिक-त्र्याहिकचातुर्थिकज्वरान्समादिशति । लेखदर्शनाद् भवद्भिरमुकशरीरे

क्षणमपि न स्थातव्यम् ॐ सः ॐ ठः स्वविषयेस्वाहा—" इत्येतद्
भूर्जपत्रे कांस्यपात्रे वा लिखित्वा दर्शयेत् ॥ ५७ ॥

भा० टी०- " " इस चिह्नके अन्तर्गत मन्त्रको भुजपत्र वा कांसेके पात्रमें लिखकर रोगीको दिखावे ॥ ५७ ॥

श्वेतकरवीरमूलं हस्ते बद्ध्वा ज्वरचतुष्टयादपि मुक्तो भवति ॥५८॥

भा० टी०-श्वेत कनेरकी जडको हाथमें बांधनेसे भी ऐकाहिक आदि चतुर्विध ज्वरोंसे छूट जाता है ॥ ५८ ॥

छुछुन्दरीचूर्णशिवनिर्माल्यकाकजङ्घामलमहिषीनवनीतैर्धूपनविधि-
नाऽपि ऐकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिकार्द्धमासिकनिरन्तरानुयो-
गिनश्चैते सर्व एव ज्वरा नश्यन्ति ॥ ५९ ॥

भा० टी०-छुछुन्दरीचूर्ण, शिवजी पर चढा हुआ पदार्थ, घुंघुची (मसी) की जड, तथा भैसका माखन इन करके धूप करनेसे भी ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, अध-मासी तथा निरन्तर रहनेवाला ज्वर यह सब नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

घृततैलगुडादींश्चाऽनेकाहानवसाधयेत् ॥
उषितास्ते प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान्बहून् ॥ ६० ॥

भा० टी०-घी, तैल, गुड प्रभृति पदार्थोंको अनेक दिनपर्यन्त सिद्ध करते रहै क्योंकि बहुतकालका घी, तैल वा गुड अधिक गुणकारी होता है ॥ ६० ॥

अथ कल्याणघृतम् ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्व्येलवालुकम् ॥ स्थिरानतं हरिद्रे
द्वे सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥ ६१ ॥ नीलोत्पलैलामंजिष्टा दन्ती-
दाडिमकेशरम् ॥ विडंगं पृश्निपर्णी च कुष्ठचन्दनपद्मकम् ॥६२॥
तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ अष्टाविंशतिभिः
कल्कैरेतैः कर्षसमन्वितैः ॥ ६३ ॥

भा० टी०-इन्द्रायण, त्रिफला, कौन्ती (गन्धद्रव्यविशेष-रेणुका), देवदार, एलुवा, शालपर्णी, तगरमूल, हलदी-दारुहलदी, दोनों सारिवा (गौरी आसाऊं-करिया वासाऊ) प्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मंजीठ, दन्ती, अनार, केशर, वायविडंग, पिठवन, कूडा, चन्दन, पद्माख, तालीसपत्र, कंटकारी और मालतीलताका नवीन पुष्प इन २८ वस्तुओंको शिलामें पीसकर सिद्ध कियेहुए कल्क द्वारा-॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

चतुर्गुणजलं दत्त्वा घृतप्रस्थं प्रपाचयेत् ॥ अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ ६४ ॥ अत्युत्कटे प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ॥ छर्द्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेषु विसर्पेषूल्वणेषु च ॥ ६५ ॥ कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगरेषु च ॥ भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम्॥ ॥ ६६ ॥ शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ॥ ६७ ॥

भा० टी०–चौगुना जल देकर प्रस्थप्रमाण घृत पकावे, तब कल्याण घृत सिद्ध होता-है, यह घृत मृगी, ज्वर, कास, शोष (खुशकी), मन्दाग्नि, क्षयीरोग, पीनसरोग, त्र्याहिक चातुर्थिक ज्वर, छर्दि, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग, दाद, खुजली, पांडुरोग, उन्माद, विष, प्रमेह इन सब उपद्रवोंमें गुणकारी होता है। एवं जिनका चित्त भूतज्वरसे व्याकुल और शून्य होगया हो उन मनुष्योंके और बांझ स्त्रियोंके भी उपयोगी है किं बहुना आयु बलको देनेवाला यह घृत धन्य है॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ६८ ॥

भा० टी०–दुःख, दारिद्र्य, पाप, राक्षसोंका नाशकरनेवाला सब ग्रहोंकी बाधाको दूर-करनेवाला यह कल्याणघृत पुंसवनविधिमें भी श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥ इति कल्याणघृतम् ॥

अथ बृहत्कल्याणघृतम्।

एतेषां हि स्थिरादीनां जले पक्त्वैकविंशतिम्॥ रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६९ । वीरा द्विमाषकाकोलीस्वयंगुप्ताः सऋद्धयः। मेदया च समैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत् ॥७०॥ बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ७१ ॥

भा० टी०–पूर्वोक्त २८ वस्तुओंमेंसे शालपर्णीसे लेकर २१ वस्तुओंको जलमें पकानेसे जो रस उत्पन्न हो उस रसमें घी और एकवारकी ब्याई गायका दूध चौगुणा करके पकावे साथ फिर उसमें दो २ माषाभर काकोली, किंवाच, ऋद्धिनामक औषधी, मेदा, महामेदा इनके सम-भाग कल्कको पकानेसे बृहत्कल्याणकनाम घृत होताहै । यह घृत प्रायः वीर्यवर्द्धक और सन्नि-पातको अत्यन्त नाश करताहै ॥ ६० ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः ॥
तैलं पचेत् षड्गुणतक्रसिद्धमभ्यङ्गतः शीतविदाहनुत्स्यात्॥ ७२॥

भा० टी०-सज्जीखार, नागरमोथा, कूडा, मरोरफली, लाख, दारुहलदी, मंजीठ इनके साथ छःगुनी छांछमें सिद्ध कियेहुए तैलको पकावे, सिद्ध होनेपर अभ्यङ्ग करनेसे वह शीत और विदाहको दूरकरताहै ॥ ७२ ॥ ॥ इति षट्तक्रतैलम् ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमं तैलं तैलाच्चाम्बु चतुर्गुणम् ॥ रास्नाचन्दनकृष्णाब्द-वाजिगन्धानिशायुतैः ॥ ७३ ॥ शताह्वदारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरे-णुभिः ॥ बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्द्धनम् ॥ ७४ ॥

भा० टी०-लाखका रस और तैल दोनोंका समान भाग, तैलसे चौगुना जल, एवं रासन, चन्दन, राई, मोथा, असगन्ध, हलदी, ॥ ७३ ॥ सौंफ, शतावरी, देवदार, मुलहटी, मरोरफली, मुशकदाना, रेणुका इनके कल्ककरके सिद्धकियाहुआ तैल बालकोंकी भूतपिशाचबाधा और ज्वरको नष्ट करताहै एवं अभ्यङ्ग करनेसे बल बढाताहै ॥ ७४ ॥

स्नेहकल्को यदाऽङ्गुल्यावर्तितोऽवर्तितो भवेत ॥
वह्नौ क्षिते च नो शब्दस्तदा सिद्धं विनिर्दिशेत् ॥ ७५ ॥

भा० टी०-स्नेहकल्क अंगुलीसे आवर्तन कियेजानेपरभी अनावर्तितके समान होरहै एवं अग्निमें डालनेसे शब्द न करै तो तैलको सिद्धहुआ जानै ॥ ७५ ॥

शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा ॥
गन्धे वर्णे रसादीनां निष्पन्ने सिद्धिमादिशेत् ॥ ७६ ॥

भा० टी०-जब शब्द और फेन शान्त होजाय और रसादिकोंका गन्ध तथा वर्ण दूसरे रूपमें होकर सम्पन्न होजाय तब जानलेवे कि, यह तेल सिद्ध होगया ॥ ७६ ॥

घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात्कुशलो भिषक् ॥
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं तत्तुल्यलक्षणम् ॥ ७७ ॥

भा० टी०-इसीप्रकारसे चतुर वैद्य घृतपाककोभी जानै, तेलमें केवल फेन अधिक रहताहै, शेषलक्षणोंका विचार दोनोंमें समान है ॥ ७७ ॥

चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकृतिकीर्तितम् ॥
तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम ॥ ७८ ॥

भा० टी०-शोषाधिकारमें कहाहुआ चन्दनादितैल शोष आदिमें हितकारी है। एवं जीर्णज्वरके हरनेमें नारायणतैल श्रेष्ठ है ॥ ७८ ॥

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ॥ स्वेदक्षयः प्रकृतिगात्रमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ७९

भा० टी०–शरीरका हलका होना, शरीरसे ग्लानि, मोह, और तापका दूर होना, मुखमें पाक, इन्द्रियोंमें प्रसन्नता, किसीप्रकारकी व्यथा नहोना, स्वेदकी शान्ति, प्रकृति, शरीर और मनके लिये अन्नकी रुचि, शिर खुजलाना इतने लक्षण ज्वर दूरहोनेके हैं ॥ ७९ ॥

व्यायामं च व्यवायश्च स्नानं कदशनानि च ॥
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान्भवेत् ॥ ८० ॥

भा० टी०–ज्वरमुक्त मनुष्य जबतक बलिष्ठ होताहै तबतक व्यायाम (कसरत), मैथुन, स्नान, और निर्मर्याद, व अपथ्य भोजनका सेवन न करै ॥ ८० ॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंसदामोदरसूनुसदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे जीर्णज्वराधिकारः ॥ ४ ॥

अथ ज्वरातिसाराधिकारः ५.

ज्वरातिसारचिकित्सा।

अथ गुप्तो निदानेन ज्वरातीसारनिर्णयः ॥
कर्तव्यो भिषजा चाऽत्र तत्क्रमेण विधिर्यतः ॥ १ ॥

भा० टी०–ज्वरातिसारका निर्णय निदानके द्वारा प्रायः प्रकट नहीं होसकता, इधर वैद्यको निदानके ही अनुसार रोगचिकित्सा करनी होतीहै, अतः ज्वरातिसार अति विषम रोग है ॥ १ ॥

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं च पृथक्पृथक् ॥
न तन्मिलितयोः कार्य्यमन्योन्यं बर्द्धते यतः ॥ २ ॥

भा० टी०–ज्वर और अतिसारकी चिकित्सा भिन्न २ प्रकारसे कही है परन्तु उन दोनोंके परस्पर संबंध होनेपर भिन्न २ प्रकारसे चिकित्सा करनी उचित नहीं है अन्यथा वे परस्पर वृद्धिंगत होतेहैं अर्थात् केवल ज्वरकी चिकित्सा करनेसे अतिसारकी वृद्धि और अतिसारकी चिकित्सा करनेसे ज्वरकी वृद्धि होतीहै ॥ २ ॥

अतस्तौ प्रतिकर्तव्यौ विशेषोदितभेषजैः ॥
रूक्षैरम्लैश्च मृदुभिः क्षारैः सिद्धैरुपाचरेत् ॥ ३ ॥

भा० टी०–अतः सविशेष प्रयोगोंके द्वारा ज्वर, अतिसारका प्रतिकार करना योग्य है, चणकआदि रूक्ष वस्तु, तक्र आदि अम्ल वस्तु, आरारोटप्रभृति मृदु वस्तु, जवाखार प्रभृति सिद्ध क्षार इनके द्वारा ज्वरातिसारमें उपचार करै ॥ ३ ॥

उत्पलषट्कं सिद्धं लाजामण्डादिकं सकलम् ॥
लंघनमुभयोरुक्तं प्राङ्मिलिते कार्य्यगौरवान्मुनिभिः ॥ ४ ॥

भा० टी०-ज्वर, अतिसार, दोनोंके सम्बन्धमें मुनियोंने कार्य्यविशेषकी सम्भावनासे प्रथम लंघन कहा है, पींछे वक्ष्यमाण उत्पलआदि छः वस्तुओंसे सिद्ध कीहुई पेया, तथा लाजा और मण्डप्रभृति सब पथ्य हित हैं ॥ ४ ॥

सोत्पलं पृश्निपर्णीबलाबिल्वधान्याकशुण्ठीकमेतत्कृताम् ॥
ज्वरे सातिसारे पिबेत्पेयिकामम्लनिर्गीर्णनीरं तथा साधितम् ॥५॥

भा० टी०--नीलकमल, पिठवन, खिरैंटी, बेल, धनियां, सोंठ इनकरके सिद्ध कीहुई पेया वा सिद्ध कियेहुए अम्ल (छांछप्रभृति खट्टा) रसको अतिसारयुक्त ज्वरमें पान करे॥ इति उत्पलादिषट्कम् ॥ ५ ॥

अथ नागरादिः ।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सजैः ॥
सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ६ ॥

भा० टी०--सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, गिलोय, इन्द्रजौ, इनसे सिद्धकियाहुआ क्वाथ सबप्रकारके ज्वर और अतिसारको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

अथ पाठेन्द्रादिः ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकामृतम् ॥
जयत्याममतीसारं ज्वरं च समहौषधम् ॥ ७ ॥

भा० टी०-पाठा, इन्द्रजौ, चिरायता, मोथा, पित्तपापडा, गिलोय यह सब सोंठके साथ सेवन कियेजानेसे आम अतिसार और आमज्वरको जीतते हैं ॥ ७ ॥

अथ ह्रीवेरादिः ।

ह्रीवेरातिविषामुस्तबिल्वनागरधान्यकम् ॥
पिबेत्पिच्छां विबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ॥ ८ ॥

भा० टी०-सुगन्धवाला, अतीस, मोथा, बेल, सोंठ, धनियां इनकरके सिद्धकियाहुआ रस पीवे और पथ्यमें भातसहित मांड खावे क्योंकि, इस प्रयोगसे अफारा, शूलदोष नष्ट होता और आमका पाक होता है ॥ ८ ॥

सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाऽथ विज्वरम् ॥ ९ ॥

भा० टी०--एवं रुधिरसहित अतिसार ज्वरयुक्त वा ज्वररहित कैसेही हो उसको भी नष्ट करता है ॥ ९ ॥

अथ गुडूच्यादिः ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वादिवालकैः ॥ पाठाभूनिम्बकुटजैश्च-

न्दनोशीरपद्मकैः ॥ १० ॥ कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशा-
न्तये ॥ हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ ११ ॥

भा० टी०-गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्वादिगण, सुगन्धवाला, पाठा, चिरायता, कूडा, चन्दन, खश, पद्माख ॥ १० ॥ इनकरके सिद्धकियाहुआ कषाय शीतल होता है और हृल्लास (उबकाई), अरुचि, छर्दि, प्यास, दाह इन सब उपद्रवोंको नष्ट करता है, अतः यह ज्वरातिसारकी शान्तिके लिये भी पान करनेयोग्य है ॥ ११ ॥

अथ कलिङ्गादिः।

कलिंगातिविषाशुण्ठीकिराताम्बुयवासकैः ॥
ज्वरातिसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः ॥ १२ ॥

भा० टी०--इन्द्रजौ, अतीस, सोंठ, चिरायता, चकवड, वांसा इनकरके सिद्धकियाहुआ कषाय निःसन्देह ज्वरातिसारके तापको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अथ वत्सकादिः।

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली ॥ श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ १३ ॥ दापयेतौ सिद्धयोगौ अर्द्धार्द्धे-नाऽभिभाषितौ ॥ ज्वरातीसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनौ ॥ १४ ॥

भा० टी०—कूडेका फल, दारुहलदी, कटुकी, गजपीपल (१), गोखरु, पिपली, धनियां, बेल, पाठा, अजवायन (२) यह दो सिद्धयोगनामक रस जिनको श्लोकके पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्धमें क्रमशः वर्णित किया है ज्वरातिसारको शान्त करनेवाले और विशेषकर दाहके नाशक हैं ॥ १३॥१४ ॥

अथ पञ्चमूल्यादिः।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ॥ पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटज-त्वक्फलैः शृतम् ॥१५॥ हन्ति सर्वानतीसाराञ्ज्वरदोषं वमीं तथा॥ सशूलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात्सुदारुणम् ॥ १६ ॥ पञ्चमूलीति सामान्याद्योज्या पित्ते कनीयसी ॥ महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मा-धिके तथा ॥ १७ ॥

भा० टी०—पञ्चमूल, खिरैंटी, बेल, गिलोय, मोथा, सोंठ, पाठा, चिरायता, सुगन्धवाला, कूडाकी त्वचा और फल इनसे कढाहुआ रस ॥ १५ ॥ सब प्रकारके अतिसार, ज्वर, छर्दि, शूलका उपद्रव, श्वास तथा दारुण कास इन सब रोगोंको नष्ट करता है । परन्तु पञ्चमूलके विषयमें यह निर्णय है कि, पित्तके अधिक सम्बन्धमें लघुपञ्चमूल, वातकफके अधिक सम्बन्धमें बृहत्पञ्चमूलका प्रयोग करना योग्य है॥ १६ ॥ १७ ॥

पुनरप्युत्पलादिविशेषः ।

उत्पलं दाडिमत्वक्च पद्मकेशरमेव च ॥
पिबेत्तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारशान्तये ॥ १८ ॥

भा० टी०-नीलकमल, अनारका वक्कल, कमलकी केशर इतनी वस्तुओंके रसको चावलोंके जलके साथ ज्वरातिसारकी शांतिके लिये पान करै ॥ १८ ॥

अथोशीरादिः ।

उशीरं बालकं मुस्तं धान्यकं बिल्वमेव च ॥ समङ्गा धातकी लोध्रं विश्वं दीपनपाचनम् ॥ १९ ॥ हन्त्यरोचकमप्यामं विबन्धं सातिवेदनम् ॥ सशोणितमतीसारं सज्वरं वाऽथ विज्वरम् ॥ २० ॥

भा० टी०-खश, सुगन्धवाला, मोथा, धनियां, बेल, खिरैटी, धावडेके फूल, लोध, सोंठ इनसे सिद्ध कियाहुआ औषध अग्निवर्द्धक और पाचक होता है तथा अरुचि, आमदोष, पेटका अफरना वा मलरोध, शूल, सज्वर वा ज्वरहीन रक्तातिसार इन सब उपद्रवोंको नष्ट करता है॥१९॥२०॥

अथ दशमूलम् ।

दशमूलीकषायेन विश्वमक्षसमं पिबेत् ॥
ज्वरे चैवाऽतिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ २१ ॥

भा० टी०-ज्वर, अतिसार, शोथ और संग्रहणी रोगमें दशमूलके कषायके साथ दो दो तोले सोंठका सेवन करते रहै ॥ २१ ॥

अथ विडङ्गादिः ।

विडंगातिविषा मुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम् ॥
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ २२ ॥

भा० टी०-वायविडंग, अतीस, मोथा, दारुहलदी, पाठा, इन्द्रयव इनका कषाय कालीमिरचके साथ सेवन किये जानेसे शोथयुक्त अतिसारको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

पुनरपि गुडूच्यादिविशेषः ।

गुडूचीचिरबिल्वाब्दरक्तचन्दनबालकैः ॥
कलिङ्गकसमायुक्तं ज्वरातीसारशोथनुत् ॥ २३ ॥

भा० टी०-गिलोय, करञ्ज, मोथा, लालचन्दन, सुगन्धवाला, इन करके सिद्ध किया हुआ कषाय कूडाके साथ सेवन किये जानेसे ज्वरातिसार और सोजिशको दूर करता है ॥ २३ ॥

अथ किरातादिः ।

किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः ॥
शोथातीसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ २४ ॥

भा०टी०-चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ, सुगन्धवाला, कूडा इन करके सिद्ध किया हुआ रस शोथ, अतिसारको शान्त करनेवाला और विशेषकर ज्वरनाशक है ॥ २४ ॥

मुक्त्वैकं लंघनं लोके नाऽन्यदस्तीह भेषजम् ॥
समुदीर्णं दोषचयं पाचयेच्छमयेदपि ॥ २५ ॥

भा० टी०—संसारमें एकमात्र लंघनको छोडकर दूसरी औषधि नहीं है क्योंकि लंघनविधि उभडे हुए दोषसमूहको परिपक्व बनाकर शान्त करता है ॥ २५ ॥

योऽतिद्रवपुरीषेण प्रभूतमतिसार्य्यते ॥
मासूरकेण यूषेण पथ्यं स्याल्लाजसक्तुभिः ॥ २६ ॥

भा० टी०—जो मनुष्य अत्यन्त पिघलते हुए मलसे अधिक अतिसारित कियाजारहाहो उसके लिये लाजाके सत्तू और मसूरका यूष पथ्य है ॥ २६ ॥

अथ बृहच्छालपर्ण्यादिः।

शालपर्णी पृथक्पर्णी बृहती कण्टकारिका ॥
बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥
एतदाहू रसं योगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ २७ ॥

भा० टी०—शालवन, पिठवन, कण्टाई, कण्टकारी, खिरैंटी, गोखुरू, वेल, पाठा, सोंठ, धनियां इनका सिद्ध रस सब प्रकारके अतिसारवालोंका हितकारक कहा है ॥ २७ ॥

अथ लघुशालपर्ण्यादिः।

शालपर्णीबलाबिल्वैः पृथक्पर्ण्या च साधिता ॥
दाडिमाम्ला हिता पेया पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २८ ॥

भा० टी०—शालवन, खिरैंटी, वेल, पिठवन, अनार इन करके सिद्ध कीहुई पेया पित्त और कफसे उपजे हुए अतिसारवालोंके लिये हित है ॥ २८ ॥

धान्यपञ्चकसिद्धो वा धान्यविश्वकृतोऽथ वा।
आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २९ ॥

भा० टी०—वात, कफसे उपजे अतिसारवालोंके लिये वैद्यने धान्यपञ्चक, वा धनियां और सोंठसे सिद्ध किया हुआ आहार देना चाहिये ॥ २९ ॥

लघुना पञ्चमूलेन वातपित्ते प्रशस्यते ॥ बुद्ध्या सर्वातिसारश्च ज्ञेयः पक्वामलक्षणैः ॥ ३० ॥ मज्जत्याऽऽमो गुरुत्वाद्धि पक्वा तूत्प्लवते ध्रुवम् ॥ नाऽऽमे संग्रहणं दद्यादतीसारे कथंचन ॥ ३१ ॥

भा० टी०–लघुपञ्चमूलसे सिद्ध किया हुआ रस वातपित्तसे उपजे अतिसारमें गुणकारी कहा है, परन्तु बुद्धिविचारके द्वारा प्रथम पक्क, आमके लक्षणोंसे सर्वप्रकारके अतिसारका मर्म विचारै ॥ ३० ॥ क्योंकि आमातिसार गरिष्ठ होनेसे गहरे डूब जाता और पकनेसे ऊपर उभड आता है । अतः आमातिसारमें बन्ध करनेवाले औषधको कभी न देवे ॥ ३१ ॥

अकाले संगृहीतो हि विकारान्कुरुते बहून् ॥
शोथपाण्डामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ ३२ ॥

भा० टी०–असमय (आमदशा) में बन्ध कियाहुआ अतिसार शोजा, पाण्डुरोग, फीहा, कोढ, गुल्मरोग, उदररोग तथा ज्वर इत्यादि २ अनेक विकारोंको करता है ॥ ३२ ॥

दण्डकालशकाध्मानग्रहण्यर्शोगदाँस्तथा ॥
अकालनिगृहीतोऽयमतिसारः प्रसारयेत् ॥ ३३ ॥

भा० टी०–आमदशामें निग्रहकियाहुआ अतिसार यकृत्रोग, वायुविकारसे पेटका अफरना, ग्रहणी, बवासीर इन रोगोंको विस्तारित करता है ॥ ३३ ॥

क्षीणधातुबलार्तस्य बहुदोषोऽतिनिःस्रुतः ॥
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

भा० टी०–अतिसारकी आमदशाहीमें जिस रोगीके धातु और बल अत्यन्त क्षीण होगये हों, उसके दोषभरे अतिद्रव हुए आमातिसारको भी बन्ध करलेवे, अन्यथा पक्क होनेकी अवधिपर्य्यन्त रोगी मरजायगा ॥ ३४ ॥

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्य्यते ॥
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैः संविरेचयेत् ॥ ३५ ॥

भा० टी०–जो मनुष्य थोडा २ वा अधिक २ शूलसहित अतिसारित होरहाहो उसको हरड, पिप्पलीके मन्दोष्ण कल्कके द्वारा विरेचन देवे ॥ ३५ ॥

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेदामेषु बुद्धिमान् ॥
पिबेद्यूषान्यवागूश्च पिप्पल्यादिविमिश्रितान् ॥ ३६ ॥

भा० टी०–अथवा बुद्धिमान्को उचित है कि, आमातिसारोंमें हरिद्रादिगण, वा वचादिगण, वा पिप्पलीआदिसे युक्त कीहुई यवागू और यूषोंको पान करे ॥ ३६ ॥

धान्यं नागरमुस्तं च वालकं बिल्वमेव च ॥
आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥ ३७ ॥

भा० टी०–धनियां, सोंठ, मोथा, सुगन्धवाला, बेल इनकरके सिद्धकियाहुआ क्काथ अग्निवर्द्धक एवं आमातिसार, शूल तथा विबन्धको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥ इति धान्यपञ्चकम् ॥

पैत्ते धान्यचतुष्कं तु शुण्ठीं त्यक्त्वा हितं मतम् ॥
एतद्धि मन्यते सद्भिश्चरके नागरादि तत् ॥ ३८ ॥

भा० टी०–पित्तसे उपजे अतिसारमें सोंठको छोडकर धनियांप्रभृति चार वस्तु हित मानीगईहैं, चरकसंहितामें सोंठआदि चार वस्तुओंको हित माना है ॥ ३८ ॥

पक्वोऽसकृदतीसारो ग्रहणीमार्दवं यदा ॥
प्रवर्तते तदा कार्य्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ॥ ३९ ॥

भा० टी०–जब अतिसार निरन्तर परिपक्व होतारहै और इधर अग्निकी नाडी भी कोमल होरहै, तब शीघ्रही बन्ध करनेका विधान करना उचित है ॥ ३९ ॥

पञ्चमूलीबलाविश्वधान्यकोत्पलविल्वजाः ॥
वातातिसारिणो देयास्तक्रेणाऽन्यतमेन वा ॥ ४० ॥

भा० टी०–वातसे उपजे अतिसारवालेको पञ्चमूल, खिरैंटी, सोंठ, धनियां, नीलकमल, बेलके फल इतनी वस्तु, छाछ वा किसी अन्यवस्तुके साथ देने योग्य हैं ॥ ४० ॥

अथ कच्चटादिः।

कच्चटजन्तूदाडिमश्रृंगाटकपत्रविल्वह्रीवेरम् ॥
जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्धेत् ॥
श्लेष्मातिसारिणो देयो दीपनः सर्वथा गणः ॥ ४१ ॥

भा० टी०–जलचौलाई, उमरि, अनार, सिंघाडे, पत्रज, बेल, सुगन्धवाला, मोथा, सोंठ इतनी वस्तुओंको दीपनसमुदाय, धाराप्रवाहिनी गंगाको भी रोक देता है, अतिसार क्या वस्तु है? किन्तु यह ध्यान रहै कि, उक्त समुदाय सर्वथा कफसे उपजे अतिसारवालेको देना उचित है ॥ ४१ ॥

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ॥
पिबेत्पित्तातिसारघ्नं सक्षौद्रं वेदनापहम् ॥ ४२ ॥

भा० टी०–चिरायता, मोथा, कूडा, रसोत यह समुदाय मधुके साथ पित्तसे उपजे अतिसार और वेदनाको नष्ट करता है, अतः पित्तातिसारी जन इसका सेवन करें ॥ ४२ ॥

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा जलं पिबेत् ॥
अतिसारं जयेच्छीघ्रं पैत्तं च जठरामयम् ॥ ४३ ॥

भा० टी०–अथवा पलभर कूडाके बीजके काढेहुए जलको पानकरे, क्योंकि वह पित्तसे उपजेहुए अतिसार और अन्यान्य उदरविकारको भी जीतता है ॥ ४३ ॥

कुटजातिविषा मुस्तं हरिद्रे पर्णिनीद्वयम् ॥
सक्षौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ४४ ॥

भा० टी०–पित्त और कफसे उत्पन्न हुए अतिसारवालोंके लिये मधु और शक्करसहित कूडा, अतीस, मोथा, दोनों हलदी, दोनों पर्णी (मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अर्थात् मुगवन, मषवन) यह समुदाय गुणकारी है ॥ ४४ ॥

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्वथयित्वा जलं पिबेत् ॥
अतिसारं जयत्याशु शर्करामधुयोजितम् ॥ ४५ ॥

भा० टी०–कूडेका वक्कल और फल, एवं मोथा, इनका क्वाथ बनाकर शक्कर और मधुके साथ पान करै, क्योंकि यह क्वाथ शीघ्रही अतिसारको जीतलेता है ॥ ४५ ॥

विल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥
निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ४६ ॥

भा० टी०–बेल और आमकी गुठलीका क्वाथ मधु और शक्करके साथ पान किये जानेसे वमनरूप अतिसारको ऐसे भस्म करता है, जैसे अग्नि आहुतिको ॥ ४६ ॥

प्रियंग्वञ्जनमुस्ताख्यं पाययेत्तु यथाबलम् ॥
तृष्णातिसारच्छर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ ४७ ॥

भा० टी०–प्रियंगु, रसोत, मोथा इनका क्वाथ तृष्णा, अतिसार और छर्दिका नाशक है, अतः चावल धोये जल और मधुके साथ रोगीके बलानुसार पान करावे ॥ ४७ ॥

पटोलयवधान्याकक्वाथः पेयः सुशीतलः ॥
शर्करामधुसंयुक्तच्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ ४८ ॥

भा० टी०–परवल, इन्द्रयव, धनियां इनका क्वाथ शक्कर और मधुके साथ उपयुक्त किये जानेसे शीतल और छर्दि अतिसारका नाशक होता है अतः यह भी पीने योग्य है ॥ ४८ ॥

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लंघनपाचनम् ॥
योज्यश्चाऽऽमातिसारघ्नः प्रागुक्तो दीपनो गणः ॥ ४९ ॥

भा० टी०–कफातिसारमें प्रथम लंघन और पाचन हित होते हैं, अतः कफातिसारके अतिरिक्त आमातिसारमें भी पूर्वोक्त कञ्चटादि दीपनगणका प्रयोग करना योग्य है ॥ ४९ ॥

त्र्यूषणातिविषाहिङ्गुवचासौवर्चलाभयाः ॥
शीतोष्णेनाऽम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम् ॥ ५० ॥

भा० टी०–त्रिकटु, अतीस, हींग, वच, कालानोन, हरड इनका चूर्ण शीतोष्ण जलके साथ उपयुक्त होनेसे उत्कटरूप आमातिसारको नष्ट करता है ॥ ५० ॥

दलोत्थश्च रसः पीत इज्जलस्य समाक्षिकः ॥
जयत्याममतीसारं क्वाथो वा कुटजत्वचः ॥ ५१ ॥

भा० टी०–इजल (समुद्रफली) के दलसे उत्पन्न हुआ रस वा कूडेके वक्कलका क्वाथ मधुके साथ पिये जानेसे आमातिसारको जीतता है ॥ ५१ ॥

दाडिमच्छदशृङ्गाटपाठामूल्याग्निकश्चटैः ॥
पक्कं निशि स्थितं विल्वं खादेद्विश्वगुडान्वितम् ॥ ५२ ॥

भा० टी०–अनारके पत्ते, सिंघाडे, पाठाकी जडमें उपजा कन्द, चीता, जलचौलाई एक रात्रिका पर्युषित पकाहुआ वेल इनके कषायको सोंठ और गुडके साथ खावे ॥ ५२ ॥

दाडिमाद्यमिदं शस्तं हितं पित्तातिसारके ॥
निरुणद्ध्यचिरादेव दुर्वारं ग्रहणीगदम् ॥ ५३ ॥

भा० टी०–पित्तसे उपजे अतिसारमें गुण करनेवाला यह दाडिमादि कषाय किसी प्रकार नहीं हटाये जाने योग्य ग्रहणी रोगको भी शीघ्रही रोक लेता है ॥ ५३ ॥

विल्वं छागीपयःसिद्धं सितामोचरसान्वितम् ॥
कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ५४ ॥

भा० टी०–बकरीके दूधमें सिद्ध किया हुआ एवं शक्कर सेमलके गोंद और इन्द्रयवके चूर्णके साथ मिश्रित किया हुआ बेल, रक्तातिसारको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥

एरण्डपत्रे त्वधियन्त्रशुण्ठ्याः कल्केन सिद्धं पुटपाकयोगात् ॥
क्षौद्रेण लीढं विनिहन्ति शीघ्रमामातिसारारुचिशूलमुग्रम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०–यन्त्रपर जलके साथ पीसी हुई सोंठका गोला, अरण्डीके पत्तेसे लपेटकर बाहरसे मिट्टीका लेप करके मन्द मन्द आंचसे पकाया जाय, शुद्धतापूर्वक सिद्ध होनेपर मधुके साथ चटाये जानेसे यह शुण्ठीपाक शीघ्रही आमातिसार, अरुचि, शूलको नष्ट करता है ॥ ५५ ॥

कपित्थस्य रसः सम्यक्क्षौद्रेण यदि लिह्यते ॥
तथा कट्फलमप्याशु मुक्तः स्यादुदरामयात् ॥ ५६ ॥

भा० टी०–कपित्थ (कवीट वा कैथा) का रस वा कायफल यदि मधुके साथ चटाया जावे तो मनुष्य शीघ्रही पेटके विकारसे मुक्त होता है ॥ ५६ ॥

कणां समध्वीमालिह्य तक्रं पीत्वा सचित्रकम् ॥
भुक्त्वा वा बालविल्वानि व्यपोहेदुदरामयान् ॥ ५७ ॥

भा० टी०—अतिसारी मनुष्यको उचित है कि, पिप्पलीको मधुके साथ चाटकर वा शोधित चीतेके साथ छाछ पीकर वा छोटी बेलकी गिरीको खाकर पेटके रोगोंको दूर करे ॥ ५७ ॥

कुटजत्वक्कृतः क्वाथो घनीभूतः सुशोभनः ॥
लीढो ह्यतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत् ॥ ५८ ॥

भा० टी०—कूडेके बक्कलका गाढा काढा (क्वाथ) अतीसके साथ सेवन किये जानेसे सब प्रकारके अतिसारको दूर करता है ॥ ५८ ॥

लेहे यत्राऽस्ति नो भागो निर्दिष्टो द्रवकल्कयोः ॥
तत्र स्यात्पादिकः कल्को द्रवात्कार्य्यो विजानता ॥ ५९ ॥

भा० टी०—जहां लेहविधिमें रस और कल्क (औषधिपिष्टपदार्थ) के भागका प्रमाण नहीं दिखाया गया वहां बुद्धिमान् वैद्यको रसका चतुर्थांश कल्क करना उचित है ॥ ५९ ॥

तद्वत्कर्पासपक्वैर्कस्याः स्वरसः समधुर्मतः ॥ कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् ॥ ६० ॥ सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्न्निवारकम् ॥ गुडेन विल्वमश्नीयाद्रक्तातीसारनाशनम् ॥ ६१ ॥ आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ६२ ॥

भा० टी०—इसी प्रकार शिलामें पीसे हुए कपास और पाकरका रस मधुके साथ अतिसारमें उपयोगी है, एवं अनार और कूडाके वक्कलका कषाय भी मधुके साथ पान किये जानेसे ॥ ६० ॥ तथा गुडके संग बेलगिरीको खानेसे दुर्निवार रक्तातिसारको तत्काल जीत लेता और आमशूल, विबन्ध, कुक्षिरोगोंको भी नष्ट करता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

सल्लकीवदरीजम्बूप्रियालार्ज्जुनजास्त्वचः ॥
पीतः क्षीरेण मध्वम्भः पृथक्शोणितनाशनः ॥ ६३ ॥

भा० टी०—सालई वृक्ष, बेर, जामन, चिरौंजीका पेड, अर्ज्जुन (कोह) इनके वक्कलसे सिद्धकियाहुआ कषाय, दूधके साथ पियेजाने तथा मधुमिश्रितजलको पृथक् चाटनेसे रक्तातिसार नष्ट होताहै ॥ ६३ ॥

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग्जयेत् ॥
रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ६४ ॥

भा० टी०—शतावरीके कल्कको दूधके साथ पानकरनेके अनन्तर क्षीरान्नका पथ्य करताहुआ मनुष्य रक्तातिसारको जीतताहै, एवं शतावरी घृतभी रक्तातिसारमें गुणकारी होताहै ॥ ६४ ॥

पीतः प्रियङ्गुकाकल्कः सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना ॥
रक्तमामं जयेच्छीघ्रं तनुमांसरसायनम् ॥ ६५ ॥

भा० टी०—मधुयुक्त प्रियंगुका कल्क, चावलधोयेजलके साथ पियेजानेसे आमरक्तातिसारको शीघ्रही जीतता और शरीरकी धातुओंपर रस पहुंचाताहै ॥ ६५ ॥

कल्कः कृष्णतिलानां च शर्करा चैकभागिका ॥
आज्येन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ६६ ॥

भा० टी०—काले तिलोंका कल्क और एकभाग शक्कर, घी, दूधके साथ पान कियेजानेसे शीघ्रही रक्तातिसारका निग्रह करताहै ॥ ६६ ॥

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः ॥
सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽतिहितोऽतिसारे ॥ ६७ ॥

भा० टी०—कूडा, अतीस, बेलगिरी, सुगन्धवाला, मोथा इन करके सिद्ध कियाहुआ कषाय शूल, शोणितसे युक्त तथा बहुतकालसे उपजे आमअतिसारमें अत्यन्त हितकारक है ॥ ६७ ॥ इतिवत्सकादिः ॥

भयशोकसमुद्भूते क्रियाचोभयशर्मदा ॥
सर्वजे बहुवर्णत्वात्पुटपाकक्रिया मता ॥ ६८ ॥

भा० टी०—भय और शोकसे उपजे अतिसारमें भी दोनों ओर सुख देनेवाली क्रिया वही मानीगईहै जो वातातिसार आदिमें निर्दिष्ट है, सब प्रकारके अतिसारमें बहुवर्ण होनेके कारणसे पुटपाकविधि करना निर्भर है ॥ ६८ ॥

अवेदनं सुसंपक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ॥
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ६९ ॥

भा० टी०—दीप्तअग्निवाले मनुष्यके बहुतकालसे उपजेहुए, वेदनाहीन तथा अनेकवर्णवाले, परिपक्व अतिसारमें पुटपाकका उपचार करे ॥ ६९ ॥

स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तुदग्धमादाय तत्क्षणमतीव च पेषयित्वा ॥
जम्बूपलाशपुटतण्डुलतैलसिक्तं बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥७०॥
निष्पन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ॥
कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेवराजा ॥७१॥

भा० टी०—किसीप्रकार काष्ठजन्तुओंकरके रुग्ण नहीं कियेहुए, सान्द्र, स्निग्ध कुटज वृक्षकी छालको लाकर तत्काल उसको भलीप्रकार पीसकर उस पिष्टपदार्थके सरसगोलेको तंडुलतैलसे संसिक्त करके जामनके पत्तोंके पुटपर कुशकी तन्तुओंसे बांधकर बाहरसे गाढी मिट्टीका लेपन करके निरन्तर मन्द अग्निकी आंचसे पकालेवे । सिद्ध होनेपर पाकपुटके उस पिष्टपदार्थ को

निचोडकर निष्पन्नहुए रसको मधुके साथ अतिसारवालेके लिये देवे । व्यास, आत्रेय आदि महर्षियोंका सम्मत यह योग (प्रयोग) सब अतिसारोंके निग्रह करनेमें एक राजा है ॥७०॥७१॥

त्वग्विडं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् ॥ मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गा-रेष्वेव कल्पयेत् ॥ ७२ ॥ स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नतः ॥ शीतीकृतं मधुयुतं पाययेदुदरामयम् ॥ ७३ ॥ पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारक्तवर्णता ॥ ७४ ॥

भा० टी०–सोनापाठाकी छालका कल्क और विरियानोनको कंभारीके पत्तेसे लपेटकर बाहरसे मिट्टीका लेप बनाय अङ्गारोंमें रक्खे सुन्दर स्वेदित होनेपर उसको निकाललेवे, तब यत्नसे निचोडकर निष्पन्नहुए रसको शीतल होनेपर मधुके साथ अतिसारवालेको पिलावे ॥७२॥७३॥ ध्यानर हे कि, पुटपाकमें जब बाहिरसे पकते २ लालरङ्ग छाजाय, तब जानिये कि, पाक सिद्ध हुआ ॥ ७४ ॥

तुलामथाऽऽर्द्रां गिरिमल्लिकायां जलेन पक्त्वा रसमाददीत ॥
तस्मिन्सुपूते पलसम्मितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन॥७५॥
पाठां समंगां सविषां समुस्तां बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥
प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्दर्वीप्रलेपः स्वरसस्य याव ॥ ७६ ॥

भा० टी०–१०० पल कूडाको जलमें पकानेसे जो रस निष्पन्न हो, उसमें एक २ पलके प्रमाणसे सेमलका गोंद, सुपारी, पाठा, समङ्गा, अतीस, मोथा, बेलगिरी, धावडेके फूल इन वस्तुओंके महीनकल्कको डालकर तबतक फिरभी उसको पकाता रहे जबतक करछीपर रसका लेप न होजाय ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाऽथ वाऽपि ।
निहन्ति सर्वं ह्यतिसारमुग्रं रक्तात्मकं नीलकपीतकं वा ॥ ७७ ॥

भा० टी०–यह सिद्ध रस देश, कालको जाननेवाले वैद्यके द्वारा मांड वा जल वा बकरीके दूधके साथ रोगीको पिलायेजानेके कारणसे रक्त, नील, पीत भेदसे सब प्रकारके घोर अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ७७ ॥ इति कुटजाष्टकम् ॥

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले श्रृतम् ॥ तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ ७८ ॥ तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ॥ अपि मृत्युदशापन्नो न मृत्योर्याति गोचरम् ॥ ७९ ॥

भा० टी०–आठभाग पानीमें पलभर कूडाको सिद्धकरे, तब अनारके रसके साथ फिरभी उसी प्रकार पकावे ॥ ७८ ॥ सिद्ध होनेपर आधाकर्ष (एक तोला) प्रमाणसे छांछके साथ उस

इसको रक्तातिसारवाला पान करे, ऐसा करनेपर वह रोगी मृत्युदशाको प्राप्त हुआ भी कालका गोचर नहीं होता ॥ ७९ ॥

कुटजक्काथतुल्योऽत्र दाडिमस्य रसो मतः ॥
ऊहापोहपरैः सिद्धैराचार्य्यैः पूर्वकालिकैः ॥ ८० ॥

भा० टी०—उक्त काथकी विधिमें अनारका रस, कूडेके काथके समान, तर्क करनेवाले पूर्वकालके सिद्ध आचार्योंसे माना गया है ॥ ८० ॥

वत्सकस्य च बीजानि दार्व्याश्चाऽपि तथोत्तमा ॥ पिप्पली शृंगवेरञ्च लाक्षा कटुकरोहिणी ॥८१॥ षड्भिरेतैर्घृतं सिद्धं पेयं मण्डोपचारिणा ॥ अतिसारं जयेच्छीघ्रं त्रैदोषमपि दारुणम् ॥ ८२ ॥

भा० टी०—कूडाके बीज (इन्द्रयव), दारुहलदी, दूधिया, पिप्पली, सोंठ, लाक्षा, कुटकी इन छः वस्तुओंसे सिद्ध किया हुआ घृत, मण्डके पथ्य करनेवाले मनुष्यको पान करना चाहिये। क्योंकि यह घृत विशेषसे उत्पन्न हुए दारुण अतिसारको भी शीघ्र जीत लेता है ॥ ८१॥८२ ॥ इति षडङ्गघृतम् ॥

अथ सप्ताङ्गघृतम्।

दार्वी सलाक्षा कटुका सबिल्वा त्वक्कौटजी शक्रयवास्तु कृष्णा ॥
एभिः प्रपक्वं घृतमाशु हन्यान्मण्डेन पीतं सकलातिसारान् ॥ ८३ ॥

भा० टी०—दारुहलदी, लाक्षा, कटुकी, बेलगिरी, कूडेकी छाल, इन्द्रयव, पिप्पली इन सात वस्तुओंसे सिद्ध किया हुआ घृत मण्डके साथ पान किये जानेसे सब अतिसारोंको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

अथ चाङ्गेरीघृतम्।

क्षीरनागरचांगेरीकोलदध्यम्लसाधितम् ॥
सर्पिःप्रस्थं पचेद्वापि शूलातीसारशान्तये ॥ ८४ ॥

भा० टी०—सरलका गोंद, सोंठ, अम्ललोना, कोल, दधिजल, कांजी इन करके सिद्ध कियाहुआ प्रस्थप्रमाण घृत शूलातिसारकी शांतिके लिये होता है ॥ ८४ ॥

निरामरूपं शूलार्तं लंघनाद्यैश्च कर्षितम् ॥
नरं रूक्षमवेक्ष्याऽग्निं सक्षीरं पाचयेद्घृतम् ॥ ८५ ॥

भा० टी०—मनुष्यको आमदशासे हीन, शूलपीडित तथा लंघनादिकसे कृशीभूत एवं कुछ अग्नियुक्त देखकर पूर्वोक्त घृतको दूधके साथ पकावे ॥ ८५ ॥

यथाऽमृतं तथाक्षीरमतिसारेषु योजितम् ॥
चिरोत्थेषु च तद्देयमपां भागैस्त्रिभिः शृतम् ॥ ८६ ॥

भा० टी०–अतिसारोंमें दूधका प्रयोग अमृतके समान होता है परन्तु बहुकालिक अतिसारोंमें तीन भाग जलके साथ पकाकर देना उचित है ॥ ८६ ॥

स्रुते रक्ते पुरीषे च वायुना विडवर्ज्जितम् ॥
प्रवाहिकेति तत्ख्यातं यत्फेणाभं प्रवर्तते ॥ ८७ ॥

भा० टी०–रक्त और मलके निःशेष होनेके अनन्तर वायुविकारके कारणसे मलरहित फेनके समान पदार्थका जो प्रवृत्त होना है उसका नाम प्रवाहिका जानो ॥ ८७ ॥

बालविल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः ॥ ८८ ॥

भा० टी०–लघुबेलगिरी, गुड, तेल, पिप्पली, सोंठ इसके लेहको शूल और प्रवाहिका रोगवाला मनुष्य वायुके शांत होनेपर उपयुक्त करे ॥ ८८ ॥

एरण्डविल्वयवगोक्षुरकाम्लसिद्धां लिह्याच्छिवां मधुयुतामथवा गुडेन॥
कृच्छ्रप्रवान्तिमतिशूलमसृग्विमिश्रं हन्यात्तरां तदतिसारमुदीर्णवेगम्॥८९॥

भा० टी०–एरण्ड, बेलगिरी, इन्द्रयव, गोखुरू, कांजी करके सिद्ध कीहुई हरडको मधु वा गुडके साथ सेवन करे । यह प्रयोग दारुण वमन, अतिशूल और घोर रक्तातिसारको नष्ट करता है ॥ ८९ ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेन भुञ्जीत निश्चारकपीडितस्तु ॥
सुतप्तकुप्यक्कथितेन वाऽपि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ ९० ॥

भा० टी०–प्रवाहिका रोगसे पीडित मनुष्य तो सारसम्पन्न दधि और मधुके साथ पूर्वोक्त हरडको खावे वा तप्त कराहमें पके हुए दूधको शीतल होनेपर मधुके संग औटाकर पूर्वोक्त हरडके अनुपानमें पीवे ॥ ९० ॥

सदार्वङ्कोटपाठानां मूलं त्वग्वत्सकस्य च ॥ शाल्मलीशालनिर्यासो धातकीलोध्रदाडिमौ ॥ ९१ ॥ पिष्ट्वाऽक्षसंमितान्कृत्वा वटकांस्तण्डुलाम्भसा ॥ तेनैव मधुसंयुक्तमेकैकं प्रातरुत्थितः ॥ ॥ ९२ ॥ पिबेत्प्रत्यहमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः ॥ अंकोटवटको नाम सर्वातीसारनाशनः ॥ ९३ ॥

भा० टी०–देवदारका गोंद, अङ्कोट (ढेरा) और पाठाकी जड, कूडाकी छाल, शेमल और शालका गोंद, धावडेके फूल, लोध, अनार ॥ ९१ ॥ इनको पीसकर चावलधोये जलके

द्वारा कर्षप्रमाण गोली बनाय प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मधु और चावलजलके साथ एक एक २ वटिकाको अतिसारसे आपन्न हुआ मनुष्य सेवन करे क्योंकि यह अङ्कोटवटक सब अतिसारोंका नाशक हैं॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ॥ इति अंकोटकवटकः ॥

गुददाहे प्रपाके च पटोलमधुकाम्बुना ॥
अभिषेकं प्रशंसन्ति छागीस्तन्येन चाटुना ॥ ९४ ॥

भा० टी०–अतिसारके विकारसे यदि गुदद्वार दाह और घावसे युक्त होरहे तो इस दशामें परवल और मुलहटीके रस वा सुन्दर बकरीके दूधसे गुदद्वारको सींचना भला है ॥ ९४ ॥

स्वेदोऽथ मूषिकामांसैर्गोधामांसोक्षणं तथा ॥
गुदनिःसरणे शस्तं चांगेरीघृतमुत्तमम् ॥ ९५ ॥

भा० टी०–गुद (अपान) के स्थानभ्रष्ट होनेपर मूषिकामांसके द्वारा स्वेदविधि (भाफ देना), एवं गोधा (गोयसांप) के मांसरसका प्रोक्षण करना और चांगेरीघृतका प्रयोग-भी उत्तम है ॥ ९५ ॥

शोथादीन्विनिरोधांश्च साधयेत्स्वैश्चिकित्सितैः ॥ शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥ ९६ ॥ छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥ स्नानावगाहमभ्यंगं गुर्वभीष्टादिभोजनम् ॥ ९७ ॥ व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्जयेत् ॥ ९८ ॥

भा० टी०–बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, अपने अनुभवसिद्ध प्रयोगोंसे शोथ निरोधप्रभृति उपद्रव जो अतिसारके शान्त होनेपर उपजतेहैं, उनका प्रतिकार करे, परन्तु अतिसारकी निरन्तर प्रवृत्तिके मध्यमें यदि शोथ, शूल, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कास, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिचकी इतने उपद्रव दीख पडें तो अतिसारवालेको छोडदेवे । अतिसारवाला मनुष्य स्नान, जलमें पैरना, तैलाभ्यङ्ग, गरिष्ठ और मनमाने पदार्थोंका भोजन करना, व्यायाम, आगसेकना इतने कर्मोंको त्यागदेवे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥
ज्ञेयः कार्य्यो विरक्तः स तत्तद्दोषकरैः पदैः ॥ ९९ ॥

भा० टी०–जब अतिसारी मनुष्यके अग्नि प्रबल और कोठा हलका होजाय तब जान-लेना कि, उसके उदरका विकार शान्त होगया । परन्तु कुछदिनोंतक अतिसारजनक वातआदि-दोषोंको बढानेवाले पदार्थोंसे उसको विरक्त किये रहे ॥ ९९ ॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंसदामोदरसूनुसदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे ज्वरातिसाराधिकारः ॥ ९ ॥

अथ ग्रहणीरोगाधिकारः ६.

ग्रहणीचिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णं तदुपाचरेत् ॥
अतिसारोक्तविधिना तस्याऽऽमं च विपाचयेत् ॥ १ ॥

भा० टी०-ग्रहणी (अग्निको बढानेवाली नाडी) के आश्रय लियेहुए अजीर्णदोषका शीघ्रही उपचार करना योग्य है, प्रथम अतिसारमें कहे विधानसे ग्रहणीरोगवालेके आमाशयको परिपक्व बनावे ॥ १ ॥

कपित्थबिल्वचांगेरीतक्रदाडिमसाधिता ॥
यवागूः पाचयत्यामं शकृत्संवर्तयत्यपि ॥ २ ॥

भा० टी०-कैथा, बेलगिरी, अम्ललोना, छाछ, अनार इन करके सिद्ध कीहुई यवागू अमाशयको परिपक्व करके मलका ठीक परिवर्तन करतीहै ॥ २ ॥

लघुना पञ्चमूलेन पञ्चकोलेन पाठया ॥
अन्नानि कल्पयेद्विद्वान्विल्ववृक्षाम्लदाडिमैः ॥ ३ ॥

भा० टी०-लघुपञ्चमूल, पञ्चकोल, पाठा, बेलगिरी, वृक्षाम्ल (इमली), अनार इन-करके अन्न सम्पादन करे ॥ ३ ॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्रहलाघवात् ॥
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ॥ ४ ॥

भा० टी०-ग्रहणीरोगवाले मनुष्योंके लिये छाछ, ग्रहस्थानको हलका करनेके कारण अग्निवर्द्धक और मधुपाक करनेके कारण पथ्य है, वह किसीप्रकार पित्तको भी कुपित नहीं करती॥४॥

कषायः कासनाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितः ॥
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यः कृमिविदारणः ॥ ५ ॥

भा० टी०-निम्ननिदर्शित कषाय, कासनाशक और रूक्ष होनेसे कफोत्पन्न संग्रहणीमें हित है, एवं सरस और अम्लरससे पूर्ण होनेके कारण वातोत्पन्नसं ग्रहणीमें हितकारक और कृमिना-शक होताहै ॥ ५ ॥

पाठाकुटजबीजानि चित्रकं विश्वभेषजम् ॥
पिबेन्निष्क्वाथ्य चूर्णानि कृत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ ६ ॥

भा० टी०-पाठा, इन्द्रजव, चीता, सोंठ इनका काथ बनाकर पीवे, वा चूर्ण बनाकर उष्ण जलके साथ सेवन करे ॥ ६ ॥

शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं पिबेत्समांशां क्वथितां जलेन ॥
मन्दानलत्वे सततामतायामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ ७ ॥

भा० टी०–मंदाग्नि और निरन्तर आमभावमें, एवं आमाशयपर प्राप्तहुए ग्रहणीरोगमें भी जलके साथ क्वथित कीहुई समभागवाली सोंठ, मोथा, अतीस, गिलोय इनके क्वाथको पान करता रहे ॥ ७ ॥

धान्यकातिविषोदीच्ययवानीमुस्तनागरम् ॥
बलां द्विपर्णीमभयां दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ ८ ॥

भा० टी०–धनियां, अतीस, सुगन्धवाला, जवायण, मोथा, सोंठ, खरेंटी, मुगवन, मषचन, हरड इनका क्वाथ दीपन और अग्निवर्द्धक होताहै, अतः इसे संग्रहणीमें प्रयुक्त करे ॥ ८ ॥

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ॥
व्योषहिंग्वजमोदाश्च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ९ ॥

भा० टी०–चींता, पिप्पलीमूल, दोनों क्षार (जवाखार, सज्जी) पञ्चलवण, व्योष, (सोंठ, मिरच, पीपल,) हींग, अजमोदा, चव्य इन सब वस्तुओंका एकसाथ चूर्ण बनावे ॥९॥

गुटिका मातुलुंगस्य दाडिमस्य रसेन वा ॥
कृता विपाचयन्त्यामं दीपयन्त्याऽऽशु वाऽनलम् ॥ १० ॥

भा० टी०–तब बिजोरा नींबू वा अनारके रसके साथ उस चूर्णकी गोली जो बनाईजायं, वे आमाशयको पक्व बनाती और अग्निको बढातीहैं ॥ १० ॥ इति चित्रकगुटिका ॥

श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ॥
ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ ११ ॥

भा० टी०–यदि श्रीफल (बेल) के कच्चे फलका कल्क, सोंठके चूर्णसे मिलाकर गुडके साथ छांछपीनेवाले मनुष्यसे सेवन कियाजाय तो वह अतिघोर ग्रहणीरोगको जीतता है ॥ ११ ॥

जम्बूदाडिमशृङ्गाटपाठाकञ्चटपल्लवैः ॥ पक्वं पर्य्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम् ॥ १२ ॥ हन्ति सर्वमतीसारं ग्रहणीमपि दुस्तराम् ॥
नागरातिविषामुस्तक्वाथः स्यादामपाचनः ॥ १३ ॥

भा० टी०–जामन, अनार, सिंघाडा, पाठा, जलचौलाईके पत्ते, पकाहुआ एवं पहिले दिनका तोडाहुआ छोटा बेल, गुड, सोंठसहित सेवन कियेजानेसे सबप्रकारके अतिसार और कठिन ग्रहणीरोगको भी नष्ट करता है। एवं सोंठ, अतीस, मोथाका क्वाथ भी आमाशयको पक्व बनाता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

चण हिंग्वष्टक वापि वातिकेऽष्टपलं घृतम् ॥ नागरातिविषामुस्तं धातकी सरसाञ्जनम् ॥ १४ ॥ वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठा कटुकरोहिणी ॥ पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १५॥ पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तपित्तोद्भवे तथा ॥ अर्शांस्यथ गुदे शूलं जये-च्चैव प्रवाहिकाम् ॥ १६ ॥

भा० टी०–अथवा वायुसे उत्पन्नहुए ग्रहणीरोगमें हिंग्वष्टक चूर्ण और अष्टपलघृत हित हैं। एवं सोंठ, अतीस, मोथा, धावडेके फूल, रसोत, ॥ १४ ॥ कूडाकी छाल, इन्द्रजौ, बेल-गिरी, पाठा, कटुकी इनके समभाग निष्पन्न मधुमिश्रितचूर्णको चावलधोये जलके साथ पान-करै॥ १५ ॥जब कि पित्त वा रक्तपित्तसे उपजाहुआ ग्रहणीदोष हो । यह चूर्ण बवासीर गुदशूल और प्रवाहिका रोगको भी जीतता है ॥ १६ ॥

नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥
जलमष्टगुणं दत्त्वा पलं कण्डिततण्डुलात् ॥
भावयित्वा ततो देयं तण्डुलोदककर्म्मणि ॥ १७ ॥

भा० टी०–यह पूर्वोक्त नागरादि चूर्ण, कृष्णात्रेयसे प्रशंसित है। चावलधोये जल देनेकी विधि यह है कि, शुद्ध शोधित पलभर चांवलखण्डोंमें अठगुणा जल देकर भावित करनेसे शेष बचाहुआ जल निकालकर देना ॥ १७ ॥ ॥ इति नागराद्यं चूर्णम् ॥

अथ भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

भूनिम्बकटुकव्योषमुस्तानां भागतुल्यता ॥ समाचित्रकवत्सत्व-ग्भागान्षोडश कल्पयेत् ॥ १८ ॥ गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणी-दोषगुल्मनुत् ॥ कामलाज्वररक्तार्तिमेहारुच्यतिसारजित् ॥ १९ ॥

भा० टी०–चिरायता, परवल, ३ त्रिकटु, मोथा, चीता और कूडेकी छाल इन आठ वस्तुओंके दो २ भाग लेकर सब सोलह भागका चूर्ण बनावे । सिद्ध होनेपर गुड और शीतल जलके साथ सेवन कियेजानेसे यह चूर्ण, ग्रहणी रोग और गुल्मरोगको दूर करता है, इसके अति-रिक्त कामलारोग, ज्वर रक्तपीडा, प्रमेह, अरुचि और अतिसारको भी जीतता है॥ १८॥ १९॥

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ मरिचाग्निजलाजाजीधान्य-सौवर्चलैः समैः ॥ २० ॥ वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमक-स्तथा ॥ त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतैः ॥ २१ ॥

चूर्णोऽतिसारं ग्रहणीं हन्ति गुल्मजलामयान् ॥ हिक्काकासारुचिश्वासान्कपित्थाष्टक उत्तमः ॥ २२ ॥

भा॰ टी॰–जवायण, पिपलीमूल, चातुर्जातक (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) सोंठ, मरिच, चीता, जल (सुगन्धवाला), कालाजीरा, धनियां, कालानोन इनके समभाग ॥२०॥ और अमलवेत, धावडा, पिपली, वेल, अनार, इनका भाग पूर्वसे तिगुणा, शक्कर छःगुनी और इन सबका अठगुना कैथा लेकर चूर्ण बनाय सेवन कियाजाय ॥ २१ ॥ क्योंकि यह उत्तम कपित्थाष्टक चूर्ण अतिसार, ग्रहणी, गुल्म, जलोदर, हिचकी, कास, अरुचि, श्वास इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ इति कपित्थाष्टकचूर्णम् ॥

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां वामितस्य यथाविधि ॥
कट्वम्ललवणक्षारैस्तिक्तैश्चाऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥ २३ ॥

भा॰ टी॰–कफदोषसे उत्पन्न हुई ग्रहणीमें विधिपूर्वक वमन करायके कटु, अम्ल, लवण, क्षार, तिक्त इन रसोंके द्वारा अग्निको बढावे ॥ २३ ॥

सर्वजायां ग्रहण्यान्तु सामान्यो विधिरिष्यते ॥
किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः ॥ २४ ॥
कृतः कषायो हन्त्याऽऽशु सर्वोत्थं ग्रहणीगदम् ॥ २५ ॥

भा॰ टी॰–त्रिदोषसे उत्पन्नहुई ग्रहणीमें तीन ही दोषोंके समानभावसे विधान करना कहा है, अतः चिरायता, मोथा, गिलोय, चन्दन, सुगन्धवाला, कूडा इनकरके सिद्धकियाहुआ कषाय शीघ्रही सब प्रकारके ग्रहणीरोगको नष्ट करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

मसूरस्य कषायेन विश्वगर्भं पचेद्घृतम् ॥
हन्ति कुक्ष्यामयान्सर्वान्ग्रहणीपाण्डुकामलाः ॥ २६ ॥

भा॰ टी॰–मसूरके कषायके साथ सोंठमिश्रित घीको पकावे, यह घृत कुक्षिगत रोग और ग्रहणी, पाण्डु तथा कामला रोगको नष्ट करता है ॥२६॥ इति मसूराद्यं घृतम् ॥

व्रीहिप्राण्यंगयोः क्वाथं व्युषितं दोषलं विदुः ॥
त्रिकटुत्रिफलाकल्कं बिल्वमात्रं गुडात्पले ॥ २७ ॥
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानिले पिबेत् ॥ २८ ॥

भा॰ टी॰–व्रीहिधान्य और प्राण्यङ्गका क्वाथ बासी होनेपर दोषल कहा है । आठ तोलेके प्रमाणसे त्रिकटु और त्रिफलाका कल्क, दोपल गुड, आठ पल घी, इन सबको पकाकर मन्दाग्निमें सेवन करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ इत्यष्टपलकं घृतम् ॥

बिल्वाग्निव्याधिकशृंगवेरक्काथेन कल्केन च सिद्धिमागतम् ॥

सच्छागदुग्धं ग्रहणीगुदोत्थशोथाग्निसादारुचिषु प्रदिष्टम् ॥ २९ ॥

भा० टी०--बेलगिरी, चीता, सिंवाडा इनके क्काथ और कल्कके द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृत बकरीके दूधके साथ ग्रहणी, गुदशोथ, अग्निमान्द्य, अरुचि इन विकारोंमें गुणकारी कहा है ॥ २९ ॥ इति बिल्वाद्यं घृतम् ॥

मोचसिन्धूत्पलं व्योषलाजाबिल्वाम्बुधातकी ॥

सिद्धमाज्यमजाक्षीरे चांगेरीरसवच्छिशोः ॥ ३० ॥

भा० टी०--मोचरस, सिह्नालु, नीलकमल, त्रिकटु, लाजा, बेलगिरी, सुगन्धवाला, धावडके फूल, इनकरके बकरीके दूध और अम्लिलोनाके रसमें सिद्धकियाहुआ घृत ग्रहणी रोगपर बालकको हित है ॥ ३० ॥

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ श्वदंष्ट्रा पिप्पलीधान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ ३१ ॥ चांगेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेभिर्विपाचयेत् ॥ चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत् ॥ ३२ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ३३ ॥

भा० टी०--सोंठ, पिपलीमूल, चीता, गजपीपली, गोखरु, पिपली, धनियां, बेल, पाठा, जवायन ॥३१॥ इनके कल्कके साथ अम्ललोनीके रसमें चौगुना दधिसहित घीको पकावे, यह घृत कफ, वात, बवासीर, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, अपानकी च्युतिसे उत्पन्नहुई पीडा, मल मूत्रका रुकजाना इन सब उपद्रवोंको दूर करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इति चाङ्गेरीघृतम् ॥

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा ॥

भल्लातकयवान्यौ च विडङ्गं हस्तिपिप्पली ॥ ३४ ॥

भा० टी०--मरिच, पिपलीमूल, सोंठ, पिपली, भिलावां, जवायन, वायविडंग, गजपीपल॥३४॥

हिंगुसौवर्चलं चैव विडसैन्धवमेव च ॥ सामुद्रं सयवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ ३५ ॥ एतैरर्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कासं श्वासं क्षयं वापि दुर्नाम सभगन्दरम् ॥ ३६ ॥ कफजान्हन्ति रोगांश्च वातजान्क्रमिसम्भवान् ॥ सर्वानेतान्दहत्याशु क्रुद्धो दावानलो यथा ॥ ३७ ॥

भा० टी०–हींग, सञ्चरलोन, विडलोन, सेंधालोन, खारीलोन, जवाखार, चीता, वचा ॥ ३९ ॥ इन सबका आधा २ पल भाग लेकर प्रस्थप्रमाण घृतके साथ पकावे। यह सिद्ध घृत कास, श्वास, क्षय, दुर्नाम (बवासीर), भगन्दर, एवं कफजन्य, वातजन्य, कृमिजन्य प्रभृति सब रोगोंको क्षुद्राग्निके समान भस्म करता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इति मरिचाद्यं घृतम् ॥

अथ शुण्ठीघृतम् ।

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले शृतम् ॥
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीमामतामपि ॥ ३८ ॥

भा० टी०–सोंठके कल्कके साथ दशमूलके रसमें पकायाहुआ घृत शीघ्र ही सूजन और ग्रहणीस्थानके आमभावको दूर करता है ॥ ३८ ॥

घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ३९ ॥

भा० टी०–अथवा केवल सोंठके कल्कके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत दूषित वायुको उचित स्थानमें रखकर ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास, ज्वर इन सब उपद्रवोंको नष्ट करता है॥३९॥

अथ कल्याणकगुडः ।

प्रस्थत्रयेणाऽऽमलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वाऽर्द्धतुलां गुलस्य ॥ चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहबुषाजमोदैः ॥ ४० ॥ विडंगसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पिचुप्रमाणैः ॥ दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाऽष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ४१ ॥

भा० टी०–शुद्धशोधित थूहर आधा तोला और पिपलीमूल, जीरक, चव्य, त्रिकटु, गजपिपली, हाऊबेर, अजमोदा, वायविडङ्ग, सिझालु, त्रिफला, जवायन, पाठा, चीता, धनियां इन सबके दो २ तोला प्रमाण चूर्ण लेवे, एवं आठपल निसोत, आठ पल तेल इन सबको तीन प्रस्थ आंवलेके रसके सङ्ग विधिपूर्वक पकावे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टमिष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम् ॥ अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ४२ ॥ शाम्यन्ति चाऽयं चिरमन्तरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ॥ स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्टः ॥ ४३ ॥

भा० टी०–सिद्ध होनेपर इस पाकका नाम कल्याणकगुड, होता है, इस पाकमें त्रिसुगन्धि (इलायची, दाऊचीनी, तेजपात) को मिलाकर कर्ष प्रमाण वा इच्छानुकूल सेवन करे। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारके ग्रहणीविकार और श्वास, कास, स्वरभेद, सूजन यह सब

उपद्रव शान्त होते हैं। इसके अतिरिक्त यह कल्याणकगुड बहुतकालसे नष्ट हुए उदराग्नि और पुरुषसत्ताको बढाता और स्त्रियोंके बन्ध्यापनको भी नष्ट करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

लिंगैरसाध्यो ग्रहणीविकारो यैस्तैरतीसारगदोऽप्यसाध्यः ॥
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो हन्ता तनूं नो विनिवर्तते च ॥ ४४ ॥

भा० टी०-जिन चिह्नोंसे ग्रहणीरोग असाध्य होताहै उन्हीं चिह्नोंसे अतिसारको भी असाध्य जानना।वृद्धमनुष्यका ग्रहणीरोग कदाचित् नहीं हटता,दैवयोगसे हटभी जाय तोभी निर्मूल न होगा४४

त्रिफला कटभी चव्यं बिल्वमध्यमयोरजः ॥ रोहिणी कटुका मुस्तं कुष्ठं पाठा च हिंगुकम् ॥ ४५ ॥ शताह्वा सयवक्षार वचामधुककटवम् ॥ विडंगं पिप्पलीमूलं स्वर्जिकानिम्बपत्रकैः ॥ ४६ ॥ मूर्वाजमोदेन्द्रयवा गुडूची देवदारु च ॥ कार्षिकं लवणानां च पञ्चानां पलिकं पृथक् ॥ ४७ ॥ भागैरेतैस्त्रिकुडवघृततैलेन मूर्च्छितैः ॥ अन्तर्धूमं शनैर्दग्धैः पीतैः करतलेन च ॥ ४८ ॥

भा० टी०-त्रिफला, मालकांगनी, चव्य, बेलगिरी, लोहधूर, कटुकी, मुशकदाना, मोथा, कूडा, पाठा, हींग, ॥ ४५ ॥ सौंफ, जवाखार, वचा, मुलहटी, त्रिकुटु, वायविडङ्ग, पिप्पलीमूल, सज्जीखार, नीम, तेजपात ॥ ४६ ॥ मरोरफली, अजमोदा, इन्द्रजौ, गिलोय, देवदार इनके कर्षप्रमाण भाग और पंचलवणोंके पल २ प्रमाण भाग लेकर ॥ ४७॥ तीन कुडव (९६ तोला) घी, तेलके संग मिलाय निर्धूमत्वके साथ शनैः शनैः पकाकर हथेलीके द्वारा सेवन करै ॥ ४८ ॥

सर्पिषा कफवातघ्नो ग्रहणीपाण्डुरोगिणः ॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्काकाशक्लमज्वरम् ॥ ४९ ॥ शोषातिसारश्वयथुप्रमेहानपिविड्ग्रहान्॥ हन्ता सर्वविषाणाञ्च चक्षूरोगहरः स्मृतः ॥ ५० ॥

भा० टी०-यह पूर्वोक्त प्रयोग घीके साथ सेवन कियेजानेसे ग्रहणी और पाण्डुरोगवाले मनुष्यके कफवातको नाश करता और फीहा, मूत्ररोध, श्वास, हिचकी, काश, क्लेद, ज्वर तथा सर्वप्रकारके गर और नेत्ररोगको हरनेवाला कहाहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

घटीगतजलाधारः स्वपतो यस्य पार्श्वयोः ॥
घटीयन्त्रकमाहुस्तमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ ५१ ॥

भा० टी०-जिस रोगीके शयनकरतेहुए (स्वापावस्थामें) दोनों पार्श्वों (बगल) में घटीपर रक्खेहुए जलका आधारसा प्रतीत हो उसको घटीयन्त्रक नाम ग्रहणीरोग जानना इसे असाध्य कहतेहैं ॥५१॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंसदामोदरसूनुसदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते
वृन्दे ग्रहणीरोगाधिकारः ॥ ६ ॥

अथाऽर्शोरोगाधिकारः ७.

अर्शश्चिकित्सा।

त्रयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः ॥
अर्शांसि चातिसारश्च ग्रहणीरोग एव च ॥ १ ॥

भा० टी०–बवासीर, अतिसार और ग्रहणीरोग यह तीनों विकार परस्परमें एक दूसरेके उत्पादक (कारण) हैं अर्थात् जिसपर इन तीनोंमेंसे एकका भी प्रावल्य होगा उसपर शेष दो रोगोंकी संभावना भी होसकती है ॥ १ ॥

तेषामग्निबले हीने वृद्धिर्वृद्धे परिक्षयः ॥
तस्मादग्निं समारक्षेदेषु त्रिषु विशेषतः ॥ २ ॥

भा० टी०–अग्निबलके नष्ट होनेपर इन पूर्वोक्त तीन रोगोंकी वृद्धि और अग्निबलके बढ-जानेपर उनका (तीन रोगोंका) नाश होताहै, इस कारणसे इन तीन रोगोंके होते प्रायः अग्निबलकी रक्षाकरे ॥ २ ॥

दुर्नामसाधनोपायश्चतुर्द्धा परिकीर्तितः ॥
भेषजक्षारशस्त्राग्निबाष्पसंशीलनक्रमात् ॥ ३ ॥

भा० टी०–बवासीरके साधनेका उपाय चार प्रकारसे कहाहै एक तो वनौषधि, दूसरा क्षारपदार्थ, तीसरा शस्त्रसे उनको काटकर निकालना, चौथा औषधिसंपन्न अग्निका भाफ लेना॥३॥

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ॥
अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसि ॥ ४ ॥

भा० टी०–जो कुछ अन्न, जल और औषध वायुकी अनुकूलता और अग्निबलकी वृद्धिके लिये होवे वही पदार्थ बवासीर रोगमें नित्य सेवनकरने उचित हैं ॥ ४ ॥

वातातिसारवद्भिन्नं वर्चस्यर्शस्युपाचरेत् ॥
उदावर्तविधानेन दूरयेद्यत्नपूर्वकम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–अतिसार और बवासीरमें वायु और अतिसारजनक पदार्थोंका उपचार न करै। उदावर्तनामक रोगमें जो विधि होती है उसीके द्वारा यत्नपूर्वक इन रोगोंको दूर करे ॥ ५ ॥

विड्विबन्धे हितं तक्रं यवानीविडसंयुतम् ॥ न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ॥ ६ ॥ स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः । तेन पुष्टिर्बलं वर्णो प्रहर्षश्चोपजायते ॥ ७ ॥

भा० टी०—अजवायन और विडलोनसे युक्त छांछ विष्ठाके विबन्धमें हितकारक होती है। गुदद्वारके रोग छांछसे पीडित होकर फिर नहीं जमते हैं ॥६॥ जब छांछके सेवनसे नाडी वा इन्द्रियोंके सोत शुद्ध होजाते हैं तब जो रस तहां भलीप्रकारसे प्राप्त होता है उसी रससे शरीरमें बल पुष्टि और आकारमें आह्लाद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

वातश्लेष्मविकाराणां शतं च विनिवर्तयेत् ॥ सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्ज्जिताम् ॥ ८ ॥ त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥ तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ १० ॥

भा० टी०—उक्तप्रकारका तक्र सैकडों वात कफके विकारोंको हटाता है। अथवा गुड, पिप्लीसे, वा निशोथ और दन्तीसे युक्त अभया (हरड)को घृतमें पकाकर खावे तो वातआदिकोंकी अनुकूलता होय। एवं तिल और भिलावेंका फल एकसाथ सिद्ध कियेजानेपर सेवन कियाजाय तो उदराग्नि बढता है, कुष्ठरोग दूर होता और बवासीर अत्यन्त नष्ट होता है॥८॥९॥१०॥

तिलं भल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशिकम् ॥
दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम् ॥ ११ ॥

भा० टी०—तिल, भिलावेंका फल, हरड, गुड, जटामासी इनका प्रयोग बवासीर, श्वास, काश, फीहा, पाण्डु, तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

मृल्लिप्तं शौरिणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत् ॥
अद्यात्सतैललवणं दुर्नाम विनिवर्तयेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०—सूरणकन्द (जमीकन्द) को मिट्टीसे लेप करके पुटपाकके समान अग्निमें पकावे, तब तैल और लवणके साथ उसको खावे तो बवासीर दूर हो॥ १२॥

स्विन्नं वार्ताकुफलं व्योमायाः क्षारजेन सलिलेन॥ तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेन नित्यं समास्वदताम् ॥ १३ ॥ पिबतां च तक्रमेषां गुदसन्तोदव्यथा वृद्धा॥याति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण॥ १४॥

भा० टी०—व्योमा (अभ्रक) छारके जल करके स्वेदित (उबाला हुए) वैंगनको घीमें भून करके नित्य सात दिन पर्यन्त गुडके साथ सेवन करते हुए ॥ १३ ॥ तथा पीछे तक्रपान करते हुए मनुष्योंके गुदद्वारकी अतिव्यथा (बवासीर) सहवर्ती रोगोंके साथही नष्ट होती हैं ॥ १४ ॥

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकण्डूरुजापहा ।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाऽभया ॥ १५ ॥

भा० टी०–अभया (हरड) गुडके साथ सेवन किये जानेसे पित्त कफको शान्त करती और कोढ, खुजलीको दूर करती है तथा गुदद्वारके समस्त विकारोंको नष्ट करती है ॥ १५ ॥

त्वचं चित्रस्य मूलस्य पिष्ट्वा कुंभं च लेपयेत् ॥
तक्रं वा दधि वा तत्र क्षारमर्शोहरं पिबेत् ॥ १६ ॥

भा० टी०–चीतेकी जडकी त्वचाको पीसकर कलश पर लेपन करै तब उसपर सिद्ध-कीहुई छांछ वा दधिप्रभृति अर्शोहर क्षार पदार्थोंको सेवन करे ॥ १६ ॥

त्रिफलादशमूलानां निकुम्भानां पलं पलम् ॥
वारिद्रोणे शृतं पादशेषेऽगुरुतुलायुतम् ॥ १७ ॥

भा० टी०–त्रिफला, दशमूल और दन्ती इनको एक एक पल भाग लेकर एक द्रोण जलमें काढा बनावे जब जल चतुर्थांश रह जाय तब १०० पल अगुरु मिला लेवे ॥ १७ ॥

शुद्धभाण्डे स्थितं मासं दन्त्यरिष्टो निषेवितः ॥
गुदजान्कृम्युदावर्तग्रहणीपाण्डुरोगहा ॥ १८ ॥

भा० टी०–तब इस काढेको एक मास पर्यन्त शुद्ध भाण्डमें स्थित किये रहनेसे दन्त्यरिष्ट नामक क्वाथ सिद्ध होता है, यह गुदद्वारके विकार और कृमि उदावर्त, ग्रहणी, पाण्डु रोगोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

चित्रकं हबुषां हिंगु दद्यात्तक्रसमायुतम् ॥
यवकोलकयुक्तं तु चूर्णं तस्मै प्रदापयेत्॥ ॥ १९ ॥

भा० टी०–चीता, हाऊवेर, हींग इनके चूर्णको छांछके साथ ववासीरवालेको देवे अथवा इन्द्रयव और मिरचके चूर्णको देवे ॥ १९ ॥

अथाऽभयारिष्टः।

हरीतकीनां प्रस्थार्द्धं प्रस्थमामलकस्य च॥ कपित्थानां दशपलं ततोऽर्द्धेणेन्द्रवारुणी॥२०॥ विडङ्गपिप्पलीलोध्रं मरिचं शैलवालकम्॥ द्विपलांशं जले तच्च चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥२१॥ द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते प्रदापयेत् ॥ गुडस्य द्विशतं तिष्ठेन्मासार्द्धं घृतभाजने ॥२२॥ त्वगेलापत्रतालीसत्रिकटूनि तथैव च ॥ पक्षादूर्द्ध्वं भवेद्देयं ततो मात्रा यथाबलम् ॥ २३ ॥ अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा

---

१ 'अरिष्टादेस्तु सन्धानं धातकीलिप्तभाजने'।
भा० धावडेके कल्कसे लिप्तकियेहुए पात्रपर अरिष्ट आदिको स्थापन करना कहाहै।

यान्ति संक्षयम् ॥ ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरापहः ॥ २४ ॥ कुष्ठशोथारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ॥ २५ ॥ कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरापहः ॥ पीयमानमरिष्टादेः क्वाथं पानसमं जगुः ॥ २६ ॥

भा० टी०–आधा प्रस्थ हरड, एक प्रस्थ आंवला, दश पल कैथा, पांच पल इन्द्रायण, ॥ २० ॥ और वायविडंग, पिप्पली, लोध, मिरच, शैलवालुक इन सबके दो दो भाग लेकर चार द्रोण जलमें पकावे ॥ २१ ॥ जब एक द्रोण रस बाकी रहजाय तब उसके शीतल होनेपर २०० पल गुड रखछोडे और आधा मास पर्यन्त घीके बर्तनमें उस रसको रहने देवे ॥ २२ ॥ १५ दिनके बाद उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीशपत्र, सोंठ, मिरच, पीपल इनको रखछोडे तब रोग और रोगीके बलके अनुमानसे इसकी मात्रा (खुराक) करनी चाहिये ॥ २३ ॥ इस अभयारिष्टके सेवनसे गुदद्वारके सब विकार नष्ट होते हैं। किंबहुना, यह अभयारिष्ट ग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, फीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सूजन, अरुचि इन सबको हरता और बल, वर्ण, अग्निको बढाता है, एवं कमलवात, श्वेतकोढ, कृमिरोग, ग्रंथिरोग, अर्बुदरोग, व्यंगरोग, क्षय, ज्वर इन सब उपद्रवोंको नष्ट करता है। क्याही कहैं अरिष्टादि क्वाथका पान पानही सरीखा है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ दुरालभाद्यरिष्टः ।

दुरालभायाः प्रस्थे तु वासायाश्चित्रकस्य च ॥ अभयामलकानाञ्च पाठाया नागरस्य च ॥ २७ ॥ दन्त्याश्च त्रिपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादावशेषे पूते च शीते तस्मिन्सितासिते ॥ २८ ॥ दत्त्वा कुंभे दृढं स्थाप्य मासार्द्धं घृतभाविते ॥ प्रलिप्ते पिप्पलीचव्याप्रियंगुमधुसर्पिषा ॥ २९ ॥ तस्य मात्रां पिबेत्काले ह्यरिष्टस्य यथाबलम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमुदावर्तमरोचकम् ॥ ३० ॥ शकृन्मूत्रानिलोद्गारविबन्धानग्निमार्दवम् ॥ हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च सर्वमेतच्च साधयेत् ॥ ३१ ॥

भा० टी०–एक प्रस्थ दुरालभा, और वांसा, चीता, अभया (हरड), आंवला, पाठा, सोंठ ॥ २७ ॥ दन्ती इन तीन तीन पल भागोंको एक द्रोण जलमें पकावे। जब चतुर्थांश रहकर शुद्ध और शीतल हो जाय तब उसमें शक्कर देकरके ॥२८॥ जिस घडेमें कभी घी रक्खा गया हो उस पर पिप्पली, चव्य, प्रियंगु, मधु तथा घृतसे लेप करके उस पूर्वोक्त रसको उसी घडेमें दृढतासे आधा मास पर्यन्त रक्खे रहै ॥ २९ ॥ पीछे समय समय पर यथाशक्ति इसकी

मात्राको पान करै क्योंकि यह दुरालभारिष्ट बवासीर, ग्रहणीदोष, उदावर्त, अरुचि ॥ ३० ॥ तथा मलमूत्रका कलुषित होकर निकलना, विबन्ध, अग्निमान्द्य, हृद्रोग, पाण्डुरोग इन सब उपद्रवोंको साधता है ॥ ३१ ॥

अथ कल्याणलवणः।

भल्लातकानि त्रिफला दन्ती चित्रकमेव च ॥ एतानि समभागानि सैन्धवं द्विगुणं भवेत् ॥ ३२ ॥ कपालाग्नौ भवेत्पक्वं मृदुना गोमयाग्निना॥ एष कल्याणलवणो वल्लभोऽर्शोविकारिणाम् ॥ ३३ ॥

भा० टी०–भिलावां, त्रिफला, दन्ती, चीता इनके समभाग लेवे और इनसे दुगुना सेन्धानोन हो तब इस चूर्णको नारियलके खप्पर पर कोमल गोमयाग्निके द्वारा पकावे ऐसा करनेपर बवाशीर रोगवाले मनुष्योंका अतिप्रिय कल्याणलवण सिद्ध होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ प्राणमोदकः।

त्रिपलं शृंगवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च ॥ पिप्पल्याः कुडवार्द्धं च चव्यायाः पलमेव च ॥ ३४ ॥ तालीसपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च ॥ द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धं कर्षं च पत्रकम् ॥ ३५ ॥ सूक्ष्मैलाकर्षमेकन्तु कर्षं च त्वङ्मृणालयोः ॥ गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ३६ ॥ अक्षप्रमाणगुटिकाः प्राणदा इति विश्रुताः ॥ पूर्वं भक्ष्याश्च पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ॥ ३७ ॥ मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यन्त्रजानि च ॥ ३८ ॥ वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ क्रमिहृद्रोगिणाञ्चैव एताः स्युरमृतोपमाः ॥ ३९ ॥ पानात्यये मूत्रकृच्छे वातरोगे गलग्रहे ॥ अयुग्ज्वरे च मन्दाग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च ॥ ४० ॥ शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे वातपित्तजे ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ॥ ४१ ॥ पलद्वयं चाऽनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ प्राणदस्य शितां हत्वा द्व्यमानाच्चतुर्गुणाम् ॥ ४२ ॥ अम्लपित्तेऽग्निमान्द्ये च प्रयोज्यो गुदजातुरे ॥

भा० टी०–तीन पल सोंठ, इसके चतुर्थांश मिरच, १६ तोला पीपल, १ पल चव्य ॥ ३४ ॥ पलभर तालीसपत्र, आधा पल केशर, २ पल पीपलामूल, आधाकर्ष तेज

पात ॥ ३५ ॥ एक कर्ष छोटी इलायची, १ कर्ष दालचीनी और मृणाल, ३० पल गुड इन-सबको एकत्रित करके चूर्ण बनालेवे ॥ ३६ ॥ तब इसकी दो २ तोलाभर वटिका बनालेनी, इनका नाम प्राणदा वटिका हुआ। यह वटिका भोजनके पहिले भी और पीछे भी यथारुचि सेवन करलेनी ॥३७॥ अनुपानमें मद्य, मांसरस, यूष, दूध, जल इतनी वस्तु होनी चाहिये। इस प्रकार सेवन कीजातीहुई प्राणदा वटिका, सबप्रकारके समस्त बवाशीरोंको तथा सहजनित और आंतडेके रोगोंको भी नष्ट करती है ॥ ३८ ॥ एवं वातज, पित्तज, कफज और संनिपातज रोग भी इससे नष्टहुए जानने। किंबहुना-यह वटिका, कृमिरोग और हृद्रोगवाले मनुष्योंके लिये भी अमृतके समान है ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार मदात्यय, मूत्रकृच्छ, वातरोग। गलग्रह, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, इन उपद्रवोंमें भी इन्हें हित जानिये ॥ ४० ॥ वातपित्तसे उत्पन्नहुए विड्ग्रहमें शुण्ठीके जगे हरडका प्रयोग करना, यह भी ध्यान रहे कि, पहिले जो अनुपान कहा हैं वह श्लेष्मजनित व्याधिमें तो पलभरके प्रमाणसे और वातजनितमें दो पलके प्रमाणसे और पित्तजमें तीन-पलके प्रमाणसे करना उचित है प्राणदा गुटिकाके द्रव्यमानसे चौगुनी शक्करको खरल करके अग्निमान्द्य और अम्लपित्तमें तथा बवाशीररोगमें उसका प्रयोग करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ कांकायनमोदकः।

पथ्या पञ्चपलान्येकपलार्द्धं मरिचस्य च ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूल-चव्यचित्रकनागराः ॥ ४३ ॥ पलाभिवृद्धाः क्रमशो यवक्षारप-लद्वयम्। भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः ॥ ४४ ॥ द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसंमितान् ॥ कृत्वैकं भक्षयेत्प्रातस्तक्रम-म्भोऽनु वा पिबेत् ॥ ४५ ॥ मन्दाग्निं दीपयत्येष ग्रहणीपाण्डुरो-गनुत् ॥ कङ्कायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना ॥ ४६ ॥ भिषग्जितमिदं प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम् ॥ ४७ ॥

भा० टी० पांच पल हरड, आधा पल मरिच, १ पल पीपल, २ पल पिपलामूल, ३ पल चव्य, ४ पल चीता, ५ पल शोंठ ॥ ४३ ॥ २ पल जवाखार, ८ पल भिलावां, इनसे दूना जमीकन्द ॥ ४४ ॥ और इन सबसे दूना गुड लेकर इनके दो २ तोला प्रमाण वटिका बनाकर प्रतिदिन एक २ वटिकाको प्रातःकाल सेवन करै और पीछेसे तक्रको पानकरे ॥ ४५ ॥ क्योंकि यह **कांकायनमोदक**, मन्द हुए अग्निको बढाता और ग्रहणी, पाण्डुरोगोंको दूर करता है। कंकायनमहर्षिने शस्त्र,क्षार और अग्निप्रयोगके विनाही इस भिषग्जित मोदकविधिको शिष्योंके लिये कहाथा, यह **बवाशीरवाले** रोगियोंको अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ लवणोत्तमाद्यं चूर्णम्।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवाञ्चिरविल्वमहापिचुमन्दयुतान् ॥ पिब सप्तदिनं मथितालुलितान्यदि मर्दितुमिच्छसि वायुरुहान् ॥४८॥

भा० टी०-सैंधानोन, चीता, इन्द्रजौ, करञ्ज (कञ्जा) बाडनीम, इन सबको एकत्रित करके सुंदर मथनकिये रसको सात दिन पर्य्यन्त पान कर, यदि तू वायुजनितरोगोंको मर्दन करना चाहता है ॥ ४८ ॥

अथ समशर्कराचूर्णम्।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितपूर्वमन्त्यात् ॥
खादेदिदं समसितं गुरुजाग्निमान्द्यगुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ४९ ॥

भा० टी०-सोंठ, पीपल, मिरच, पानका पत्ता, दालचीनी, इलायची-इन सबका चूर्ण बनाय और इसके समान भागवाली शक्करको उसमे मिलाय क्रमशः इसकी मात्रा बढा २ कर खावे और फिर अन्तिम दिनसे एकोत्तरके क्रमसे घटा २ कर समाप्त करे। जब बवासीर, अग्निमान्द्य, गुल्म, अरुचि, श्वास, कण्ठरोग, हृद्रोग-इतने रोगोंकी संभूति हो ॥ ४९ ॥

अथ चतुःसमो मोदकः।

सनागरारुष्करवृद्धदारकं गुडेन यो मोदकमर्द्धदारकम् ॥
अर्शःसुदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ ५० ॥

भा० टी०-सोंठ, भिलावां, विधारा, गुड इन चार वस्तुओंको सम भाग लेकर जो वैद्य बवासीर, संग्रहणी आदि रोगोंको फाडनेवाले **अर्द्धदारक**नामक मोदकको बनाता है वह सहसा रोगाक्रान्त दारकको वृद्धिंगत करता है ॥ ५० ॥

अथ व्योषाद्यं चूर्णम्।

व्योषाग्न्यरुष्करविडंगतिलाभयानां चूर्णं गुडेन[1] सहितं तु सदोपयोज्यम् ॥
दुर्नामशोफगरकुष्ठशकृद्विबन्धानग्नेर्जयत्यबलतां क्रमिपाण्डुताञ्च ॥ ५१ ॥

भा० टी०-व्योष (सोंठ, मिरच, पीपल,) चीता, भिलावां, वायविडंग, तिल, अभया-(हरड,) इनका चूर्ण बनाय नित्य गुडके साथ उपयोगमें लावे, क्योंकि यह चूर्ण बवासीर, सूजन, गर, कोढ, विड्विबन्ध और अग्निकी निर्बलता तथा क्रमि और पाण्डुरोगको जीतता है ॥ ५१ ॥

अथ मरिचाद्यं चूर्णम्।

मरिचपिप्पलिनागरसंमितं क्रमविवर्द्धितभागसमाहितम् ॥
शिखिचतुर्गुणशूरणयोजितं गुरुगुडेन जुषस्व गुदार्तिमन् ॥ ५२ ॥

भा० टी०-अए बवासीररोगवाले ! १ भाग मिरच, २ भाग पीपल, ३ भाग सोंठ और

---

१ 'चूर्णे चूर्णसमो देयो द्विगुणो मोदके गुडः'।
इस चूर्णमें चूर्णके प्रमाणसे गुड देना, और इसके मोदकमें दूना गुड।

४ भाग चीता तथा चीतेसे चौगुना जमीकन्द लेकर चूर्ण बनाय कौंछ और गुडके साथ नित्य सेवन करो ॥ ९२ ॥

अथ शूरणपिण्डी ।

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य भागास्तदर्द्धेन च चित्रकस्य ॥
महौषधाद्द्वौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाऽपि पिण्डी ॥ ५३ ॥

भा० टी०–१६ भाग जमीकन्द, ८ भाग चीता, २ भाग सोंठ, १ भाग मिरच इन करके सिद्ध कीहुई सूरणपिण्डी भी बवासीरको जीतती है ॥ ९३ ॥

अथ स्वल्पसूरणो मोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ॥
सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ ५४ ॥

भा० टी०–मिरच, सोंठ, चीता, जमीकन्द इनके भागोंको उत्तरोत्तर क्रमसे दुगुन लेकर इन सबके सम भाग गुडको मिलानेसे प्रसिद्ध फलवाला मोदक सिद्ध होता है। यह बवासीरमें सेवन करने योग्य है ॥ ९४ ॥

औदरिकाग्निं ज्वलयति द्रागुन्मूलयति शूलगुल्मगदान् ॥
निःशेषयति श्लीपदमर्शांसि च नाशयत्याऽशु ॥ ५५ ॥

भा० टी०–पूर्वोक्त मोदक–जठराग्निको बढाता, शूल और गुल्मरोगको शीघ्र ही उखाडता है, एवं पादरोगको निःशेष करता और बवासीरोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ९९ ॥

अथ बृहच्छूरणादिः ।

भागा महौषधस्याऽष्टौ चत्वारो मरिचस्य च॥ त्रिफलायाश्च चत्वारः श्लेषस्य कथितस्य च ॥ ५६ ॥ शूरणादेरिदं मानं पलमष्टोत्तरं शतम् ॥ षोडश शूरणभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्याऽपि ॥ ५७ ॥ अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चाऽर्द्धेन ॥ त्रिफला कणा समूला तालीशारुष्करक्रमिघ्नानाम् ॥ ५८ ॥ भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्याऽपि ॥५९॥ भृंगैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र कारयेद्वैद्यः ॥ चूर्णद्विगुणेन गुडेन सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः ॥ ६० ॥ गुरुवृष्यमिष्टरहितेष्वितरेषूपद्रवं कुरुते ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ॥ ६१ ॥ भीमस्यानिलसूनोरेतौ यस्मान्महाशनौ

जातौ केवलमग्निबलानां वृद्ध्यै नो शूरणो महावीर्य्यः ॥ ६२ ॥ प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना चार्शसामेषः ॥ श्वयथुश्लीपदजेता ग्रहणीनुद्वातपित्तकफकाश्च ॥ ६३ ॥ वलिपलितं नाशयति मेधां कुरुते वृषत्वं च ॥ यत्नेनेमं मोदकमार्य्यं रचयेद्भिषग्विद्वान् ॥ ६४ ॥

भा० टी०–८ भाग सोंठ, ४ भा० कालीमिरच, ४ भा० त्रिफला, शेष पूर्वोक्त प्रमाण-वाला शूरणादिगण ॥ ५६ ॥ अनुमानसे इन सबके १०८ पल होने चाहिये। अथवा १६ भा० शूरण (जमीकन्द), ८ भा० चीता, ८ ही भाग सोंठ ॥ ५७ ॥ ४ भा० मिरच, दो २ भा० त्रिफला, पिप्पली और पिप्पलीमूल, सोंठके अंशप्रमाण (आठ आठ भाग) से तालीशपत्र और भिलावां तथा वायविडंगको लेवे ॥५८॥ चीतेके भाग प्रमाणसे (८ भाग) मुशली, १६ भाग विधारा ॥ ५९ ॥ चार २ भाग भृङ्ग (दालचीनी) और इलायची–इन सबको वैद्य एकत्रित करके चूर्ण बनावे चूर्णका दुगुना गुड लेकर मोदक बनाय धनवान् मनुष्यने कामोपभोगोंके साथ इसे सेवन करना ॥ ६० ॥ क्योंकि–यह गुरु और पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक है अतएव कामोप-भोगोंसे रहित निर्धन मनुष्योंके यह बहुत उपद्रव करता है। इसी योगराजने पूर्वकालमें अग-स्त्यऋषि और भीमसेनके जठराग्निको बढाकर उनको महाशन (बहुत भोजन करनेवाला) बनाया था ॥ ६१ ॥ यह महत् पराक्रमवाला **"बृहच्छूरण"** मोदक–केवल अग्निबलका ही वर्द्धक नहीं किन्तु जहां बवासीर रोगमें शस्त्र, क्षार और अग्निका कुछ वश नहीं चलता वहां भी यह कार्य्यवाही करनेको समर्थ है ॥ ६२ ॥ किंबहुना–यह मोदक--शोथ, श्लीपद (पादरोग) का जीतनेवाला एवं ग्रहणीको दूरकरनेवाला तथा वात पित्त कफ और वलि पलितादि वैरूप्य (नजला) को भी दूरकरके बुद्धि और पुष्टताको बनाता है। अतः विद्वान् वैद्यको उचित है कि, इसको यत्नसे बनावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ चव्याद्यं घृतम्।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च ॥ यवानीं पिप्पलीमूलं उभे च बिडसैन्धवे ॥ ६५ ॥ चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिषि पाचयेत् ॥ शकृद्वातवानुलोम्यार्थं खादेद्दध्नि चतुर्गुणे ॥ ६६ ॥ प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ॥ गुदवक्षणशूलं च घृतमेत-द्व्यपोहति ॥ ६७ ॥

भा० टी०--चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, पाठा, जवाखार, धनियां, अजवायण, पिपली-मूल, बिडलोन, सेंधालोन ॥ ६५ ॥ चीता, बेलगिरी, हरड, इन सबका चूर्ण बनाय घृतमें पकावे तब दूषित मल और धातुओंके अनुकूल होनेके लिये मात्रासे चौगुने दधिमें इस घृतको

सेवन करे क्योंकि-यह घृत प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परिस्रव और गुदद्वार जंघा जोडके शूलको भी दूरकरता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अथ पिप्पल्यादि तैलं घृतम् ।

पिप्पलीं मधुकं बिल्वं शताह्वां मदनं वचाम् ॥ कुष्ठं शुण्ठीं चित्रकं च देवदारु तथैव च ॥ ६८ ॥ पिष्ट्वा तैले विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् ॥ अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ ६९ ॥ गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वंक्षणाश्रयम् ॥ ७० ॥ पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम् ॥ उत्थानं बहुशो यच्चनयेच्चैवाऽनुवासनात् ॥ ७१ ॥

भा० टी०-पिपली, मुलहटी, वेल, सौंफ, मैनफल, वचा, कूठ, शोंठ, चीता, देवदार ॥६८॥ इन सबको पीसकर दुगुने दूधके साथ तैलमें पकाना । सिद्ध होनेपर बवासीरवाले और मूर्च्छितवायुवाले रोगियोंके इस तैलसे वस्तिकर्म करना श्रेष्ठ है ॥ ६९ ॥ वैद्यको उचित है कि- इस स्नेहवस्तिके कर्मसे गुदभ्रंश, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कटिभाग और जघनभाग तथा पृष्ठभाग की निर्बलता, जंघाजोडका आनाह (एकप्रकारका शूल) ॥ ७० ॥ पिच्छास्राव, गुदद्वारकी सूजन, वायुसे कान्तिका नाश होजाना तथा वार २ बवासीरोंका उत्पन्नहोना--इन सब उपद्रवोंको जीतलेवे ॥ ७१ ॥

अथ कल्याणलेहापरनामा श्रीबाहुलाशो गुडः ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी ॥ गवाक्षीविश्वमुस्ताब्दविडङ्गानि हरीतकी ॥ ७२ ॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करम् ॥ षट्पलं वृद्धदारस्य शूरणस्य च षोडश ॥ ७३ ॥ जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ पूते तस्मिन्रसे भूयः क्वथितात्त्रिगुणो गुडः ॥ ७४ ॥ लेहं पचेत्तु तं तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥ अवतार्य्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ७५ ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्विपलांशिकान् ॥ एलात्वङ्मरिचं चाऽपि नागाङ्कं चाऽपि षट्पलम् ॥ ७६ ॥ द्वात्रिंशत्पलयुक्चूर्णं दत्त्वा तावन्निधापयेत् ॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ ७७ ॥ पञ्चगुल्मप्रमेहाँश्च पाण्डुरोगहलीमकम् ॥ जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥७८॥ वर्द्धयेद्ग्रहणीम-

न्दान्यक्ष्माणं चाऽपि कर्षति ॥ पीनसे च प्रतिश्याये चाऽस्थिवाते तथैव च ॥ ७९ ॥ अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उच्यते ॥ दुर्नामनिरयश्चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ८० ॥ जीवन्ति तं प्रयुञ्जानाः शतवर्षा निरामयाः ॥ आयुषो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशनः ॥ ८१ ॥ रसायनवरश्चैव मेधाजनन उत्तमः ॥ गुडः श्रीबाहुलाशोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ॥ ८२ ॥

भा० टी०–निसोत, तेजबल, दन्ती, गोखरु, चीता, कचूर, इन्द्रायण, सोंठ, मोथा, नागरमोथा, वायविडंग, हरड ॥७२॥ इन सबका १--१ पल प्रमाण, ८ पल भिलावा, ६ पल बिधारा, १६ पल जमीकन्द ॥ ७३ ॥ इन सबको दो द्रोणजलमें क्वथित करलेना, जब चतुर्थांश रहजाय और रस सिद्ध होजाय तब उसमें उसका तिगुना गुड रखकर ॥ ७४ ॥ लेहकी तरह पकातारहै जबतक करछीपर लेप हो। अनन्तर चूल्हेसे उतारकर वक्ष्यमाण वस्तुओंके चूर्णको इसपर डालदेवे ॥७५॥ वे वस्तु ये हैं--निसोत, तेजबल, जमीकन्द, चीता, इनके दो २ पल प्रमाण, और इलायची, दालचीनी, मरिच, नागकेशर, इनके छः २ पल प्रमाण ॥ ७६ ॥ सब मिलाकर ३२ पल प्रमाण चूर्णको उक्त लेहमें डालकर तबतक उसको पात्रसे ढककर रक्खे। पीछे उसकी मात्रा बनाकर खावे औषधीके पचजानेपर दूध वा मांसरसका भोजन करे ॥ ७७ ॥ यह लेह पंचगुल्म, (पार्श्वगुल्म, हृद्गुल्म, नाभिगुंल्म, वस्तिगुल्म, नाभिहृदयान्तरालग्रन्थिगुल्म), प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, सब प्रकारके बवासीर, सब प्रकारके उदररोग, इन सब उपद्रवोंको जीतता ॥ ७८ ॥ और ग्रहणीरोगसे मन्द हुए मनुष्योंको उल्लसित करता एवं राजयक्ष्माको भी खींचता है। यह लेह पीनसरोग, अस्थिगतवायु तथा अन्यान्य रोगोंमें भी कल्याणकारक कहा है ॥ ७९ ॥ बवासीरोंको अनेक वार नष्ट होकर फिर उत्पन्न हुए देखा है, अतः इस गुडको प्रयुक्त करते हुए मनुष्य निर्विकार होकर शतवर्ष पर्यन्त जीवेंगे। बहुत क्या कहना है–यह **श्रीबाहुलाशनामक गुड** आयुको बढानेवाला वलि पलितादि वैरूप्य (बुढापा) का नाशक तथा बुद्धिजनक और बवासीर रोगका शत्रुरूप उत्तम रसायन है॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ क्षिप्तस्तु निश्चलं तिष्ठेत्पतितस्तु न शीर्य्यति ॥ ८३ ॥ यदा दर्वीप्रलेपः स्यात्सा बद्धा वर्तुली भवेत्॥एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः ॥८४॥ सुखमर्द्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः ॥ पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ ८५ ॥

---

१ वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रैदोषिक ।

भा० टी०-(गुडपाकका ज्ञान कहते हैं)-जब जलपूरित पात्रमें फेंका हुआ पच्यमान गुड जलमें डूबजाय और निश्चल होकर टिका रहे तथा किसी प्रकार स्थानसे बिखरे नहीं ॥ ८३॥ तब जाने कि, गुडपाक सिद्ध होगया । अथवा जब करछीपर लेप होने लग जाय किंवा पकाते समय वर्तुलाकार हो तब गुडपाक सिद्ध हुआ जानो । सब गुडोंकी पाकविधि यही है ॥ ८४ ॥ जब गुड पाकको प्राप्त होता है तब वह सुखसे मर्दन करने और स्पर्श करने योग्य तथा सुगन्ध सौवर्ण्य और सुरससे सम्पन्न बनता है ॥ ८५ ॥

अथ भल्लातकगुडः ।

भल्लातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादशेषे रसे तस्मिन्पचे· द्गुडतुलां भिषक् ॥ ८६ ॥ भल्लातकसहस्रार्द्धं छित्त्वा तत्रैव दापयेत्॥ सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयवानीमुस्तसैन्धवैः ॥ ८७ ॥ कर्षांशैश्चूर्णितै- र्दत्त्वा त्वगेलापत्रकेशरान्॥खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानवः॥८८॥

भा० टी०-दो हजार भिलावेंके फलोंको १ द्रोण जलमें पकावे जब चतुर्थांश रस रहजाय तब उसमें तुला प्रमाण (१०० पल अर्थात् १६ सेर ४ पल) गुडको पकावे ॥ ८६ ॥ पीछे ५०० भिलावां फलोंको काट छांटकर और भी उसमें डाल देवे जब पूर्णतया सिद्ध होजाय तब त्रिफला, त्रिकटु, अजवायण, मोथा, सेंधानोन ॥ ८७ ॥ दालचीनी, इलायची, तेजपात, केशर इन सबके एक एक कर्षप्रमाण भाग लेकर चूर्ण बनाय उसी रसमें रख छोडे । अनन्तर अग्निबलको चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि, प्रतिदिन प्रातःकालमें उठकर इस गुडको सेवन करे ॥ ८८ ॥

कुष्ठार्शःकामलामेहान्ग्रहणीगुल्मपाण्डुताः ॥
हन्यात्प्लीहोदरं कासं क्रिमिरोगं भगन्दरम् ॥ ८९ ॥

भा० टी०-यह गुड कोढ, बवासीर, कामलारोग, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग इन सब उपद्रवोंको नाश करता हैं ॥ ८९ ॥

अथ भल्लातकावलेहः ।

चित्रकत्रिफलामुस्तं ग्रन्थिकं चविकाऽमृता ॥ हस्तिपिप्पल्यपामार्ग- दण्डोत्पलकुटेरकाः ॥ ९० ॥ एषां चतुःपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत ॥ भल्लातकसहस्रे द्वे छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ॥ ९१ ॥ तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक् ॥ तुलार्द्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ ९२ ॥ त्र्यूषणं त्रिफलावह्निसैन्धवं विड-

मौद्भिदम् ॥ सौवर्चलं विडङ्गं च पलिकाः सम्प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥ कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च ॥ शूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिःक्षिपेत् ॥ ९४ ॥ सिद्धे शीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम् ॥ प्रातर्भोजनकाले च ततः खादेद्यथाबलम् ॥ ९५ ॥

भा० टी०–चीता, त्रिफला, मोथा, पिप्पलीमूल, चव्य, गिलोय, गजपिप्पली, अपामार्ग, दण्डोत्पल, वनतुलसी ॥ ९० ॥ इनके चार चार पल भागोंको लेकर एक द्रोण जलमें पकावे दो हजार भिलावां फलोंको भी काट छांटकर उसीमें रख छोडे ॥ ९१ ॥ जब पकाते पकाते चतुर्थांश रहजाय तब वैद्यको उचित है कि, उसको एक लोहपात्रमें पकावे उसी समय १० पल तीक्ष्ण लोहका चूर्ण, २ कुडव (६४ तोला) प्रमाण घृत ॥ ९२ ॥ तथा त्रिकटु, त्रिफला, चीता, सेंधानोन, विडनोन, साम्भरनोन, कालानोन, वायविडङ्ग इनके एक एक पल भाग बनावे ॥ ९३ ॥ और ३२ तोला विधारा और मुशली, ८ पल जमीकन्द इन सबका चूर्ण बनाकर उक्त रसमें डाल देवे जब यह सिद्ध होकर शीतल होजाय तब इसमें ६४ तोला मधु रखछोडै । तब प्रतिदिन प्रातःकाल और भोजनकालमें रुचिपूर्वक इसका सेवन करे ॥ ९४॥९५॥

अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डरोगमरोचकम् ॥ कृमिगुल्माश्मरीमेहाञ्शूलं चाऽथ नियच्छति ॥ ९६ ॥ करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम् ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ ९७ ॥

भा० टी०–यह पूर्वोक्त लेह बवासीर, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, अरुचि, कृमिरोग, गुल्मरोग, पथरीरोग, प्रमेह, शूल इन सबका नियमन करता ॥ ९६ ॥ शुक्रको वढाता, और वलीपलितादि वैरूप्यको नशाता है अथवा यह लेह सर्वरोगोंका नाशकरनेवाला एक श्रेष्ठ रसायन है॥९७॥

अथ लेपः ।

वासां साधारणं लोध्रं तथैव च रसाञ्जनम् ॥ लाङ्गलिक्यास्तु मूलानि समभागानि कारयेत् ॥ ९८ ॥ एतेन नाभिलेपेन परितश्चतुरंगुलान् ॥ सिद्धोऽर्शसां प्रलेपोऽयं न तु भूयो भवन्ति ते ॥ ९९ ॥

भा० टी०–वांसा, सामान्यलोध, रसोत, कलिहारीकी जड इन सबको समभाग बनाकर तथा जलके साथ पीसकर नाभिके चारोंओरसे चार अंगुलपर्य्यन्त लेप करे तो फिर बवासीर कभी उत्पन्न नहीं होते क्योंकि यह लेप बवासीररोगियोंके लिये प्रसिद्ध है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ सवद्भिषक् ॥
दुष्टासृङ्निग्रहे जाते शूलानाहावसृग्गदाः ॥ १०० ॥

भा० टी०-वैद्यको उचित है कि-रक्तबवासीरवाले रोगीके टपकते हुए दुष्ट रक्त (रुधिर) को प्रथमही निगृहीत न करे क्योंकि झटिति दुष्टरक्तके निगृहीत हुएमें शूल, आनाह और रक्तविकार उत्पन्न होते हैं ॥ १०० ॥

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ॥
दधिशरमथिताभ्यासाद्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥ १०१ ॥

भा० टी०-माखन और तिलके सेवनसे, वा केशर तथा नवनीत और शक्करके अभ्याससे, किंवा दहीकी मलाई और मट्ठाके अभ्याससे रक्तको बहानेवाली बवाशीर शान्त होती हैं ॥ १०१ ॥

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः ॥
छागीक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम् ॥ १०२ ॥

भा० टी०-मञ्जीठ, उत्पल (नीलकमल), मोचरस, लोध, तिल, चन्दन इतनी वस्तुओंके साथ बकरीके दूधको रक्तबवाशीरमें प्रयुक्त करे ॥ १०२ ॥

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः ॥
सिद्धं घृतं विधेयं सशूलरक्तार्शसां भिषजा ॥ १०३ ॥

भा० टी०-कूटके फल और वक्कल, केशर, नीलकमल, लोध, धावडा इनके कल्कके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत रक्तबवासीरवाले रोगियोंके लिये वैद्यको बनाना चाहिये ॥ १०३ ॥ इति कुटजघृतम् ॥

कौटजं कल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान् ॥
पीत्वा रक्तार्शसो रक्तस्रुतिमाशु नियच्छति ॥ १०४ ॥

भा० टी०-कूडाके कल्कको लेकरके छांछके साथ पीसे तब उसको पानकरे तो रक्तबवासीरवाले मनुष्यका रक्तस्राव शीघ्र ही रुकजाय ॥ १०४ ॥

अथ कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ १०५ ॥ वस्त्रपूतं पुनः क्वाथ्यं पचेल्लेहत्वमागतम् ॥ भल्लातकविडंगानि त्रिकटुत्रिफलास्तथा ॥ १०६ ॥ रसाञ्जनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च ॥ वचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ १०७ ॥ गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ मधुनः कुडवं दद्याद्घृतस्य कुडवं तथा ॥ १०८ ॥ लेहोऽयं शमयत्यर्शो यस्य रक्तसमुद्भवम् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव

श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १०९ ॥ ये च दुर्न्नामजा रोगास्तान् सर्वान्नाशयत्यपि ॥ अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ॥ ११० ॥ ग्रहणीं मार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ॥ अनुपानं घृतं दद्यान्मधुतक्रं जलं पयः ॥ १११ ॥ रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते ॥ ११२ ॥

भा० टी०–१०० पल कूडेकी छालको पीसकर एकद्रोण जलमें पकावे जब पकते २ आठ-वां भाग शेष रहजाय तब उसको उतारकर ॥ १०५ ॥ कपडछान करके फिर भी पकावे। जब पकते २ लेहकी समान होजाय तब उसमें मिलावां, वायविडंग, त्रिकटु, त्रिफला ॥ १०६ ॥ रसोत, चीता, कूडाके फल, वचा, अतीस, बेलगिरी इन सबके एक २ पल भाग ॥ १०७ ॥ और ३० पल गुडको पीसकर मिलादे। फिर ३२ तोले सहद और ३२ तोले घृतको भी उसमें मिलादेवे॥१०८॥इसभांति सिद्धहुआ कुटजलेह-वातज,पित्तज, कफज, वा त्रिदोजषनित और रक्त-जन्य बवासीरको भी शान्त करता ॥१०९॥ और अम्लपित्त, अतिसार, पाण्डुरोग,अरुचि,ग्रहणी, मृदुता, कृशता, सूजन और कामलारोगको भी नष्ट करता है इसके अनुपानमें घी, मधु, तक्र, जल, और दूधको प्रयुक्त करे। यह कुटजावलेह अनेक रोगोंको नष्ट करनेके लिये निर्भर कहा है॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अथ शतमस्त्राक्षारः।

तोये कालकपुष्कजस्य विपचेद्भस्माढकं षड्गुणे पात्रे लोहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयेत् ॥ दग्ध्वाऽग्नौ बहुशंखनाभिशकलान्पूता-वशेषे क्षिपेत्सिद्धश्चण्डकरालमेष दहति क्षारो वरो रुक्शतम् ॥११३॥

भा० टी०–कठपाडरके छः गुने जलमें चार प्रस्थ भस्मको दृढ लोहपात्रमें पकावे और धीरे धीरे करछीसे पलोटता रहे। जब कुछ शेष रह जाय तब बहुतसे नाभिशङ्खके टुकडोंको अग्निमें भस्म करके उसमें मिला देवे। इस भांतिसे सिद्ध हुआ श्रेष्ठ क्षार सैकडों रोगोंको भस्म कर डालता है॥ ११३ ॥

नातिसान्द्रो नातितनुः स्मरपाक उदाहृतः ॥
दुर्न्नामकादौ निर्दिष्टः क्षारोऽयं प्रतिसाधकः ॥ ११४ ॥

भा० टी०–जिस पाकमें न अति गाढापन और न अति पतलापन ही हो उसका नाम **स्मरपाक** कहा है। स्मरपाकसे सिद्ध किया हुआ क्षार बवासीर आदिमें हित कहा है॥११४॥

अथ क्षीरसूत्रम्।

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरैः पुनःपुनः ॥
बद्धं दाढर्येन तत्सूत्रं छिनत्त्यर्शोभगन्दरम् ॥ ११५ ॥

भा० टी०-हरिद्राका चूर्ण और थूहरके दूधमें वार वार सिद्धकियाहुआ सूत्र बवासीरवाले रोगीके मस्सोंपर दृढतासे बांध दिया जाय तो बवासीर और भगन्दर रोगको काटता है ॥११५॥

अथ यन्त्रादिक्रिया ।

प्राग्दक्षिणं ततो वामं पृष्ठजं चाऽग्रजं क्रमात् ॥ पंचतिक्तेन संस्नेह्य दहेत्क्षारेण वह्निना ॥ ११६ ॥ वातजं श्लेष्मजं चाऽर्शः क्षारेणाऽसृग्जपित्तजम् ॥ गोजाशेफालिकापत्रैरर्शः संलिख्य लेपयेत् ॥ ॥ ११७ ॥ क्षारेण वाक्छतं तिष्ठेयन्त्रद्वारं पिधाय च ॥ तंचाऽपनीय वीक्षेत पक्वजम्बूफलोपमम् ॥ १८ ॥ यदि स्यान्न ततः सान्द्रं नो चेल्लिम्पेत्तथा पुनः ॥ तत्तुषाम्बुप्लुतं सम्यग्यष्टीकल्केन लेपयेत् ॥ ११९ ॥ न भिन्नं तालवर्णाभं वह्निदग्धं स्थितात्मकम् ॥ निर्वाप्य मधुसर्पिर्भ्यां वह्निसञ्जातवेदनम् ॥ १२० ॥ सम्यग्दग्धे ततः क्षीरिप्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् १२१

भा० टी०-पहिले दाहिनी ओरके तब बाईं ओरके तब पीछेके और तब आगेके मस्सोंको क्रमशः पंचतिक्तके द्वारा स्निग्ध बनाकर क्षारसे वा अग्निसे दग्ध करे ॥ ११६ ॥ वातज, पित्तज, कफज और रक्तज, बवासीरके मस्सोंको पथरी और निर्गुण्डीके पत्तोंसे लेखन करनेके अनन्तर क्षारयुक्त लेप करे ॥ ११७ ॥ तदनन्तर अर्शोयन्त्रके द्वारको हाथसे ढक सौ अक्षरके उच्चारण काल पर्यंत स्थित रहे और फिर हाथ हटाकर देखे यदि वे मस्से पके हुए जामुनके फलके समान होगए हों तो लेप सिद्ध जाननी अन्यथा फिर भी क्षारयुक्त गाढा लेप करना इसप्रकार लेपसिद्धि होनेके पीछे तुषाम्बु (अथवा दही, दहीके पानी)से क्षारयुक्त मस्सोंको धोडाले और पश्चात् मुलहठीके कल्कसे भलीभांति लेप करे ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ जो मस्सा ताडके समान कठिनरूप होनेके कारण भेदित न कियागया हो उसे अग्निदग्ध करे यदि दाहजन्य वेदना हो तो मधु घृतके द्वारा उसे निर्वापित करे ॥ १२० ॥ जब भलीभांति दग्ध होचुके तब वट आदि वा थूहर आदि क्षीरीवृक्ष, तथा पाखर, चन्दन, गेरु, गिलोय इनके कल्कमें घृत मिलाय लेप करे ॥ १२१ ॥

मुहूर्तमुपवेश्योऽसौ तोयसम्पूर्णभाजने ॥ क्षार उष्णाम्बुना प्राप्यो मलप्रस्रावबर्च्चसे ॥ १२२ ॥ दाहे दग्धादिजे लेपः शतधौतेन सर्पिषा ॥ नवान्नमाषतक्रादि सेव्यं पाकाय मात्रया ॥ १२३ ॥ पिबेद्व्रणविशुद्धयर्थं त्रिफलां सह गुग्गुलुम् ॥ जीर्णे शाल्यन्नमुद्गादि

पथ्यं सैन्धवतिक्तकम् ॥ १२४ ॥ रूढं सर्वव्रणं वैद्यः क्षारं दत्त्वाऽनुवासयेत् ॥ पिप्पल्याद्येन तैलेन भजेद्दीपनपाचनम् ॥ १२५ ॥ महान्ति नतु मूलानि छित्त्वैवं बलिनो दहेत्॥ यथास्वं दोषलं चाऽन्नमर्शसः परिवर्ज्जयेत् ॥ १२६ ॥

भा० टी०–तब इस रोगीको मुहूर्त (२ घटी) पर्य्यन्त जलपूरित पात्रमें बैठा देना उचित है । अनन्तर गरम जलके साथ पूर्वोक्त क्षारको मस्सोंके स्थानमें पहुंचावे ऐसा करनेसे मल मूत्रका बल बढेगा । दग्ध आदि क्रियासे उत्पन्न हुए दाहमें सौवार धोयेहुए घृतसे लेप करना । व्रणपाकके लिये नवान्न, और उडद तथा छांछ आदिका सेवन एकमात्राके अनुसार करना उचित है घावके शोधनके लिये गोगलसहित त्रिफलाक्वाथको पीवे । जीर्ण होजानेपर धान, मूंग, और सेंधानोन तथा तिक्तपदार्थोंको पथ्यमें लावे । जमेहुए घावोंको क्षारके द्वारा अनुवासित करे । पिप्पल्यादि तैलके साथ दीपन और पाचनका सेवन करे । इसप्रकार इस बलिष्ठरोगको विशाल जडोंको काटकर इसे भस्म करडाले । इस प्रयोगके अनन्तर भी यथाशक्ति ऐसे पदार्थोंको त्याग देवे जिनसे इसरोगमें दोषापत्ति आपहुंचे ॥ १२२–१२६ ॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंससदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्देऽर्शोरोगाधिकारः ॥ ७ ॥

अथाऽग्निवर्द्धनाधिकारः ८.

समस्य रक्षणं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः ।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥ १ ॥

भा० टी०–जब जठराग्नि सम हो तब मिताहारविहारादिकोंसे उसकी रक्षा करे । क्योंकि सम अग्निके होते कोई भी दोष आक्रमण नहीं करसकता । इस अग्निके विषम होनेपर वायुका, और तीक्ष्ण होनेपर पित्तका, और मन्द होनेमें कफका निग्रह करे । ऐसा करनेसे उन्माद, राजयक्ष्मा आदि दुर्घट रोग आक्रमण नहीं करेंगे ॥ १ ॥

हिङ्ग्वष्टकम् ।

त्रिकटुकमजमोदासैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः॥
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति२॥

भा० टी०–त्रिकटु ३, अजवायण ४, सेंधानोन ५, जीरा ६, कालाजीरा ७, इन सबका समानभाग लेकर इनका आठवां अंश हींगको लेवे । अनन्तर सबका चूर्ण बनाय प्रतिदिन भोजनके समय घृतके साथ प्रथम ग्रासमें सेवन करे तो यह हिंग्वष्टक चूर्ण जठराग्निको बढाता और वातरोगोंको भी नष्ट करताहै ॥ २ ॥

अथ राजमण्डः ।

अन्नमण्डं पिबेदुष्णं हिंगुसौवर्च्चलान्वितम् ॥
विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः ॥ ३ ॥

भा० टी०–चावलोंके गरम मांडको हींग और सञ्चरनोनके साथ मिलाय पान कियाजाय तो विषम और मन्द अग्नि भी पूर्णतया वृद्धिंगत होय ॥ ३ ॥

क्षुद्बोधनो बस्तिविशोधनश्च प्राणप्रदः शोणितवर्द्धनश्च ॥
ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता वायुं जयेदष्टयुतो हि मण्डः ॥ ४ ॥

भा० टी०–चावलोंका मांड वक्ष्यमाण आठ वस्तुओंके सारसे युक्तकियाजाय तो रोगीके भूखको बढाता, बस्तिको शुद्धकरता, प्राण और रुधिरको बढाता, ज्वर और कफपित्तको भी नशाता तथा वायुको जीतता है ॥ ४ ॥ आगे इसका विधान कहते हैं–

सुतण्डुलानां प्रसृतिद्वयश्च तदर्द्धमुद्गं कटुकत्रयं च ॥ कुस्तुम्बुरुः सैन्धवहिंगुतैलैरेभिश्च सर्वैः क्रियते तु मण्डः ॥५॥ मुद्गौदनौ पलौ द्वौ द्वौ सलिलं च चतुर्गुणम् ॥ सिद्धे प्रसाविते मण्डे समान्ताद् घृतभर्जिते ॥६॥ हिंगु भृष्टं माषमात्रं सैन्धवं सानकत्रयम् ॥ क्षिप्त्वावतारिते मण्डे प्रशस्ते भाजने धृते ॥ ७ ॥ लवंगमारिचं चूर्णं निधाय निकटे पृथक् ॥ देयो नागरिकाहस्ते विजलादोलनाश्रये ॥ ८ ॥ किंचित्कटाक्षं सा दत्वा सुधातुल्यं प्रकाशयेत ॥ ततः पिबेद्राजमण्डं दोषत्रयविनाशनम् ॥ ९ ॥

भा० टी०–२ पल चावल, १ पल मूंग, तथा सोंठ, मिरच, पीपल, धनियां, सेंधानोन, हींग, तैल इतनी वस्तुओंसे यह मंड बनाया जाताहै ॥ ५ ॥ अथवा दो २ पल मूंग, चावल, चोगुने जलमें पकाये जांय तब सिद्ध होनेपर मांडको पसाकर गोघृतमें सुन्दर भूनलेवे ॥ ६ ॥ अनन्तर एकमाषा भुनीहुई हींग, और सेंधा, त्रिकटु, धनियां इनके चूर्णको उसमें मिलाकर एक निर्मलपात्रमें रखदेवे ॥ ७ ॥ फिर झटिति एक चतुर विलासिनीके हाथपर उसे देकर निर्जल, निर्जन, निर्वात स्थानमें जावे ॥ ८ ॥ तहां वह चतुरा नायिका कुछ मधुर कटाक्षसे रोगीको आप्यायित करके अमृततुल्य मंडपात्रको प्रेमसे दिखावे । इसप्रकार यदि यह राजमण्ड पान कियाजाय तो अग्निदीपन करके तीन ही दोषोंको नष्ट करताहै ॥ ९ ॥

हरीतकी भक्ष्यमाणा सातत्येनाऽग्निदीपनी ॥
सैन्धवोपहिता वापि नागरेण गुडेन वा ॥ १० ॥

भा० टी०–सेंधानोन वा नागरमोथा वा गुडके साथ नित्य सेवन कीजातीहुई हरड जठराग्निको बढातीहै ॥ १० ॥

भोजनादौ सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥
अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–नित्य भोजनके आदिमें नोन और अदरखका सेवन करना पथ्य और रुच्य, तथा जिह्वा और कण्ठको शुद्ध करनेवाला अग्निवर्द्धक योग है ॥ ११ ॥

सिन्धूत्थपथ्यामगधोद्भववह्निचूर्णमुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ॥ नष्टामिषो हि सघृतेन गरिष्ठमन्नं भस्मीभवत्यशितमात्रमपि क्षणेन ॥ १२ ॥

भा० टी०–सेंधानोन, हरड, सुफेदजीरा, चीता इनके चूर्णको घृतसहित गरमजलके साथ नष्टअग्नि और क्षीणमांसवाला मनुष्य यदि सेवनकरे तो यत्किञ्चित् खाया हुआ गरिष्ठ पदार्थ भी एक क्षणमें भस्म होताहै ॥ १२ ॥

विषाभयागुडूचीनां कषायेण त्र्योषणम् ॥
पिबेच्छ्लेष्मणि मन्देऽग्नौ त्वक्पत्रसुरभीकृतम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–अतीस, हरड, गिलोय इनके कषायके साथ त्रिकटुको दालचीनी और तेजपातके मिलावसे सुगन्धित करके मन्दाग्नि और कफके उपद्रवमें सेवन करे ॥ १३ ॥

सिन्धूत्थहिंगुत्रिफलायवानीव्योषैर्गुडांशैर्गुटिकां प्रकुर्य्यात् ॥
तयाऽत्तया नैव वितृप्तिमीयात्खादन्नपीष्टं मुहुरिद्धवह्निः ॥ १४ ॥

भा० टी०–उतना ही गुड और उतना ही सैन्धव, हींग, त्रिफला, अजवायण, और त्रिकटुको लेकर खरल करके गुटिका बनालेवे,इसके सेवनसे मनुष्यकी जठराग्नि यहांतक बढजातीहै कि, वह मनमाने पदार्थोंको बार २ भक्षण करताहुआभी वितृष्णाको प्राप्त नहीं होता ॥ १४ ॥

गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा ॥
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ १५ ॥

भा० टी०–सोंठ, वा पीपल, वा हरड, वा दाडिमको गुडके साथ आम, अजीर्ण, गुदद्वारके रोग तथा विड्विबन्धमें नित्य सेवन करै ॥ १५ ॥

विडङ्गभल्लातकचित्रकामृतां सनागरां तुल्यगुडेन सर्पिषा ॥
निहन्ति ये मन्दहुताशना नरा भवन्ति ते बालकतुल्यवह्नयः ॥ १६ ॥

भा० टी०–वायविडंग, भिलावां, चीता, हरड, सोंठ इतनी वस्तुओंको समान भागवाले

गुडके साथ खरल करके घृतके संग सेवन करनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि बालकोंकी जठराग्निके समान होतीहै यद्यपि वह कैसीही मन्द क्यों न हो ॥ १६ ॥

हरीतकीधान्यतुषोदसिद्धा सपिप्पलीसैन्धवहिंगुचूर्णा ॥
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं विजित्य सद्यो जनयेत्क्षुधाञ्च ॥ १७ ॥

भा० टी०–हरडके चूर्णको धनियांके तुषोदक (छोहलका जल) से सिद्धकरके पिपली तथा सेंधानोन और हींगके चूर्णको उसमें मिलाय सेवन करे तो छर्दिके उपद्रव सहित बढे हुए अजीर्णको जीतकरके शीघ्र ही भूंखको उत्पन्न करता है ॥ १७ ॥

अथ चित्रकगुडः ।

वह्नेर्द्विपञ्चमूलस्य क्वाथे पलशतद्वये ॥ अमृताया रसस्यैके पूतेऽस्मिन्नभयाढकम् ॥ १८ ॥ पचेद्गुडतुलां तावद्यावत्पाकस्य लक्षणम् ॥ अन्येद्युस्तत्र मधुनः सुशीते कुडवद्वयम् ॥ १९ ॥ प्रक्षिपेत्त्रिसुगन्धस्य त्रिकटोश्च पलद्वयम् ॥ प्रत्येकं स्याद्यवक्षाराच्छुक्तिस्तस्मिन्नसायने ॥ २० ॥ उत्तमः कथितः पुंसामसावग्निविवृद्धये॥जीर्य्यत्यपि हि काष्ठानि कासं श्वासं क्षयं कृमीन्॥२१॥ गुल्मोदरार्शःकुष्ठानि निहन्त्येव पदेपदे ॥ योगैः शतैरप्यजेयाँस्त्र्यहाज्जयति पीनसान् ॥ २२ ॥

भा० टी०–चीता और दशमूलके २०० पल भाग वा गिलोयके १०० पल भागको लेकर क्वाथ बनावे, सिद्ध होनेपर ८ सेर हरड ॥ १८ ॥ और १०० पल गुडको भी उसमें मिलाय तबतक पकाता रहे जबतक गुडपाकके चिह्न दिखाई दें । जब पककर सिद्ध होरहे और ठंढा होजाय तब दूसरे दिन ६४ तोला मधु ॥ १९ ॥ और दो २ पलके प्रमाणसे त्रिसुगन्ध (इलायची, दालचीनी, तेजपात) और त्रिकटुको भी उसमें मिलालेवे । पीछे दो कर्ष जवाखार मिलानेसे यह उत्तम रसायन सिद्ध होताहै ॥ २० ॥ यह मनुष्योंके अग्निबलकी वृद्धिके लिये उत्तम कहाहै यहांतक कि, सूखी लकडीको भी पचाता और श्वास, काश, क्षय, ॥२१॥ कृमिरोग, गुल्म, उदर, बवासीर,कोढ इन सब रोगोंको पद २ में नष्ट करता एवं सैकडों उपायोंसे भी नहीं जीतेजानेके योग्य पीनसरोगोंको जीतता है ॥ २२ ॥

प्रायेणाऽऽहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ॥ तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विना न विनश्यति ॥ २३ ॥ ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढता ॥ विबन्धोऽपि प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ २४ ॥

भा० टी०–प्रायः आहारकी विषमता (न्यूनाधिकता) से मनुष्योंके अजीर्ण हुआ करताहै यही रोगसमूहोंकी जड़ है अतः इस (अजीर्ण) के नष्टहुए विना रोग भी नष्ट नहीं होते अजीर्णरोगके साधारण लक्षण यह हैं कि,शरीरमें ग्लानि, गरिष्ठता (भारीपन,) आलस्य, भ्रांति, वायुसे मूर्च्छित रहना, मलका रुकजाना वा अत्यन्त आम होकर निकलना इत्यादि ॥ २३ ॥ २४॥

आलिप्य जठरे प्राज्ञो हिंगुत्र्यूषणसैन्धवैः ॥
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ २५ ॥

भा० टी०–हींग, त्रिकुटु, और सेंधानोनसे पेटको लेपकरके मनुष्य दिनमें शयन करे तो सब प्रकारका अजीर्ण नष्ट होय ॥ २९ ॥

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतिक्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् ॥ क्षीणान्क्षीणकफान्शिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नराँस्त्रिरशनान्कामं दिवा स्वापयेत्२६॥

भा० टी०–व्यायाम (कसरत), कामिनी (मैथुन), घोड़ाकी असवारी इतनी वस्तुओंमें आसक्त होनेके कारण थकित हुए, अतिसाररोगवाले, शूल और श्वासरोगवाले, प्याससे व्याकुल हुए, हिचकीके वायुसे पीडितहुए, क्षीण, तथा कफ जिनका क्षीण हुआ हो, बालक, मादकवस्तुओंके सेवनसे व्याकुल हुए, वृद्ध,घृत दुग्ध आदिके पानसे अजीर्ण हुए, रात्रिमें जागे और तीनवार भोजनकरनेवाले मनुष्योंको भी यथेच्छ दिनमें शयन करावे ॥ २६ ॥

देवदारु वचा मुस्तं नागराऽतिविषाभयम् ॥
सर्वाजीर्णप्रशमनं पेयमेतैः शृतं जलम् ॥ २१ ॥

भा० टी०–देवदार, वचा, मोथा, सोंठ, अतीस, हरड इनके रसको पान करे, क्योंकि यह (रस) सबप्रकारके अजीर्णको शान्त करता है ॥ २७ ॥

सद्यो भुक्त्वाऽऽचमेद्यस्तु शुचिः शुद्धतनुर्निशि ॥ सोऽपि तोयं पिबेत्कोष्णं शीतं वा वह्निदीपनम् ॥ २८ ॥ धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः ॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ २९ ॥

भा० टी०–भोजनकरके तत्काल ही आचमन करनेवाला मनुष्य भी रात्रिमें शुद्ध सुचित्त होकर मन्दोष्ण वा शीतल जलको पान करे तो जठराग्नि बढे ॥ २८ ॥ अथवा चतुर वैद्यको उचित है कि, धनियां और सोंठके साथ सिद्धकिये जलको अजीर्णमें देवे क्योंकि यह जल आम अजीर्णको शान्त करता, शूलको नशाता और बस्तिको शुद्ध करता है ॥ २९ ॥

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्च्चलं पिबेत् ॥ मस्तुनोष्णोदकेनाऽथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ३० ॥ चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमथाऽरुचिम्॥आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाऽऽशु नियच्छति ॥३१॥

भा० टी०-हरड और पिपलीके चूर्णसे युक्त सञ्चरलोनके चूर्णको दधिजल वा गरमजलके साथ दोषके बलाबलको विचारकर पान करावे॥ ३० ॥ यह चूर्ण मन्दाग्नि, अरुचि, अफारा, वातगुल्म इन चारप्रकारके अजीर्णरोगों और शूलको भी नशाता है ॥ ३१ ॥

भवेदजीर्णं प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले ॥
पूर्वं सशुण्ठीमभयामशङ्को भुञ्जीत सम्प्राश्य हितं हितार्थी ॥ ३२ ॥

भा० टी०-जिस बलवान् मनुष्यको स्नेहपानसे अजीर्ण हुएकी शंका हो उसे उचित है कि, भोजनके समयमें प्रथम सोंठको खावे तब हित भोजनके अनन्तर अभया (हरड) को सेवै ॥३२॥

विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दह्येत हृत्कोष्ठगलं च यस्य ॥
द्राक्षासितामाक्षिकसम्प्रयुक्तां लीढाऽभयां वै स सुखं लभेत ॥ ३३॥

भा० टी०-जिसके भोजन करने अनन्तर खायाहुआ पदार्थ और हृदय, कोष्ठ, तथा कण्ठ भी जलता रहे वह मनुष्य दाख, शक्कर और मधुके साथ हरडका सेवन करनेसे सुख पाताहै॥३३॥

हिंगुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ॥ पिप्पली त्रिगुणा देया शृंगवेरं चतुर्गुणम् ॥ ३४ ॥ यवानिका पंचगुणा षड्गुणा च हरीतकी ॥ चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाऽष्टगुणं भवेत् ॥ ३५ ॥ एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं विशेषतः ॥ पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ ३६ ॥ शोथावर्णमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ॥ विनाश्य कान्तिं मेधां च पुष्टिं प्रकुरुते बलम् ॥ ३७ ॥ अंगानि यस्य जीर्यन्ति विषं वा येन भक्षितम् ॥ अर्शोघ्नं दीपनं चैव श्लेष्मघ्नं गुल्मनाशनम् ॥ ३८ ॥ कासं श्वासं निहन्त्याऽऽशु तथैव क्षयनाशनम् ॥ चूर्णमग्निमुखं नाम न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ३९ ॥

भा० टी०-१ भाग हींग, २ भाग वचा, ३ भाग पीपल, ४ भाग अदरख॥ ३४ ॥ ५ भाग अजवायन, ६ भाग हरड, ७ भाग चीता, ८ भाग कूठ॥ ३५ ॥ इन सबका चूर्ण बनाय दधि वा दधिजल, वा सुरा, वा मन्दोष्ण जलके साथ सेवन किये जाते ही॥ ३६ ॥ वायुको हरता और सूजन, विवर्णता, अजीर्ण, प्लीहा एवं औदारिक रोगको नाश करके बल, बुद्धि, कान्ति तथा पुष्टिको सम्पादित करता॥ ३७ ॥ और जिसके अङ्ग जीर्ण होगयेहों किंवा जिसने

विषभक्षण किया हो उसके लिये यह अत्यन्त उपयोगी है । बवासीर, कफ, गुल्म, कास, श्वास, और क्षयरोगका क्षय करनेवाला एवं अग्निबलको बढानेवाला यह (अग्निमुखनामक) चूर्ण किसी रोगमें कुंठित नहीं होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ बृहदग्निमुखं चूर्णम् ।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च ॥ सूक्ष्मैलापत्रकं भार्ङ्गी क्रिमिघ्नं हिंगु पुष्करम् ॥ ४० ॥ शठी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तथा ॥ धात्रीजीरकवृक्षाम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४१ ॥ अम्लवेतसमम्लीका दाडिमं त्रिकटूनि च ॥ भल्लातकाजमोदा च यवानी सुरदारु च ॥ ४२ ॥ अभयाऽतिविषा श्यामा हवुषारग्वधं समम् ॥ तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ ४३ ॥ आसनार्कधवाश्वत्थतिन्तिलीकार्ज्जुनस्य च ॥ चणकस्य तथा क्षारं लोहकिट्टं च शोधितम् ॥ ४४ ॥ समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ मातुलुंगरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४५ ॥ दिनत्रयञ्च शुक्लेन आर्द्रकस्य रसेन च ॥ अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ४६ ॥ उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदान् ॥ अजीर्णकमथो गुल्मान्प्लीहानं गुदजानि च ॥ ४७ ॥ उदराण्यन्त्रवृद्धिं च हन्त्येवं वातशोणितम् ॥ प्रणुदत्युल्वणान्रोगान्नष्टमग्निं च दापयेत् ॥ ४८ ॥

भा० टी०–जवाखार, सज्जीखार, चीता, पाठा, करञ्ज, पञ्चलवण, छोटी इलायची, तेजपात, भारङ्गी, वायविडङ्ग, हींग, कूठ ॥ ४० ॥ कचूर, दारुहलदी निसोत, मोथा, वचा, इन्द्रजौ, आंवला, जीरक, विषाविल, हरड, कालाजीरक ॥ ४१ ॥ अमलवेत, इमली, दाडिम, त्रिकटु भिलावा, अजमोद, अजवायन, देवदार ॥ ४२ ॥ हरड, अतीस, विधारा, हाऊबेर, अमलतास, इनका समभाग लेकर तिल, कटपाडर, सेंजन, तालमखाना, ढाक ॥ ४३ ॥ आसन (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली,) अर्क, धों, पिप्पल, इमली, कोह, शोधाहुआ लोहमल और चनेका क्षार (भस्म) ॥ ४४ ॥ इन सबका समभाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे । पीछे विजोरानींबूके रसमें ३ दिनपर्यन्त सिद्ध करके ॥ ४५ ॥ ३ दिनतक फिर भी माखन और अदरखरसके साथ सिद्धकरनेपर 'बृहदग्निमुख' नामक चूर्ण सिद्ध होगया । यह प्रज्वलित अग्निके समान भास्वर और अत्यन्त अग्निवर्द्धक है ॥ ४६ ॥ अतएव विधिपूर्वक उपयोगमें लायेजानेसे यह शीघ्र ही अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, बवासीर, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, वातरक्त प्रभृति उत्कट रोगोंको नष्ट करता और नष्टहुए अग्निको बढाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ भास्करलवणम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ॥ सैन्धवं सविलं चव्यं पत्रं तालीसकेशरम् ॥ ४९ ॥ एतान्द्विपलिकान्भागान्पंच सौवर्चलस्य च ॥ मारिचाजीरशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥५०॥ त्वगेले चाऽर्द्धभागे च सामुद्रकुडवद्वयम् ॥ दाडिमात्कुडवं चैकं द्वे पले चाऽम्लवेतसम् ॥ ५१ ॥ एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्य-ममृतोपमम् ॥ लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥५२॥ जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् ॥ वातगुल्मं नुदत्येत-द्वातशूलानि यानि च ॥ ५३ ॥ तक्रमस्तुसुरासिन्धुशुक्तकाञ्जिक-योजितम् ॥ जाङ्गलानां मांसरसैरन्यै रुचिकरैस्तथा ॥ ५४ ॥ मन्दाग्नेरश्नतः शक्तिर्भवेदाश्वेव दीप्तिमान् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं कुष्ठामयभगन्दरान् ॥ ५५ ॥ हृद्रोगमामदोषाँश्च विबन्धानुदरे स्थिरान् ॥ प्लीहानमश्मरीञ्चैव श्वासकासोदरं कृमीन् ॥५६॥ विशेषतः शर्करादीन्रोगान्नानाविधाँस्तु तत् ॥ पाण्डुरोगाँश्च विविधान्नाशयत्यशनिर्यथा ॥ ५७ ॥

भा० टी०-पीपलामूल, धनियां, कालाजीरा, सेंधानोन, विडलोन, चव्य, तेजपात, तालीसपत्र, केशर ॥ ४९ ॥ इनके दोदो पलप्रमाण भाग, और ९ भाग कालानोन, एकएक पलके प्रमाणसे मिरिच, जीरा, और शोंठ ॥ ५० ॥ आधाभाग दालचीनी और इलायची, ६४ तोला समुद्रनोन, ३२ तोला दाडिम, २ पल अमलवेत ॥५१॥ इन सबको खरलकरके उत्तम और सुग-न्धित 'भास्करलवण' नामक चूर्ण सिद्ध होता है । इसको भास्कर (सूर्यदेव) ने जगत्के हितकेलिये सम्पादित कियाहै ॥५२॥ यह वातरोग और कफका, एवं वातगुल्म और वातशूलका नाशक है ॥ ५३ ॥ यह चूर्ण छांछ, दधिजल, मद्य, सिम्हालुरस, वा चीतेके रसमें, वा इनकी काञ्जीके साथ, वा जांगलदेशीय मृगोंके मांसरसमें वा और प्रकारके रोचक रसोंके साथ उपयोगमें लाना उचित है ॥ ५४ ॥ इस विधिसे इस चूर्णको सेवन करतेहुए मन्दाग्निवाले मनुष्यका जठराग्नि शीघ्र ही प्रदीप्त होताहै और बवासीर, ग्रहणी, कुष्ठ, भगन्दर, हृद्रोग, आमदोष, पेटका विबन्ध, प्लीहा, पथरी, श्वास, कास, उदररोग, शर्करा (एकप्रकारका प्रमेह) इत्यादि नानाप्रकारके उपद्रवोंको और पाण्डुरोगको भी यह वज्रोपम चूर्ण नष्ट करता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अथ वार्ताकुगुटिका ।

चतुःपलं स्नुहीकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात् ॥ वार्ताकुकुडवश्चाऽर्का-
दष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ ५८ ॥ दग्ध्वा तु वार्ताकुरसे गुटिका
भोजनोत्तरे॥भुक्ता भुक्तं पाचयन्ति काशश्वासार्शसां हिताः॥५९॥
विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगघ्नाश्च ता मताः ॥ कार्या एता विशेषेण
अजीर्णे ग्रहणीगदे ॥ ६० ॥

भा० टी०--चार पल थूहर, ३ पल त्रिलवण (सेंधानोन, बिडलोन, कालालोन), ३२ तोला बैंगन, ८ पल अर्क, २ पल चीता ॥ ५८ ॥ इन सबको बैंगनके रसमें शोधकरके (जलाय कर) गुटिका बनालेवे । यह गुटिका प्रतिदिन भोजन करनेके अनन्तर सेवन कीजाती-हुई खायेहुए अन्नको शीघ्र ही पचाती और काश, श्वास, तथा बवासीर रोगवाले मनुष्योंके हित होती है ॥ ५९ ॥ एवं विसूची, पीनस और हृद्रोगको भी नष्टकरती हैं ॥ यह गुटिका प्रायः अजीर्ण और ग्रहणीरोगमें बनानी ॥ ६० ॥

अथ अग्निघृतम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ हिंगुर्वचाजमोदा
च पञ्चैव लवणानि च ॥ ६१ ॥ द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्याद-
र्द्धपलोन्मितान् ॥ दधिकाञ्जिकशुक्तानि घृतमात्रासमानि
च ॥ ६२ ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ६३ ॥ अर्शसां नाशनं
श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम् ॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोनिला-
नपि ॥ ६४ ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुञ्च भगन्दरम् ॥ ये च
बस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः ॥ ६५ ॥ सर्वांस्तान्नाश-
यत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः ॥ ६६ ॥

भा० टी०–पिपली, पिपलीमूल, चीता, गजपिपली, हींग, वचा, अजमोदा, पञ्च-लवण ॥ ६१ ॥ सज्जीखार, जवाखार, हाऊबेर इन सबके आधा २ पल भाग लेकर १ प्रस्थ घीमें पकावे । घृतके ही प्रमाणसे दधि, कांजी और चूकनको भी प्रथम ही मिलालेवे ॥ ६२ ॥ ऐसे विधानसे यह अग्निघृत सिद्ध हुआ । मन्दाग्निवाले मनुष्योंके यह अत्यन्त गुणकारी है ॥६३॥ एवं बवासीर, गुल्म, उदर, ग्रन्थिरोग, अरुचि, कास, कफ, मज्जागत वायु, ग्रहणीदोष, सूजन, भगन्दर, तथा बस्ति और कुक्षिके रोगोंको भी यह इसप्रकार नष्ट करता है जैसे उदयहुआ सूर्य अन्धकारको ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ चुक्रसन्धानम् ।

युग्मम्–प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुषजलात्प्रस्थत्रयञ्चाऽम्लतः प्रस्थार्द्धं दधितोम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके ॥ अन्ये शोधितशृङ्गवेरशकलाद्वे सिन्धवजाज्ये पले द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे॥६७॥स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन्वासरान्वासयेद्ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे ॥ षट्शीतेऽष्टदिनान्ततः परमिदं विस्राव्य सञ्चूर्णयेच्चातुर्य्याद्द्विपलेन संहितमिदं शुक्तञ्च चुक्रञ्च तत् ॥ ६८ ॥

भा० टी०–१ प्रस्थ चावलजल, ३ प्रस्थ छांछ और काञ्जी, आधा प्रस्थ दधि, ८ पल अमलवेत और मूली २ सेर गुड और किसीके मतसे २ पल शोंठ भी, २ पल सुफेद सुहागा और कालीजीर, २ पल पीपल और कालीमिरच, २ पल हलदी, इन सब वस्तुओंको स्निग्ध और दृढपात्रमें रखकर इस पात्रको धान वा जव आदि अन्नके पुञ्जमें स्थापन करके पर्य्युषित (बासी) करे । पर्य्युषित करनेकी समयावधि कहतेहैं–ग्रीष्म और शरद्में ३ दिनतक, वर्षाकालमें ४ दिनतक, वसन्तमें ६ दिनतक और हेमन्तमें ८ दिनपर्य्यन्त पर्य्युषित करे। इसके अनन्तर इसको औटाकर फटावे। ऐसा करनेपर यह 'शुक्त' वा चुक्र (काञ्जी) सिद्ध बनजायगा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ शार्दूलकाञ्जिकम् ।

गुडक्षौद्रारनालानि समस्तूनि यथोत्तरम् ॥ शंसन्ति द्विगुणं भागं सम्यक्चुक्रस्य सिद्धये ॥ ६९ ॥ पिप्पली शृङ्गवेरञ्च देवदारु च चित्रकः ॥ चविका बिल्वपेशी च अजमोदा हरीतकी ॥ ७० ॥ महौषधं यवानी च धान्यकं मरिचं तथा ॥ जीरकञ्च तथा हिंगुः काञ्जिकं साधयेद्बुधः ॥ ७१ ॥ एतच्छार्दूलकप्रख्यं काञ्जिकं बलवर्द्धनम् ॥ सिद्धार्थतैलसंसृष्टं दश रोगान्व्यपोहति ॥ ७२ ॥ कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ आमञ्च गुल्मशूलञ्च वातशूलञ्च वेदनाम् ॥ ७३ ॥ अर्शांसि श्वयथुश्चैव तस्मिन्पीते प्रशाम्यति ॥ ७४ ॥

भा० टी०–गुड, मधु, काञ्जी, दधिजल इनके उत्तरोत्तरक्रमसे द्विगुणित भाग लेने कहेहैं ॥ ६९ ॥ अनन्तर पिपली, अदरख, देवदार, चीता, चव्य, वेलगिरी, जटामांसी, अज-

मोदा, हरड॥ ७० ॥ सोंठ, अजवायन, धनियां, मिरिच, जीरक, हींग इतनी वस्तुओंको समभाग लेकर काञ्जिकको सिद्ध करे ॥ ७१ ॥ सिद्ध होनेपर यह शार्दूलकनाम कांजिक श्वास, कास, अतिसार, पाण्डुरोग, कामला, आम, गुल्मशूल, वातशूल, पीडा,बवासीर इन दश रोगोंको नष्ट करता है और सूजन भी शान्त होती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्देऽग्निवर्द्धनाधिकारः ८ ॥

अथ विसूचिकारोगाधिकारः ९.

विसूचिकाचिकित्सा।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम् ॥
विसूच्यां मर्दितं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ १ ॥

भा० टी०–कूडा और सेंधानोनके कल्कमें चूक और तेलको मिलाय कुछ गरम करके विसूचीरोगमें मर्दन कियेजानेसे हाथ पैरोंकी पीडा और शूल दूर होता है ॥ (चुक्राभावे तिलकाञ्जिकम्) ॥ १ ॥

करञ्जनिम्बं शिखरागुडूच्यर्ज्जुनवत्सकैः ॥
कृतः कषायो वमनैरुग्रां हन्ति विसूचिकाम् ॥ २ ॥

भा० टी०–करञ्ज, नीम, चुरनहार, गिलोय, कोह, कूडा इन करके सिद्ध कियाहुआ कषाय कय होनेसे भयङ्कर विसूचिकाको नष्ट करता है ॥ २ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रामूलं समावाप्य च मातुलुङ्गया ॥
छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं रसतां जनानाम् ॥ ३ ॥

भा० टी०–त्रिकटु, करञ्जका फल, हलदीकी जड, इनको बिहारी नींबूके रसमें सिद्ध करके गुटिका बनाय छायामें सुखालेवे। यह गुटिका भी मनुष्योंके विसूचिकारोगको नष्ट करती है ॥ ३ ॥

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रविष्टैः सवचाशताह्वैः ॥
उद्वर्तनं खल्लिविसूचिकाघ्नं तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥ ४ ॥

भा० टी०–दालचीनी, तेजपात, रासन, अगुरु, सैंजिन, कूडा, वचा, सौंप इनके चूर्णको छांछमें सिद्ध करके उबटन करनेसे हस्त पादकी पीडा और विसूचिका नष्ट होय। पकाहुआ तैल भी इसी प्रयोजनका साधक है ॥ ४ ॥

पिपासायां समुत्क्लेशे लवंगस्याऽम्बु शस्यते ॥
जातीफलस्य वा शीतं शृतं भद्रवनस्य च ॥ ५ ॥

भा० टी०--प्यास और उत्क्लेशमें लवङ्गका जल गुणकारी है अथवा जायफल और भद्रवनका शीतल क्वाथ भी हित है ॥ ५ ॥

विसूच्यामामवृद्धायां पार्ष्णिदाहः प्रशस्यते ॥
सरुक्कारुद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ ६ ॥

भा० टी०—आमरोगसे बढीहुई विसूचिकामें एडीपर दाह होना अच्छा है। जब इस-रोगके वर्तमान दशा वा निवृत्तहुएमें पेट रुकजाय तब देवदार, हरड कूडा, सौंफ, हींग सेंधानोन, इन सबको छांछमें पीसकर पेटपर लेप करे॥ इति दारुषट्कम्) ॥ ६ ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्तिं जठरे निहन्यात् ॥
स्वेदो घटैर्वा बहुवाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथाऽन्यैरपि पाणितापैः ॥७॥

भा० टी०—जवाखारसहित जवका चूर्ण छांछके साथ गरम करके उपयोगमें लाये जानेके पेटकी पीडाको नष्ट करता है। अथवा कूडाके गरम रससे भरेहुए घटोंके द्वारा बस्तिकर्म करने वा हाथप्रभृतिके तपानेसे भी उक्तरोग दूर होय ॥ ७ ॥

तीव्रार्तिरपि नाऽजीर्णः पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥
दोषच्छन्नोऽनलो नाऽलं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—अजीर्णके होते तीव्र पीडाहोनेपर भी शूलनाशक औषधीको पान न करे। जब अग्नि दोषोंसे ढकजाता है तब वह दोषनाशक औषधियोंके पचानेको समर्थ नहीं होता ॥८॥

सुवामितं साधुविरेचितञ्च सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ॥
पेयादिभिर्दीपनपाचनीयैः सम्यक्क्षुधार्तं समुपक्रमेत ॥ ९ ॥

भा० टी०—जब रोगीके भलीप्रकार वमन विरेचन लंघन होचुकें तब भूखसे पीडित होते-हुए मनुष्यको बुद्धिमान् वैद्य—दीपन, पाचन पदार्थ और पेयाओंसे उपचारित करे अन्यथा आमा-शय विगडनेका भय है ॥ ९ ॥

मोथं विडंगं लवणानि पञ्च क्षारो हुताशश्च हरीतकी च ॥ एकोशि-काग्रन्थिकवप्ययुक्ता सक्षारकं श्लक्ष्णमिदं समस्तम् ॥ १० ॥
विधाय चूर्णं सलिलैः कदुष्णैरुदश्विता वाऽऽचमतां नराणाम् ॥
भृशं हुताशः समुपैति वृद्धिं बलञ्च कान्तिश्च विकासमेति ॥ ११ ॥

भा० टी०—मोथा, वायविडंग, पञ्च लवण, जवाखार, चीता, हरड, पाठा, पिपलीमूल, कूडा, सज्जीखार इनकरके सिद्ध कियाहुआ चूर्ण अत्यन्त श्लक्ष्ण (रोचक) होता है इस चूर्णको कदूष्ण जल वा उदश्वित् (आधा जलवाला मट्ठा) के साथ पान करतेहुए मनुष्योंकी जठराग्नि बढती और बल, कान्ति विकसित होती है ॥ १० ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे विसूचिकारोगाधिकारः॥ ९ ॥

अथ कृमिरोगाधिकारः १०.

पालाशो हि यवानी पीता पर्य्युषितवारिणा प्रातः ॥
गुडपूर्वा कृमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याऽऽशु ॥ १ ॥

भा० टी०–प्रातःकालमें प्रथम गुडको खावे और पीछेसे वासी जलके साथ तेजपात और अजवायणको सेवन करे तो कोष्ठगत कृमिसमूह विष्टाके साथ गिरजाता है ॥ १ ॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ केवुकस्य रसं वाऽपि पत्तूरस्याऽपि वा रसम् ॥ २ ॥ दीपनीयं त्वन्नमण्डं विडंगव्योष-संयुतम् ॥ पाययेत्कृमिनाशाय भृशाग्निबलवृद्धये ॥ ३ ॥ लिह्या-त्क्षौद्रेण वैडंगं चूर्णं कृमिहरं परम् ॥ लिह्याद्वा श्वासहृच्चूर्णं मधुना नियमान्वितः ॥ ४ ॥ मरिचेनेन्द्रवारुण्याः पि । मूलं च भक्षयेत् ॥ कृमिरोगविनाशाय जठरानलवृद्धये ॥ ५ ॥ विडंगत-ण्डुलव्योषशिग्रुभिर्मरिचेन च॥ रक्तसिद्धा यवागूः स्यात्कृमिघ्ना ससु-वर्च्चिका ॥ ६ ॥

भा० टी०–कूडाके पत्तोंके रसको मधुके साथ कृमिरोगमें पान करे । अथवा केउँआ वा पत्तूरके रसको उपयुक्त करे ॥ २ ॥ अथवा वायविडंग और त्रिकटुके चूर्णसे मिलेहुए दीपनीय राजमण्डको कृमियोंके दुराने और अग्निवलके बढानेके लिये पान करावे ॥ ३ ॥ अत्यन्त कृमिनाशक वायविडंगके चूर्णको वा श्वासरोगोक्त चूर्णको मधुके साथ नियमपूर्वक चाटे ॥ ४ ॥ किंवा इन्द्रायणकी जडको मरिचके साथ पीसकर कृमिरोगके नशाने और अग्निके बढानेके लिये सेवन करे ॥ ५ ॥ वायविडंग, तण्डुल, त्रिकटु, सैंजिन, मरिच इनके साथ रक्तमें सिद्धकी हुई जवाखार सहित यवागू भी कृमिनाशक होती है ॥ ६ ॥

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रुक्काथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः ॥
मार्गद्वयेनाऽपि चिरप्रवृत्तान्कृमीन्निहन्यात्कृमिजांश्च रोगान् ॥ ७ ॥

भा० टी०–मोथा, मूसाकानीका फल, देवादार, सैंजिन इनके क्वाथमें पीपला और वायविडंगके कल्कको मिलाय सेवन करे तो दोनों मार्गों (गु और लिङ्ग) से प्रवृत्तहुए बहुकालिक कृमि-योंको तथा कृमिसे उत्पन्नहुए रोगविशेषोंको भी यह क्वाथ नष्ट करता है ॥ ७ ॥

आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च यूपिकाम् ॥ जग्ध्वा सौवीरकं चाऽनुपिबेत्कृमिहरं परम् ॥ ८ ॥ पालाशबीजस्य रसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् ॥ खादेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण कृमिनाशनम् ॥ ९ ॥

धात्रीफलरसे वाऽपि छागलं मूत्रमेव वा ॥ सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत ॥ १० ॥ त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा काम्पिल्लकं तथा ॥ सिद्धमेभिर्गवां मूत्रे सर्पिः कृमिविनाशनम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–मूसाकानीके पत्तोंको पीसकर पीठेके साथ पूआ बनाय खावे और पीछेसे कृमिनाशक सौवीरकांजीको पीवे ॥ ८ ॥ अथवा मधुके साथ तेजपातके बीजके रसको वा इसके बीजके कल्कको मट्ठाके संग पान करे तो कृमि नष्ट होय ॥ ९ ॥ अथवा आँवलारसके साथ छागमूत्र वा सुरसादिगणको उपयुक्त करे। अथवा त्रिफला, निसोत, दन्ती, वचा, कबीला इनके साथ गोमूत्रमें सिद्धकिया हुआ घृत (त्रिफलादिघृत) भी कृमिनाशक होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः ॥
ताम्बूलपत्रजो वाऽपि विलिप्तो यूकनाशनः ॥ १२ ॥

भा० टी०–धतूरा वा पानके पत्तोंसे उपजाहुआ रस पारेके साथ मिलाय उदर बस्तिपर लेप करनेसे जूंकको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

क्षीराणि मांसानि गुडं घृतं च दधीनि शाकाश्च समर्चयन्ति ॥
समासवोऽम्लान्मधुरान्विकारान्कृमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेत ॥ १३ ॥

भा० टी०–दूध, मांस, गुड, घृत, दधि, शाक, अम्ल और यावन्मात्र मधुर पदार्थ इन सबको कृमियोंका नाश चाहनेवाला मनुष्य त्याग देवे क्योंकि वे उक्त पदार्थ कृमियोंको आप्यायित करते हैं ॥ १३ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे कृमिरोगाधिकारः ॥ १० ॥

अथ पाण्डुरोगाधिकारः ११.

पाण्डुरोगचिकित्सा ।

साध्यन्तु पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्द्ध्वमधश्च शुद्धम् ॥
सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः ॥ १ ॥

भा० टी०–पाण्डुरोगीके रोगको साध्य विचारकर वैद्यको उचित है कि, प्रथम रोगीको घृतसे स्निग्ध बनाकर मधुघृतसहित हरडके चूर्णद्वारा वमन विरेचन कराय शुद्ध बनावे ॥ १ ॥

पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं यन्त्रैः फलं तैलकमेव वापि ॥
विरेचनं द्रव्यकृतं भजेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान्घृतेन ॥ २ ॥

भा० टी०–यन्त्रके द्वारा हलदीके साथ पकायाहुआ घृत वा फल (जायफल, त्रिफला) वा शास्त्रसम्मत तैल पाण्डुरोगीके पानकरने योग्य हैं। अथवा योग्य औषधियोंसे विरेचन लेवे, अथवा घृतके द्वारा रेचक उपायोंको करतारहे ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धोऽनिले कार्य्यः सिद्धशीतस्तु पैत्तिके ॥
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्य्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३ ॥

भा० टी०–वातज पाण्डुरोगमें स्निग्ध (तरगरम) विधान और पित्तजमें सिद्धशीत (खुश्की और गरमीसे रहित ठण्ढा उपाय) एवं कफजमें कटु तथा रूक्ष और उष्ण उपाय और मिश्रदोषजमें मिश्र ही उपाय करने उचित हैं ॥ ३ ॥

द्विशर्क्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्द्धं पैत्तिके पिबेत् ॥
वातजेऽजापयःपूरैः शैलेयं विधिसाधितम् ॥ ४ ॥

भा० टी०–पित्तज पाण्डुरोगमें निसोतके चूर्णमें २ भाग शक्कर मिलाय आधापलके प्रमाणसे सेवन करे । वातजमें विधिपूर्वक सिद्ध कियेहुए शिलाजतुको केशरमिश्रीमिश्रित छागीदुग्धके साथ सेवन करे ॥ ४ ॥

द्विपञ्चमूलीक्वथितं कफान्तकं कफोत्थिते पाण्डुगदे पिबेन्नरः ॥
ज्वरेऽतिसारे श्वयथौ ग्रहण्यां श्वासेऽरुचौ कण्ठहृदामयेषु ॥ ५ ॥

भा० टी०–कफजन्य पाण्डुरोगमें, ज्वरमें, अतिसारमें, सूजनमें, ग्रहणीमें, श्वास, कास, अरुचिमें, तथा कण्ठरोग और हृद्रोगमें दशमूलके क्वाथको पान करे ॥ ५ ॥

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः ॥
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं च कामलम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–त्रिफला, गिलोय, वांसा, कुटकी, चिरायता, नीम इन करके सिद्ध कियाहुआ क्वाथ मधुके साथ उपयुक्त होनेसे पाण्डुरोग और कामलारोगको भी नष्ट करता है ॥ ६ ॥

श्रेयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम् ॥
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतो निषेव्यः पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि नित्यम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–हरड, तिल, त्रिकटु इनके एक २ तोला भाग, और इन सबके समानभागवाली सोनामाखीको लेकर चूर्ण बनावे फिर मधुके साथ इसका मोदक बनाय पाण्डुरोगके दूर होने पर भी इसे नित्य सेवन करता रहे ॥ ७ ॥

अजामलं तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रसाधितम् ॥ मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत् ॥ दीपनं चाऽग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ८ ॥

---

१ शुद्धन्तु शैलेयमनग्निलग्नं सूर्य्यातपैः शोधितमिद्धकान्ति । सुनारिकेलान्तरगं विधाय पचेदहोरात्रमनल्पदुग्धे ॥ पक्वं च सान्द्रं परिपच्य दुग्धं घृतेन तस्मिन्मुशितां सुकशेरम् । निक्षिप्य निर्णीय च मोदकानि प्राक्सिद्धशैलेयविमिश्रितानि ॥ धारोष्णगव्येन सुसेवितानि कुर्वन्ति सर्वामयसैन्यसंक्षयम् । बलोपपन्नं किल कान्तियुक्तं प्रक्षीणमप्यात्तनरं घटन्ति ॥

भा० टी०—तपेहुए बकरीके मलको एक दो वार गोमूत्रमें सिद्धकरके चूर्ण बनालेवे, फिर मधु और घृतके साथ उस चूर्णको भातमें खावे क्योंकि यह चूर्ण दीपन और अग्निवर्द्धक है अत एव सूजन और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

अथ नवायसचूर्णम् ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चित्रकं समम् ॥
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठहृत्कामलापहम् ॥ ९ ॥

भा० टी०—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, चीता इन सबके समभाग और नौ भाग लोहधूरको लेकर चूर्ण बनालेवे। तत्र इस चूर्णको मधु और घृतके साथ सेवन करे। क्योंकि यह चूर्ण पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठरोग, और कामलारोगको भी हरता है ॥ ९ ॥

अथ चरकोक्तं योगराजचूर्णम् ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च ॥ भागाश्चित्रकमूलस्य विडंगानां तथैव च ॥ १० ॥ पंचाऽश्मजतुलाभागास्तथा रूप्यमलस्य च ॥ माक्षिकस्य च शुद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥ ११ ॥ अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्व सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ माक्षिकेणाऽऽप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ १२ ॥ उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्निकम् ॥ प्रयोगविधिना सम्यग्जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम् ॥ १३ ॥ वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकमाचीकपोतकान् ॥ योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ १४ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥ १५ ॥ कुष्ठान्यजरकं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम् ॥ विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलागुदजानि च ॥ १६ ॥

भा० टी०—तीन भाग त्रिफला, ३ भाग त्रिकटु, ३ भाग चीता, ३ भाग वायविडङ्ग ॥ १० ॥ ५ भाग शिलाजीत, ५ भाग चांदीका मल, ५ भाग सोनामाखी, ५ भाग लोहधूर ॥ ११ ॥ ८ भाग शक्कर इन सबका सूक्ष्म चूर्ण बनाय मधुसे भिगोदेवे। फिर उसको एक सुन्दर लोहेके पात्रमें स्थापन करके ॥ १२ ॥ गूलरफलके समान मात्रा बनाय नियमपूर्वक खावे अथवा अग्निबलके अनुसार मात्रा बनावे। इसके जीर्ण होनेपर कुलत्थी तथा मकोय और कपोत (कबूतर) को छोड़कर प्रकृतिरञ्जक मनमाने पदार्थोंको सेवन करलेय ॥ इस अमृतोपम योगका

नाम योगराज है, यह सब रोगोंको हरनेवाला एक श्रेष्ठ माङ्गलिक रसायन है । यह योगराज-नामक चूर्ण—पाण्डुरोग, विष, काश, क्षयीरोग, विषमज्वर, सबप्रकारके कोढ, अजरक प्रमेह, श्वास, हिचकी, अरुचि और विशेष करके मृगी, कामला, बवासीर इतने रोगोंको नष्ट करताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीसदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे पाण्डुरोगाधिकारः ॥ ११ ॥

अथ कामलापाण्डुरोगाधिकारः १२.

रेचकं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्याऽऽदौ प्रयोजयेत् ॥
ततः प्रशमनी कार्य्या क्रिया वैद्येन जानता ॥ १ ॥

भा० टी०—कामलारोगसे पीडितहुए मनुष्यको स्निग्ध करके प्रथम रेचकका प्रयोग करे तब बुद्धिमान् वैद्यने रोगशान्तिका प्रयत्न करना ॥ १ ॥

सदार्व्वी त्रिफला व्योषं विडंगमयसां रजः ॥
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात्कामलापाण्डुरोगवान् ॥ २ ॥

भा० टी०—हलदी, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडङ्ग, मण्डूर इनके चूर्णको मधु घृतके साथ कामलापाण्डुरोगवाला चाटे ॥ २ ॥

लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलां कटुरोहिणीम् ॥
प्रलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां कामलार्तः सुखी भवेत् ॥ ३ ॥

भा० टी०—कामलारोगसे पीडितहुआ मनुष्य मण्डूर, दारुहलदी, हलदी, त्रिफला, कुटकी इनके चूर्णको मधु घृतके साथ सेवन करताहुआ सुखी होताहै ॥ ३ ॥

तुल्यश्चाऽयोरजः पथ्यां हरिद्रां क्षौद्रसर्पिषा ॥
चूर्णितां कामली लिह्याद्गुडक्षौद्रेण चाऽम्भसा ॥ ४ ॥

भा० टी०—हरड, हलदी और इनके समभागवाली मण्डूर इन सबका चूर्ण बनाय गुड, मधु और जलके साथ कामलावाला सेवन करे ॥ ४ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः ॥
सर्पिर्माक्षिकसंयुक्तः सेवितः कामलापहः ॥ ५ ॥

भा० टी०—त्रिफलाका, वा गिलोयका, वा हलदीका, वा नीमका रस मधु घृतके साथ सेवन कियेजानेसे कामलारोगको नष्ट करताहै ॥ ५ ॥

अञ्जनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसः शुभः ॥
निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा सम्प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥

भा० टी०-गूमाफूलके रसका अञ्जन भी कामलारोगियोंको हितकारी है अथवा हलदी गेरुमाटी और आंवलाके चूर्णका उपयोग करे ॥ ६ ॥

धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्करा ॥
लेह्या निवारयन्त्याऽऽशु कामलामुद्धतामपि ॥ ७ ॥

भा० टी०-आंवला, मण्डूर, त्रिकुटु, हलदी, मधु, घृत, शक्कर यह सब वस्तु उद्धत कामलाको भी शीघ्र ही हटातेहैं ॥ ७ ॥

अथ विडङ्गाद्यं लोहम्।

विडंगमुस्तत्रिफलादेवदारुषड्षणैः ॥ तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥८॥ तैरक्षमात्रां गुटिकां कृत्वा खादेद्दिनेदिने ॥ कामला-पाण्डुरोगार्तः सुखमाप्यतेऽचिरात् ॥ ९ ॥

भा० टी०-वायविडंग, मोथा, त्रिफला, देवदार, षडूषण (सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता) और इन सबके समानभागवाले मंडूरचूर्णको आठगुणे गोमूत्रमें पकावे । अनन्तर २ तोलाप्रमाण गुटिका बनाकर प्रतिदिन सेवन करता रहे तो कामला पाण्डुरोगसे पीडितहुआ मनुष्य शीघ्र ही सुखी होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

दग्धाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारम् ॥
संचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥१०॥

भा० टी०-दग्ध किये अक्षकाष्ठ और लोहमलको आठवार गोमूत्रमें सिद्ध करके चूर्ण बनावे फिर बहुतकालपर्य्यन्त मधुके साथ चाटे तो कुम्भनामक पाण्डुरोग नष्ट होय ॥ १० ॥

व्योषाग्निवेल्लत्रिफलामुस्तैस्तुल्यमयोरजः ॥ चूर्णितं तक्रमध्वाज्यकोष्णाम्भोभिः प्रयोजितम् ॥ ११ ॥ कामलापाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शोमोहनाशनम् ॥ पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके ॥ कामलायान्तु या दृष्टा साऽपि कार्य्या भिषग्वरैः ॥ १२ ॥

भा० टी०-त्रिकटु, चीता, वायविडङ्ग, त्रिफला, मोथा, और इनके तुल्यभागवाली मंडूरको चूर्णकरके छांछ मधु घृत और कुछ, उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे कामलापांडु, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर, मूर्च्छा, इतने रोग नष्ट होतेहैं । वैद्यवरोंको यह भी ध्यान रहे कि, कामला और पाण्डुरोगमें जो २ क्रिया देखी सुनी हों उन्हीका प्रयोग हलीमकरोगमें भी करना उचित है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ हरिद्राद्यं घृतम् ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम् ॥
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ १३ ॥

भा० टी०—हलदी, त्रिफला, नीम, खिरैंटी, मुलहटी इनकरके सिद्ध कियाहुआ भैंसका सदुग्ध घृत भी कामलारोगका नाशक है ॥ १३ ॥

अथ मूर्वाद्यं घृतम् ।

मूर्वातिक्तानिशावासाकृष्णाचन्दनपर्पटैः ॥ त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुदवारिभिः ॥१४॥ अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथार्शोरक्तपित्तजित् ॥ १५ ॥

भा० टी०—मरोरफली, कुटकी, हलदी, वांसा, पिपली, चन्दन, पित्तपापड, त्रायमाण, कूडा, चिरायता, पटोल (परवल) इनके दो २ तोला प्रमाण कल्कोंके द्वारा चौगुने दूधमें १ प्रस्थ घीको पकावे सिद्ध होनेपर यह घृत पाण्डुरोग, ज्वर, विस्फोटक, सूजन, बवाशीर रक्तपित्त इतने रोगोंको जीतताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ व्योषाद्यं घृतम् ।

व्योषं बिल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवा ॥ मुस्तान्ययोरजः पाठा विडंगं देवदारु च ॥ १६ ॥ वृश्चिकाली सभार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम् ॥ सर्वान्प्रशमयत्येतद्विकारान्रोगसम्भवान् ॥ १७ ॥

भा० टी०—त्रिकटु, बेलगिरी, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, मोथा, मण्डूर, पाठा, वायविडङ्ग, देवदार, वृश्चिकाली (क्षुपविशेष), भारङ्गी इनके कल्कद्वारा दूधमें घीको पकानेसे व्योषादिघृत सिद्ध होताहै । यह घृत सब रोगोंके विकारोंको शान्त करताहै ॥ १६॥ १७॥

अथ तिक्तकं घृतम् ।

त्रिफलाद्विनिशावासाशठीकुटजपर्पटान् ॥ त्रायन्तीकटुकानिम्बान्प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥ १८ ॥ क्वथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन च ॥ घृतप्रस्थं पचेद्युक्तं पिप्पलीघनचन्दनैः ॥ १९ ॥ त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्सिद्धं तिक्तकं घृतम् ॥ हन्ति कुष्ठं ज्वरानर्शः श्वयथुं ग्रहणीगदम् ॥ २० ॥ पाण्डुरोगं विसर्पञ्च क्लीबत्वेऽपि च शस्यते ॥ २१ ॥

भा० टी०—त्रिफला, दोनों हलदी, वांसा, कचूर, कूडा, पितपापड, त्रायमाण, कटुकी,

नीम इन सबके दो २ पलभाग लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चतुर्थांश शेष रहजायं तब उसमें पिपली, मोथा, चन्दन, त्रायमाण तथा कूडा और चिरायतेके कल्कद्वारा एकप्रस्थ घृतको पकानेसे तिक्तक नाम घृत होताहै। यह घृत कोढ, ज्वर, बवासीर, सूजन, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, दद्रु इन रोगोंको नष्ट करता और नपुंसकतामें भी गुणकारी है॥ १८॥ १९॥ २०॥ २१॥

अथ मण्डूरवटिका।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ॥ दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिको देवदारु च॥ २२॥ एतेषां द्विपलान्भागाँश्चूर्णयित्वा पृथक्पृथक्॥ मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम्॥२३॥ मूत्रे चाऽष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेन्नरः॥ उदुम्बरसमाः कुर्य्याद्वटिकास्ता यथाग्नि च॥ २४॥ उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम्॥मण्डूरवटिका ह्येताः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम्॥२५॥ कुष्ठान्यजरकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान्॥ अर्शांसि कामलां मेदं प्लीहानं शमयन्त्यपि॥ २६॥

भा० टी०-त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दालचीनी, सोनामाखी, गठिवन, देवदार॥२२॥ इनके दो २ पल भागोंको अलग २ चूर्ण करे फिर अञ्जनके समान शुद्ध मंडूरके चूर्णका दुगुना भाग लेकर॥ २३॥ आठगुणे गोमूत्रमें पकाय पहलेके चूर्णमें मिलावे। तदनंतर गूलरफलके समान वा अग्निबलके अनुसार वटिका बनाय॥ २४॥ तक्रके साथ सेवन करे और जीर्ण रोग हो तो प्रकृतिरोचक भोजन करे। यह मण्डूरवटिका पाण्डुरोगियोंकी प्राणदाता हैं और कोढ, अजरक, शोथ, ऊरुस्तम्भ, कफरोग, कामला, प्रमेह, बवाशीर, और फीहाको भी शान्त करतीहैं॥ २५॥ २६॥

अथ पुनर्नवामण्डूरम्।

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च॥ विडङ्गं देवकाष्ठं च चित्रकं च पुनर्नवा॥ २७॥ हरिद्रे त्रिफला दन्ती चविका कारवी तथा॥ कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम्॥२८॥ एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः॥ मूत्रे पक्त्वाऽष्टगुणिते धारयेत्स्निग्धभाजने॥ २९॥ पाण्डुशोथोदराञ्छूलं हन्त्यर्शः कृमिगुल्मनुत्॥ ३०॥

भा० टी०-पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, पीपल, मिरच, वायविडङ्ग, देवदार, चीता, रक्तपुन

र्नवा ॥ २७ ॥ दोनों हलदी, त्रिफला, दन्ती, चविका, अजवायण, कूडाके फल (इन्द्रजौ), कटुकी, पीपलामूल, मोथा ॥ २८ ॥ इनके समभाग और इनसे दुगुनी मंडूरको लेकर अठगुणे गोमूत्रमें पकावे. अनन्तर एक स्निग्ध पात्रमें इसे रखकर सेवन करता रहे। यह पुनर्नवामण्डूर पाण्डु, शोथ, उदर, शूल, बवासीर, कृमि, प्लीहा इतने रोगोंको नष्ट करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ मण्डूरवज्रवटकः।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम् ॥ विडंगमुस्ततिक्ताश्च भागास्तु पलसम्मिताः ॥ ३१ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ॥ पक्त्वाऽष्टगुणिते मूत्रे घनीभूतं तदुद्धरेत् ॥ ३२ ॥ ततोऽक्षमात्रान्वटकान्पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् ॥ पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ३३ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भं हलीमकम् ॥ कृमिं प्लीहानमुदरं गलरोगञ्च नाशयेत् ॥ मण्डूरवज्रनामाऽयं रोगानीकप्रणाशनः ॥ ३४ ॥

भा० टी०–पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ,), मिरच, देवदार, त्रिफला, वायविडंग, मोथा, कटुकी इनके एक २ पल भाग लेकर चूर्ण बनावे ॥ ३१ ॥ फिर इस चूर्णसे दुगुनी मण्डूरको लेय और आठगुने गोमूत्रमें पकावे जब गाढा होजाय तब उसे निकाल लेवे ॥ ३२ ॥ और दो २ तोलाका वटक बनाय तक्रके साथ पानकरे तो यह वटक पांडुरोग, मन्दाग्नि,अरुचि,बवासीर,ग्रहणीदोष,ऊरुस्तम्भ,हलीमक,कृमि, प्लीहा,उदर,और गलरोगको भी नष्ट करताहै। किं बहुना यह मंडूरवज्रनामक वटक रोगसमूहोंका नाशक है ॥ ३३ ॥ ३४॥

अथ विडङ्गाद्यं लौहम्।

विडंगत्रिफलाव्योषदार्वीकृष्णा अयोरजः
कामलापाण्डुरोगघ्नं लिह्यात्क्षौद्रघृतप्लुतम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०–वायविडङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु, दारुहलदी, पीपर, मण्डूर, इनके चूर्णको मधु-घृतसे भिगाकर सेवनकरे। यह चूर्ण कामलापाण्डुरोगका नाशक है ॥ ३५ ॥

अयोरजो हरिद्रे द्वे त्रिफला कटुरोहिणी ॥ चूर्णं कामलिनः श्रेष्ठं घृतमाक्षिकसंयुतम् ॥ ३६ ॥ यवगोधूमशाल्यन्नै रसैर्जांगलजैः शुभैः ॥ मुद्गाढकीमसूराद्यैस्तयोर्भोजनमिष्यते ॥ ३७ ॥

भा० टी०–मण्डूर, दोनों हलदी, त्रिफला, कटुकी इनका चूर्ण घृत और मधुके साथ कामलारोगवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३६ ॥ जव, गेहूं, तण्डुलान तथा मृगजातिके मांसरस, और मूंग, अडहर, मसूर आदि पदार्थोंसे कामली और पाण्डुरोगीके भोजन श्रेष्ठ माने हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे कामलापाण्डुरोगाधिकारः ॥ १२ ॥

अथ रक्तपित्ताधिकारः १३.

रक्तपित्तचिकित्सा ।

ऊर्द्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ॥
अक्षीणबलमांसस्य कर्तव्यमपकर्षणम् ॥ १ ॥

भा० टी०-रक्तपित्तवाले मनुष्यके दोषप्रवृत्ति जबतक ऊर्द्ध्वसञ्चारिणी है और जबतक उसका बल मांस क्षीण नहीं हुए तभी उसके रोगको खींचलेना उचित है ॥ १ ॥

पथ्यं सतीलयूषेन सशितैर्लाजसक्तुभिः ॥
ऊर्द्ध्वगे रेचनं पूर्वमधोगे वमनं हितम् ॥ २ ॥

भा० टी०-रक्तपित्तवालेको मटरका यूष और शक्करसहित लाजासत्तू भी पथ्य होताहै । रक्तपित्तके ऊर्द्ध्वसञ्चारमें प्रथम रेचन देना और अधः (नीचे) सञ्चारमें वमन कराना भला है॥२॥

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्क्करा मधु ॥
मोदकः सन्निपातोत्थरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ३ ॥

भा० टी०-निशोत, त्रिफला, सारिवा, पिपली, शक्कर, मधु इनकरके सिद्ध कियाहुआ मोदक त्रिदोषसे उपजे रक्तपित्तज्वरको हरताहै ॥ ३ ॥

मुस्तेन्द्रयवयष्टयाह्वमदनादि पयो मधु ॥
शिशिरं वमनं योज्यं रक्तपित्तहरं परम् ॥ ४ ॥

भा० टी०-मोथा, इन्द्रजौ, मुलहटी, और मैनफल आदिसे युक्त दूध तथा मधु इन शिशिर पदार्थोंसे दियाहुआ वमन रक्तपित्तको हरताहै ॥ ४ ॥

शालपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगमे ॥
रक्तातीसारहन्ता च योज्यो विधिरशेषतः ॥ ५ ॥

भा० टी०-शालवन, पिठवन, मुगवन आदिकोंसे सिद्ध कीहुई पेया रक्तपित्तकी अधःप्रवृत्तिमें हित है । रक्तातिसारको नष्ट करनेवाला विधान भी पूर्णतया उपयुक्त करना योग्य है॥५॥

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोषानुबन्धिनम् ॥
अवाम्यमविरेच्यञ्च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ॥ ६ ॥

भा० टी०-मांस तथा बलसे क्षीणहुआ मनुष्य और बालक तथा वृद्ध एवं शोषरोगवाले मनुष्यको वमन विरेचन देना योग्य नहीं केवल स्तम्भनसम्बन्धी उपाय करने उचित हैं ॥ ६ ॥

वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ॥
पिबेत्तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—अडूसाके पत्तोंको निचोड कर उस रसमें मधु शक्कर मिलाय पानकरे तो भयंकर रक्तपित्त भी शान्तिको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियंगुलोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि ॥
पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि हन्यात्पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥ ८ ॥

भा० टी०—वांसाका कषाय, गोपीचन्दन, नीलकमल, प्रियंगु, लोध, रसोत, कमलकेशर इनको शक्कर और मधुके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्तका उद्दण्ड वेग भी शीघ्र नष्ट होजाय॥८॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ ९ ॥

भा० टी०—भूतलमें जबतक वांसा और जीवनकी आशा वर्तमान है तबतक रक्तपित्तवाला, क्षयरोगी, तथा कासरोगसे अभिभूत मनुष्य क्यों उद्विग्न होरहे ? ॥ ९ ॥

तालीशपत्रयुक्तः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः ॥
कफपित्तश्वासकासस्वरभेदोदीर्णरक्तपित्तहरः ॥ १० ॥

भा० टी०—शिलामें पीसेहुए वांसेका रस तालीसपत्रसे युक्त कियाहुआ; मधुके साथ पानकरना उचित है। क्योंकि यह रस कफ, पित्त, श्वास, कास, स्वरभङ्ग और उत्कट रक्तपित्तको भी हरताहै ॥ १० ॥

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्राथः सशर्करः ॥
क्षौद्राद्यः श्वासकासघ्नो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ ११ ॥

भा० टी०—वांसा, दाख, हरड, इनके क्राथमें शक्कर मिलाय मधुके साथ खाना योग्य है। यह क्राथ, श्वास, कास और रक्तपित्तका नाशक है ॥ ११ ॥

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति ॥ १२ ॥

भा० टी०—अथवा कठूमरके फलसे उपजाहुआ रस मधुके साथ सेवन कियेजानेसे शीघ्र ही रक्तपित्तको नष्ट करताहै ॥ १२ ॥

द्राक्षया पर्णिनीभिर्वा बलया मधुकेन वा ॥
श्वदंष्ट्रया शतावर्य्या रक्तजित्साधितश्च यत् ॥ १३ ॥

भा० टी०—दाख वा मषवनसे, खिरैंटी वा मुलहटीसे, गोखरु वा शतावरीसे सिद्ध कियाहुआ क्राथ भी रक्तपित्तको जीतताहै ॥ १३ ॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्य्यपथ्याखर्ज्जूरगोस्तनीः ॥ मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक्पृथक् ॥ १४ ॥ खदिरस्य प्रियंगूणां कोविदारस्य

शाल्मलेः ॥ पुष्पचूर्णन्तु मधुना निहन्त्यारोग्यमश्नुते ॥ १५ ॥
वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ॥ कृष्णा वा मधुना लीढा
रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ १६ ॥ द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयाऽऽ-
र्द्रतां व्रजेत् ॥ तावत्प्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ १७ ॥

भा० टी०–पकाहुआ गूलर और गंभारी, हरड, खजूर, दाख इतनी वस्तु मधुके साथ पृथक् २ सेवन कियेजानेसे रक्तपित्तको नष्ट करतीहैं ॥ १४ ॥ इसीप्रकार खैर, प्रियंगु, कचनार, और शाल्मलिके फूलोंका चूर्ण भी मधुके साथ सेवन कियाहुआ रक्तपित्तको नष्ट करताहै ॥ १५॥ अथवा शिलामें पीसेहुए अडूसाके रसमें सातवार सिद्ध कीहुई हरड वा पीपल मधुके साथ सेवन कीहुई शीघ्र ही रक्तपित्तको जीततीहै ॥ १६॥ औषधीके सम्पूर्ण रसमें जब औषधीका कल्क एकरूप होकर गीला होजाय तब जानना कि, यह भावित वा सिद्ध होचुका । भावनाविधिमें वैद्योंने यही प्रमाण दर्शाया है ॥ १७ ॥

अभया मधुसंयुक्ता दीपनी पाचनी मता ॥ श्लेष्माणं रक्तपित्तं च
हन्ति शूलार्तिमुत्कटाम् ॥ १८ ॥ लोहगन्धिनि निःश्वासे चोद्गारे
धूमगन्धिनि ॥ पृथ्वीकामभ्यसेत्तावत्खादेद्द्विगुणशर्कराम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–मधुयुक्त हरड दीपन और पाचन होती तथा कफ और रक्तपित्तको एवं उत्कट शूलपीडाको भी नष्ट करतीहै ॥ १८ ॥ जब रक्तपित्तीका मुखवायु लोहके समान गन्धवाला और उद्गार धूमके समान गंधवाला हो तब इलायची और इससे दुगुनी शक्करको सेवन करता रहै॥१९॥

अथैलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचाद्राक्षापिप्पल्यर्द्धपलांशकाः ॥ सितामधुकखर्ज्जूरमृद्वी-
काश्च पलोन्मिताः ॥ २० ॥ सम्पूर्णमधुना युक्ता गुटिकाः सम्प्र-
कल्पयेत् ॥ अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ २१ ॥
कासश्वासज्वरान्हिक्काछर्दिमूर्च्छामदभ्रमान् ॥ रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां
पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ २२ ॥ शोषं प्लीहाढ्यवातांश्च स्वरभेदं
क्षतक्षयम् ॥ गुटिका तर्पिणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥२३॥

भा० टी०–इलायची, तेजपात, दालचीनी, दाख, पीपर इनके आधा २ पल भाग, और शक्कर, मुलहटी, खजूर, अंगूरीदाख इनके एक २ पल भाग लेकर ॥ २० ॥ संपूर्ण मधुसे युक्त अक्षप्रमाण गुटिका बनालेवे । प्रतिदिन एक २ गुटिका सेवन कीजातीहुई ॥ २१ ॥ कास, श्वास, ज्वर, हिचकी, छर्दि, मूर्च्छा, मद, भ्रम, थूक वा कफमें रुधिर आना, प्यास, पशलीशूल,

अरुचि, क्षयीरोग, फीहासम्बन्धी वायु, स्वरभङ्ग, क्षतक्षय (छातीका घाव) इत्यादि रोगोंको और रक्तपित्तको भी नष्ट करतीहै । क्योंकि यह गुटिका आप्यायन करनेवाली और वृष्य (पौष्टिक) है॥ २२ ॥ २३ ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ॥
सेतुरिव तोयवेगं रुणाद्धि मूर्ध्नि प्रलेपने ॥ २४ ॥

भा० टी०–महीन पीसेहुए आंवलेको घीमें भूनकर शिरपर लेप करनेसे नासिकासे निकलते-हुए लोहूको यह कैसे रोकदेताहै जैसे नदीबन्ध जलके वेगको ॥ २४ ॥

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा ॥
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं चेक्षुरसं हितं वा ॥ २५॥

भा० टी०–अथवा रक्तके नासिकासे प्रवृत्तहुएमें शीघ्र ही नाकके द्वारा जल वा शक्कर-मिश्रित दूध, वा दाखका रस, वा सशर्कर हैयंगवीन घृत, वा ईखका रस देना उचित है॥ २५ ॥

नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा ॥ आम्रास्थिजः पटोलो वा नासिकाक्षुतरक्तजित ॥ २६ ॥ वृषस्य स्वरसं कृत्वा द्रव्यैरेभिः प्रयोजयेत ॥ प्रियंगुमृत्तिकालोध्रमञ्जनं चेति चूर्णयेत ॥ २७ ॥ तच्चूर्णं योजयेद्वासारसक्षौद्रसमन्वितम् ॥ नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेढ्राच्च वेगितम् ॥ २८ ॥ रक्तपित्तस्रवं हन्ति सिद्ध एष प्रयो-गराट् ॥ यत्र शस्त्रक्षतेनैव रक्तं तिष्ठति वेगितम ॥२९॥ तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवाऽवचूर्णितम् ॥

भा० टी०–अनारके फूलसे वा दूर्वासे वा आमकी गुठलीसे वा परवलके पत्तोंसे उपजे-हुए रसका नस्य भी नासिकामें क्षुत (छींक) होनेसे उपजे हुए रक्तको जय करताहै॥ २६ ॥ एवं प्रियंगु, गोपीचन्दन, लोध, रसोत इनके चूर्णको ॥२७॥ वांसारस और मधुके संग उपयुक्त करे। ऐसा करनेसे नाक, मुख, गुदद्वार, और योनि तथा लिङ्गसे टपकतेहुए रक्तको यह प्रयोग नष्ट करदेगा। जहां हथियारके घावसे निरन्तर वेगवाला लोहू बहता हो॥ २८ ॥ २९॥ वहां भी इस चूर्णसे चूर्णित होकर वह लोहू स्तब्ध हो रहता है ॥

सच्छागदुग्धश्च सशर्करश्च रसो हितो दाडिमपुष्पजश्च ॥ ३० ॥

भा० टी०–बकरीके दूध और शक्करसे युक्त दाडिमफूलोंका रस भी रक्तपित्तमें हित है ३०

मेढ्रेऽतिप्रवृत्ते तु बस्तिरुत्तरसंज्ञितः ॥
शृतं क्षीरं पिबेद्वाऽपि पञ्चगुल्मतृणाह्वयात ॥ ३१ ॥

भा० टी०-जब लिङ्गज रुधिरकी अत्यन्त प्रवृत्ति हो तब उत्तरबस्तिका कर्म करना उचित है। अथवा कुश, काश, रामसर, काली ईख, धान इनसे कढेहुए क्षीरको पान करे ॥ ३१ ॥

दूर्वाद्यं घृतम् ।

दूर्वासोत्पलकिञ्जल्कमञ्जिष्ठाशैलवालुकम् ॥ शितायुक्तमुशीरं च मुस्तचन्दनपद्मकैः ॥ ३२ ॥ विपचेत्कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना ॥ तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ३३ ॥ तत्पानं नासिकारक्तं विनाशयति सर्वतः ॥ कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत ॥ ३४ ॥ चक्षुःस्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी । श्रीखण्डैर्बहुवारं च शीतं श्रीचन्दनं मतम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०-दूर्वा, कमलसहित कमलकेशर, मंजीठ, शैलवालुक, शक्कर, खश, मोथा, चन्दन, पद्माख, इनके कर्षप्रमाण कल्कोंके द्वारा चौगुने बकरीदूध और तंडुलजलमें बकरीके घृतको पकावे। सिद्ध होनेपर पान कियेजानेसे नासिकारक्तको नष्ट करता है। जिस रोगीके कानोंसे लोहू आनेलगे उसके कानोंको इस घृतसे भरदेवे और जिसके नेत्रोंसे भी लोहू टपकते दीखे उसके नेत्रोंको इस घृतसे भरदेय। अथवा श्रीखंडचन्दनका लेपकरना भी शीतल और हित है ॥ ३२-३५ ॥

उदुम्बराणि पक्कानि गुडेन मधुनाऽपि वा ॥
उपयुक्तानि निघ्नन्ति नासारक्तं नृणां ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

भा० टी०-पकेहुए गूलरफल भी गुड वा मधुके संग उपयोगमें लायेजानेसे मनुष्योंके नासारक्तको नष्ट करते हैं ॥ ३६ ॥

वासाद्यं घृतम् ।

वासां सशाखां सफलां समूलां निकृत्त्य पुष्पाणि चरेत्कषायम् ॥
प्रदाय कल्कं विपचेद्घृतञ्च सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ ३७ ॥

भा० टी०-पुष्प, फल, मूल, शाखासहित वांसाको काट छांटकर कषाय बनावे। उस कषायमें वांसाके कल्कको मिलाकर घृतको पकावे। सिद्धहोनेपर यह वासादिघृत मधुके साथ शीघ्र ही रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

शतावरीघृतम् ।

शतावर्यास्तु मूलानां रसप्रस्थद्वयं मतम् ॥ तत्समं च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ३८ ॥ जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च ॥ काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा ॥ ३९ ॥

मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ॥ शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्भिषक् ॥ ४० ॥ रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ॥ क्षीणे शुष्के च दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ॥ योनिशूलं च दाहं च मूत्रकृच्छ्रं च पैत्तिकम् ॥ ४२ ॥ एतान्रोगान्निहन्त्याऽऽशु छिन्नाभ्रमिव मारुतः ॥ शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ४३ ॥

भा० टी०–दो प्रस्थप्रमाण शतावरीजडका रस, और रसके समान दूध, तथा एकप्रस्थ प्रमाण घृतको लेकर पकावे ॥३८॥ अनन्तर जीवक, काकडासिंगी, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, अंगूरीदाख, मुलहटी ॥३९॥ मुगवन, मषवन, विदारी, रक्तचन्दन इनके कल्कद्वारा उसके सिद्धहोनेपर शक्कर और मधुके साथ औटावे ॥४०॥ इसप्रकार साधित कियाहुआ यह घृत रक्तपित्त और वातरक्त संबन्धी रोगोमें, क्षीण और शुष्क अंगवाले मनुष्योंमें प्रयुक्त करना उचित है। यह एक प्रकारका श्रेष्ठ वाजीकरण है ॥४१॥ अंगदाह, शिरका दाह, पित्तसे उपजाहुआ ज्वर, योनिशूल, योनिदाह, पित्तसे उपजाहुआ मूत्रकृच्छ्र, ॥ ४२ ॥ इन सब रोगोंको यह घृत कैसे नष्टकरता है जैसे वायु मेघाडम्बरको। किंबहुना, यह शतावरीघृत बल, कान्ति और अग्निका वर्द्धक है ॥४३॥

शतावर्य्या घृते चाऽस्मिञ्शर्करामधु पादिकम् ॥
मध्वेव पादिकं देयं वासासर्पिषि जानता ॥ ४४ ॥

भा० टी०–इस पूर्वोक्त शतावरीघृतमें चतुर्थांश शक्कर और मधु मिलाना चाहिये यह ध्यान रहे। एवं वासाघृतमें केवल चतुर्थांश मधु ही मिलाना चाहिये ॥ ४४ ॥

खण्डकूष्माण्डकः।

वीतत्वगस्थिकूष्माण्डतुलां स्विन्नां पुनः पचेत् ॥ घट्टयन्मधुवर्णे चाऽऽज्यप्रस्थे ताम्रभाजने ॥ ४५ ॥ पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्द्धकान् ॥४६॥ न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दार्व्या संघट्टयेत्तदा ॥ तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे देयं क्षौद्रं घृतार्द्धकम् ॥ ४७ ॥ तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ कासश्वासतमश्छर्द्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ॥ ४८ ॥ वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसाधनम् ॥ उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वर-बोधनम् ॥ ४९ ॥ अश्विभ्यां निर्म्मितं सिद्धं कूष्माण्डकरसायनम्॥ जितेन्द्रियः सत्यवादी जितक्रोधो भजेदिदम् ॥ ५० ॥

भा० टी०—उतारदीहै त्वचा और बीज जिसके ऐसे कूष्मांड (कुम्हडा) के तुला (१०० पल) प्रमाण भाग लेकर अग्निमें पकाकर सुंदर स्वेदित करे फिर तप्तताम्रके पात्रपर एक प्रस्थ घीके संग उन स्वेदित कूष्मांडखण्डोंको डालकर करछीसे घट्टन करताहुआ पकाता रहे । जब पाक सिद्ध होनेको तय्यार होगया अथवा पाकका वर्ण मधुके समान होरहै तब उसमें पीपल और अदरखके दो २ पल भाग और दोपल जीरा, तथा आधा २ पलके प्रमाणसे दालचीनी, इलायची, तेजपात, मिरच औरर धनियांको चूर्ण बनाय डालदेवे । पीछे शनैः २ करछीसे घट्टन करे और पकजानेपर उस द्रव्यको एक उत्तम पात्रपर रखकर घृतसे आधा मधु मिलालेवे । इस प्रकार सिद्ध किये हुए कूष्मांड घृतको रक्तपित्त और क्षतक्षयरोगवाला, तथा कास, श्वास, नैर्बल्य, छर्दि, तृष्णा और ज्वरसे पीडितहुआ मनुष्य अग्निबलके अनुसार खावे । क्योंकि यह घृत पौष्टिक होनेके कारण मनुष्यको फिर नवीन तरुण बनाता और बल कान्तिको उल्लसित करता तथा क्षतक्षयरोगियोंकी छातीको जुडाता, एवं नष्टहुए स्वरको जगाता है । इस प्रसिद्ध कूष्मांडरसायनको अश्विनीकुमारोंने स्वयं बनाया है, इसको बनाना और सेवनकरना साधारण कर्म नहीं है, अतः उपस्थ आदि इन्द्रिय और क्रोधको जीतेहुए सत्यवादी मनुष्य इस रसायनको सेवन करे ॥ ४९–५० ॥

शतावरी छिन्नरुहा वृषमुण्डिरिकाबलाः॥ तालमूली च गायत्री त्रिफला त्वक्कथैव च॥५१॥ भार्ङ्गी पुष्करमूलं च पृथक्पंचपलानि च ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥५२॥ दिव्यौषधिहतस्याऽपि माक्षिकेण हतस्य वा ॥ पलद्वादशकं देयं चारुलोहस्य चूर्णितम् ॥ ॥५३॥ घृतं शुद्धतरं देयं पलषोडशकं बुधैः ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाकानुसारतः ॥ ५४ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकं त्वचम् ॥ शृङ्गी विडंगं कृष्णा च शुण्ठ्यजाजी पलं पलम् ॥५५॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं द्वयक्षं मरिचकेशरम् ॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥५६॥ यथाकालं प्रयुंजीत विडालचरणांशकम् ॥ गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यं मांसरसं पयः ॥५७॥ गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धमांसानि नित्यशः ॥ रक्तपित्तं प्रदुष्टं च क्षयं कार्श्यं विशेषतः ॥५८॥ वातपित्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ॥ श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ५९ ॥ आनाहं रक्तसंस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च ॥ चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥६०॥ आरोग्यदं पुत्रदं च कायाग्निबलवर्द्धनम् ॥ श्रीकरं लाघवकरं खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ६१ ॥

भा० टी०-शतावर, गिलोय, गोरखमुण्डी, खिरैंटी, मुशली, खैर, त्रिफला, दालचीनी, भारङ्गी, पोहकरमूल इनके अलग २ पांच २ पलभाग लेकर एक द्रोण जलमें पकाना अष्टमांश रहजाय तब दिव्यौषधी (त्रिफला) वा माक्षिकसे मारेहुए उत्तमलोहके चूर्णको १२ पलप्रमाण ले उसमें मिलादेवे । फिर १६ पल घृतको भी उसमें रखकर तामेके पात्रमें गुडपाककी भांति पकावे । पकजानेपर आधा प्रस्थ मधु भी मिलाले और साथ ही वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकडसिंगी, वायविडङ्ग, पीपर सोंठ, कालाजीरा, इन सबके एक २ पलभाग, और त्रिफला, धनियां, तेजपात, मरिच, केशर इनके दो २ अक्षप्रमाण भाग लेकर सुन्दर चूर्ण बनाय उसमें मिलालेवे । इस प्रकार सिद्धकिये द्रव्यको स्निग्ध पात्रमें रखकर यथासमय (शीतकाल) में बिल्लीके चरणछत्तेके समान (दो तोला) मात्रा लेकर उपयोगमें लावे और अनुपानमें गोदुग्ध पीवे और नित्य मांसरस, दूध, एवं भारी और स्निग्ध पौष्टिक भोजन और पेयपदार्थ एवं स्निग्ध मांसोंको सेवन करे । ऐसे विधानसे सेवन कियाजाताहुआ यह खण्डखाद्यनामक प्रयोग दूषित रक्तपित्त, क्षयरोग, कृशता, वातपित्त, प्रमेह, शीतपित्त, छर्दि, विक्लेद, सूजन, पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्लीहा, जलोदर, निरोध, रक्तस्राव, अम्लपित्त, इन सब रोगोंको नष्ट करता और नेत्रकांतिको बढाता है । यह सर्वथा बृंहण और वृष्य तथा मंगलरूप और प्रीतिको बढानेवाला, नैरुज्य और पुत्रको देनेवाला, शरीर और अग्निबलको बढानेवाला शरीरको शोभायुक्त और हलका बनाने वाला कहा गया है ॥ ९१-६१ ॥

छागं पारावतं मांसं तैत्तिरं कौक्कुटं तथा ॥ कुलिंगकृष्णसाराणां मांसं नित्यं प्रयोजयेत् ॥ ६२ ॥ नारिकेलपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम् ॥ शुष्कमूलकजीवाख्यं पटोलं बृहतीफलम् ॥ ६३ ॥ फलं वार्ताकुपक्वान्नं खर्ज्जूरं स्वादु दाडिमम् ॥ ककारपूर्वकं यच्च यच्च क्षीणक्षते हितम् ॥ ६४ ॥ शालिषष्टिकनीवारवनमुद्गमसूरकाः ॥ अन्यान्यपि च वस्तूनि शास्त्रोक्तानि हितानि हि ॥ ६५ ॥

भा० टी०-बकरी, कबूतर, तित्तिर, कुक्कुट, कुलिङ्ग, रुरु मृग इनके मांसको रक्तपित्तवालेपर प्रयुक्त करे । नारियलका दूध, चौपतिया, वेथुआ शाक, सूखी मूली, जीवन्ती, परवल, तुम्बीफल वा वार्ताकीफल, वैंगुन, पक्वान्न, खजूर, मीठा अनार, और ककार आदिवाले पदार्थ, एवं क्षतक्षयमें गुणकरनेवाले यत्किञ्चित्पदार्थ, धान, साठी, नीवार, मूंग, मसूर और और भी शास्त्रोक्त गुणकारी वस्तु रक्तपित्तमें हित हैं ॥ ६२-६५ ॥

अस्य निदानम् ।

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः ॥ तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ ६६ ॥ पित्तं विदग्धं स्वगणैर्विदहत्याशु

शोणितम् ॥ ततः प्रवर्तते रक्तमूर्द्ध्वं वाऽधो द्विधाऽथवा ॥ ६७ ॥ ऊर्द्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥ लोहितोदारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥६८॥

भा० टी०-घाम, व्यायाम (कसरत), शोक, मार्ग, मैथुन इनको अत्यन्त सेवनकरनेसे, तथा तीखे, गरम, खारी, नमकीन, अम्ल, कटु इन रसोंकी अधिकतावाले पदार्थोंके सेवनेसे पित्त स्ववर्गीय धातुओंके साथ विदाहयुक्त होकर शीघ्र ही शारीरिक रक्तको विदाहयुक्त करता है अतएव ऊर्द्ध्वद्वारोंसे वा अधोद्वारोंसे वा ऊर्द्ध्वद्वार और अधोद्वार दोनोंसे दूषित रक्तकी प्रवृत्ति होने लगती है । रक्तकी ऊर्द्ध्वप्रवृत्ति नाक, नेत्र, कान और मुखद्वारसे और अधःप्रवृत्ति लिङ्ग, योनि और गुदद्वारसे होती है ॥ असाध्यलक्षण कहते हैं-जो मनुष्य लालनेत्रोंसे युक्त होकर बहुतसे रुधिरको वमन करै और उस रुधिरको निपुणतासे देखे अथवा रुधिरवमनके बाद स्त्रीप्रसङ्ग करे तो वह रक्तपित्ती मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६६-६८ ॥

इतिश्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे रक्तपित्ताधिकारः ॥ १३ ॥

अथ राजयक्ष्मक्षतक्षयाधिकारः १४.

तत्रादौ षडङ्गयूषः ।

सकूष्माण्डं सहयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥ दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजरसं पिबेत् ॥१॥ तेन षड्भिर्निवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ द्रव्यतोऽष्टगुणं मांसं सर्वतोऽष्टगुणं जलम् ॥ २ ॥ पादस्थं संस्कृतं चाऽऽज्ये षडङ्गो यूष उच्यते ॥ ३ ॥

भा० टी०-कूष्माण्ड, जव, कुलथी, शोंठ, दाडिम, आंवला इन छः वस्तुओंसे युक्त और स्निग्ध बकरीमांसके रसको शोषरोगवाला पीवे । क्योंकि, इन छः वस्तुओंसे युक्त कियेहुए बकरीमांसके रससे समस्त पीनस आदि विकार हटजाते हैं । विधान कहते हैं-औषधिद्रव्यसे आठगुणा मांस और सब वस्तुओंसे आठगुंणा जल देकर पकाते २ जब चतुर्थांश रहजाय तब उसको घृतमें संस्कृत करे-इसका नाम षडङ्ग यूष कहा है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ त्रयोदशाङ्गः ।

धान्याकपिप्पलीविश्वदशमूलीजलं पिबेत् ॥
पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ॥ ४ ॥

भा० टी०-धनिया, पिपली, शोंठ, दशमूल इनके जलको पशलीशूल, ज्वर, श्वास, तथा पीनस आदि उपद्रवोंकी निवृत्तिके लिये पानकरे ॥ ४ ॥

अश्वगन्धामृताभारुदशमूलीबलावृषाः ॥ पुष्करातिविषे घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ ५ ॥ दशमूलीबलारास्नापुष्करसुरदारुनागरैः क्वथितम् ॥ पेयं शीतं शशिनः क्षतकाशादिशान्तये सलिलम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–असगन्ध, गिलोय, शतावर, दशमूल, खिरैंटी, बांसा, कूडा, अतीस इतने वस्तु क्षीररसको सेवतेहुए मनुष्यके क्षयरोगको नष्ट करते हैं ॥ ५ ॥ दशमूल, खिरैंटी, रासन, कूडा, देवदार, शोंठ इन करके सिद्ध कियाहुआ शीतल क्वाथ शशी (क्षयरोगवाले) ने क्षत, काश आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये पान करना उचित है ॥ ६ ॥

मधुनाऽपि विडंगाश्मजतुलोहामृताभयाः ॥
घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमानहितासिना ॥ ७ ॥

भा० टी०–वायविडङ्ग, शिलाजीत, कान्तिसार, गिलोय, हरड इतनी वस्तु सुपथ्यरूपी खड्गसे भयंकर क्षयरोगको भी दलित करती हैं ॥ ७ ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहेत्क्षयी ॥ क्षीरे सुलभते पुष्टिं तुल्ये चाऽऽज्ये समाक्षिके ॥ ८ ॥ शीतावलातुगाक्षीरीपिप्पलीबहुलात्वचः ॥ मासादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९ ॥

भा० टी०–क्षयरोगवाला मनुष्य–शक्कर मधुसे युक्त माखनको चाटता रहे । एवं धारोष्ण दूध और मधुमिश्रित घृतके सेवनेसे भी वह पुष्टिको पाता है ॥ ८ ॥ शीतावला (कगहिया) तुगाक्षीरी (वंशलोचन) पीपर, दालचीनी इनको मधुघृतके साथ सेवन करे किन्तु १ मासके बाद दूनी मात्रा बढादेवे ॥ ९ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ॥
मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यतः ॥ १० ॥

भा० टी०–धान, साठीचावल (साठ दिनमें उत्पन्न होनेवाले), गेहूं, जव, मूंग, और दिव्यौषधियोंसे निष्पन्न मद्य, तथा जांगलदेशीय पक्षी और मृग भी शोषको प्राप्त होतेहुए मनुष्यको शुभ होते हैं ॥ १० ॥

दशमूलीशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदितं नवम् ॥ तक्रेण मधुसंयुक्तं घृतं स्वरविशोधनम् ॥ ११ ॥ शिरोगपार्श्वशूलघ्नं श्वासकासज्वरापहम् ॥ सिद्धं जगति विख्यातं शोषिणां परमौषधम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–दशमूलीमें सिद्ध कियेहुए क्षीरसे निष्पन्न नवीन घृत जो शास्त्रमें कहा है वह और मधुसंयुक्त घृत भी छांछके साथ उपयोगमें लानेसे भग्न स्वरको शुद्ध करता ॥ ११ ॥ और

शिरकी तथा पशलीकी पीडाको नशाता, श्वास, काश और ज्वरको दूर करता है। किं बहुना यह शोषरोगवालोंकी जगद्विख्यात परम औषधि है ॥ १२ ॥

शतपुष्पानतं कुष्ठं मधुकं देवदारु च ॥
पिष्ट्वा लेपःससर्पिष्कः पृष्ठपार्श्वांशरुक्षु च ॥ १३ ॥

भा० टी०-सौंप, तगर, कूडा, मुलहटी, देवदार इन सबको पीसकर घृतके साथ पीठ पशली और स्कन्धकी पीडामें लेप करना हित है ॥ १३ ॥

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं च बहुवारान् ॥
मधुघृतसितोपलाभिर्लेह्यं क्षयकासरक्तपित्तहरम् ॥ १४ ॥

भा० टी०-कोहके चूर्णको अनेकवार वांसेके रसमें भावित करके मधु, घृत मिश्रीके साथ चाटे क्योंकि, यह चूर्ण क्षय, कास और रक्तपित्तका नाशक है ॥ १४ ॥

अथ बलादिमन्थः ।

बलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्रिनिर्यासनशालसारान् ॥ विडंगभल्लातकचित्रकांश्च कटुत्रिकं चैव सुराष्ट्रजांश्च ॥ १५ ॥ पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ॥ त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥ १६ ॥ प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्क्षौद्रं ततो मन्थहतं विदध्यात् ॥ पलं पलं प्रातरतो लिहेच्च पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ १७ ॥ एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यतमं तथैव ॥ यक्ष्माणमुग्रं हरते हि नूनं पाण्ड्वामयश्चैव भगन्दरं च॥ १८॥ द्रव्यं तत्रान्तरे देयं चैतदक्षपलं पृथक्॥ शृतं चाऽष्टगुणे तोये ग्राह्यमष्टावशेषितम्॥ १९॥

भा० टी०-खिरैंटी, अजमोदा, आंवला अभया, (हरड), बहेडा, खदिरकी गोंद, शालकी राल, वायविडंग, भिलावा, चीता, त्रिकटु, कालीमूंग ॥ १५ ॥ इन सबको जलमें पकावे और तब इस काढेमें घृतको मिलाके पकावे जब पककर यह सिद्ध होजाय तब इसको उतारकर इसमें ३० पल मिश्री, ६ पल वंशलोचन ॥ १६ ॥ और घृतसे दुगुना मधु देकर मथानीसे मथे। इस घृतको प्रतिदिन प्रातःकालमें एक २ पलके प्रमाणसे सेवनकरे और झटिति पीछेसे दूध पीवे ॥ १७॥ यह घृत अतिपवित्र और चक्षुकान्ति तथा आयुको बढानेवाला है, अत एव भयंकर यक्ष्मा और पाण्डुरोग भगन्दरको भी हरता है ॥ इसमें द्रव्यआदिका प्रमाण कहते हैं-दो २ पलके प्रमाणसे खिरैंटी प्रभृति द्रव्यसमूह, और द्रव्यसे आठगुना जल देना उचित है जब आठवां भाग रहजाय तब उसमें एक प्रस्थ घृतको पकावे ॥ १८ ॥ १९ ॥

गोधूमपिप्पलीवासाचूर्णं शृंगाटकस्य च ॥ समाक्षिकं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ॥ २० ॥ स्त्यानं सर्पिर्गुडैः कृत्वा भूर्ज्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ तज्जग्ध्वा पलिकं क्षीरं मद्यं वाऽनुपिबेत्ततः ॥ २१ ॥ शोषे काशे क्षतक्षीणे कामस्त्रीभारकर्षिते ॥ रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि क्षते ॥ शस्तः पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥ २२ ॥

भा० टी०–गेहूं, पीपर, वांसा, सिंघाडे इनके ३२ तोले चूर्णमें मधु मिलाय खजसे मूर्च्छित करे ॥ २० ॥ अनन्तर गुड, घृतसे भिगोकर भूर्जपत्रसे लपेटलेवे । एकपलके प्रमाणसे इसे सेवनकरे और पीछेसे दूध वा मद्यको पीवे ॥ २१ ॥ यह सर्पिर्गुड शोष, कास और क्षतक्षयसे युक्त एवं काम और स्त्रीभारसे कर्षित हुए मनुष्यमें, रुधिरवमनमें, ज्वरमें, पीनसमें, छातीके घावमें, पशली और शिरकी पीडामें, स्वरभेद और वर्णभेदमें भी प्रशंसित कहा है ॥ २२ ॥

अथ च्यवनप्राशः ।

बिल्वोऽग्निमन्थश्योनाकः काश्मर्य्यः पाटलाबला ॥ पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ २३ ॥ शृंगी चाऽऽमलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरू ॥ अभया सामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शठी ॥ ॥ २४ ॥ मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दनम् ॥ विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥ २५ ॥ एताः पलोन्मिताः कांगा शतान्यामलकस्य च ॥ पंच दद्यात्तथैकध्याज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २६ ॥ ज्ञात्वा गतरसं द्रव्यं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ तच्चाऽऽमलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ २७ ॥ पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्द्धतुलां भिषक् ॥ मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥ २८ ॥ षट्पलं मधुनश्चाऽत्र सिद्धे शीते विपाचयेत् ॥ चतुष्पलं तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्याश्च पलं तथा ॥ २९ ॥ पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरम् ॥ इत्येवं च्यवनप्राशः परमुक्तं रसायनम् ॥ ३० ॥ कासश्वासहरं चैव विशेषेणोपदिश्यते ॥ क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानां चांगवर्द्धनम् ॥ ३१ ॥ स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ॥ पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चैवोपशामयेत् ॥

॥ ३२ ॥ अस्य मात्रां प्रयुंजीत या विरुध्यान्न भोजनम् ॥ अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥ ३३ ॥

भा० टी०-वेलगिरी, अरणि, सोनापाठा, कंभारी, लाललोध, खिरैंटी, चारों पर्णी, (शालवन, पिठवन, मुगवन, मषवन,) पीपल, गोखरु, दोनों कटेहरी ॥ २३ ॥ अतीस, आंवला, दाख, जीवन्ती, कूडा, अगरु, अभया (हरड), गिलोय, ऋद्धि, जीवक, काकडसिंगी, कचूर ॥ २४ ॥ मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलकमल, चन्दन, विदारीकन्द, बांसेकी जड, काकोली, काकजंघा ॥ २५ ॥ इन सबके एक २ पलभाग और ५०० फल आंवला इन सबको एकत्र करके एकद्रोणजलमें पकावे ॥ २६ ॥ जब संपूर्ण औषधियोंका रस उस चतुर्थांश क्वाथमें व्याप्त होजाय तब क्वाथको वस्त्रसे छानकर उन औषधियोंके कल्कको निकाल-लेवे ॥ २७ ॥ तहां गलेहुए आंवलोंको पृथक् निकालकर १२ पल तैल और घीमें भूने, अनन्तर उसमें ५० पल शुद्ध मिश्रीको मिलाकर लेहकी भांति भलीप्रकार सिद्ध करे ॥ २८ ॥ जब यह सिद्ध होकर ठंढा होजाय तब उसमें ६ पल मधु, ४ पल वंशलोचन, १ पल पीपल ॥ २९ ॥ एक पलके प्रमाणसे दालचीनी, इलायची, तेजपात, केशर इन सबको मिलालेवे ऐसा करनेसे यह च्यवनप्राशनामक परम रसायन बनजायगा ॥ ३० ॥ यह विशेषकरके कास श्वासको हरने-वाला, क्षतक्षयवाले मनुष्य और क्षीणरूप बालक तथा वृद्धोंके शरीरको पुष्ट करनेवाला कहाहै । इसके सेवनसे स्वरभङ्ग, हृदयका रोग, छातीका घाव, वातरक्त, प्यास और मूत्र तथा वीर्यके दोष भी शान्त होतेहैं । इसकी वही मात्रा प्रयोजनीय है जिससे भोजनमें अरुचि न हो । विदित हो कि, इसी रसायनके प्रयोगसे अत्यन्त वृद्धरूप च्यवनऋषि भी फिर नवयुवा हुए । इसीसे इसका नाम च्यवनप्राश हुआ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वं आयुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ॥
स्त्रीषु प्रसक्तिं परमाग्निदीप्तिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०-यह रसायन बुद्धि, स्मृति, कान्ति, नैरुज्य, आयुकी अधिकता, इन्द्रियोंका बल, स्त्रियोंमें आसक्ति (पुरुषार्थ), अत्यन्त अग्निकी वृद्धि, आकारमें प्रसन्नता, वायुकी अनुकू-लता इतने गुणोंको करताहै ॥ ३४ ॥

अथागस्तिहरीतकी ।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शंखपुष्पीं शठीं बलाम् ॥ हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकम् ॥ ३५ ॥ भार्ङ्गीं पुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवाढकम् ॥ हरीतकीशतं चैव जले पंचाढके पचेत् ॥ ३६ ॥ यवैः स्विन्नैः कषायं तं पूतं तच्चाऽभयाशतम् ॥ पचेद्गुडतुलां दत्त्वा

. कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ३७ ॥ तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ लिह्यादेवाऽऽभये नित्यं ततः खादेद्रसायनम् ॥ ३८॥ तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ क्षयं कासं च श्वासं च हिक्कां च विषमज्वरान् ॥ ३९ ॥ हन्यात्तथा ग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ॥ अगस्तिविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ४०॥ यथोद्दिष्टं गुणं कुर्वन्पित्तं प्रकुरुते यदि ॥ तदा सायं गुडो योग्य एष एवाऽल्पमात्रया ॥ ४१ ॥

भा० टी०–दशमूल, कौंछके बीज, शंखाहुली, कचूर, खिरैंटी, गजपिपली, चिरचिटा, पिपलामूल, चीता ॥ ३९ ॥ भारंगी, पोहकरमूल इनके दो २ पल भागोंको लेवे और ४ प्रस्थ जौ, १०० हरडैं,इन सबको २० प्रस्थ जलमें पकावे ॥ ३६ ॥ जब जौ भलीभांति स्वेदित होरहें तब उस क्वाथको वस्त्रसे छानलेवे और उन १०० हरडोंको १०० पल गुड, ३२ तोले घृत ॥ ३७ ॥ ३२ तोले तैल, और ३२ तोले पिपलीचूर्णके संग फिर भी पकावे। सिद्ध और शीतल होनेपर उस लेहमें १६ तोले मधुको मिलादेवे। पीछे नित्य प्रति उन हरडोंमेंसे २ हरडोंको खावे और पीछेसे उस लेहको भी चाटे ॥ ३८ ॥ इस रसायनके सेवनकरनेसे वलीपलितादि वैरूप्य नष्ट होकर कांति, आयु और बल बढता है। तथा क्षय, कास, श्वास, हिचकी विषमज्वर ॥ ३९ ॥ ग्रहणी, बवासीर, हृद्रोग, अरुचि, पीनस यह सब रोग नष्ट होतेहैं। यह रसायन अगस्ति ऋषिका निर्माण कियाहुआ अतिधन्य और श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ यदि यथोक्त गुण करताहुआ यह योग पित्तको उभाडता प्रतीत हो तो सायंकालमें इसकी मात्रा घटादेनी ॥ ४१ ॥

अथ जीवन्त्याद्यं घृतम्।

जीवन्ती मधुक द्राक्षाफलानि कुटजस्य च ॥ शठी पुष्करमूलञ्च व्याघ्री गोक्षुरकं बलम् ॥ ४२ ॥ नीलोत्पलञ्चाऽऽमलकी त्रायमाणा दुरालभा ॥ पिप्पली च समं पिष्ट्वा घृते वैद्यो विपाचयेत् ॥ ४३ ॥ एतद्व्याधिसमूहस्य बले सम्यक्समुत्थिते ॥ रूपं चैकादशविधं सर्पिराजं व्यपोहति ॥ ४४ ॥

भा० टी०–जीवन्ती, मुलहटी, दाख, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेहरी, गोखरु, गन्धरस ॥ ४२ ॥ नीलकमल, आंवला, त्रायमाण, दुरालभा, पीपल इन सबको समभाग लेकर एकत्रित करके पीसे अनन्तर वैद्य इस पिष्टको बकरीके घृतमें पकावे ॥ ४३ ॥ सिद्ध होनेपर यह घृत अनेक रोगोंके बलके उत्थानमें प्रयुक्त करना क्योंकि यह घृत राजयक्ष्माके श्वास, कास आदि ग्यारह उपद्रवरूपोंको नष्ट करताहै ॥ ४४ ॥

अथ षडङ्गघृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥
सयावशूकैः सक्षीरैः स्रोतसां शोधनं घृतम् ॥ ४५ ॥

भा० टी०-पिपली, पिपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, जवाखार, दूध इनकरके सिद्ध किया-हुआ घृत नाडी और इन्द्रियोंको शुद्ध करताहै ॥ ४५ ॥

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागक्षीरयुतं घृतम् ॥
एतदग्निविवृद्ध्यर्थं कासिनां कासजित्तथा ॥ ४६ ॥

भा० टी०-पिपली और गुडसे सिद्ध कियाहुआ एवं बकरीदूधसे युक्त घृत भी क्षयीरोग-वाले मनुष्योंकी अग्निवृद्धि और कासको जीतनेके अर्थ होताहै ॥ ४६ ॥

अथ छागलाद्यं घृतम् ।

छागमांसं तुलां गृह्य साधयेन्नल्वणेऽम्भसि ॥ पादशेषेण तेनैव सर्पिः-प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४७ ॥ ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ॥ काकोली क्षीरकाकोली पृथक्कल्कैः पलोन्मितैः ॥४८॥ सम्यक्सिद्धं समुत्तार्य्य तस्मिन्नेव प्रदापयेत् ॥ शर्क्करायाः पला-न्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ४९ ॥ पलं पलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुस्तरम् ॥ क्षतक्षयं च कासाँश्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥५०॥ स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात्सुदुस्तरम् ॥ बल्यं मांसकरं वृष्यमग्नि-सन्दीपनं परम् ॥ ५१ ॥

भा० टी०-३२ सेर जलमें बकरीके मांसका काढा बनावे जब चतुर्थांश रहजाय तब उसमें एक प्रस्थ घीको पकावे ॥ ४७ ॥ अनन्तर ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, काकडा-सिंगी, काकोली, क्षीरकाकोली इनके अलग २ एक १ पल प्रमाण कल्क करके ॥ ४८ ॥ सिद्ध-किये हुए उस घृतको उतारकर आठपल शक्कर और ३२ तोले मधुको भी उसमें मिलालेय ॥ ४९ ॥ प्रतिदिन प्रातःकालमें एक २ पलके प्रमाणसे इसे पीवे, क्योंकि यह दुर्हठ राजयक्ष्माको नष्ट करता और क्षतक्षय, अनेकप्रकारके कास, पशलीशूल, अरुचि ॥ ५० ॥ स्वरभके, छातीके रोग, और कठिनरूप श्वासको भी नष्ट करताहै । किं बहुना । यह घृत क्षीणहुए मांसको पुनः बढानेवाला, बलकर और पौष्टिक तथा अत्यन्त अग्निका वर्द्धक है ॥ ५१ ॥

अथ प्रकारान्तरम् ।

तोयद्रोणे द्वितये मांसं छागस्य पलशतं पक्त्वा ॥ जलमष्टांशं सुकृतं तस्मिन्विपचेद्घृतप्रस्थम् ॥ ५२ ॥ कल्केन जीवनीयानां

कुडवेन तु मांससर्पिरिदम् ॥ पित्तामयं निहन्यात्तद्धवरसयोजितं पीतम् ॥ ५३ ॥ कासश्वासावुग्रौ यक्ष्माणं पार्श्वहृद्रुज घोराम् ॥ अर्द्धव्यवायशोषं शमयति नैवाऽपरं किञ्चित्॥५४॥

भा० टी०--२ द्रोण जलमें १०० पल बकरेके मांसको पकावे जब आठवां भाग रहजाय तब उसमें १ प्रस्थ घीको पकावे ॥ ५२ ॥ अनन्तर ३२ तोले जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती) के कल्क करके सिद्धकियाहुआ यह मांसघृत मांसरसमें मिलाय पान कियेजानेसे ॥ ५३ ॥ पित्तरोग, भयंकर कास, श्वास, राजयक्ष्मा, पशलीपीडा, हृदयपीडा और अर्द्धमैथुनसे उपजेहुए शोषको भी शान्त करताहै ॥ ५४ ॥

अथ बलागर्भघृतम्।

द्विपंचमूलस्य पचेत्कषाये प्रस्थद्वये मांसरसस्य चैके ॥
कल्कं बलायाः सुनियोज्य गर्भं सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतं च॥५५॥
सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूलक्षतक्षयोत्काशहरं प्रदिष्टम् ॥ ५६ ॥

भा० टी०—दशमूलके दो २ प्रस्थ कषायमें और एक प्रस्थ मांसरसमें बलागर्भके कल्कको नियुक्त करनेसे सिद्ध कियाहुआ और एक प्रस्थ दूधसे युक्त घृत भी सब प्रकारके अभिघातोंसे उपजेहुए यक्ष्माके शूलको एवं क्षतक्षय और कासको हरनेवाला कहाहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ बलादिघृतम्।

बला श्वदंष्ट्रा बृहती कलसी धावनी स्थिरा ॥ निम्बपर्पटकं मूलं त्रायमाणा दुरालभा ॥ ५७ ॥ कृत्वा कषायं पेयार्थं दद्यात्ताम-लकीं शठीम् ॥ द्राक्षां पुष्करमूलं च मेदामामलकानि च ॥ ५८ ॥ घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्वज्वरहरं परम् ॥ क्षयकाशप्रशमनं शिरः-पार्श्वरुजापहम् ॥ ५९ ॥

भा० टी० -खिरैंटी, गोखरू, कटेहरी, पिठवन, धायके फूल, काकोली, नीम, पितपापड़, पिपलामूल, त्रायमाण, दुरालभा ॥ ५७ ॥ इनके कषायको बनाय उसमें भूमिआंवला, कचूर, दाख, पोहकरमूल, मेदा, आंवला इनको देवे ॥ ५८ ॥ तब इस कषायमें सिद्ध कियाहुआ घृत और दूध सब प्रकारके ज्वरका नाशक एवं क्षय कासको शान्त करनेवाला तथा शिर और पश-लीकी पीडाका भी नाशक है ॥ ५९ ॥

अथ चन्दनाद्यं तैलम्।

चन्दनाम्बुनखं वाप्यं यष्टी शैलेयपद्मके ॥ मञ्जिष्ठा सरलो दारु

सदेलापूतिकेशरम् ॥ ६० ॥ पत्रं तैलं सुरामांसी कंकोलं वनिताम्बुदम् ॥ हरिद्रे सारिवे तिक्ता लवङ्गाऽगुरु कुंकुमम् ॥ ६१ ॥ त्वग्रेणुतलिका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ॥ लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ ६२ ॥ अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् ॥ आयुःपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ६३ ॥

भा० टी०—चन्दन, सुगन्धवाला, नखी, कूठ, मुलहटी, शिलाजतु, पद्माख, मंजीठ, देवदार, छोटी इलायची, रोहिष सोधिया, केशर ॥ ६० ॥ तेजपात, तैल, सुरामांसी, शीतलचीनी, फूलप्रियंगु, मोथा, दोनो हलदी, दोनो सारिवा, कुटकी, लवङ्ग, अगरु, कुंकुम ॥ ६१ ॥ दालचीनी, रेणुका, मालकांगनी इनकरके सिद्ध कियाहुआ तैल और चौगुना दधिजलका रंग जब लाक्षारसके समान होरहे तब जानना कि, यह सिद्ध होचुका। यह तैल भूतग्रहकी बाधाका नाशक और बल, वर्णको बढानेवाला ॥ ६२ ॥ एवं मृगी, ज्वर, उन्माद जादू, अलक्ष्मी इनका नाशक तथा आयु और पुष्टिको बढानेवाला एक उत्तम वशीकरण वस्तु है ॥ ६३ ॥

बलाऽश्वगन्धा श्रीपर्णी बहुपुत्री पुनर्नवा ॥
पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ ६४ ॥

भा० टी०—खिरैंटी, असगन्ध, कंभारी, शतावरी, पुनर्नवा इनको नित्य दूधके साथ अभ्यास करनेसे क्षतक्षय शान्त होवे ॥ ६४ ॥

इक्ष्वालिकाबिसग्रन्थिपद्मकेशरचन्दनैः ॥
शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिबेत्क्षती ॥ ६५ ॥

भा० टी०—इक्ष्वालिका (इक्षुतुल्य तृणविशेष), मृणाल, भद्रमोथा, कमलकेशर, चन्दन इनके काढेको दूध मधुसे युक्त करके क्षतक्षयवाला जन छातीके घाव जुडानेके लिये पान करे॥६५॥

घृतं बलानागबलाऽर्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ॥
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकाशानिलासृक्शमयत्युदीर्णम् ॥ ६६ ॥

भा० टी०—खिरैंटी, गुलसकरी, कोह, नेत्रवाला, इनकरके सिद्ध कियेहुए घृतमें चतुर्थांश मुलहठीके कल्कको मिलाय सेवनकरनेसे हृद्रोग, शूल, क्षतक्षय, रक्तपित्त काश, वातरक्त इतने रोग शान्त होते हैं ॥ ६६ ॥

हितमत्र विशेषेण कूष्माण्डकरसायनम् ॥ ६७ ॥

भा० टी०—क्षतक्षयरोगमें विशेष करके पूर्वोक्त कूष्माण्डरसायन हितकारी कहा है ॥ ६७ ॥

कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ त्रिभिर्वा पीडितो लिंगैः कासश्वासासृगामयैः ॥ ६८ ॥ भक्तद्वेषो ज्वरः कासः श्वासः शोणितदर्शनम् ॥ स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ ६९ ॥

भा० टी०–कास, अतिसार, पसलीपीडा, स्वरभेद, अरुचि, ज्वर इन छः उपद्रवोंसे वा कास, श्वास, रक्तविकार इन तीन चिह्नोंसे पीडित हुआ मनुष्य पूर्णयक्ष्मावाला कहाता है। जब राजयक्ष्माके पूर्वोक्त छः रूप उपस्थित होते हैं तभीसे प्रेमी मनुष्य वा अन्नके साथ द्वेष, सर्वाङ्गमें ज्वर, कास, श्वास, रक्तका दिखाईदेना, स्वरका रूपान्तर–इतने चिह्न दिखाई देते हैं अर्थात् इन्हीं छः चिह्नोंसे युक्त षड्रूप राजयक्ष्मा होता है॥ ६८॥ ६९॥

परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवितुमिच्छति ॥ सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ ७० ॥ नित्यं स्वदेहपूजां च कुर्याद्गुरुभिषग्रतः ॥ निर्ममो धृतिमान्प्रीतस्ततोऽयं चिरजीवितः ॥ ७१ ॥

भा० टी०–यदि पूर्णरूप यक्ष्मासे पीडित हुआ तरुण मनुष्य १ सहस्र दिनपर्य्यन्त जीवना चाहे तो उत्तम वैद्योंके आश्रयमें बैठकर गुरुजन और वैद्योंकी भक्तिमें तत्पर रहे एवं अपनेको मंगलोपचारोंसे प्रसन्न रक्खे। इसके अतिरिक्त ममताको त्यागने और धृति प्रीतिसे युक्त होनेके कारण यह रोगी चिरजीवी भी होसकता है॥ ७०॥ ७१॥

शोकं स्त्रियं क्रोधमसूयतापं त्यजेच्च दुष्टान्विषयान्भयं च ॥ गुरुं द्विजादींस्त्रिदशांश्च पूजयेत्कथाश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥७२॥

भा० टी०–क्षयसे पीडितहुआ मनुष्य शोक, स्त्री, प्राणविनाशकी शंका, दुष्ट विषय, भय इतने कारणोंको त्यागदेवे और गुरु, ब्राह्मण, देवताओंकी पूजा करे एवं ब्राह्मणद्वारा पवित्र-चारित्रवाली कथा सुने॥ ७२॥

स जीवेच्चतुरो मासान्षडष्टैवोपजीवति ॥
जीवेत्संवत्सरं चाऽपि न च रोगात्प्रमुच्यते ॥ ७३ ॥

भा० टी०–ऐसा करनेसे उत्कट क्षयवाला मनुष्य चार मास वा छः मास वा आठमास वा एकवर्ष वा ढाईवर्ष पर्य्यन्त जीवित रहसकता है, रोगसे तो भी मुक्त नहीं होता॥ ७३॥

इति श्रीमत्सदानंदकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे राजयक्ष्मक्षतक्षयाधिकारः॥ १४॥

अथ कासाधिकारः १९.

पंचमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥
सेवितो मस्तुतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ १ ॥

भा० टी०–पीपलके चूर्णसे युक्त पञ्चमूलका क्काथ दधिजलके साथ सेवन कियेजानेसे वातजनित कासको नष्ट करताहै ॥ १ ॥

भार्ङ्गीद्राक्षाशठीशृङ्गीपिप्पलीविश्वभेषजैः ॥
गुडतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम् ॥ २ ॥

भा० टी०–भारंगी, दाख, कचूर, ककडासिंगी, पिपली, सोंठ इनकरके सिद्ध कियाहुआ लेह गुड और तैलके साथ वातज कासवाले जनोंका हितकारी है ॥ २ ॥

चूर्णिता विश्वदुःस्पर्शशृङ्गीद्राक्षाशठीसिताः ॥
लीढास्तैलेन वातोत्थं कासं जयन्ति दुस्तरम् ॥ ३ ॥

भा० टी०–सोंठ, जवासा, काकडासिंगी, दाख, कचूर, शक्कर इन सबको एकत्र चूर्ण करके तैलके साथ लेह करनेसे वातजनित कठिन कासका जय होताहै ॥ ३ ॥

बलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः क्कथितं जलम् ॥
पित्तकासापहं पेयं शर्कराप्रधुयोजितम् ॥ ४ ॥

भा० टी०–खिरैंटी, दोनों कटेहरी, वांसा, दाख इनकरके क्कथित कियाहुआ जल शक्कर और मधुके साथ उपयोगमें लायेजानेसे पित्तजनित कासको नष्ट करताहै ॥ ४ ॥

शरादिपंचमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ॥
कषायेण शृतं क्षीरं पिबेन्मधु सशर्करम् ॥ ५ ॥

भा० टी० शरादि पञ्चमूल (रामशर, कुश, कांस, डाभ, ईख,) और पिपली तथा दाखके कषायके साथ कढेहुए दूधको और शक्कर सहित मधुको पान करे ॥ ५ ॥

द्राक्षामलकखर्ज्जूरपिप्पलीमरिचान्वितम् ॥
पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ ६ ॥

भा० टी०–दाख, आंवला, खजूर, पिपली, मरिच इनके लेहको मधु, घृतके साथ उपयोगमें लावे । यह लेह पित्तज कासको हरताहै ॥ ६ ॥

खर्ज्जूरपिप्पलीद्राक्षासितालाजाः समांसिकाः ॥
मधुसर्पिर्युतो लेहः पित्तकासहरः परः ॥ ७ ॥

भा० टी०–खजूर, पिप्पली, दाख, शक्कर, लाजा, जटामांसी इनका लेह मधु घृतके साथ उपयोगमें लायेजानेसे अत्यन्त पित्तज कासको हरताहै ॥ ७ ॥

मुद्गामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां कर्कन्धुना मूलकशुण्ठकेन ॥
शुण्ठीकणाभ्यां च कुलत्थकेन यूषो नवाङ्गः कफरोगहन्ता ॥ ८ ॥

भा० टी०–मूंग, आंवला, जव, दाडिम, छोटी बेर, सूखा अदरख, शोंठ, पीपल, कुलथी इन ९ वस्तुओंसे रचाहुआ यूष कफरोगका नाशक है ॥ ८ ॥

पुष्करं कट्फलं भार्ङ्गी विश्वं पिप्पलिका तथा ॥
पिबेत्क्वाथं कफोद्रेके कासश्वासे च हृद्ग्रहे ॥ ९ ॥

भा० टी०–कूठ, कायफल, भारङ्गी, शोंठ, पीपल इनकरके सिद्ध कियेहुए क्वाथको कफकी अधिकतावाले कास श्वासमें और हृद्ग्रहमें पीवे ॥ ९ ॥

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ॥
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायज्वरापहम् ॥ १० ॥

भा० टी०–शिलामें पीसेहुए अदरखके रसको मधुके साथ पिलावे क्योंकि यह श्वास कास और पीनस सर्दीके ज्वरका भी नाशक है ॥ १० ॥

पार्श्वशूले ज्वरे कासे श्वासे श्लेष्मसमुद्भवे ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ११ ॥

भा० टी०–पसलीशूल, ज्वर, श्वास, और कफजनित कासमें पिप्पलीके चूर्णसे युक्त दशमूलके रसको पीवे ॥ ११ ॥

कट्फलः कत्तृणं भार्ङ्गी मुस्तं धान्यं वचाऽभया ॥ शुण्ठी पर्पटकं शृङ्गी सुराह्वं च जले शृतम् ॥ १२ ॥ मधुहिंगुयुतं पेयं कासे वातकफात्मिके ॥ कण्ठरोगास्यशूलेषु श्वासहिक्काज्वरेषु च ॥ १३ ॥

भा० टी०–कायफल, पिठवन, भारङ्गी, मोथा, धनियां, वच, हरड, शोंठ, पितपापड, ककडासिंगी, देवदार इनकरके जलमें सिद्ध कियाहुआ काढा मधु और हींगके साथ वातकफज कासमें, कंठरोगमें, मुखशूलमें, श्वासमें, हिचकी और ज्वरमें भी पान करना उचित है ॥१२॥१३॥

वातश्लेष्मकृते कासे तालीशाद्यं प्रयोजयेत् ॥
पित्तयुक्ते भवेच्छ्रेष्ठं वंशलोचनयाऽन्वितम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–वातकफसे उपजेहुए कासमें वक्ष्यमाण तालीशादिमोदकको प्रयुक्त करे । परन्तु पित्तके संपर्कमें वंशलोचनके साथ उपयुक्त करना श्रेष्ट है ॥ १४ ॥

अथ तालीशाद्यो मोदकः ।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ॥ यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चाऽर्द्धभागिके ॥ १५ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चाऽत्र प्रदेया सितशर्करा ॥ कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ १६ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोषज्वरापहम् ॥ छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ १७ ॥ कल्पयेद्गुटिकां चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलम् ॥ गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराः स्मृताः ॥ १८ ॥

भा० टी०–१ भाग तालीसपत्र, २ भाग मरिच, ३ भाग सोंठ, ४ भाग पिपली, ५ भाग वंशलोचन, आधा २ भागके क्रमसे दालचीनी और इलायची ॥ १५ ॥ पिपलीसे आठगुणी शक्कर इन सबको एकत्रित करके चूर्ण बनावे । यह चूर्ण कास, श्वास, और अरुचिको हरता । और अत्यन्त अग्निवर्द्धक होनेके कारणसे ॥ १६ ॥ हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, फीहा, शोष, ज्वर, छर्दि, अतिसार, और शूलको भी नष्टकरता एवं मूर्च्छितहुए वायुको अनुकूल बनाता है ॥ १७ ॥ इस चूर्णका नाम सितोपल है परन्तु इसको अग्निमें पकादेनेके अनन्तर गुटिका बनानेसे तालीशादिमोदक सिद्ध होताहै । यह मोदक अग्निसंयोगके कारण चूर्णसे अत्यन्त हलका होताहै ॥ १८ ॥

वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिता सिता ॥
पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ १९ ॥

भा० टी०–पित्त और कफसे उपजेहुए कासमें, और विशेषकरके रक्तपित्तमें शिलवांसेका रस मधुके साथ पीना उचित है एवं शक्कर भी हित है ॥ १९ ॥

कासे तु क्षतजे बल्यैर्जीवनैर्बृंहणैरपि ॥
शमनं पित्तकासोक्तैराप्तैश्च मधुरौषधैः ॥ २० ॥

भा० टी०–क्षतसे उपजेहुए कासमें बलकर और प्राणशक्तिके देनेवाले बृंहण पदार्थों (कूष्मांडरसायनप्रभृति) से तथा पित्तज कासमें कहेहुए अन्यान्य हितकारी मधुर (तीक्ष्ण नहीं) औषधोंसे शांति होतीहै ॥ २० ॥

कुनटीसैन्धवव्योषविडंगामयहिंगुकैः ॥
लेहः साज्यमधुः कासहिक्काश्वासेषु पूजितः ॥ २१ ॥

भा० टी०–धनियां, सेंधानोन, त्रिकटु, वायविडङ्ग, कूडा, हींग इनके लेहको मधु घृतके साथ उपयोगमें लाना प्रशंसनीय है जब कि, कास श्वास और हिचकीका उपद्रव हो ॥ २१ ॥

मधुकं पिप्पली द्राक्षा लाजा शृङ्गी शतावरी ॥

द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता सर्वैश्चतुर्गुणा ॥ २२ ॥

लिह्यात्तु मधुसर्पिर्भ्यां क्षतकासनिवृत्तये ॥ २३ ॥

भा० टी०–मुलहटी, पिपली, दाख, लाजा, काकडसिंगी, शतावर, और इन सबसे दुगुना वंशलोचन, और इन सबसे चौगुनी शक्करको ले चूर्ण बनाय क्षतसे उपजेहुए कासकी निवृत्तिके लिये मधु घृतके साथ सेवन करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

पिप्पली मधुकं द्राक्षा सुपक्वं बृहतीफलम् ॥

घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिबर्हणः ॥ २४ ॥

भा० टी०–पीपल, मुलहटी, दाख, पकाहुआ कण्टाईका फल इनका लेह मधु घृतके साथ उपयोगमें लायेजानेसे क्षयसे उपजेहुए कासको नशाता है ॥ २४ ॥

पथ्याशुण्ठीघनगुडैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ॥

सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकम् ॥ २५ ॥

भा० टी०–सब प्रकारके श्वास कासोंमें हरड, सोंठ, मोथा, गुड इनकी गुटिकाको वा केवल बहेडेको मुखमें धारण कियेरहे ॥ २५ ॥

मनःशिलालमरिचं मांसीमुस्ते गुडं पिबेत् ॥

धूम्रं तस्याऽनु च पयः सुखोष्णं सगुडं पिबेत् ॥ २६ ॥

भा० टी०–मनसिल, हरताल, मरिच, मासी, मोथा, गुड और शिलारसको पीकर पीछेसे गुडसहित मन्दोष्ण दूधको पीवे ॥ २६ ॥

पंच कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुत्थितान् ॥

शतैरपि प्रयोगाण साधयेदप्यसाधितान् ॥ २७ ॥

भा० टी०–यह उक्त प्रयोग वातज पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, और त्रैदोषिक भेदसे पंच-प्रकारके कासोंको साधता है यद्यपि वे सैकडों प्रयोगोंसे असाध्य क्यों न हों ॥ २७ ॥

मनःशिलालिप्तदलं बदर्य्या अपशोषितम् ॥

सक्षीरं धूम्रपानन्तु महाकासनिबर्हणम् ॥ २८ ॥

भा० टी०–मनसिलसे बेरके पत्तेको लेपकर सुखावे तब उसको खाकर पीछेसे दूधसहित शिलारसको पान करनेसे महान् कास भी नष्ट होय ॥ २८ ॥

कर्षः कर्षार्द्धपले पलद्वयं स्यात्तथाऽर्द्धकर्षश्च ॥ मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ २९ ॥ सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः

सर्ववैद्यनिर्मुक्ताः ॥ अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदमौषधं पथ्यम् ॥ ३० ॥

भा० टी०-१ कर्ष मरिच, १ कर्ष पिपली, आधा पल दाडिम, दो पल गुड, आधा कर्ष यावशूक (जवाखार) ॥ २९ ॥ यह चूर्णरूप औषध उन कासोंमें उपयोगी है जो सर्वथा असाध्य जानकर वैद्योंने त्यागदिये हैं । अथवा पीवको वमन करनेवाले भयंकर काससे खिन्नहुए मनुष्योंके भी यह औषध हितकारी है ॥ ३० ॥

अर्कच्छल्लिशिते तुल्ये तदर्द्धं कटुकत्रयम्॥ चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिबे-द्धूमं च योगवित् ॥ ३१ ॥ भक्षयेदथ ताम्बूलं पिबेद्दुग्धमथाऽपि वा ॥ कासाः पंचविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥ ३२ ॥

भा० टी०-आँककी छाल और शक्करके समभाग, और इनके आधा त्रिकटुको चूर्णित करके आगमें डालकर नलके द्वारा योगज्ञ मनुष्य इसके धूमको पानकरे ॥३१॥ और पीछेसे तांबूल वा दुग्धको सेवे । ऐसा करनेसे पंचप्रकारके कास शीघ्र ही शान्त होतेहैं इसमें संदेह नहीं ॥३२॥

कण्टकारीकृतः क्काथः सकृष्णः सर्वकासहा ॥ ३३ ॥

भा० टी०-पीपलसहित कण्टाईका क्काथ भी सबप्रकारके कासका नाशक होता है ॥ ३३ ॥

लवंगजातीफलपिप्पलीनां भागान्प्रकल्प्याऽक्षसमानमेषाम् ॥
पलार्द्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ ३४ ॥

भा० टी०-लवङ्ग, जायफल, पिपली इनके अक्षप्रमाण भाग बनाकर आधा पल मरिच और चार पल शोंठको देवे ॥ ३४ ॥

शितासमं चूर्णमिदं प्रशस्तं रोगानिमान्सुप्रबलान्निहन्ति ॥
काशज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ ३५ ॥

भा० टी०-और इन पूर्वोक्त वस्तुओंके समानभागवाली शर्कराको मिलाकर चूर्ण बनावे । यह उत्तम चूर्ण-कास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, प्लीहा, श्वास, अग्निमान्द्य, ग्रहणीदोष इतने प्रबल रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

दशमूलीकषायेण भार्ङ्गीकल्कं पचेद्घृतम् ॥
दक्षतित्तिरिनिर्य्यूहे तत्परं वातकासनुत् ॥ ३६ ॥

भा० टी०-दशमूलके क्काथमें भारंगीके कल्क और घृतको पकावे । फिर इसीको दक्ष (मुरगा) और तीतरके कढेहुए मांसरसमें पकानेसे वातज कासको दूर करता है ॥ ३६ ॥

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याऽक्षसमन्वितैः ॥
पुष्कराह्वशठीविश्वसुरसव्योषहिंगुभिः ॥ ३७ ॥

भा० टी०–८ सेर दशमूलके रसमें १ प्रस्थ घृतको एक २ अक्षके प्रमाणसे पोहकरमूल, कचूर, बोल, मोचरस, त्रिकटु, हींग इनके कल्कद्वारा पकाकर सिद्ध करे॥ ३७॥

पयोऽनुपानं तत्पेयं कासे वातकफात्मके ॥ ३८ ॥

भा० टी०–इस घृतको वातकफात्मक कासमें पीकर पीछेसे दूध पीवे॥ ३८॥

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्य्या रसाढके ॥ घृतप्रस्थं बलाव्योष-त्रिडङ्गशठिचित्रकैः ॥३९॥ सौवर्चलयवक्षारविश्वामलकपुष्करैः ॥ वृश्चिकवृहतीपथ्यायवानीदाडिमर्द्धिभिः॥४०॥ द्राक्षापुनर्नवाभ्यां च दुरालभाम्लवेतसैः॥ सशृङ्ग्यामलकीभार्ङ्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत्॥ ॥ ४१ ॥ कल्कैस्तत्सर्वकासेषु हिक्काश्वासे च शस्यते॥ कण्टका-रीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ४२ ॥

भा० टी०–जड, पत्र और शाखाके सहित कण्टकारीके ८ सेर रसमें १ प्रस्थ घृतको खिरैटी, त्रिकटु, विडंग, कचूर, चीता, सञ्चरनोन, जवाखार, बोल, बांसा, कूठ, बिछुवाघास, बृहती, हरड, अजवायण, अनार, ऋद्धि, दाख, पुनर्नवा, दुरालभा, अमलवेत, काकडासिंगी, आंवला, भारङ्गी, रासन, गोखरु इनके कल्कके साथ पकावे। यह घृत–पञ्चप्रकारके कास और हिचकी, श्वासमें भी उत्तम कहाजाता है। भलीप्रकार सिद्धहोनेके कारण यह कण्टकारी-घृत समस्त कफरोगोंको नष्ट करता है॥ ३९॥ ४०॥ ४१॥ ४२॥

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नां दशमूलीं शतावरीम् ॥ पलिकान्मानिकांशां-स्त्रीन्कुलत्थान्बदरान्यवान् ॥४३॥ तुलार्द्धं छागमांसस्य पादशेषेण तेन च ॥ घृताढकं समं क्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ४४ ॥ सिद्धन्तु दशभिः कल्कैर्नस्यपानानुवासनैः ॥ समीक्ष्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥ पंच कासान्क्षयं श्वासं पार्श्वशूल-मरोचकम् ॥ सर्वांगैकांगरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलाञ्जयेत् ॥ ४६॥

भा० टी०–एकद्रोण जलमें रासन, दशमूल, शतावर,–इनके अलग २ पलप्रमाण भाग, और कुलथी, बेर, जव–इनके मानिका (१ सेर) प्रमाणभाग॥ ४३॥ तथा ५० पल बकरीके मांसको लेकर पकावे। जब चतुर्थांश रस रहजाय तब उसमें ८ सेर घृत और समानभाग-वाले दुग्धको जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलहटी, मुगवन, मषवन, जीवन्ती) के पल प्रमाण कल्कभागोंके साथ सिद्ध करे। पीछे नस्य, पान, और बस्तिकर्मके द्वारा वातरोगोंमें अवस्थाके अनुसार इस घृतका प्रयोग करे॥ ४४॥ ४५॥

यह घृत पञ्च प्रकारके कास, क्षय, श्वास, पसलीशूल, अरुचि, सर्वाङ्गसम्बन्धी वा एकाङ्गसंबन्धी रोग, प्लीहा, उदावर्त, इतने रोगोंको जीतता है ॥ ४६ ॥

घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् ॥
कण्टकारीरसे पानात्पंचकासनिषूदनम् ॥ ४७ ॥

भा० टी०–रासन, खिरैंटी, त्रिकटु, गोखरु–इनके कल्कके साथ पकायाहुआ घृत भी कण्टकारीके रसमें पान कियेजानेसे पञ्चप्रकारके कासोंको नशाता है ॥ ४७ ॥

दशमूलीरसे प्रस्थे चतुःप्रस्थोन्मितं घृतम् ॥
सक्षारैः पंचकोलैस्तत्कल्कितं साधु साधितम् ॥ ४८ ॥
काशहृत्पार्श्वशूलघ्नं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ॥ ४९ ॥

भा० टी०–१ प्रस्थ दशमूलके रसमें ४ प्रस्थ घृतको जवाखार, सज्जीखार, और पञ्चकोलके कल्कसे कल्कित करके भलीप्रकार सिद्ध करे ॥ ४८ ॥ यह घृत कास, हृदयशूल, पसलीशूल, हिचकी, और श्वासको भी नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

तालीशवह्निदीपककचयुतचविकाम्लवेतसव्योषैः ॥ तुल्यैस्त्रिसुगन्धियुतैर्गुडेन गुटिकाः प्रकर्तव्याः ॥ ५० ॥ कासश्वासारोचकपीनसहृत्कण्ठवाग्विरोधेषु॥ग्रहणीगुदोद्भवेषु शस्ता गुटिका हते वह्नौ॥५१॥

भा० टी०–तालीशपत्र, चीता, केशर, और अजवायण, सुगन्धवाला, चव्य, अमलवेत, त्रिकटु, दालचीनी, इलायची, तेजपात,–इनके तुल्यभाग लेकर गुडके साथ गुटिका बनानी॥५०॥ यह गुटिका–कास, श्वास, अरुचि, पीनस, हृदयरोध, कण्ठरोध, वाणीरोध, ग्रहणी, बवाशीर, मन्दाग्नि, इतने रोगोंमें हितकारिणी होती है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे कासाधिकारः ॥ १५ ॥

अथ हिक्काश्वासाधिकारः १६.

कोलमक्षाञ्जनं लाक्षातिक्ताकांचनगैरिकैः ॥ कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी काशीसं दधिनाम च ॥ १ ॥ पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्ज्जूरमुस्तकम् ॥ षडेते पादिका लेहो हिक्काघ्नो मधुसंयुतः॥ २॥

भा० टी०–अब हिचकी और श्वासका अधिकार कहते हैं–शीतलचीनी, बहेडा, रसाञ्जन, लाख, कटुकी, कचनार, गेरुआ, पीपल, आंवला, शकर, शोंठ, कसीस,–इनके समभाग, और कैथ पाटलीके फल और फूल, कृष्णा (दाख), खजूर, मोथा इन छः वस्तुओंके चौथाई भाग लेकर लेह बनावे। यह लेह–मधुयुक्त होनेसे हिचकीका नाशक है॥ १ ॥ २ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—पीपल और शक्करसे युक्त मुलहटी मधुके साथ, और शोंठ गुडके साथ उपयुक्त होनेसे हिचकीकी नाशक कही है ॥ ३ ॥

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वाऽलक्तकाम्बुना ॥
योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—हिचकीसे तिरस्कृतहुए मनुष्यके लिये, दुग्धके साथ मक्खीबीट, वा महावरके रसका नस्य, वा चन्दनमिश्रित दुग्धको प्रयुक्त करना उचित है ॥ ४ ॥

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुंगरसं पिबेत् ॥
हिक्कार्तो मधुना लिह्याच्छुण्ठीं धात्रीकणान्विताम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—हिचकीसे पीडितहुआ मनुष्य मधु और सञ्चरलोनसे युक्त बिजोरा नीबूके रसको पीवे। अथवा आंवला और पीपलसे युक्त शोंठको मधुके साथ उपयुक्त करे ॥ ५ ॥

कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—पीपल, आंवला, शोंठ–इनका चूर्ण मधु और शक्करके साथ हिचकी और श्वासके निवारणार्थ वार २ प्रयुक्त करना उचित है ॥ ६ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनं शीतवारिपरिसेकैः ॥
चित्रैः कथाप्रयोगैः शमयेद्धिक्कां मनोभिघातैश्च ॥ ७ ॥

भा० टी०—श्वासके रुकजानेमें शीतल जलका सेवन करनेसे विचित्ररूपसे श्वासावरोधका तिरस्कार होता है। एवं विचित्र कथाप्रयोगोंसे और मनमें किसी प्रकारका भय दिखानेसे हिचकीको शान्त करे ॥ ७ ॥

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते ॥
उर्द्ध्वाधःशोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—हिचकी और श्वाससे आतुरहुए मनुष्यको प्रथम तेलसे गीला बनाकर स्वेदित करे। अथवा उक्त रोगीके समर्थ होनेपर वमन विरेचनके द्वारा शोधन करे और दुर्बल होतेहुएको शमन करना कहा है ॥ ८ ॥

हिक्काश्वासी पिबेद्भार्ङ्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ॥
नागरं वा सिताभार्ङ्गीसौवर्चलसमन्वितम् ॥ ९ ॥

भा० टी०–हिचकी और श्वासवाला मनुष्य शोंठसहित भारङ्गीको उष्णजलके साथ पान करे । अथवा शक्कर, भारङ्गी, और कालालोनसे युक्त शोंठको उष्णजलसे पीवे ॥ ९ ॥

अभयां नागरं कल्कं पौष्करं यावशूकजम् ॥
मरिचं पिप्पलीकल्कं तोयेनोष्णेन वा पिबेत् ॥ १० ॥

भा० टी०–हरड और शोंठके कल्कको, वा कूठ और जवाखारके कल्कको, वा मरिच और पिपलीके कल्कको गरमजलके साथ पान करे ॥ १० ॥

तृषार्तो दशमूलस्य क्वाथं वा देवदारुणः ॥
मदिरां वा पिबेद्युक्त्या हिक्काश्वासप्रपीडितः ॥ ११ ॥

भा० टी०–हिचकी और श्वाससे पीडितहुआ मनुष्य जब २ प्याससे व्याकुल हो तब २ दशमूल वा देवदारके काथको, वा युक्तिसे मदिराको पानकरे ॥ ११ ॥

दुरालभाकशाद्राक्षाशृङ्गीपथ्यावचूर्णजः ॥
मधुसर्पिर्युतो लेहः श्वासहिक्कापतन्द्रिजित् ॥ १२ ॥

भा० टी०–दुरालभा, रोहिणी, दाख, काकडासिंगी, हरड इनके चूर्णसे सिद्ध कियाहुआ लेह मधु घृतके साथ उपयोग कियेजानेसे कास, हिचकी, और निद्राजाड्यको जीतता है ॥ १२ ॥

गुडोषणे निशारास्नाद्राक्षामागधिकाः समाः ॥
तैलेन चूर्णिता लीढास्तीव्रश्वासनुदः स्मृताः ॥ १३ ॥

भा० टी०–गुड, पीपल, हलदी, रासन, दाख, जूही इनके सम भाग लेकर तैलके साथ चूर्णित करके लेह करनेसे तीव्र श्वास भी दूर हो ॥ १३ ॥

शृंगीकटुत्रिकफलत्रिककण्टकारीभार्ङ्गीसपुष्करजटीलवणानि चैषाम् ॥
चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्काश्वासोर्द्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ १४ ॥

भा० टी०–काकडासिंगी, त्रिकटु, त्रिफला, कण्टकारी, भारंगी, कूठ, जटामांसी, पञ्च लवण इनके चूर्णको गरमजलके साथ पान करे । जब हिचकी, श्वास, उर्द्ध्ववात, कास, अरुचि, पीनस इनमेंसे कोई भी रोग हो ॥ १४ ॥

शठी चोरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तं पुष्कराह्वयम् ॥ सुरसस्तामलक्येला-पिप्पल्यगुरुनागरम् ॥ १५ ॥ वालकञ्च समं चूर्णं कृत्वाऽष्टगुणशर्करम् ॥ सर्ववातात्मकश्वासे हिक्कायाञ्च प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

भा० टी०–कचूर, असवण, जीवन्ती, दालचीनी, मोथा, पोहकरमूल, सुरस, भूईआंवला, इलायची, पीपल, अगर, सोंठ, सुगन्धवाला इनके समभाग लेकर आठगुणी शकरवाले चूर्णको बनाय सबप्रकारके वातजनित श्वासमें और हिचकीमें प्रयुक्त करे ॥ १५ ॥ १६ ॥

कासमर्दकपत्राणां यूषः शोभाञ्जनस्य च ॥
शुष्कमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनिवारणः ॥ १७ ॥

भा० टी०–परवलके पत्ते वा सैंजिन वा सूखीमूलीसे सिद्ध कियाहुआ यूप भी हिचकी और श्वासको दूर करता है ॥ १७ ॥

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ॥
भेषजं पानमात्रं वा हिक्काश्वासेषु तद्धितम् ॥ १८ ॥

भा० टी०–जो कुछ औषधी वा पेयपदार्थ कफवातके नाशक और उष्णगुणवाले एवं वायुको अनुकूल चलानेवाले हों, वही हिचकी और श्वासमें हितकारी होते हैं ॥ १८ ॥

कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः क्वथितं जलम् ॥
पीतं पौष्करसंयुक्तं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–कुलथी, सोंठ, कटेहरी, वांसा पोहकरमूल इनका क्वाथ पान कियेजानेसे हिचकी और श्वासको दूर करता है ॥ १९ ॥

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् ॥
त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासो निर्मूलतां व्रजेत् ॥ २० ॥

भा० टी०–गुडको कडुवे तेलके साथ मिलाकर २१ दिनतक सेवन करनेसे श्वासरोग जडसे उखडजाय ॥ २० ॥

द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां कटुकाख्यां दुरालभाम् ॥
लिहतो मधुसर्पिर्भ्यां श्वासो याति सुदारुणः ॥ २१ ॥

भा० टी०–दाख, हरड, पीपल, कटुकी, दुरालभा, इनको मधु घृतके साथ सेवन करतेहुए मनुष्यके दारुण श्वास भी दूर होवें ॥ २१ ॥

हिंस्राविडंगपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।
द्विक्षारं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ २२ ॥

भा० टी०–बालछड, वायविडंग, कांटाकरञ्ज, त्रिफला, त्रिकटु, चीता, जवाखार, सज्जीखार और १ प्रस्थ घृतको लेकर चौगुने जलमें पकावे ॥ २२ ॥

कोलमात्रं पचेत्तद्धि कासश्वासं व्यपोहति ॥
अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षतक्षयम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–सिद्ध होनेपर १ तोलाके प्रमाणसे सेवन करे। यह घृत कास, श्वास, ववासीर, अरुचि, फीहा, शकृद्भेद (विष्ठाका रूपान्तर होना), क्षतक्षय इतने रोगोंको नष्ट करता है॥२३॥

शतं संगृह्य भाङ्गर्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् ॥ शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ २४ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिस्रुते ॥ आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ॥२५॥ पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमाप्नुयात् ॥ शीते तु मधुनश्चाऽत्र षट्पलानि प्रदापयेत् ॥ २६ ॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धीनि पलिकानि पृथक्पृथक् ॥ कर्षद्वयं यवक्षारं सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥ २७ ॥ भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्द्धऽपलं लिहेत् ॥ श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ २८ ॥ स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः ॥ हरीतकी-शतैकस्य वारिप्रस्थमिहाऽधिकम् ॥ २९ ॥

भा० टी०-भारंगी, दशमूल, हरड, इनमेंसे प्रत्येकके शत २ पल भाग लेकर चौगुने जलमें पकावे ॥ २४ ॥ जब चतुर्थांश बचे तब उसको वस्त्रसे छानकर उसमें १०० पल शुद्ध गुडको आलोडित करके १०० हरडोंको भी आलोडित करे ॥ २५ ॥ फिर उस रसको कोमल अग्निकी आंचमें पकाता रहे जबतक वह लेहभावको प्राप्त हो । पीछे उसे उतारकर शीतल होनेपर छः पल मधु ॥२६॥ और सोंठ, मिरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात इनके अलग २ पलभाग, और २ कर्ष जवाखार इन सबका चूर्ण बनाय उसमें डालदेवे ॥ २७ ॥ ऐसा करनेपर प्रतिदिन एक हरडको खाकर आधापल लेहको सेवे । यह लेह दारुण श्वास और पंचप्रकारके कासको नशाता है ॥ २८ ॥ और स्वर तथा वर्ण कांतिको बढाता एवं जठराग्निको दीप्त कर-ताहै । इसमें यह भी ध्यान रहे कि, १०० हरड जो पीछे आलोडित की हैं उनके लिये १ प्रस्थ जल और रक्खे ॥ २९ ॥

कुलत्थो दशमूलञ्च तथैव द्विजयष्टिका॥शतं शतञ्च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३० ॥ पादावशेषे तस्मिँस्तु गुडस्याऽर्द्धतुलां पचेत् ॥ शीतीभूते क्षिपेत्तत्र मधुनोऽष्टौ पलानि च ॥ ३१ ॥ षट्पलानि तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ॥ त्रिसुगन्धियुतं तच्च खादे-दग्निबलं प्रति ॥ ३२ ॥ कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च नाशयेदचिरा-दिव ॥ योगसन्दर्शनादत्र वृद्धवैद्योपदेशतः ॥ ३३ ॥ जलं चतु-र्गुणं देयमल्पत्वाद्द्रोणवारिणः ॥ मानसान्निध्यसंवादाद्द्विपलं त्रिसुगन्धितः ॥ ३४ ॥

भा० टी०–कुलत्थी, दशमूल, तुम्बुरु इनके सौ २ पल भाग लेकर एकद्रोण जलमें पकावे ॥३०॥ जब चतुर्थांश बचे तब उसमें ५० पल गुडको पकावे। पीछे शीतल होनेपर ८ पल सतु ॥ ३१ ॥ और ६ पल वंशलोचन तथा २ पल पिपली, और दो २ पलके प्रमाणसे दालचीनी, इलायची, तेजपातको मिलाकर अग्निबलके अनुसार मात्रा बनाय खावे ॥ ३२ ॥ यह कुलत्थगुड कास, श्वास, हिचकीको शीघ्र ही नष्ट करता है। परन्तु यहां योग (औषधसमूह) के देखने और वृद्ध वैद्योंके कथनसे भी द्रव्यमानसे चौगुना जल देना उचितहै क्योंकि एक द्रोण जल जो ऊपर कहाहै वह बहुत थोडा है। त्रिसुगन्धका मान ऊपर श्लोकमें व्यक्त नहीं है अतः "पिप्पल्याश्च पलद्वयम्" इस वाक्यका काकाक्षिवत् मध्यगत वा निकट होनेसे त्रिसुगन्धमें भी २ पलका ही अनुमान कियागया है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे हिक्काश्वासाधिकारः ॥ १६ ॥

अथ स्वरोपघाताधिकारः १७.

पूर्वं कोष्णजलं पेयं जग्ध्वा घृतगुडौदनम् ॥
स्वराभिघातमुत्पन्नं हन्तुकामेन रोगिणा ॥ १ ॥

भा० टी०–रोगके कारणसे उपजेहुए स्वराभिघात (स्वरका नष्ट होना) को नष्ट करनेकी इच्छा करते हुए मनुष्यको प्रथम गुडघृतमें सिद्धकिये भातको खाकर कुछ गरम जल पी लेना उचित है ॥ १ ॥

फलत्रिकत्र्यूषणयावशूकचूर्णञ्च लिह्यात्स्वरभेदहान्यै ॥
यः श्वासकासादित एव चोक्तस्तच्चाऽप्यशेषं परिजेतुमीशः ॥ २ ॥

भा० टी०–त्रिफला, त्रिकटु, और जवाखारके चूर्णको स्वरभेद (स्वरका बदलजाना) की हानिके लिये सेवन करे। क्योंकि श्वास कास आदि रोगोंसे उपजेहुए सब प्रकारके स्वरोपघातको जीतनेके लिये यह चूर्ण समर्थ है ॥ २ ॥

क्षीरानुपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥
वातजे शृङ्गिकाकल्कमभयासितयाऽन्वितम् ॥ ३ ॥

भा० टी०–पित्तसे उपजेहुए स्वराभिघातमें आलस्य छोडकर घृतको पीवे और पीछेसे हरड तथा शक्करसे युक्त काकडसिंगीके मोदकको खावे ॥ ३ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलमरिचं विश्वभेषजम् ॥
पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ ४ ॥

भा० टी०–कफसे उपजेहुए स्वरोपघातमें पिपली, पिपलीमूल, मरिच और सोंठको गोमूत्रके साथ पान करे ॥ ४ ॥

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ॥
क्षयजे सर्वजे चाऽपि प्रत्याख्यातां चरेत्क्रियाम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–मेदसे उपजेहुए स्वरोपघातमें कफमें कहाहुआ विधान करना माना है । एवं क्षयसे या सभी दोषोंसे उपजे स्वरोपघातमें ऊपर कहीहुई क्रियाओंको दोषानुसार मेलकरके करे ॥५॥

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिलीकतालीशजीरतुरगीदहनैः समांशैः ॥
चूर्णं गुडप्रमथितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–चव्य, अमलवेत, त्रिकटु, इमली, तालीशपत्र, जीरक, असगन्ध, दहन (भिलावा) इनके समभाग लेकर गुडके साथ मथित करके चूर्ण बनावे । पीछे दालचीनी, इलायची, तेजपातसे युक्त कियेजानेसे यह चूर्ण विस्वरता, पीनस, कफ, और अरुचिमें भला होता है॥६॥

वल्लीपत्रजकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ॥
स्वरोपघाते कासे च बले क्षीणे प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥

भा० टी०–अथवा अजमोदा और तेजपातके कल्कको सैंधवके साथ घृतमें भूनकर स्वरोपघात, कास, और बलके क्षीणहुएमें प्रयुक्त करे ॥ ७ ॥

शर्करामधुमिश्राणि तान्येव मधुरैः सह ॥
पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ८ ॥

भा० टी०–इन्हीं पूर्वोक्त वस्तुओंको शक्कर और मधुसे मिश्रित करके मधुर (दाख, गंभारीफल, खजूर) के साथ खावे और पीछेसे दूधको पीवे । जिसका स्वर ऊंचे शब्द बोलनेसे नष्ट होगया हो ॥ ८ ॥

व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः ॥
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासञ्च पञ्चविधम् ॥ ९ ॥

भा० टी०–कटेहरीके स्वरसमें रासन, खिरैंटी, गोखरु और त्रिकटुके साथ पकाया हुआ घृत भी स्वरोपघात और पञ्चप्रकारके कासको नष्ट करताहै ॥ ९ ॥

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसो नाम संभवेत् ॥
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १० ॥

भा० टी०–शुष्क औषधीको शिलामें पीसकर आठगुणे जलमें सिद्ध करनेसे चौथाई जो बचे उसका नाम स्वरस है ॥ १० ॥

विडंगं सैन्धवं हिंगु गुग्गुलुं सुमनःशिलाम् ॥
प्रतिश्यायो वचायुक्तं चूर्णमादाय नश्यति ॥ ११ ॥

भा० टी०–वायविडङ्ग, सेंधानोन, हींग, गोगल, मनसिल, वचा इनके चूर्णको लेनेसे पीनसजनित स्वरभंग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

निदिग्धिकापलशतं तदर्धं ग्रन्थिकस्य च ॥ चित्रकस्य तदर्धं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १२ ॥ तस्मिन्रसे वस्त्रपूते चाऽष्टभागावशेषिते ॥ अर्धां तुलां क्षिपेत्तत्र पुराणस्य गुडस्य च ॥ १३ ॥ कुडवद्वयञ्च पिप्पल्यास्त्रिजातद्विपलं तथा ॥ मरिचस्य पलञ्चैकं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ १४ ॥ मधुनः कुडवं दद्याद्भक्षयेच्च यथाबलम् ॥ वैस्वर्य्यं सर्वजं मान्द्यमग्नेर्नश्यति तत्क्षणात् ॥ १५ ॥

भा० टी०–१०० पल कटेरी, ५० पल गठिवन, २५ पल चीता, इन सबको एकद्रोण जलमें पकावे ॥ १२ ॥ जब अष्टमांश रस रहजाय तब उसको कपडेसे छानकर उसमें ५० पल पुराणा गुड रक्खे ॥ १३ ॥ और ६४ तोले पिपली, २ पल त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपात,) १ पल मरिच–इन सबका चूर्ण बनाय उसीमें रखछोडे ॥ १४ ॥ पीछे ३२ तोले मधुको मिलाय अग्निबलके अनुसार खावे । इसके सेवनसे सर्वदोषज स्वरभंग और अग्निमान्द्य भी तत्काल नष्ट होता है ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे स्वरोपघाताधिकारः ॥ १७ ॥

अथाऽऽमारोचकाधिकारः १८.

वान्तो वचाभिरनिले विधिवत्पिबेत्तु स्नेहाप्लुतो हि मदिरान्यतमेन चूर्णम् ॥ कृष्णाविडंगयवभस्महरेणुभार्ङ्गीरास्नैलहिंगुलवणोत्तमनागराणाम् ॥ १ ॥

भा० टी०–वायुके द्वारा आमाशयके बिगडनेसे उपजीहुई अरुचिमें, विधिपूर्वक वचाके द्वारा वमन लेनेके अनन्तर स्निग्ध होकर पीपल, वायविडङ्ग जवाखार, रेणुका, भारङ्गी, रासना, इलायची, हींग, सेंधानोन, शोंठ– इनके चूर्णको किसी एक उत्तम मदिराके साथ पानकरे ॥ १ ॥

पित्ते गुडाम्बुमधुकैर्वमनं प्रशस्तं लेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ॥ निम्बाम्बुना कृतवमेः कफजे तु पानं राजद्रुमाम्बुमधुना सह दीपकोष्णम् ॥ २ ॥

भा० टी०–पित्तसे उपजेहुए आमारोचकमें गुड, जल, मधुसे वमन देना और सेंधा, शक्कर, मधु, घृत सहित लेहका प्रयोग करना कहा है । कफसे उपजेहुए आमारोचकमें नीमके रससे वमन किये हुए मनुष्यके लिये मधुके साथ अमलतासका रस दीपन और गरम होता है ॥ २ ॥

चूर्णं यदुक्तमथवाऽनिलजे तदेव सर्वैश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेत ॥
एवं कृते सति भवेदरुचिप्रतोदप्राप्तव्यथोऽपि सुतरामरुजः क्षणेन ॥ ३ ॥

भा० टी०–अथवा वातजमें जो चूर्ण कहा है वही कफजमें भी गुणकारी जानना । त्रिदोषसे उपजेहुए आमारोचकमें इन पूर्वोक्त तीनही विधियोंका मेल करे । ऐसा करनेसे कसाही आमारोचकपीडित भी क्यों न हो परन्तु शीघ्र ही नीरोग हो ॥ ३ ॥

बस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ॥
कुर्याद्धृद्याऽनुकूलानि हर्षणानि मनोव्रजे ॥ ४ ॥

भा० टी०–मतान्तर कहते हैं–वातजमें बस्तिकर्म, पित्तजमें विरेचन, और कफजमें वमन करे तथा मनके संवातके लिये अनुकूल और आनन्दजनक प्रयोग करे ॥ ४ ॥

इच्छाविनाशभयजेषु च बाधकेषु भावान्भवाय वितरेत्खलु शक्य-रूपान् ॥ अर्शःसु चाऽतिपतितेष्वपुनर्भवाय पौराणिकः श्रुतिपथै-रनुमानयेत ॥ ५ ॥

भा० टी०–इच्छाविनाश और भयसे उपजेहुए रोगोंमें कल्याणजनक उत्तमोत्तम पदार्थोंको देवे । यदि आमारोचकके संबन्धसे बवाशीरोंका अतिपात होजाय तो उनके फिर २ उत्पन्न न होनेके लिये प्राचीन संहिताओंके द्वारा प्रयोगोंका अनुमान करे ॥ ५ ॥

सात्म्यात्स्वदेशरचितान्विविधांश्च भक्ष्यान्पानानि हर्षणकराणि च लेहजातीः ॥ सेवेद्रसाँश्च विविधान्विविधप्रयोगैर्भुञ्जीत वाऽपि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ ६ ॥

भा० टी०–सात्म्यताके कारणसे अपने देशमें रचेहुए नानाप्रकारके भक्ष्य, तथा आनन्दजनक पेय और लेह्य तथा अन्यान्य रसोंको भी अनेक प्रयोगोंके द्वारा सेवन करे वा हलके और रूखे तथा मनको सुखदेनेवाले पदार्थोंको भोगै ॥ ६ ॥

अम्लिकागुडतोयश्च त्वगेलामरिचान्वितम् ॥
अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–नहीं है भातकी इच्छा जिन्होंमें ऐसे रोगोंके होते इमली और गुडके रसमें दालचीनी, इलायची और मिरिचको मिलाकर कवल धारण करना भला है ॥ ७ ॥

(१) कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचं विडम् ॥
(२) धात्र्येलापद्मकोशीरं पिप्पल्यश्चन्दनोत्पलम् ॥ ८ ॥

भा० टी०–कूडा, कालानोन, कालाजीरा, शक्कर, मरिच, विरियालोन (१), आंवला, इलायची, पद्माख, खस, पिपली, चन्दन, कमल (२) ॥ ८ ॥

(३) लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ॥
(४) आर्द्रदाडिमनिर्य्यासश्चाजाजीशर्करान्वितः ॥ ९ ॥
सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः ॥
चतुरोऽरोचकान्हन्युर्वातायेकजसर्वजान् ॥ १० ॥

भा० टी०–लोध, तेजबल, हरड, त्रिकटु, अजवायण (३), एवं कालाजीरा और शक्करयुक्त गील अनारका काढा (४) यह चारप्रकारके कवलग्रह–तैल और मधुके साथ उपयोगमें लायेजानेसे वातज, पित्तज, कफज, और त्रैदोषिक भदसे चारप्रकारके अरोचकोंको क्रमशः नष्ट करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

त्रिग्र्यूषणत्रिफलिकं रजनीद्वयञ्च चूर्णीकृतं च यवशूकविमिश्रितं तत् ॥ क्षौद्रान्वितं सुवितरेन्मुखबोधनाथमन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ ११ ॥

भा० टी०–त्रित्र्यूषण (सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता), त्रिफला, दोनों हलदी, इनका चूर्ण बनाय और उसमें जवाखार मिलाय मधुके साथ मुखबोधन (स्वादजगाना) के लिये देवे । एवं अन्यान्य तिक्त कटुक औषधी भी एतदर्थ जानिये ॥ ११ ॥

कारव्यजाजीमरिचं द्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ॥
सौवर्च्चलगुडक्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–अजवायण, काला जीरा, मरिच (१), तथा दाख, इमली, अनार, (२) एवं कालानोन, गुड और मधु (३), यह तीन वृन्दोंमें प्राप्तहुई वस्तु क्रमशः वातजादि अरोचकोंको नष्ट करतीहैं ॥ १२ ॥

यवानीं तिन्तिलीकञ्च नागरं साम्लवेतसम् ॥ दाडिमं बदरं चाऽम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ १३ ॥ धान्यसौवर्च्चलाजाजीवरांगं चाऽर्द्धकार्षिकम् ॥ पिप्पलीनां शतञ्चैकं द्वे शते मारिचस्य च ॥ १४ ॥ शर्कराया‍श्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ॥ जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ १५ ॥ हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् ॥ कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ १६ ॥

भा० टी०–अजवायण, इमली, सोंठ, अमलवेत, अनार, बेर, अम्ल इनके कर्षप्रमाण भाग बनाकर धनियां, काला नोन, काला जीरा, वराङ्ग (दालचीनी, तेजपात,) इन सबका आधा कर्ष प्रमाण भाग लेवे । अनन्तर १०० पिपली, २०० मिरच, और ४ पल शर्कराको उनके साथ

एकत्रित करके चूर्ण बनावे । यह चूर्ण जिह्वाको शुद्ध करता, भातमें रुचि कराता, हृदयकी पीडा और पशलीके शूलको नशाता, विबन्ध और निरोधको दुराता, एवं कास, श्वास, ग्रहणी, और बवासीरके विकारको दूर करताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द आमारोचकाधिकारः॥ १८ ॥

अथ छर्द्यधिकारः १९.

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लंघनमेव तस्मात् ॥
प्राक्कारयेन्मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १ ॥

भा० टी०–सब प्रकारकी छर्दि आमाशयके उत्क्लेशसे उपजती हैं अतः वातज छर्दिके अतिरिक्त छर्दियोंमें पहिले लंघन करनाही श्रेष्ठ है । अथवा कफपित्तको हरनेवाला संशोधन करना उचित है ॥ १ ॥

हन्याच्छिवोदकं पीतं छर्दि वमनसम्भवाम् ॥
ससैन्धवं पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ॥ २ ॥

भा० टी०–जलमें घिसकर पान कीहुई हरड–छर्दि और वमनकी संभावनाको भी करती है । घृतको सेंधानोनके साथ पान करनेसे वातजनित छर्दि दूर हो ॥ २ ॥

मुद्गामलकयूषं वा ससर्पिष्कं ससैन्धवम् ॥
यवागूं मधुमिश्रां वा पंचमूलीकृतां पिबेत् ॥ ३ ॥

भा० टी०–अथवा मूंग और आमलक (कर्करा) के यूषमें घृत और सेंधा मिलाय खावे । किंवा पञ्चमूलसे बनाई यवागूमें मधु मिलाय पीवे ॥ ३ ॥

पित्तात्मिकायां वमनार्थमेव द्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् ॥
कफाशयोत्थं त्वतिमात्रवृद्धं पित्तं हरेत्स्वादुभिरूर्द्ध्वमेव ॥ ४ ॥

भा० टी०–पित्तवाली छर्दिमें दाख, विदारी, और ईखके रसमें निशोतको देवे जिससे वमनके द्वारा पित्त शान्त हो । ध्यान रहे कि--कफाशयसे उत्पन्न होकर अत्यन्त बढेहुए पित्तको स्वादु (दाख जीवक प्रभृति) पदार्थोंसे ही ऊर्द्ध्व मार्गके द्वारा दुरावे ॥ ४ ॥

शुद्धास्तु काले मधुशर्कराभ्यां लाजैश्च मन्थं यदि वा पिबेयुः ॥
प्रदापयेन्मुद्गरसेन वाऽपि शाल्योदनं जांगलजै रसैर्वा ॥ ५ ॥

भा० टी०–शोधन विधानसे शुद्ध हुए रोगीको समयपर मधु शक्कर और लाजाओंके साथ मन्थको पान करना उचित है। अथवा इसके लिये मूंगके रसमें वा जांगलदेशी मृगमांसके रसमें शाली–चावलोंका भात देवे ॥ ५ ॥

चन्दनस्याऽक्षमात्रेण संयोज्याऽऽमलकीरसम् ॥
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्दिस्तेन निवर्तते ॥ ६ ॥

भा० टी०—अक्षप्रमाण (२ तोला) चन्दनके रसमें उतने ही आंवलेके रसको मिला मधुके साथ पान करनेसे छर्दि दूर होती है ॥ ६ ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ॥
छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः सम्प्रकाशितः ॥ ७ ॥

भा० टी०—भुनीहुईं मूंगका कषाय—लाजा, मधु, और शक्करके साथ उपयोगमें लाये-नेसे छर्दी, अतीसार, तृषा, दाह, और ज्वरका नाशक होता है ॥ ७ ॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ॥
अधोभागे भवेद्दोषश्छर्दिस्तेन प्रशाम्यति ॥ ८ ॥

भा० टी०—हरडके चूर्णको मधुके साथ चाटनेसे आमाशयका दोष अधोभागमें हो जाता और छर्दि शान्त हो रहती है ॥ ८ ॥

क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्दिनाशनः ॥
गुडूचीत्रिफलारिष्टपटोलैः क्वथितं पिबेत् ॥ ९ ॥
क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याऽऽशु छर्दिं पित्ताम्लसंभवाम् ॥ १० ॥

भा० टी०—पित्तपापडका क्वाथ मधुके साथ पान कियाहुआ छर्दीको नष्ट करता है । गिलोय, त्रिफला, नीम, परवल इनका क्वाथ मधुके साथ उपयोगमें लाये जानेसे शीघ्र ही अम्ल-पित्तसे उपजीहुई छर्दीको नष्ट करताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः ॥
पिण्डीतकैः सैन्धवसम्प्रयुक्तैश्छर्द्यां कफामाशयशोधनार्थम् ॥ ११ ॥

भा० टी०—कफसे उपजीहुई छर्दीमें कफाशय और आमाशयके शोधनके लिये पिपली और पीडित किये हुए सरसों तथा नीम करके युक्त गरम जलके प्रयोगसे एवं सेंधाके साथ प्रयुक्त किये पिण्डीतकों (मैनफल) के द्वारा वमन लेना भला है ॥ ११ ॥

विडंगत्रिफलाविश्वचूर्ण योज्यं समाक्षिकम् ॥
विडंगप्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजाग्रहे ॥ १२ ॥

भा० टी०—कफसे उपजीहुई छर्दीके ग्रहमें वायविडङ्ग, त्रिफला, और सोंठके चूर्णको मधुके साथ प्रयुक्त करना अथवा वायविडङ्ग, केवटी मोथा, और सोंठका चूर्ण देना उचित है ॥ १२ ॥

सजाम्बवं बादरकस्य चूर्णं मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृंगीम् ॥
दुरालभां वा मधुसम्प्रयुक्तां लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहाय ॥ १३ ॥

भा० टी०-कफसे उपजीहुई छर्दीके निग्रहके लिये जामनके रससहित मुलहटीके चूर्णको वा मोथासहित काकडसिंगीको वा दुरालभाको मधुके साथ चाटै ॥ १३ ॥

तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥
कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् ॥ १४ ॥
तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समायुतम् ॥ १५ ॥

भा० टी०-अथवा मधुयुक्त तर्पण भी तीन ही प्रकारकी (वातज, पित्तज, कफज,) छर्दियोंकी औषधी है। विधिपूर्वक सिद्ध कियाहुआ गिलोयका 'हिमनामा' कषाय मधुके साथ उपयुक्त होनेसे तीनों प्रकारकी छर्दियोंमें पथ्य है ॥ १४ ॥ १५ ॥

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः ॥
पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना ॥ १६ ॥

भा० टी०-तीनों प्रकारकी छर्दियोंमें बेल या गिलोयके शीतल कषायको मधुके साथ पीना या चावल धोये जलके साथ मरोरफलीको सेवन करना उचित है ॥ १६ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवगवेधुकधान्यसेव्यह्रीबेरवारि मधुना पिबतोऽल्पमल्पम् ॥ छर्दिः प्रशाम्यति समत्रिसुगन्धियुक्ता लीढा निहन्ति मधुनाऽथ दुरालभा वा ॥ १७ ॥

भा० टी०-जामन और आमके पत्ते, गवेधुक, धनियाँ, खस, सुगन्धवाला इन करके सिद्धकिये हुए जलको थोडा २ पानकरनेवाले मनुष्यकी छर्दी शान्त होतीहै। इसीप्रकार समान-भागवाली इलायची, दालचीनी, और तेजपातसे युक्त दुरालभा भी मधुके साथ उपयुक्त कीहुई छर्दीको नष्ट करती है ॥ १७ ॥

जातीरसः कपित्थश्च पिप्पलीमरिचान्वितः ॥
क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणम् ॥ १८ ॥

भा० टी०-बोल, कैथ, पीपल, मिरिच इनका लेह मधुके साथ उपयुक्त होनेसे उत्कट छर्दीको भी शान्त करताहै ॥ १८ ॥

सौवर्चलमजाजी च शर्करामरिचानि च ॥
युक्तोऽयं मधुना लेहः श्रेष्ठश्छर्दिनिवारणः ॥ १९ ॥

भा० टी०-कालानोन, काला जीरा, शक्कर, मिरच इनकरके बनायागया और मधुसे युक्त कियाहुआ यह छर्दीका नाशक श्रेष्ठ लेह है ॥ १९ ॥

कोलमज्जाकणाधात्रीलाजाविश्वफलत्रिकम् ॥ श्यामाञ्जनाब्दकोला-

[अ]स्थिमाक्षिकाविट्कषायुतम् ॥ २० ॥ कणोषणकपित्थाम्बुत्वगेला-
पत्रकं समम्। ॥ पादिकक्षौद्रसम्पन्नो लेहोऽयं छर्दिनाशनः ॥ २१ ॥

भा० टी०–बेरकी मज्जा, पीपल, आंवला, खीलैं, सोंठ, फलत्रिक (फालसा, कंभारी, दाख), श्यामा (प्रियंगु), रसोत, मोथा, बेरकी गुठली, मक्खीबीट वा पिपली, मिरिच, कैथ, सुगंधवाला, दालचीनी, इलायची, तेजपात इनके समभागिक चूर्णमें चौथाई मधु मिलाकर लेह करनेसे छर्दी नष्ट होतीहै ॥ २० ॥ २१ ॥

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरका-
णाम् ॥ पथ्यायुजां मरिचमाक्षिकपिप्पलीनां लेहास्त्रयः सकल-
वम्यरुचिप्रशान्त्य ॥ २२ ॥

भा० टी०–खीलैं, कैथ, मधु, जूही, पीपल (१), तथा मधु, हरड, त्रिकटु, धनियाँ, जीरक (२), एवं हरड, मिरच, मधु, पीपल (३) इन तीन वृन्दोंके द्रव्योंसे पृथक् २ बनाये हुए तीन प्रकारके लेह क्रमशः वातज़ादि तीन प्रकारकी छर्दी और अरुचिकी शांतिके लिये होतेहैं ॥२२॥

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जालज्जाप्रियंगुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ॥
चूर्णं हि माक्षिकसितासहितं तु लीढं छर्दिं निहन्ति कफमारुत-
पित्तजाताम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–इलायची, लवङ्ग, नागकेशर, बेरकी मज्जा, लज्जावती, प्रियंगु, कपूर, चन्दन, पीपल इनका चूर्ण मधु और शक्करके साथ उपयुक्त [illegible] कफ, वात, और पित्तसे उपजीहुई छर्दीको नष्ट करता है ॥ २३ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवशृतं क्षौद्रसनाथ सुशीतलं तोयम् ॥
लाजैरवचूर्ण्य पिबेच्छर्द्यतिसारेऽधिकं सिद्धम् ॥ २४ ॥

भा० टी०–जामुन और आमके पत्तोंसे कढेहुए जलको शीतल होनेपर मधुसे युक्त करके लाजाओंके साथ औटाकर छर्दिके अतिसारमें पीवे। यह काढा इस रोगमें अधिक प्रसिद्ध है२४॥

पवनघ्नी चिरोत्थासु प्रयोज्या छर्दिषु क्रिया ॥ छर्दिप्रसङ्गात्पवनो-
ऽवश्यं संवर्द्धेत क्षयात् ॥२५॥ तस्माद्बृंहणरूपाणि कर्म्माणि स्तम्भ-
नानि च ॥ कार्य्याणि यानि पवनं जित्वा नेष्यन्ति तत्पदम् ॥ २६ ॥

भा० टी० -बहुत कालसे उपजीहुई छर्दियोंमें वायुनाशक प्रयोग करने उचित हैं क्योंकि–छर्दिके प्रसंगसे धातुक्षय होनेके कारण वायु अवश्य उत्कट रूपसे बढता है ॥ २५ ॥ अत एव ऐसे प्रयोग करने उचित हैं जो बृंहण और स्तम्भनरूप हों एवं जो वायुको जीतकर अनुकूल स्थानमें पहुंचावें ॥ २६ ॥

सर्पिर्गुडः क्षीरविधिर्घृतानि कल्याणकत्र्यूषणजीवनानि ॥
वृष्यास्तथा मांसरसाः सलेहाश्छर्दिं चिरोत्थां प्रशमं नयन्ति॥२७॥

भा० टी०-पूर्वोक्त सर्पिर्गुड, क्षीरविधि, और कल्याणक, त्र्यूषणादि और जीवन नामवाले घृत, एवं पौष्टिकरूप मांसोंके रस और लेह भी बहुतकालसे उपजीहुई छर्दीको शान्त करते हैं२७॥

बीभत्सजां हृद्यतमैर्दौहृदीं कांक्षितैः फलैः ॥ लंघनैर्वमनैश्चेमां सात्म्यैर्वा सात्म्यसम्भवाम् ॥ २८ ॥ कृमिहृद्रोगवर्चोजां साधयेद्विधिवद्भिषक् ॥ पद्मकारिष्टधान्याकगुडूचीचन्दनैः पचेत् ॥ २९ ॥

भा० टी०-बीभत्स (घृणा-घिन) से उपजीहुई दौर्हृदीनामकी छर्दीको अतिरोचक और अभीष्ट फलोंसे शान्त करे एवं सात्म्यतासे उपजीहुई छर्दीको सात्म्यतावाले लंघन, वमनविधानोंसे दुरावे ॥ २८ ॥ इसीप्रकार कृमि, हृद्रोग और मलसे उपजीहुई छर्दीको भी विधिपूर्वक साध लेवे । पद्माख, नीम, धनियां, गिलोय, चन्दन इनके-॥ २९ ॥

कल्के क्वाथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ॥
तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम् ॥ ३० ॥

भा० टी०-कल्क और क्वाथमें एक प्रस्थ घृतको पकावे । यह पकाहुआ घृत छर्दीको दूरकरता, तृष्णा और अरुचिको शान्त करता, एवं दाहज्वरको हरता है ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे छर्द्यधिकारः ॥ १९ ॥

अथ तृष्णाधिकारः २०.

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ॥
रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव च ॥ १ ॥

भा० टी०-वायुसे उपजीहुई तृष्णा (प्यास) में गुडयुक्त दही और शीतल तथा बृंहणरूप रस, एवं गिलोयका रस भी अच्छा कहा जाता है ॥ १ ॥

पंचाग्निकाः पंचगणे य उक्तास्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा ॥
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पमल्पं तृष्णोपरोधं न कदापि कुर्यात् ॥ २॥

भा० टी०-पञ्चगणयोगमें कहेहुए पञ्चाग्निक द्रव्योंमें वा प्रथमगणोक्त द्रव्योंमें सिद्ध कियेहुए मन्दोष्ण जलको थोडा २ पान करे। तृष्णाकुल मनुष्य प्यासको कभी न रोके। शास्त्रान्तरमें भी कहाहुआ है कि "मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि" इति ॥ २ ॥

पित्तोत्थितां पित्तहरैर्विपक्वं पिबेद्धि तोयं पय एव वाऽपि ॥
द्रव्यैरिदानीं खलु वक्ष्यमाणैः सुबुद्धिमान्योगविदां वरिष्ठः ॥ ३ ॥

भा० टी०–प्रयोग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि, आगे कहेजातेहुए पित्तनाशक पदार्थोंके साथ पकेहुए जलको वा केवल जलको पित्तसे उपजीहुई तृष्णाके प्रति पान करे ॥ ३ ॥

काश्मर्य्यशर्क्करायुक्तं चन्दनोशीरपद्मकम् ॥
द्राक्षामधुकसंयुक्तं द्राक्षामलकयुक्च वा ॥ ४ ॥
जलं पिबेत्पित्तजातपिपासाकुलितो नरः ॥ ५ ॥

भा० टी०–कंभारी और शक्करसे, वा दाख और मुलहठीसे, वा दाख और कर्करासे युक्त कियेहुए चन्दन, खश, पद्माखमें सिद्ध किये जलको पित्तजनित प्यासमें व्याकुलहुआ मनुष्य पान करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

ससारिवादौ तृणपंचमूले तथोत्पलादौ मधुरे गणे वा ॥ कुर्य्यात्कषायांस्तु तथैव कल्कं मधूकपुष्पादिषु चाऽपरेषु ॥ ६ ॥ बिल्वाढकीधातकिपंचकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ॥ हितं भवेच्छर्दिन एव चाऽत्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ ७ ॥

भा० टी०–सारिवादिगणसहित तृणसंज्ञक पञ्चमूलमें, वा उत्पलादिगणमें, वा मधुरगणमें कहेहुए द्रव्योंका कषाय और मधूकपुष्पादि अन्यान्य शास्त्रोक्तगणका कल्क बनाय उसको बेल, शमीधान्य, धाई, पञ्चकोल, और दाभामें सिद्धकरके सेवनकरे तो कफसे उपजीहुई प्यास नष्ट होय। यहां प्यासके प्रसङ्गसे छर्दीकरनेवाले मनुष्यके लिये नीमके फूलोंमें सिद्धकिये जलसे गुण होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

सजीरकामार्द्रकशृङ्गवेरसौवर्च्चलान्यर्द्धजलप्लुतानि ॥
मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ८॥

भा० टी०–अधाभागवाले जलमें औटायाहुआ जीरक और कच्चा अदरख तथा काले नोंनका चूर्ण, एवं सुगन्धित और रोचक मद्य भी पान किये जानेपर तत्काल ही तृष्णाको शान्त करते हैं ॥ ८ ॥

क्षणोद्भवां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥
क्षयोत्थितां क्षीरजलैर्निहन्यान्मांसोदकैर्वाऽथ मधूदकैर्वा ॥ ९ ॥

भा० टी०–तत्काल उपजीहुई तृष्णाको–तृषाजनक रोगके हटाने वा अन्यान्य केशरमिश्रित रसों (दूधआदि) के पान करनेसे जय करे। क्षयसे उपजीहुई तृष्णाको दूध जल, वा मांसरस, वा मधु जलके द्वारा नष्ट करे ॥ ९ ॥

लाजोदकं मधुयुतं पिबेत्तृष्णाप्रशान्तये ॥
काश्मीरं शर्करायुक्तं पेयं तृष्णाप्रपीडितैः ॥ १० ॥

भा० टी०-तृष्णाकी शान्तिके लिये मधुमिश्रित लाजाजलको पानकरे। किंवा तृष्णासे व्याकुलहुए मनुष्योंको शक्करयुक्त पोहकरमूलके रसको पान करना उचित है॥ १० ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठं वा पिपासितम् ॥
पाययेद्वामयेच्चाऽपि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ ११ ॥

भा० टी०-अथवा प्यासे मनुष्यको-कण्ठपर्य्यन्त मधुयुक्त शीतल जल पिलावे और वमन करावे इससे भी तृष्णा शान्त होती है॥ ११ ॥

अतिरूक्षदुर्बलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाऽऽशु पयः ॥
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ १२ ॥

भा० टी०-अतिरूक्ष और कृश मनुष्योंकी तृष्णाको दूध शीघ्र ही शान्त करता है अथवा घीमें पकायाहुआ बकरीका मधुर दुग्ध भी शीतल होनेपर तृषामें रोचक और हित होता है॥१२॥

स्निग्धे भुक्ते या तृष्णा स्यात ॥ सा वै शाम्येद्गौडाम्भस्तः ॥१३॥

भा० टी०-स्निग्ध (रूक्ष नहीं) मनुष्यमें और भोजन करने अनन्तर जो तृष्णा उत्पन्नती है वह गुडजलके पान करनेसे शान्त होती है॥ १३ ॥

वटशुङ्गासितालोध्रं दाडिमं मधुकं मधु ॥
पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवृत्तये ॥ १४ ॥

भा० टी०-वट, पिलखन, शक्कर, लोध, अनार, मुलहठी, मधु इनको चावल धोये जलके साथ छर्दी और तृष्णाके दुरानेके लिये पीवे॥ १४ ॥

शुष्कतालुः पिबेत्सर्पिर्घृतमण्डमथाऽपि वा ॥
मूर्च्छादाहतृषाछर्दिस्त्रीमद्यभृशकर्षितः ॥ १५ ॥

भा० टी०-मूर्च्छा, दाह, तृष्णा, छर्दी, स्त्री, मद्यपान-इतने कारणोंसे पीडितहुए और सूखतेहुए तालुवाले मनुष्यको उचित है कि, घृत वा घृतमण्डको पीवे॥ १५ ॥

पिबेत्सुशीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥१६॥ तदेवाऽलवणं शीतं मुखशोषहरं परम् ॥ कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रिकाचुक्रिकारसः ॥ १७ ॥ पंचाम्लको मुखे लेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ १८ ॥

भा० टी०—रक्तपित्त और मदात्यय रोगसे उपजी तृषामें सुन्दर शीतल जल पीना उचित है। काञ्जीका प्रयोग भी मुखकी विरसता और मलकी दुर्गन्धिको नशाता है ॥ १६ ॥ वही काञ्जी–विना लवणके शीतल होनेपर प्रयुक्त कियेजानेसे अत्यन्त मुखशोषको हरती है। कोल, अनार, अमलवेंत, चूकाशाक, चांगेरीरस इन पञ्च अम्लपदार्थोंसे कियाहुआ मुखलेप शीघ्र ही तृष्णाका निग्रह करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

वटप्ररोहो मधुकुष्ठमुत्पलं सलाजतूर्णं गुटिकां प्रकल्पयेत ॥
सुसंहिता सा च मुखेन धारिता तृष्णां प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम् १९॥

भा० टी०—वटके अंकुवे, मधु (जीवन्ती), कूडा, कमल, लाजाचूर्ण इन करके बनाई हुई गुटिका चिरकालपर्य्यन्त मुखमें धारण कीजातीहुई शीघ्रही बढती तृष्णाको भी नष्ट करती है ॥ १९ ॥

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् ॥
भोजयेत्तेन शाम्येते छर्दितृष्णे चिरोत्थिते ॥ २० ॥

भा० टी०—लाल चावलके भातको शीतल होनेपर मधुमिश्रित बनाय भोजन करनेसे बहुत कालसे उपजीहुई छर्दि और तृष्णा शान्त होती हैं ॥ २० ॥

तृष्यन्पूर्वामयक्षीणो न लभेत जलं यदि ॥
मरणं दीर्घरोगं च प्राप्नुयात्त्वरितं नरः ॥ २१ ॥

भा० टी०—जो मनुष्य पहिले रोगसे क्षीण होचुका वह यदि प्यासा होकर जल न पावे तो शीघ्र ही मरण वा दीर्घरोगको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

सात्म्यानुपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुनः ॥
तस्यां जितायामन्योऽपि व्याधिः सम्यक्चिकित्सितुम् ॥२२॥

भा० टी०—ऐसी दशाको प्राप्तहुए मनुष्यकी तृष्णाको फिर सात्म्यतावाले अनुपान और औषधोंके द्वारा जय करे। तृष्णाके जीतेजानेपर दूसरा रोग भी भलेप्रकार चिकित्साके योग्य होता है ॥ २२ ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ॥
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्य्यते ॥ २३ ॥

भा० टी०—प्यासा मनुष्य मोह (मूर्च्छा) को प्राप्त होता और मोहसे प्राणोंको छोड देता है। इस कारणसे किसी दशामें भी जलका निषेध नहीं कियागया ॥ २२ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे तृष्णाधिकारः ॥ २० ॥

अथ मूर्च्छाधिकारः २१.

सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलश्च ॥
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ १ ॥

भा० टी०–जलआदिका सिञ्चन, स्नान, मणिमय हार, शीतल पदार्थोंका लेप, पंखेका पवन, सुगन्धित और शीतल पान, यह सब उपचार किसी मूर्च्छामें भी निषिद्ध नहीं ॥ १ ॥

सिद्धानि वर्ग्ये मधुरे पयांसि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ॥
तथा च वा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु शस्ताः कथिताः कवीन्द्रैः ॥ २ ॥

भा० टी०–श्रेष्ठ मधुर पदार्थोंमें सिद्ध कियेहुए दुग्ध, अनार, जांगलदेशी मृगोंका मांस रस, और लालचावल भी मूर्च्छाओंमें हितकारी कहे हैं ॥ २ ॥

यथादोषं कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ॥ रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः ॥ ३ ॥ मद्यजायां वमेत्सद्यो निद्रां सेवेत वा सुखम् ॥ विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

भा० टी०–जिस दोषसे मूर्च्छा उपजी हो उसी दोषके अनुसार ज्वरनाशक कषायोंको प्रयुक्त करे। रक्तसे उपजीहुई मूर्च्छामें ठण्ढे उपचार हित हैं ॥ ३ ॥ मद्यसे उपजीहुई मूर्च्छामें तत्काल वमन करे वा सुखपूर्वक सो जावे। विषसे उपजीहुई मूर्च्छामें विषनाशक औषधोंका प्रयोग करे ॥ ४ ॥

कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा ॥
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढा कृष्णा वा मधुसंयुता ॥ ५ ॥

भा० टी०–कोलमज्जा, पीपल, खस, केशर इनका चूर्ण ठण्ढे जलके साथ पान किये जानेसे मूर्च्छाको जीतताहै। इसी प्रकार मधुयुक्त पीपल भी ॥ ५ ॥

महौषधामृताक्षौद्रपौष्करं ग्रन्थिकोद्भवम् ॥
पिबेद्दुरालभाक्राथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥ ६ ॥

भा० टी०–सोंठ, गिलोय, चम्पा, पोहकरमूल, गठिवन इन करके सिद्ध किये क्राथको, वा दुरालभाके क्राथको घृतके साथ मूर्च्छाकी शांतिके लिये पान करे ॥ ६ ॥

त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ॥
रसायनानां कौहानां सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ ७ ॥

भा० टी०–त्रिफला वा दूध वा कटुकी रसायन वा घृत इनका प्रयोग मूर्च्छामें भला है ॥ ७ ॥

अञ्जनानि च धूमाश्च पीडाः प्रधमनानि च ॥
सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ ८ ॥

भा० टी०—मूर्च्छित मनुष्यके नेत्रोंपर अञ्जन, नासिकापर धूमदेना, शरीरपर पीडन करना, कान और मूर्द्धापर मुखसे फूंकना, अंग २ में सुईसे व्यथित करना, अग्निसे किसी मर्मपर दग्ध करना, और नखोंके बीचमें पीडन करना भी अच्छा है॥ ८॥

लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दशनमेव च ॥
आत्मगुप्ता च हर्षश्च हितस्तस्याऽवबोधने ॥ ९ ॥

भा० टी०--मूर्छित मनुष्यके चेतन करनेमें सिरके बाल और शरीरके रोमोंका नोचना, दांतोंसे काटना, कौंछका स्पर्श, और किसी प्रकारकी हर्षजनक बात कहना भी ठीक है॥ ९॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मूर्च्छाधिकारः॥ २१॥

अथ मदात्ययाधिकारः २२.

मन्थखर्ज्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लिकदाडिमैः ॥
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ १ ॥

भा० टी०—मन्थ, खजूर, दाख, अमलवेत, इमली, अनार, आमलक, फालसा इनकरके युक्त कियाहुआ यूष मद्यजनित विकार (मदात्ययरोग) को दूर करता है॥ १॥

सतीनमुद्गमिश्रान्वा दाडिमामलकान्वितान् ॥ द्राक्षामलकखर्ज्जूरपरूषकरसेन वा ॥ २ ॥ कल्पयेत्तर्पणान्यूषान्रसाँश्च विविधात्मकान् ॥ पथ्याक्काथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ॥ ३ ॥ सर्पिः कल्याणकं वाऽपि मदमूर्च्छापहं पिबेत् ॥ ४ ॥

भा० टी०—मटर और मूंगसे मिश्रित कियेहुए, वा अनार और आमलकोंसे युक्त, वा दाख, आमलक, खजूर, और फालसाके रससे युक्त किये हुए॥ २॥ तर्पक यूषों और अनेक रसोंको बनाय मदात्ययरोगमें पानकरे। किंवा हरडके क्काथ वा आंवलाके रसमें सिद्धकिये घृतको, वा मदमूर्च्छाके नाशक कल्याणघृतको सेवन करे॥ ३॥ ४॥

सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम् ॥
सद्यः प्रशमयेत्पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ ५ ॥

भा० टी०--पूगफल (सुपारी) से उपजाहुआ शीतल जल तृप्तिपूर्वक पान किये जानेसे छर्दि, मूर्च्छा और अतिसारसहित मदात्ययरोगको तत्काल शान्त करता है॥ ५॥

वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणाद्वाऽपि ॥
शाम्यति मदात्ययाख्यः पूगरजःशर्कराकवलात् ॥ ६ ॥

भा० टी०–वनमें गिरेहुए सूके गोबरके सूंघने एवं जलपान करने और नोनके सेवने तथा सुपारीके चूर्ण और शक्करके ग्रास करनेसे भी मदात्यय रोग शान्त होताहै ॥ ६ ॥

मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ॥
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–वातसे उपजेहुए मदात्ययरोगमें जीर्णमद्यवाले मनुष्यके लिये कालानोन, त्रिकटु और कुछ जलसे युक्त किये मद्यको देना उचित है ॥ ७ ॥

मुद्गयूषः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः ॥
पित्तपानात्यये योज्योऽभितश्च शिशिराः क्रियाः ॥ ८ ॥

भा० टी०–पित्तसे उपजेहुए मदात्ययरोगमें शक्करयुक्त मूंगका यूष वा स्वादिष्ठ मांसका रस प्रयुक्त करना उचित है। साथ ही चारों ओरसे शीतल उपचार भी करने ॥ ८ ॥

पानरोगे कफोद्भूते लङ्घनं च यथाबलम् ॥
दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितम् ॥ ९ ॥

भा० टी०–कफसे उपजेहुए मदात्ययरोगमें शक्तिके अनुसार लंघन लेवे और दीपनीयगणकी औषधों (अजवायण, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) से युक्त किये मद्यको पान करे॥९॥

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितुम् ॥
आभिः क्रियाभिः सर्वाभिः शान्तिं यान्ति मदात्ययाः ॥ १० ॥

भा० टी०–त्रिदोषसे उपजेहुये सन्निपातमें इन पूर्वोक्त औषधोंका मेल करके प्रयोग करे। इन्हीं क्रियाओंसे सबप्रकारके मदात्यय शान्त होते हैं ॥ १० ॥

न चेच्छाम्येत्कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ॥ तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य च ॥ ११ ॥ ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ॥ मद्यक्षीणस्य हि क्षीणं क्षीरमाश्वेव पुष्यति ॥ १२ ॥ ओजस्तुल्यं गुणैः सर्वैर्विपरीतश्च मद्यतः ॥ जिते रोगे पयो मद्यं क्रमेणाऽल्पाल्पमाचरेत् ॥ १३ ॥

भा० टी०–इस प्रकार प्रयोग करनेके पश्चात् भी यदि यह रोग शान्त न हो, और कफ क्षीण होगया हो, एवं दुर्बलताके कारण शरीरमें हलकापन आपहुंचा हो तब मद्यपानसे विदग्ध और वातपित्तकी अधिकतावाले मदात्ययरोगीको ॥ ११ ॥ दूध ही एकमात्र हितकारी है जैसे ग्रीष्मसे संतप्तहुए वृक्षके लिये वृष्टि। कारण कि, मद्यसे क्षीण हुए मनुष्यके क्षीण शरीरको दूध तत्काल पुष्ट करता है ॥ १२ ॥ क्योंकि दूध अपने सब गुणोंसे पराक्रमके समान और मद्यके

विरुद्ध है। ध्यान रहे कि, इस रोगको जीतनेपर क्रमशः दूध और मद्यको पृथक् २ थोडा २ सेवन करता रहे॥ १३॥

पयः पुनर्नवाक्काथं यष्टीकल्कप्रसाधितम्॥
घृतं पुष्टिकरं पीतं मद्यपानहतौजसः॥ १४॥

भा० टी०–मुलहठीके कल्कमें सिद्ध कियाहुआ पुनर्नवाका क्वाथ एवं दूध और घृत भी पानकियेजानेसे मद्यपानके कारण नष्टहुए तेजवाले मनुष्यको पुष्ट करता है॥ १४॥

सौवर्चलमजाज्यश्च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम्॥ त्वगेलामरिचार्द्धांशं शर्कराभागयोजितम्। १५॥ एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम्॥ मदात्यये कफप्राये दद्यात्स्रोतोविशोधनम्॥ १६॥

भा० टी०–कालानोन, काली जीर, इमली, अमलवेत, दालचीनी, इलायची, शक्कर इन सबके समानभाग और मरिचका आधा भाग लेकर 'अष्टाङ्गलवण' सिद्ध होता है। यह लवण अग्निवर्द्धक और शारीरिक स्रोतोंका संशोधक है अतः कफकी अधिकतावाले मदात्यय रोगमें इनका प्रयोग करे॥ १५॥ १६॥

शङ्खसौवर्चलं हिङ्गुपूरकं विश्वदीपकम्॥
चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम्॥ १७॥

भा० टी०–नखी, कालानोन, हींग, विजोरारस, सोंठ, अजवायण इनके चूर्णको मद्यके साथ पान करना, इससे मदात्यय रोग नष्ट होताहै॥ १७॥

जलाप्लुतश्चन्दनभूषिताङ्गः सुखोपविष्टो गृहमण्डपे त्वम्॥
विलासिनीमण्डलमण्डिताङ्गो मद्यं सुदिव्यं पिब सोपचारम्॥१८॥
नृत्यन्तु बालाः सुविलासहासाः शरत्सुधांशूज्ज्वलवक्त्रभासाः॥
गायन्तु गीतं कलवल्लकीभिर्मदात्ययं चेत्परिहर्तुमिच्छुः॥ १९॥

भा० टी०–हे मदात्ययरोगवाले! यदि तू इस रोगको दूरकरना चाहता है तो जलमें स्नान करके चन्दनसे शरीरको भूषित बनाय गृहमण्डपमें सुखसे बैठकर, सुन्दर विलासिनियोंके मण्डलसे भूषित होकर उपचारसहित दिव्य मद्यको पान कर॥ १८॥ इसके अतिरिक्त सुन्दर विलास हासवाली और शरत्कालिक चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखकान्तिवाली स्त्रियां नृत्य करें और मधुरशब्दवाली वीणाके साथ गीत गावें॥ १९॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मदात्ययाधिकारः॥ २२॥

अथ दाहाधिकारः २३.

शतधौतघृताभ्यक्तं दिहेद्वा यवसक्तुभिः ॥
कोलामलकसंयुक्तैर्वाऽन्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ १ ॥

भा० टी०–बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, दाहपीडित मनुष्यको १०० वार धोयेहुए घृतसे अभ्यक्त बनाकर जवकी सत्तुओंसे, वा बेर और आमलासे युक्त कियेहुए अन्य अम्लपदार्थोंसे लिप्त करे ॥ १ ॥

छादयेत्तस्य सर्वाङ्गमारनालार्द्रवाससा ॥ लामज्जेनाऽथ शुक्लेन चन्दनेनाऽनुलेपयेत ॥ २ ॥ चन्दनाम्बुकणस्यन्दितालवृन्तोपवीजितः ॥ सुप्तो दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ ३ ॥

भा० टी०–तदनन्तर इस रोगीके सर्वाङ्गको कांजीसे गीला बनाये हुए वस्त्रसे ढकदेवें और खस तथा शुभ्रचन्दनसे लेप करे ॥२॥ इसके साथ ही कमल और केलेके पत्तोंके बिछौनेमें लेटा हुआ यह दाहपीडित मनुष्य चन्दनके जलकणोंको झरानेवाले तालवृन्त (ताडका पंखा) से वीजित किया जाय ॥ ३ ॥

परिसेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने ॥
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ४ ॥

भा० टी०–परिसेक, स्नान, और पंखा प्रभृतिके सेवनविधानमें तृष्णा और दाहकी शान्तिके लिये ठण्ढा ही जल कहा है ॥ ४ ॥

क्षीरैः क्षीरकषायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः ॥
अन्तर्दाहं प्रशमयेदन्यान्यैश्चातिशीतलैः ॥ ५ ॥

भा० टी०–वैद्यको उचित है कि, चन्दनमिश्रित शीतल दुग्ध और दुग्धसंबन्धी कषाय तथा अन्यान्य अतिशीतल पदार्थोंके द्वारा अन्तर्दाहको शान्त करे ॥ ५ ॥

कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम् ॥
तैलं घृतं विदाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–कुशादि पञ्च तृण, और सालवन, तथा जीवकादि अष्टवर्गान्तर्गत द्रव्योंके द्वारा सिद्ध कियाहुआ तैल और घृत भी विदाह और वातपित्तका नाशक है ॥ ६ ॥

पित्तज्वरहरं यच्च दाहे तत्सर्वमिष्यते ॥ फलिनीलोध्रसेव्याम्बुहेमपत्रं कुटन्नटम् ॥ ७ ॥ कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ श्लक्ष्णसूक्ष्मघनो लेप उत्क्लेदस्याऽपि दाहनुत् ॥ ८ ॥

भा० टी०–जो कुछ वस्तु पित्तज्वरको हरती हैं वह सब दाहमें प्रशस्त हैं। तथा प्रियंगु, लोध, खस, सुगंधवाला, सनाय, सोनापाठा–इनके चूर्णमें दारुहलदीका रस मिलाय उसका लेप करना दाहमें अच्छा है। परन्तु यह लेप रोचक तथा सूक्ष्म और सघना होना उचित है क्योंकि ऐसा लेप क्लेद और दाहको दूर करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

ह्रीवेरपद्मकोशीरचन्दनाम्भोदवारिणा ॥
सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ९ ॥

भा० टी०–दाहपीडित मनुष्यको उचित है कि–सुगन्धवाला, पद्माख, खस, चन्दन, मोथा इन करके युक्त जलसे भरीहुई द्रोणी (बावडी) में अवगाहन करे ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे दाहाधिकारः ॥ २३ ॥

अथोन्मादाधिकारः २४.

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे ॥
कफजे वमनं कार्य्यं परे वस्त्यादिकः क्रमः ॥ १ ॥

भा० टी०–वातसे उपजेहुए उन्मादमें प्रथम स्नेहपान कराना, तथा पित्तसे उपजेहुए उन्मादमें प्रथम विरेचन देना, एवं कफसे उपजेहुए उन्मादमें प्रथम वमन कराना और अन्य (मलादि) दोषोंसे उपजेहुए उन्मादमें बस्तिआदिका क्रम करना उचित है ॥ १ ॥

यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते ॥
उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः ॥ २ ॥

भा० टी०–जो कुछ प्रयोग मृगीरोगकी चिकित्सामें कहेजायंगे दोष और दूष्यके समानभावसे प्रायः वही प्रयोग उन्मादमें भी करने उचित हैं ॥ २ ॥

ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः ॥
उन्मादहरा दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ ३ ॥

भा० टी०–ब्राह्मी, कुह्मडीका फल, वचा, शंखाहुली इनके स्वरस पृथक् २ कूडा और मधुके साथ मिश्रित होनेसे उन्मादनाशक देखेगये हैं ॥ ३ ॥

दशमूलाम्बु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा ॥ ससिद्धार्थकचूर्णं वा केवलं वा नवं घृतम् ॥ ४ ॥ उन्मादशान्तये योज्यो रसो वा वालशाकजः ॥ प्रयोज्यं सार्षपं तैलं नस्याभ्यञ्जनयोः सदा ॥ ५ ॥

भा० टी०–दशमूलसम्बन्धी जलको घृतके साथ वा मांसरसके साथ वा सरसोंके चूर्णके साथ वा केवल नवीन घृतको प्रयुक्त करना उचित है ॥ ४ ॥ अथवा सुगन्धवालेके रसको

उन्मादकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे । एवं नस्य और अभ्यङ्गकर्ममें नित्य सरसोंके तलका प्रयोग करना उचित है ॥ ५ ॥

सिद्धार्थको वचा हिंगु करञ्जो देवदारु च ॥ मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक्कटुत्रिकम् ॥ ६ ॥ सहितानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ॥ छागमूत्रेण पिष्टानि पिबेदुन्मादशान्तये ॥ ७ ॥

भा० टी०—सरसों, वचा, हींग, करञ्ज, देवदारु, मंजीठ, त्रिफला, फटकरी, मालकांगनी, दालचीनी, त्रिकटु, प्रियंगु, शिरीष, दोनों हलदी—इन सबको एकत्रित करके बकरीके मूत्रमें पीसकर उन्मादकी शान्तिके लिये पीवे ॥ ६ ॥ ७ ॥

त्र्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी ॥ शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ ८ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेतैस्तु वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता ॥ चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादश्च नियच्छति ॥ ९ ॥

भा० टी०—त्रिकटु, हींग, लवण, वचा, कटुकी तथा शिरीष और करञ्जके बीज, सुफेद सरसों—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर वर्तिके द्वारा नेत्रोंमें अञ्जन करे, यह अञ्जनवर्ति—चातुर्थिक ज्वर तथा मृगी और उन्मादका निग्रह करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

आश्वासयेत्सुहृद्वाक्यैर्धर्मार्थकामसाधकैः ॥ ब्रूयादर्थविनाशश्च दर्शयेदद्भुतानि च ॥ १० ॥ बद्धं सर्षपतैलाक्तमुत्तानं वाऽऽतपे न्यसेत् ॥ कपिकच्छ्वाऽथवा तप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत् ॥ ११ ॥ कशाभिस्ताडयित्वा च सुबद्धं विजने गृहे ॥ रुन्ध्याच्चेतो हि विभ्रान्तं यथा व्रजति चित्सुखम् ॥ १२ ॥

भा० टी०—भयशोकके आधिक्यसे उपजेहुए उन्मादरोगवालेको धर्म अर्थ कामकी साधनासे उत्पन्न मित्र वाक्योंके द्वारा आश्वासित करे । एवं हर्षके आधिक्यसे उपजेहुए उन्मादमें अर्थ विनाशकी बात कहे और आश्चर्यजनक दृश्योंको दिखावे ॥ १० ॥ अथवा इस रोगीको रज्जुसे बांध तथा सरसोंके तैलसे अभ्यक्त बनाय घाममें उताना कर रक्खे । अनन्तर कौंछ या तपेहुए लोह और तैलजलसे संघर्षण करे ॥ ११ ॥ किंवा एकांत गृहके भीतर उसे बांधकर कोरडासे पीटे जिससे उसका भ्रांत हुआ मन रुकजाय और चित्त सुखको प्राप्त हो ॥ १२ ॥

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहगजैश्च तम् ॥ त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा ॥ १३ ॥ अथवा राजपुरुषो बहिर्नीत्वा सुसंयतम् ॥ त्रासयेत्पूर्ववैरेण रोधयन्नरपाज्ञया ॥ १४ ॥

भा० टी०—उखाडदीहै दाढ जिसकी ऐसे सर्पसे, और उत्कट तथा चतुर सिंह हाथियोंसे, एवं शस्त्रको हाथमें लियेहुए शत्रु और चोरोंसे भी इस रोगीको त्रासित करे ॥ १३ ॥ अथवा कोई राजपुरुष इसे बांधकर बाहर लेजाय और राजाकी प्रेरणासे पूर्ववैरसे इसे रोकता टोकता- हुआ त्रासित करे ॥ १४ ॥

देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं मतम् ॥ तेन याति शमं तस्य सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ १५ ॥ इष्टद्रव्यविनाशे तु मनो यस्योपह- न्यते ॥ तस्य तत्सदृशैः प्राप्तैर्दत्त्वाऽऽश्वासान्शमं नयेत् ॥ १६ ॥ कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ॥ परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १७ ॥

भा० टी०—क्योंकि, शारीरिक दुःखकी भीतिसे प्राणभय अधिक होता है अत एव प्राण- भय दिखानेसे इसका चारों ओरसे भ्रांतहुआ मन शांतिको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ इष्ट वस्तुके नष्ट होनेसें जिसका मन उपहत होताहै उसके लिये तत्तुल्य वस्तुओंकी प्राप्तिसे आश्वासन देकर रोगको शांत करे ॥ १६ ॥ काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या, और लोभसे उपजेहुए उन्मा- दोंको परस्परमें प्रतिपक्षभाववाले कामादिकोंके ही द्वारा शान्त करे ॥ १७ ॥

बुद्ध्वा दोषवयःसात्म्यं देशकालबलाबलम् ॥
चिकित्सितमिदं कुर्य्यादुन्मादे दोषभूतजे ॥ १८ ॥

भा० टी०—वातादि दोष और भूतबाधासे उपजे हुए उन्मादमें देशकालके बलाबल तथा दोष और अवस्थाकी सात्म्यताको विचारकर इस चिकित्साका प्रयोग करे ॥ १८ ॥

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ॥ वर्ज्जयेदञ्जनादीन्यभी- क्ष्णानि क्रूरकर्म च ॥ १९ ॥ पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्रैर्जनादिभिः ॥ जयेदागन्तुकोन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ २० ॥ कल्याणकं प्रयुञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् ॥ तैलं नारायणं वाऽपि महानारायणं तथा ॥ २१ ॥

भा० टी०—देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व इनके आवेशसे उपजेहुए उन्मादरोगीके अञ्जनादि कर्म्म तथा तर्जन ताडन प्रभृति क्रूरकर्मोंको त्याग देवे ॥ १९ ॥ प्रत्युत शुद्ध मनुष्योंके द्वारा विधिवत् देवपूजा, बलि, उपहार, यज्ञ, याग, और मन्त्राराधनके बलसे आनेवाले उन्मादको जीते ॥ २० ॥ किंवा शुद्धस्वरूप वैद्य विधिपूर्वक चित्तको प्रसन्न करनेवाले 'चैतस' घृत वा 'कल्याण' घृत वा 'नारारायण, तैल वा 'महानारायण' तैलको प्रयुक्त करे ॥ २१ ॥

जटिला पूतना केशी चोरटी मर्कटी वचा ॥ त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ॥ २२ ॥ कायस्था शूकरी छत्रा अतिच्छत्रा पलङ्कषा ॥ महापुरुषदन्ता च वनस्था नाकुलीद्वयम् ॥ २३ ॥ कटम्भरा वृश्चिकाली शालपर्णी च तैर्घृतम् ॥ सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ २४ ॥ महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम् ॥ बुद्धिमेधास्मृतिकरं बालानाञ्चाऽङ्गवर्द्धनम् ॥ २५ ॥

भा० टी०–जटामांसी, गन्धमांसी, हरड, भूतकेश, स्थलकमलिनी, कौंच, वचा, त्रायमाण, जया, काकोली, गठौना, कटुकी ॥ २२ ॥ क्षीरकाकोली, भिधारा, धनियां, सौंफ, लाख, शतावरी, आंवला, सर्पाक्षी, सर्पगन्धा, खींप, छोटी मेंढासिंगी, सालवन, इन्होंमें सिद्ध कियाहुआ घृत चातुर्थिकज्वर, उन्माद, ग्रहबाधा, और अपस्मारको नष्ट करता है यह महापैशाचिकनामका घृत बुद्धि, मेधा और स्मरणशक्तिको बढानेवाला एवं बालकोंके अंगवर्द्धक होनेके कारण अमृतके समान है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

पञ्चमूल्या च काश्मर्या रास्नैरण्डत्रिवृद्बलाः ॥ मूर्वा शतावरी चैभिः क्काथो द्विपलिकैस्तथा ॥ २६ ॥ कल्याणकस्य चाङ्गेन चैतसं नाम तद्घृतम् ॥ सर्वचेतोविकारणां शमनं परमं मतम् ॥ २७ ॥

भा० टी०–लघु पञ्चमूल, कंभारी, रासना, एरण्डी, निसोत, खिरैंटी, मरोरफली, शतावर इनके दो २ पल भाग लेकर क्काथ बनाय उसमें कल्याण घृतकी चौथाई मिलादेवे ऐसा करनेसे यह **चैतस** नामका घृत सिद्ध होता है। यह घृत सर्वप्रकारके चित्तविकारोंको शान्त करता है॥२६॥२७

हिङ्गुसौवर्च्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ २८ ॥

भा० टी०–हींग, कालानोन, त्रिकटु, इनके दो २ पल भाग सहित ८ सेर घृत चौगुने गोमूत्रमें सिद्ध कियेजानेसे उन्मादरोगका नाशक होता है ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे उन्मादाधिकारः ॥ २४ ॥

अथापस्माराधिकारः २५.

वातिकं बस्तिभिः प्रायः पित्तं प्रायो विरेचनैः ॥
कफजे वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥

भा० टी०—बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, वातसे उपजेहुए अपस्मार (मृगी) को प्रायः बस्तिकर्मसे उपाचरित करे और पित्तज अपस्मारको विरेचनन द्वारा एवं कफजनित अपस्मारको वमनके द्वारा उपाचरित करे॥ १ ॥

ततस्तीक्ष्णं प्रयुञ्जीत भिषक्सम्यक्प्रबोधनम् ॥
सर्वतः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरी क्रिया ॥ २ ॥

भा० टी०—अनन्तर वैद्य भलीप्रकार बोध करनेवाले तीक्ष्ण पदार्थको प्रयुक्त करे क्योंकि, सब प्रकार शुद्ध शरीरवाले अपस्मारीकी चिकित्सा अपस्मारको हरती है॥ २ ॥

पारावतशकृद्द्वारा विहितं विधिपूर्वकम् ॥
अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्च विशेषतः ॥ ३ ॥

भा० टी०—कबूतरकी विष्टा करके विधिपूर्वक बनायाहुआ अञ्जन अपस्मार और विशेष करके उन्माद रोगको नष्ट करता है॥ ३ ॥

यष्टीहिङ्गुवचाचक्रशिरीषलशुनामयैः ॥
साजामूत्रैरपस्मारे सोन्मादे हितमञ्जनम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—मुलहठी, हींग, वचा, तगर, शिरीष, लशुन कूडा, इनको बकरीके मूत्रमें पीसनेसे सिद्धहुआ अञ्जन--अपस्मार और उन्मादमें हितकारी होता है॥ ४ ॥

कपित्थाञ्शारदामुद्गान्मुस्तोशीरयवाँस्तथा ॥
सव्योषान्बस्तमूत्रेण पिष्ट्वा वर्तीः प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥

भा० टी०—कैथ, ब्राह्मी, मूंग, मोथ, खस, जौ, त्रिकटु--इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर वर्तिका बनावे ॥ ५ ॥

अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदंशे गरार्दिते ॥
तथा पीतविषे मर्त्ये चैताः स्युरमृतोपमाः ॥ ६ ॥

भा० टी०—यह वर्तिका उन्माद, अपस्मार, सर्पदंश, तथा विषपानसे पीडित हुए मनुष्यको अमृतके समान हैं॥ ६ ॥

उद्धृतं तु शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ॥
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनात्परमं स्मृतम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—कुक्कुरके पित्तको निकालकर अञ्जन बनावे यह अञ्जन मृगीका नाशक है। यही कुक्कुरका पित्त, घृतयुक्त कियेजाने अनन्तर धूप करनेसे अत्यन्त मृगीका नाशक है॥ ७ ॥

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य मेहो हस्तादिशीतता ॥
दशमूलीजलं तस्य कल्याणाय प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

भा० टी०–जिसके मृगीरोगमें छाती कांपती हो एवं हाथ पैर आदि अंगोंमें शीतलपना और नेत्रोंमें विकार तथा मूत्रस्राव हो उसके कल्याणके लिये दशमूलके जलको प्रयुक्त करे ॥ ८ ॥

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ॥
अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद्बुधः ॥ ९ ॥

भा० टी०–जो मनुष्य दूध भातको खाताहुआ मधुके साथ वचाके चूर्णको खाता रहे वह बुद्धिमान् बहुतकालसे उपजेहुए भयङ्कर अपस्मारको भी जीतता है ॥ ९ ॥

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी ॥ रास्ना मागधिका शिग्रुः क्वाथो द्विपलिको भवेत् ॥ १० ॥ विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा ॥ एभिः खर्ज्जूरमृद्वीकाभीरुमज्जासुगोक्षुरैः ॥ ११ ॥ चैतसस्य घृतस्याऽङ्गैः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ महाचैतससंज्ञन्तु सर्वापस्मारनाशनम् ॥ १२ ॥ गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् ॥ पापालक्ष्मीं जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ॥ १३ ॥ श्वासकासहरश्चैव शुक्रार्तावपि शोधनम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–शण, निशोत, एरण्डी, दशमूली, शतावर, रासना, जूही, सैंजन, इनके दो २ पलभाग लेकर क्वाथ बनावे ॥ १० ॥ अनन्तर इसमें विदारीकन्द, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, शक्कर, खजूर, दाख, भीरुनामक ईखकी मज्जा, गोखरु ॥ ११ ॥ और पूर्वोक्त चैतस घृतके अंगोंके साथ उत्तम घृतको पकानेसे महाचैतस नामक घृत सिद्ध होता है। यह घृत सबप्रकारके अपस्मारको नशाता ॥ १२ ॥ और विष, उन्माद, पीनस, त्र्याहिक–चातुर्थिकज्वर, अलक्ष्मी, तथा सबप्रकारकी ग्रहबाधाको जीतकर दुराता है ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त श्वास कासको हरता और शुक्रपीडावालोंके शुक्रको भी शुद्ध बनाता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च ॥
पुराणं सर्पिरुन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–वचा, कूडा, शंखाहुली इनके साथ ब्राह्मीरसमें पकायाहुआ पुराना घृत उन्माद, ग्रहबाधा और मृगीरोगको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ॥
यष्टयाह्वकल्कं तत्पानमपस्मारहरं परम् ॥ १६ ॥

भा० टी०–अठारहगुणा कुम्हडाके रसमें मुलहठीके कल्कसहित घृतको पकावे इस घृतका सेवन सुतरां मृगीरोगका नाशक होता है ॥ १६ ॥

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ॥
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १७ ॥

भा० टी०—गोबरका रस, गायका दही, गायकी छांछ, गायका दूध, गायका मूत्र, इनके समभागोंके साथ सिद्ध कियाहुआ गोघृत चातुर्थिक, उन्माद, ग्रहबाधा और अपस्मारका नाशक होता है ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्देऽपस्माराधिकारः ॥ २५ ॥

अथ वातरोगाधिकारः २६.

अभ्यङ्गः स्वेदनं बस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम् ॥
स्निग्धाम्ललवणं स्वादु वृष्यं वातामयापहम् ॥ १ ॥

भा० टी०—अभ्यङ्गविधिसे स्नान करना, पसीना लेना, नस्यविधान, स्नेह (तैल) के द्वारा दस्तलेना, एवं स्निग्ध और अम्ल तथा नमकीन और पौष्टिक एवं स्वादिष्ट पदार्थ भी वातरोगके नाशक होते हैं ॥ १ ॥

पटोलफलकैर्यूषो वृष्यो वातहरो लघुः ॥
वाट्यालककृतो यूषः परो वातहरो भवेत् ॥ २ ॥

भा० टी०—परवलके फलोंसे सिद्धकियाहुआ यूष पौष्टिक तथा हलका और वातनाशक होता है । एवं खिरटी करके बनायाहुआ यूष भी अत्यन्त वातनाशक है ॥ २ ॥

कटम्भराऽश्वगन्धा च कपिकच्छूः शतावरी ॥
बला महाबराश्वाऽपि केतक्यारोह एव च ॥ ३ ॥
सर्वमेतत्समं कृत्वा क्वाथः कार्य्यो भिषग्वरैः ॥
अस्योपयोगान्नश्यन्ति वातजा विविधा गदाः ॥ ४ ॥

भा० टी०—कटंभरा (राजबला—पसरन) असगन्ध, कौंछ, शतावर, खिरैंटी, दूर्वा, केतकीका अंकुआ इन सबका समानभाग लेकर वैद्यने क्वाथ बनाना । इस क्वाथके उपयोगसे नानाभांतिके वातज रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाम्लैर्वातजो यो न शाम्यति ॥
विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमेवाऽस्ति शोणितम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—शीतोष्ण, स्निग्ध, रूक्ष और अम्ल पदार्थोंके द्वारा यदि वातज दोष शान्त न होवे तो रक्तदोष या कोई अन्य विकार विशेष जानना ॥ ५ ॥

वाजिगन्धाबलास्तिस्रो दशमूली महौषधम् ॥
द्वे गृध्रनख्यौ रास्ना च गणो मारुतनाशनः ॥ ६ ॥

भा० टी०–असगन्ध, तीनों प्रकारकी खिरैंटी, दशमूल, शोंठ, कुलिक और कोलिक दोनों, रासना यह गण वायुनाशक होता है ॥ ६ ॥

आनूपमत्स्यामिषवेशवारैरुष्णैः प्रदेहः पवनापहः स्यात् ॥
स्नेहैश्चतुर्भिर्दशमूलसिद्धैः स्निग्धौषधैश्चाऽनिलहः प्रदेहः ॥ ७ ॥

भा० टी०-जलप्रायदेशीय जीवोंके और मछलियोंके मांसके तथा गरम वेशनसे कियाहुआ लेप भी वातनाशक होता है । एवं दशमूलमें सिद्ध कियेहुए चार प्रकारके स्नेहों करके तथा स्निग्ध औषधियों करके कियाहुआ लेप भी वातनाशक होता है ॥ ७ ॥

निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् ॥
कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतः ॥ ८ ॥

भा० टी०-हड्डीरहित मांसको पीसकर उसमें गुड, घृत, पीपल, और मरिच मिलाकर गरम बनाया जाता है इसीका नाम वेशवार (वेशन) है ॥ ८ ॥

काकोल्यादिः स वातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः ॥ आनूपमांससुस्विन्नः सर्वस्नेह समायुतः ॥ ९ ॥ सुखोष्णः साष्टलवणः सोल्वणः परि-कीर्तितः ॥ तं प्रयुञ्जीत विधिवत्सर्वदा वातरोगिणाम् ॥ १० ॥ काकोल्यादिर्गणो ग्राह्यश्चाष्टवर्गकसंज्ञितः ॥ वातघ्नो भद्रदार्वादि-र्गणोऽयं दाडिमादिकः ॥ ११ ॥ सर्वस्नेहश्चतुःस्नेहो लवणाः सैन्ध-वादिकाः॥ अम्लादिभिश्च संस्कार्य्यं काकोल्यादित्रयं त्रिभिः ॥ १२॥

भा० टी०–सबप्रकारके अम्लपदार्थ और सबप्रकारके स्नेह (तैल) एवं आठ प्रकारके लवणसहित तथा जलप्रायदेशीय जीवोंके मांसमें स्वेदित करनेके अनन्तर सुखोष्ण रूपवाला काको-ल्यादि गण, उल्वण पदार्थों (मिरिचप्रभृति) के साथ वातनाशक होता है इसको सब कालमें वातरोगियोंके लिये विधिपूर्वक प्रयुक्त करे ॥ ९ ॥ १० ॥ यहां काकोल्यादि कहनेसे अष्टवर्गकी औषधी जाननी । काकोल्यादिके समान भद्रदार्व्वादि और दाडिमादिगण भी वायुनाशक जानने ॥ ११ ॥ ऊपर कहा सर्वस्नेह शब्द चारों स्नेहोंका वाचक है, अष्टलवणपदसे सैन्धवा-दिका ग्रहण करना । काकोल्यादि तीन गणोंको पूर्वोक्त अम्ल आदि तीन वृन्दोंसे संस्कृत करना उचित है ॥ १२ ॥

आमाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम् ॥
देयः षट्चरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ १३ ॥

भा० टी०—जब वायु आमाशयमें प्राप्तहुआ हो तब विधिपूर्वक रोगीको वमन कराय सप्तरात्रिपर्यन्त क्रमशः वक्ष्यमाण षट्चरणनामक योगका प्रयोग मंदोष्णजलके साथ करना उचित है ॥ १३ ॥

चित्रकेन्द्रयवा पाठा कटुकातिविषाऽभया ॥
सहा व्याधिप्रशमनो योगः षट्चरणः स्मृतः ॥ १४ ॥

भा० टी०—चीता, इन्द्रजौ, पाठा, कटुकी, अतीस, हरड, घृतकुमारी इन सात औषधियोंसे षट्चरणनामक योग होता है। यह ७ वस्तु क्रमशः ७ दिनतक देनीं ॥ १४ ॥

पक्वाशयगते वाऽपि कार्य्यं स्नेहविरेचनम् ॥
वस्तयः शोधनीयाश्च प्राश्याश्च लवणोत्तराः ॥ १५ ॥

भा० टी०—अथवा जब वायु पक्वाशयमें प्राप्तहुआ हो तब भी षट्चरणमें कहीहुई औषधियोंको खाकर पीछेसे लवणका फंका लेना, परन्तु औषधिसेवनसे पहिले स्नेह (तैल) के द्वारा विरेचन लेना और बस्तिशोधन करना उचित है ॥ १५ ॥

कार्य्यो बस्तिगते वाऽपि विधिर्बस्तिविशोधनः ॥ श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्य्यश्चाऽनिलनुत्क्रमः ॥ १६ ॥ स्नेहाभ्यङ्गोपनाहाश्च मर्द्दनालेपनानि च ॥ त्वङ्मांसासृक्शिराप्राप्ते कुर्य्याच्चाऽसृग्विमोक्षणम् ॥ १७ ॥

भा० टी०—जब वायु बस्ति (गुह्यस्थानसे ऊपरका अंग) में प्राप्तहुआ हो तब बस्तिशोधन कर्म करना उचित है। वायुके कान आदिक अंगोंमें कुपित होनेपर वायुनाशक विधान करना ॥ १६ ॥ अर्थात् स्नेहके द्वारा अभ्यङ्ग करना, व्रणोंमें पुलटिस बांधना, एवं मर्दन और लेपन करना उचित है। जब वायु त्वचा, मांस, रक्त, और नाडियोंमें प्राप्तहुआ हो तब सिंगी आदि यन्त्रके द्वारा दूषित रक्तको निकालदेना उचित है ॥ १७ ॥

स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्द्दनानि च ॥
स्नायुसन्ध्यस्थिसम्प्राप्ते कुर्य्याद्वाते विचक्षणः ॥ १८ ॥

भा० टी०—जब वायु वायुवाहिनी नाडी (जिससे अंग २ के जोड बंधे रहते हैं) और सन्धि तथा हड्डीमें प्राप्तहुआ हो तब बुद्धिमान् वैद्यको स्नेहकर्म, उपनाह (पुलटिस), अग्निकर्म, तथा बन्धन, मर्दन आदि क्रिया करनीं ॥ १८ ॥

शुक्रप्राप्तेऽनिले कार्य्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥
बलपुष्टिकरं प्रायो बृंहणं धातुशोधनम् ॥ १९ ॥

भा० टी०—शुक्रगत वायुमें शुक्रदोषके दुरानेके लिये बल पुष्टिको बढानेवाली, धातुको शुद्ध करनेवाली, बृंहणरूप चिकित्सा करनी उचित है ॥ १९ ॥

यत्र तत्र गते वायौ प्रयुञ्जीत शिलाजतु ॥
न स रोगोऽस्ति वै साध्यो यं जयेन्न शिलोद्भवम् ॥ २० ॥

भा० टी०–वायुके जहां तहां फैलनेपर विधिपूर्वक शिलाजीतका प्रयोग करे । क्योंकि, संसारमें ऐसा साध्य रोग कोई नहीं जिसको शिलाजीत न जीतसके ॥ २० ॥

वक्षःस्फिक्स्कन्धगं वायुं तथा मन्यागतं भिषक् ॥ रुचुकाथेन पीतेन जयेत्प्रातर्यथाबलम् ॥ २१ ॥ दिनेदिने प्रयोक्तव्यं मानमेकं निरन्तरम् ॥ भोजनानन्तरं केचिदवचूर्ण्य विलोडितम् ॥ २२ ॥

भा० टी०–वैद्यको उचित है कि, छाती, कटिप्रोथ, कन्धा, में प्राप्तहुए वायुको प्रातःकालमें अग्निबलके अनुसार सज्जीखारके काथको पान कराय जीते ॥ २१ ॥ इस काथकी प्रतिदिन एक मात्रा देतारहे । किसीका मत यह है कि, इस काथको औटाकर भोजनके अनन्तर पीना ॥ २२ ॥

वातरोगं निहन्त्याऽऽशु चार्दितं चाऽपतन्त्रिकम् ॥ एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे॥ २३॥ ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्यां क्रमिदोषे विशेषतः ॥ कटिपृष्ठामयं हन्याज्जाठरञ्च विशेषतः ॥ २४ ॥

भा० टी०–यह काथ अर्दित और अपतंत्रिकनामक वातरोगको नष्ट करता है । एकाङ्गवातवाले तथा सर्वाङ्गवातवाले रोगीके लिये भी यह काथ हितकारी है ॥ २३ ॥ ऊरुस्तम्भ और गृध्रसीनामक वातरोगविशेषमें तथा विशेष करके क्रमिदोषमें भी यह गुणकारी है । इसके अतिरिक्त कटिरोग, पृष्ठरोग और उदररोगको भी प्रायः नष्ट करता है ॥ २४ ॥

स्नेहाभ्यङ्गशिरोवस्तिनस्यधूमपरायणः ॥
अर्दितं संजयेत्सर्पिः पिबेदुत्तरभक्तकम् ॥ २५ ॥

भा० टी०–स्नेहके द्वारा अभ्यङ्ग करना, शिरक्रिया, वस्तिकर्म, नस्य और धूमविधानमें आसक्त होताहुआ भात खानेसे पहिले शास्त्रोक्त घृतको पान करे तो अर्दितनामक वातरोगको जीते ॥ २५ ॥

दशमूलीबलामाषक्वाथतैलाष्टमिश्रितम् ॥
सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विसूच्यामवबाहुके[2] ॥ २६ ॥

भा० टी०–विसूचिका और अवबाहुक नाम वायुमें दशमूल, खिरैंटी, और उड़दके

---

१ अर्दित वातका दूसरा नाम लकवा वात और एकायाम भी है । २ "अंसमूलस्थितो वायुः शिराः सङ्कोच्य तत्रगाः । बाहुप्रस्पन्दितहरं जनयत्यवबाहुकम् ॥ "

काथको आठ वस्तुओंसे बननेवाले वक्ष्यमाण माषतैलमें मिलाय सायंकालमें भोजनोत्तर नासिकाके द्वारा पानकरे ॥ २६ ॥

मूलं बलायास्त्वथ पारिभद्रात्तथाऽऽत्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा ॥
नस्यं तु यो माषरसेन दद्यान्मासादसौ वज्रसमानबाहुः ॥ २७ ॥

भा० टी०–खिरैंटीकी जड, नीम, कौंछ इनको शिलामें पीसकर रसको निचोड पीवे । इसके अतिरिक्त जो बाहुरोगवाला उडदके रससे नस्य लेवे वह एकमासमें वज्रके समान बाहुवाला बनता है ॥ २७ ॥

पञ्चमूलीकृतः काथो दशमूलीकृतोऽथवा ॥
रूक्षे स्विन्ने तथा नस्यं मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ २८ ॥

भा० टी०–पञ्चमूल वा दशमूलका काथरूपी नस्य–रूक्ष और पसीनावाले मनुष्यमें एवं मन्यास्तम्भ (गर्दनकी पिछली नाडीका जकडना) में भी कहा है ॥ २८ ॥

बाहुशोषे पिबेद्भुक्त्वा सर्पिः कल्याणकं महत् ॥ हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक् ॥ २९ ॥ क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्य्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत् ॥ वातघ्नैर्दशमूल्याद्यैरेवं कुब्जमुपाचरेत् ॥ ३० ॥ स्नेहैर्मांसरसैर्वाऽपि प्रवृद्धं तं विपर्य्ययेत् ॥

भा० टी०–बाहुशोष (भुजाका सूखजाना) में भोजनके अनन्तर बृहत्कल्याण घृतको पीतारहे । जब वायु कुपित होकर हृदय (छाती) वा पीठके मध्यभागको ऊंचा बनाय विकृत करता है तब उसका नाम कुब्जवात कहाता है । कुब्जवातकी प्रारम्भिक दशामें दशमूल आदि वातनाशक औषधोंके द्वारा उपचार करे ॥ २९ ॥ ३० ॥ जब यह बढजाय तब स्नेह वा मांसरससे इसे घटावे ॥

पिबेद्वा स्नेहलवणं सघृतं क्षारहिंगुना ॥ आध्माने लेपनाद्याति तापिच्छफलवर्तिकाः ॥ ३१ ॥ हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पक्वा सम्यक्क्रमशुवर्तिताः ॥ घृताभ्यक्ते गुदे दद्यादुदावर्तविनाशनम् ॥ ३२ ॥

भा० टी०–अथवा कुब्जवातवाला, घृतसहित स्नेह लवणको पीवे । "जब वायु कुपित होकर पक्वाशयमें प्राप्त होता है तब आध्मान (अफारा) उपजता है" पेटके अफारेमें खार और हींगके लेप करनेसे वह दूर होता है । एवं हींग, मधु, और सेंधानोनके साथ तमाडके फलोंकी वर्तिकाओंको भलीप्रकार अलोटपलोटकर पकावे अनन्तर घृतसे गीला बनायेहुए गुदद्वारमें क्रमशः उन वर्तिकाओंको देवे तो उदावर्तरोग नष्ट होय ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

---

१ यत्रोर्द्ध्वं जायते वायोरावर्तः स चिकित्सकैः । उदावर्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्राऽनिलः प्रभुः ॥

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ॥ हिंगुत्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ॥ ३३ ॥ शतपुष्पाऽथवा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ अजमोदा यवानी च धान्यकञ्च सुबुद्धिमान् ॥ ३४ ॥ प्रत्येकं पलमेतेशां श्लक्ष्णं चूर्णन्तु कारयेत् ॥ घृतभाण्डे न्यसेच्चैतत्स्थापयेत्षोडशाहकम् ॥ ३५ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानञ्च प्रस्थार्द्धं कांजिकस्य च ॥ खादेत्कर्षप्रमाणं वा तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ३६ ॥ आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसम्भवे ॥ अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च ॥ उन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ ३७ ॥

भा० टी०–१०० पल लहशन, ३२ तोले तिल, और एक २ पलके प्रमाणसे हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पञ्चलवण ॥ ३३ ॥ सौंप वा कूडा, पिपलामूल, चीता, अजमोदा, अजवायण, धनियां ॥ ३४ ॥ इनको एकत्रित करके सुन्दर चूर्ण बनावे । पीछे इसको एक घृतके पात्रमें १६ दिनतक रक्खे रहे ॥ ३५ ॥ अनंतर इसमें तैलका मान और आधा प्रस्थ कांजीको डालकर एक २ कर्षके प्रमाणसे खावे और पीछेसे जल वा मद्य पीवे ॥ ३६ ॥ यह योग आमवातमें, एकाङ्गवात वा सर्वांगवातमें, मृगीरोगमें, मंदाग्निमें, श्वासमें, कासमें, विषमें, उन्मादमें, भग्नवातमें, शूलमें तथा कृमिरोगमें भी उपयोगी है ॥ ३७ ॥

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च प्रदिह्यादुदरं भिषक् ॥ ३८ ॥ दीपनं पाचनञ्चैव वस्तेश्चाऽप्यत्र शोधनम् ॥ प्रत्याध्माने तु वमनं लंघनं दीपनं तथा ॥ ३९ ॥

भा० टी०–देवदार, हरड, कूडा, सौंप, हींग, सेंधानोन, इनको छांछमें पीसकर कुछ गरम बनाय पेटपर लेप करे ॥ ३८ ॥ यह लेप दीपन और पाचन तथा बस्तिशोधक है । प्रत्याध्माननामक वायुमें वमन, लंघन और दीपन औषधी श्रेष्ठ होती हैं ॥ ३९ ॥

प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोरन्तर्विद्रधिवत्क्रिया ॥
चूर्णं हिंग्वादिकञ्चाऽत्र शस्यते तु विशेषतः ॥ ४० ॥

भा० टी०–प्रत्यष्ठील और अष्ठीलिक नामक वायुमें विद्रधिरोगमें कहीहुई क्रिया करनी । तथा हिंग्वादिक चूर्ण भी यहां उत्तम है ॥ ४० ॥

विसूच्यां खञ्जपंग्वोश्च दाहे हर्षे च पादयोः ॥
कोष्ठशीर्षविकारेषु विकारे वातकण्ठके ॥ ४१ ॥

भा० टी०—विशेषकरके यह चूर्ण विसूची, खञ्जवात, पंगुवात, दाह, पादरोमाञ्च, कोष्ठ और शिरके विकार, एवं वातकण्टक विकारमें भी श्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥

शिरोग्रहे च कर्तव्या शिरोगतमरुत्क्रिया ॥
जिह्वास्तम्भे क्रियां श्रेष्ठां वक्ष्यमाणामुपाचरेत् ॥ ४२ ॥

भा० टी०—शिरोग्रहनामक वायुमें शिरोगत वायुको दुरानेवाली शास्त्रोक्त क्रिया करनी। जिह्वास्तम्भ (मूकवात) में वक्ष्यमाण क्रियाको करे ॥ ४२ ॥

अथ कल्याणकलेहः ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ अजाजी चाऽजमोदा च यष्टीमधु च सैन्धवम् ॥ ४३ ॥ एतेषां समभागानां श्लक्ष्णं चूर्णं प्रकल्पयेत्॥ तच्चूर्णं सर्पिषाऽऽलोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥४४॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ॥ मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥ ४५ ॥

भा० टी०—हलदी, वचा, कूडा, पिपली, शोंठ, कालीजीर, अजमोदा, मुलहठी, सेंधानोन इनके समान भाग लेकर सुन्दर चूर्ण बनावे । पीछे इस चूर्णको घृतके साथ औटाकर प्रतिदिन खाता रहे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ २१ ही दिनमें मनुष्य, श्रुतिधर (सुनीहुई बातको याद रखनेवाला), एवं मेघ और नगारेके समान गंभीर शब्दवाला तथा उन्मत्त कोकिलके समान मधुरभाषी बन बैठता है ॥ ४९ ॥

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीं त्रिफलाम्भसा ॥
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् ॥ ४६ ॥

भा० टी०—क्रोष्टुशीर्षनामक वायुमें गोगलको, वा त्रिफलाके रसमें गिलोयको, वा दूधके साथ एरण्डीके तैल वा विधारेको सेवे ॥ ४६ ॥

श्यामासमालम्बुषाद्यं कार्य्यं वा वातरक्तनुत् ॥
हते रक्तेऽनिलहरो विधिः कृष्णः प्रशस्यते ॥ ४७ ॥

भा० टी०—किंवा श्यामालता, गोभी, गोरखमुण्डी इन आदिगणोंसे युक्त वातरक्तको दुरानेवाली क्रिया करनी, क्योंकि दूषित रक्तके नष्ट होनेपर सब प्रकारका वातनाशक विधान असर करताहै ॥ ४७ ॥

---

१ " समीरणास्रजः शोथो मध्ये जानौ महारुजः । क्रोष्टुशीर्षसमस्थूलो वातोऽसौ क्रोष्टुशीर्षकः " ।

दशमूली बला रास्ना गुडूची विश्वभेषजम् ॥
पिबेदेरण्डतैलेन गृध्रसीखञ्जपंगुषु[1] ॥ ४८ ॥

भा० टी०–दशमूल, खिरैंटी, रासना, गिलोय, शोंठ इनके चूर्णको एरण्डीके तेलके साथ गृध्रसीवात, खञ्जवात, और पंगुवातमें पानकरे ॥ ४८ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ॥
पायसं सकटीशूलगृध्रस्यां परमौषधम् ॥ ४९ ॥

भा० टी०–एरंडीके बीजोंको शोधकर पीठा बनाय दूधमें पायस बनावे यह सिद्धपायस कटिशूलसहित गृध्रसीनामवायुमें परम औषध है ॥ ४९ ॥

पञ्चमूलीकषायो वा रुचुतैलत्रिवृद्युतः ॥
त्रिवृतैवाऽथवा युक्तो गृध्रसीशूलगुल्मनुत् ॥ ५० ॥

भा० टी०–अथवा पञ्चमूलका कषाय रुचुतैल और निशोतसे वा केवल निशोतसे युक्त होनेके कारण गृध्रसी, शूल तथा गुल्मको दूर करता है ॥ ५० ॥

तैलं घृतं वाऽऽर्द्रकमातुलुङ्ग्यो रसं सचुक्रं प्रपिबेदजस्रम् ॥
कट्यूरुवातत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्तहरः प्रदिष्टः ॥ ५१ ॥

भा० टी०–घी, तैल, वा अदरख और बिजोरेके रसको नित्य चूकके साथ पीवे । क्योंकि यह योग कटिवात, जंघावात, तीनप्रकारका गुल्म और शूल, तथा गृध्रसी और उदावर्तको हरनेवाला कहा है ॥ ५१ ॥

रास्नायाश्च पलञ्चैकं कर्षाः पञ्च च गुग्गुलोः ॥
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा गृध्रसीहराम् ॥ ५२ ॥

भा० टी०–एकपल रासना, पञ्च कर्ष (१० तोले) गोगलको लेकर घृतके साथ वटिका बनाय खावे तो गृध्रसीरोग दूर होय ॥ ५२ ॥

गृध्रस्यार्तस्य जङ्घायाः स्नेहस्वेदे कृते भृशम् ॥ पद्भ्यां संमर्दिताभ्यां च सूक्ष्ममार्गेण गृध्रसीम् ॥५३॥ अवतार्य्याङ्गुलौ सम्यक्कनिष्ठायां शनैः शनैः ॥ शुण्ठीगन्धर्वबीजाभ्यां पिष्टाभ्यां पायसं कृतम् ॥ ५४ ॥ भक्षितं तत्कटीशूलं गृध्रसीं हन्त्यसंशयम्॥५५॥

---

१ स्फिक्पायूरुकटिपृष्ठजानुजंघापदं क्रमात् । गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ वाताद्वातकफात्तन्द्रा गौरवारोचकान्विता ॥ १ ॥ वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा । खञ्जस्तदा भवेजन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ २ ॥ इति चरकः ॥

भा० टी०—गृध्रसीवातसे पीडित हुए मनुष्यकी जंघाको पहिले स्नेहके द्वारा भलीप्रकार स्वेदित (पसीनायुक्त) करे पीछे पैरोंसे उस जंघाको मर्दित करके सूक्ष्ममार्गके द्वारा गृध्रसीको शनैः २ जंघासे कनिष्ठिकामें उतार रक्खै अनन्तर पीसीहुई शोंठ और एरण्डीके बीजोंकी बनाई पायसको खावे तो निःसन्देह कटिशूल और गृध्रसी वात नष्ट होय ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

नाऽऽदौ वस्तिविधिं कुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुद्ध्यति ॥
स्नेहो निरर्थकस्तत्र भस्मन्येव हुतं यथा ॥ ५६ ॥

भा० टी०—जबतक वातरोगीके ऊर्द्धभागकी शुद्धि नहीं होती तबतक पहिले ही अनुवासनवस्ति न करे । क्योंकि प्रथम ही अनुवासनवस्तिमें प्रयुक्त कियाहुआ स्नेह भस्ममें हवन कियेकी नाईं निरर्थक होता है ॥ ५६ ॥

उत्थितं ग्रन्थिकं जङ्घाकण्डरायामवस्थितम् ॥ तं शस्त्रेण विदार्याऽशु प्रवालसदृशं भिषक् ॥ ५७ ॥ समुद्धृत्याऽग्निना दग्ध्वा यष्ट्याह्वां चन्दनं क्षिपेत् ॥ विध्येच्छिरामिष्टवस्तेरधस्ताच्चतुरंगुलम् ५८ यावन्नोपशमं गच्छेद्दहेत्पादकनिष्ठिकाम् ॥ तैलमेरण्डजं वाऽपि गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ ५९ ॥ मासमेकं प्रयोक्तव्यं गृध्रस्यूरुग्रहापहम् ॥ रक्तावसेचनं कुर्य्यादभीक्ष्णं वातकण्टके ॥ ६० ॥ पिबेदेरण्डतैलं वा पादसूचीभिरेव च ॥ ६१ ॥

भा० टी०—जंघाकी कंडरा (महानाडी) में उत्पन्न होकर स्थितहुई मूंगाके समान वर्णवाली ग्रन्थिको शीघ्र ही शस्त्रसे फाडकर वहांसे विकारको निकाल देवे ॥ ५७ ॥ अनन्तर उस स्थानको अग्निदग्ध करके वहांपर मुलहठी और चन्दनको डालदेवे । प्रमाणित वस्तिसे चार अंगुल नीचे शिराभेदन कर्म करना उचित है ॥ ५८ ॥ इस दशामें जब रोग शान्त न हो तब पैरकी कनिष्ठिकाको दग्ध करे । या गोमूत्रके साथ एरण्डीके तेलको पीवे ॥ ५९ ॥ गृध्रसी और ऊरुग्रह नामक वातको नष्ट करनेवाले इस योगको एक मासपर्य्यन्त प्रयुक्त करे । वातकण्टकनामक वायुमें निरन्तर रक्तावसेचन कर्म करना उचित है किंवा चतुर्थांश शितावरके साथ एरंडीके तैलको पीवे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जनयेद्रुजम् ॥
स कटीग्रह एवोक्तः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोःश्रितः ॥ ६२ ॥

भा० टी०-साम वा निराम वायु जब कटिभागमें प्राप्त होकर पीडाको उत्पन्न करता है तब उसका नाम 'कटिग्रह' कहलाता है । दोनों जघनोंमें आश्रित हुआ विकृत वायु पंगुसंज्ञक है॥६२॥

कटिशूलेषु सर्वेषु तैलमेरण्डसम्भवम् ॥
दशमूलीकषायो वा हित उक्तो भिषग्वरैः ॥ ६३ ॥

भा० टी०—सब प्रकारके कटिशूलोंमें एरंडीका तैल वा दशमूलका कषाय वैद्योंने हितकारी कहा है ॥ ६३ ॥

अथादित्यपाकगुग्गुलुवटकः ।

पृथक्पलांशा त्रिफला पिप्पली चात्र चूर्णिता ॥ दशमूलाम्बुना सिद्धा त्वगेलार्द्धपलान्विता ॥ ६४ ॥ सपञ्चपलनिर्यासा वटकं कल्पयेद्बुधः ॥ एष मांसरसाभ्यासाद्वातरोगानशेषतः ॥ ६५ ॥ रक्तसन्ध्यस्थिमज्जास्थान्वृक्षानिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६६ ॥ लेहवद्विगुणेनायमालोड्याऽऽलोड्य वातजित् ॥ ६७ ॥ दशमूलाम्बुना शोष्यः सप्तवारांस्तु गुग्गुलुः ॥ ६८ ॥

भा० टी०—पृथक् २ पलभागवाली त्रिफला और पिपली, आधा पलके प्रमाणसे दालचीनी और इलायची, पञ्च पल निर्यास (गोगल) इन सबका चूर्ण बनाय दशमूलके रसमें भावित करे। अनन्तर उस द्रव्यके वटक बनालेवे। यह वटक मांसरसके संशीलनसे रक्तवात, सन्धिवात, अस्थिवात, और मज्जागतवातोंको भी कैसे नष्ट करता है जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षोंको। उक्त चूर्णकी भावनाविधि कहतेहैं, दुगुने दशमूलके रसमें लेहकी भांति उस गोगलाधिक चूर्णको बार २ आलोडित करके सूर्य्यके तापमें सातवार सुखानेसे यह वातजित् योग सिद्ध और भावित होताहै, अधिकांश होनेसे मूलमें केवल 'गुग्गुलु' पद लिया है॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ त्रयोदशाङ्गगुग्गुलुः ।

आभाऽश्वगन्धा हबुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरकश्च रास्ना ॥ श्यामा शठी घोषवती यवानी सनागरा चेति समैश्च चूर्णम् ॥ ६९ ॥ तुल्यं भवेत्कौशिकपत्रमध्ये देयं तथा सर्पिरतोऽर्द्धभागम् ॥ अक्षार्द्धमात्रा तु ततः प्रयोज्या कृत्वाऽनुपानं सुरया च यूषैः ॥ ७० ॥ मद्येन वा कोष्णजलेन वाऽथ क्षीरेण वा मांसरसेन वाऽपि ॥ कटिग्रहे गृध्रसिबाहुपृष्ठहनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ॥ ७१ ॥ सन्धिस्थिते चाऽस्थिगते च वाते मज्जाश्रिते स्नायुगते च कोष्ठे॥रोगाञ्जयेद्वातक-

फानुवृद्धान्वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ ७२ ॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सिद्धम् ॥ ७३ ॥

भा० टी०–बबूर १, असगन्ध २, हाऊबेर ३, गिलोय ४, शतावरी ५, गोखरु ६, रासन ७, श्यामा ८, कचूर ९, घोष (एक प्रकारकी तोरई) १०, अजवायण ११, शोंठ १२, इन सबके समान भाग लेकर चूर्ण बनावे ॥ ६९ ॥ और चूर्णके बराबर शुद्ध गोगल होना चाहिये तब इस वृन्दमें इसके आधा घृत १३, डाल देवे। अनन्तर आधा अक्ष(१तोला) के प्रमाणसे इसका प्रयोग करे और पीछेसे एकाङ्गीरस, वा मुद्गादिकाथ ॥ ७० ॥ वा मदिरा वा मन्दोष्णजल, वा दूध, वा मांसरसका पान करे। यह योग कटिग्रह, गृध्रसी, बाहुग्रह, पृष्ठग्रह, हनुग्रहनामक वातोंमें तथा जानुवात, पादवात ॥ ७१ ॥ सन्धिवात, अस्थिवात, मज्जागतवात, स्नायुवात, और कोष्ठगत वातमें भी गुणकारी है। किंबहुना वात कफसे बढेहुए रोगोंको तथा वातसे उपजेहुए हृदयग्रह और योनिदोषोंको भी जीतता है ॥ ७२ ॥ इसके अतिरिक्त इस त्रयो-दशांग योगको भग्नवात, अस्थिविद्धवात, और खञ्जवातमें भी प्रसिद्ध कहतेहैं ॥ ७३ ॥

अथ दशमूलघृतम्।

दशमूलस्य निर्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥
क्षीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्तिजित् ॥ ७४ ॥

भा० टी०-पलपरिमित जीवनीयगणकी औषधियों (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली,मुगवन,मषवन, जीवन्ती, मुलहठी) को अलग २ एक २ कल्कोंके द्वारा दूधके साथ दशमूलके काथमें पकायाहुआ घृत तर्पणरूप और वातपीडाका नाशक है ॥ ७४ ॥

अथाश्वगन्धाद्यं घृतम्।

अश्वगन्धाकषायेण कल्कैः क्षीरं चतुर्गुणम् ॥
घृतं पक्वन्तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥

भा० टी०–असगंधके कषाय और कल्कके साथ चौगुना दूध और घृत पकाया जाय यह सिद्ध घृत पौष्टिक होनेके कारण मांसको बढाता और वातरोगको नशाता है ॥ ७५ ॥

अथ छागलाद्यं घृतम्।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गखुरादिकम् ॥ पञ्चमूलद्वयञ्चैव जल-द्रोणे विपाचयेत् ॥ ७६ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरञ्चैव शतावरीम् ॥ ७७ ॥ छागलाद्य-मिदं नाम्ना सर्ववातविकारजित् ॥ अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्य्ये मूकधर्मिणि ॥ ७८ ॥ जडगद्गदपंगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ॥

अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ७९ ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र देयानि दशमूलतः ॥ घृते तैले च योगे च यद्द्रव्यं पुनरुच्यते ॥८०॥ तज्ज्ञातव्यमिहाऽर्थेन भागतो द्विगुणं भवेत् ॥ ८१ ॥

भा० टी०–चमडा, सींग और खुर आदिकोंसे रहित बकरेके मांसको दशमूलके साथ एक द्रोण जलमें पकावे ॥ ७६ ॥ जब चतुर्थांश रहजाय तब उसमें एकप्रस्थ घीको पकावे और साथही मुलहठी सहित जीवनीयगणकी औषधी और शतावरीके कल्कको तथा क्षीरको भी पकावे ॥ ७७ ॥ पकजानेपर यह छागलादिनामक घृत सिद्धहुआ । सबप्रकारके वायुविकारोंको जीतनेवाला यह घृत अर्दितवात, कर्णशूल, बधिरता, मूकवात, जडवात, पंगुवात, गद्गदवात, खञ्जवात, गृध्रसीवात, कुब्जवात, तथा अपतानवात और अपतंत्र वातमें भी हितकारी है ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ध्यान रहे कि, दशमूल जो पहिले कहा है उसके ३२ पल देने । और जो औषधी पीछे घृतके साथ पकानी कही हैं उनका दुगुना भाग देना चाहिये क्योंकि, घृत तैलके योगमें पिछली कही वस्तुओंका यही मान है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथैलादितैलम् ।

एलामुरासरलशैलजदारुकौन्तीचण्डीशठीनलदचम्पकहेमपुष्पम् ॥ स्थौणेयगन्धरसपूतिदलामृणालं श्रीवासकुन्दुरुनखाम्बुवराङ्गकुष्ठम् ॥ ॥ ८२ ॥ कालीयकं जलदकुङ्कुलचन्दनं श्रीजात्याः फलं सविकसं सहकुंकुमञ्च ॥ कृष्णागुरुञ्च लघुलाभतया विनीय तैलं बलाश्रयुतं तदिदन्तु दध्ना ॥ सार्द्धं पचेच्च हितमेतदुदाहरन्ति वातामयेषु बलवर्णवपुः प्रकारि ॥ ८३ ॥

भा० टी०–इलायची, एकाङ्गी (कपूरकचरी), देवदार, पत्थरका फूल, धूपसरल, रेणुका, धनहर, कचूर, खस, चम्पक, गुडहल (जपाकुसुम), थुनेर, बोर, सोमराजी, मृणाल, श्वेतचन्दन, कन्दूर, नखी, सुगन्धवाला, वराङ्ग (दालचीनी–तेजपात), कूडा, कृष्णचन्दन, मोथा, गठिवन, लालचन्दन, लवङ्ग, जायफल, मंजीठ, कुंकुमचन्दन, काला अगरु इनके कल्क द्वारा खिरैंटीके क्वाथमें तैलको दधिजलके साथ पकानेसे एलादितैल सिद्ध होता है । यह तैल बल, वर्ण और शरीरको पुष्ट बनानेके कारण वातरोगोंमें हितकारी कहाता है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ बलातैलम ।

बलायाः क्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्वं पयोन्वितम् ॥
सर्ववातविकारघ्नं वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ ८४ ॥

भा० टी०—खिरैंटीके क्वाथ, और कल्कके साथ पकायाहुआ तैल दूधसहित सब प्रकारके वातविकारोंको नाश करता और कान्ति, आयु तथा बलको बढाता है ॥ ८४ ॥

अथ बृहद्बलातैलम्।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ॥ यवकोलकुलत्थानां क्काथस्य पयसस्तथा ॥ ८५ ॥ अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः ॥ पचेदवाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ ८६ ॥ तथाऽगुरुं सर्ज्जरसं सरलं देवदारु च ॥ मंजिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुसारिवाम् ॥ ८७ ॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् ॥ शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ ८८ ॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि च ॥ प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्सुनिगुप्तं निधापयेत ॥ ८९ ॥ बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ ९० ॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ क्षीणौजस्के मर्महते मथितेऽभिहते तथा ॥९१॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयुज्यते॥ सवर्णाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ ९२ ॥

भा० टी०—खिरैंटीकी जड, दशमूल, इन्द्रजौ, कोल, कुलथी इनके क्वाथोंके पृथक् २ आठ २ भाग, और दूधके भी वही ८ भाग ॥ ८५ ॥ तथा १ भाग तैलको और वही एकांशके प्रमाणसे सैंधवसहित मधुरगण ॥ ८६ ॥ तथा अगुरु, शालकी राल, धूपसरल, देवदार, मजीठ, चन्दन, कूडा, इलायची, शीतली लता ॥ ८७ ॥ मांसी, पत्थरका फूल, तेजपात, तगर, सारिबा, वच, शतावर, असगन्ध, सौंफ, पुनर्नवा ॥ ८८ ॥ इनके कल्कद्वारा पकावे। भली-प्रकार सिद्ध होनेपर इस तैलको सुवर्णमय वा रजतमय वा मृण्मयके पात्र पर गुप्त करके रख-देवे ॥८९॥ यह सिद्धहुआ बलातैल सबप्रकारके वातविकारोंको दुरानेवाला है। अतः अग्निबलके अनुसार इसकी मात्रा बनाय प्रसूतिका स्त्री ॥ ९० ॥ वा गर्भको चाहनेवाली रमणी तथा धातुक्षयवाले मनुष्यके लिये प्रयुक्त करे। इसके अतिरिक्त कान्तिहीन, तथा मर्ममें पीडितहुए, मथित अंगवाले, भग्नगात्रवाले, तथा अति परिश्रम करनेसे थकितहुए मनुष्यमें भी यह अत्यन्त उपयोगी है। और वर्णाक्षेपकप्रभृति वातरोगोंको भी नष्ट करता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

हिक्कां कासमधामत्वं गुल्मं श्वासं सुदुस्तरम् ॥ षण्मासानुपयोज्यैतदन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ ९३ ॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिर-

यौवनः ॥ राज्ञां च सुकुमाराणां धनिनां च सुखप्रदम् ॥ ९४ ॥.

भा० टी०-किंबहुना, यह तैल-हिचकी, कास, निस्तेजता, फीहा, श्वास, और अन्त्र-वृद्धि इतने रोगोंको छः मासके उपयोगसे नष्ट करता है ॥ ९३ ॥ इसके सेवनसे क्षीण दुर्बल मनुष्य भी शुद्ध नवीन धातुसे सम्पन्न एवं अचलयौवनशाली बनता है। सुकुमार अंगवाले राजे और धनवानोंके लिये यह सुखदायक है ॥ ९४ ॥

अथ नारायणतैलम् ।

बिल्वोऽग्निमन्थः श्योनाकः पाटला पारिभद्रकः ॥ प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥ ९५ ॥ बलाचाऽतिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ९६ ॥ पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ॥ शतपुष्पादेवदारुमांसीशैलेयकं वचा ॥ ९७ ॥ चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम् ॥ रास्ना तुरङ्गगन्धा च सैंधवं सपुनर्नवम् ॥९८॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ शतावरीरसश्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ९९ ॥ आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ पाने बस्तौ तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये नस्ये प्रयोजयेत् ॥ १०० ॥ अश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ॥ पंगुलो मन्दचारी च तैलेनाऽनेन सिध्यति ॥ १०१ ॥ अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ॥ मन्यास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्तरोगे गलग्रहे ॥ १०२ ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ॥ क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥ १०३ ॥ बधिराः स्तब्धजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च ॥ अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ॥ ॥ १०४ ॥ वातार्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ एतत्तैलं वरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ १०५ ॥

भा० टी०-बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, लाललोध, फरहद, पसरन, असगन्ध, कटेहरी, कंटकारी, ॥ ९५ ॥ खिरेंटी, सहदेई, गोखरु, पुनर्नवा इनके दश २ पलवाले भागोंको चार द्रोण जलमें पकावे ॥ ९६ ॥ जब चतुर्थांश रहे तब रसको निकालकर उसमें पात्रप्रमाण (८ सेर) तैल मिलावै और साथ ही सौंफ, देवदार, मांसी, पत्थरका फूल, वच, ॥ ९७ ॥ चन्दन, तगर,

कूठा, इलायची, चारों पर्णी, रासन, असगन्ध, सेंधा, पुनर्नवा इनके दो २ पलवाले भागोंको पीसकर उसमें डालदेवे। और तैलके समानभागवाले शतावरीके रसको भी देवे॥ ९८॥ ९९॥ अनन्तर चौगुने बकरीके दूध वा गोदुग्धको मिलाय सिद्ध होनेपर खान, पान, स्नान, तथा वस्तिकर्म और नस्यकर्ममें भी इसे प्रयुक्त करे॥ १००॥ एवं वातसे पीडितहुआ घोडा, हाथी, वा मनुष्य एवं पंगु और धीमा चलनेवाला मनुष्य भी इस तैलसे सिद्धिको प्राप्त होताहै॥ १०१॥ शरीरके अधोभाग और ऊर्द्धभागमें रहनेवाले वातविकारोंमें, एवं मन्यास्तंभ, हनुस्तंभ, गलग्रह, दन्तग्रह नामक वायुसमूहमें॥१०२॥ एवं एक अंग जिनका सूखगया, गति जिनकी विह्वल होगई, तथा वीर्य्य और इन्द्रिय जिनकी क्षीणप्राय होचुकीं, एवं जो ज्वरसे क्षीण हैं॥ १०३॥ एवं जिनके कान बहिरे और जिह्वा स्तब्ध तथा बुद्धि मन्द होचुकी उन मनुष्योंमें, एवं जिस स्त्रीकी थोडी सन्तान है, किंवा जो स्त्री गर्भमात्र धारण न करसकें उन स्त्रियोंमें॥ १०४॥ एवं जिसके अण्डकोश वायुसे पीडित हों, तथा जिनकी आंत बढगई हों उन मनुष्योंमें भी यह तैल श्रेष्ठ है। इसका नाम नारायणतैल कहाहै॥ १०५॥

अथ महानारायणतैलम्।

शतावरी चांऽशुमती वृषपर्णी शठी बला॥ एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च॥ १०६॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च॥ एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्॥१०७॥ पादावशेषे पूतेऽस्मिन्गर्भश्चैतत्प्रसाधयेत्॥ पुनर्नवा वचा दारु शताह्वाचन्दनागुरु॥ १०८॥ शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला॥ अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलं पलं च पेषयेत्॥१०९॥ गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रयोजयेत्॥ शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ ११०॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्य्यमतः परम्॥ अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणान्तथा॥ ॥ १११॥ तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातनिवारणम्॥ आयुष्माँश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत्॥ ११२॥ गर्भमश्वतरी विन्देत्किम्पुनर्मानुषी ननु॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च तथैवाऽर्द्धविभेदकम्॥ ॥११३॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च वातरक्तं हनुग्रहम्॥ अश्मरीं च विनाशयेदं वैद्यानां वितरेद्यशः॥ ११४॥ तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम्॥ तन्नारायणमित्युक्तं वातान्तककरं शुभम्॥ ११५॥

भा० टी०—शतावरी, सालवन, मूसाकानी, कचूर, खिरेंटी, एरण्डीकी जड, तथा कटेरी, कंटकारी और पूतिकरञ्जकी जड, तथा गवेधुका और कटसरैयाकी .जड इनके दशपलवाले भागोंको एक द्रोण जलमें पकावे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ जब चतुर्थांश रहजाय तब उसे छानकर उसमें पुनर्नवा, वच, देवदार, सौंफ, चन्दन, अगुरु, ॥ १०८ ॥ पत्थरका फूल, तगर, कूडा, इलायची, मांसी, काकोली, खिरेंटी, असगन्ध, सेंधा, रासन इनके एक एक पल भागको पीसकर डालदेवे ॥ १०९ ॥ एवं गौ और बकरीके दो २ प्रस्थ दुग्धको तथा एक प्रस्थ शताव-रीरस और एक प्रस्थ तैलको भी उसमें मिलाय पकावे ॥ ११० ॥ सिद्ध होने पर इस तैलके पराक्रमको सुनिये । वातपीडित घोडे हाथी वा मनुष्योंके लिये प्रयुक्त कियेजानेसे यह सब प्रका-रके वातविकारोंको दुराताहै । इसके पान करनेसे मनुष्य निःसंदेह दृढ और दीर्घायुवाला होताहै ॥ १११ ॥ ११२ ॥ इसके प्रभावसे खच्चरी भी गर्भवती होसक्तीहै तो मानुषी स्त्रीके लिये क्या कहनाहै ? । यह तैल—हृदयशूल, पशलीशूल, अर्धांगवात, कामला, पाण्डुरोग, वातरक्त, हनुग्रह और पथरीरोगको भी नष्ट करके वैद्योंके लिये कीर्ति देनेवाला है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ इस वातना-शक मांगलिक तैलको विष्णु भगवान्ने कहा अतः इसका नाम नारायणतैल पडा ॥ ११५ ॥

अथाश्वगन्धाद्यं तैलम् ।

शतं पक्त्वाऽश्वगन्धाया जलद्रोणेंशशेषिते ॥ स्राविते विपचेत्तैलं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ११६ ॥ कल्कैर्मृणालशालूकबिसकिञ्ज-ल्कमालती ॥ पुष्पैर्ह्रीवेरमधुकैः शारिवापद्मकेशरैः ॥ ११७ ॥ मेदापुनर्नवाद्राक्षामंजिष्ठाबृहतीद्वयैः ॥ एलैलवालुत्रिफलामुस्तचन्द-नपद्मकैः ॥ ११८ ॥ पक्वं रक्ताश्रयं वातं रक्तपित्तमसृग्दरम् ॥ हन्यात्पुष्टिप्रदं नित्यं कृशानां मांसवर्द्धनम् ॥ ११९ ॥ रेतोयोनि-विकारघ्नं व्रणदोषापकर्षणम् ॥ षण्ढपुंस्त्वकरं पानाभ्यङ्गनस्यानु-वासनैः ॥ १२० ॥

भा० टी०—१०० पल असगन्धको एकद्रोण जलमें पकावे जब चतुर्थांश रहजाय तब उसे छानकर निकाले और उसमें चौगुना दूध देकर तैलको भी साथ ही पकावे ॥ ११६ ॥ इसी समय इसमें मृणाल, कमलकन्द, कमलकेशर, मालती, तथा हाऊबेर और मुलहठी, सारिवा, कमल, केशर, मेदा, पुनर्नवा, दाख, मंजीठ, कटेरी, कंटकारी, इलायची, एलुवा, त्रिफला, मोथ, चन्दन, पद्माख ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ इनके कल्कको डालकर पकावे । इसभांति पकाहुआ यह तैल—रक्तवात, रक्तपित्त और कुष्ठरोगको भी नष्ट करके पुष्टि देता और कृश मनुष्योंके मांसको बढाता है ॥ ११९ ॥ एवं शुक्र और योनिके दोषोंको नशाता, तथा व्रणदोषको

खींचता, और नपुंसकको पुरुष बनाता है जब कि इससे पान, अभ्यंग, नस्य, और अनुवासन (बस्ति) कर्म किये जांय ॥ १२० ॥

अथ विविधानि माषतैलानि।

(१) माषात्मगुप्तातिरसोरुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः ॥
चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैलं घृतं हन्ति हि पक्षघातम् ॥ १२१ ॥

भा० टी०–उडद, कौंछ, मुलहठी, एरण्डी, रासना, सौंफ लवण इनके पिष्ट कल्कके साथ उडद और खिरेंटीके चौगुने क्वाथमें पकायाहुआ तैल व घृत पक्षाघात (अर्धांग) नामवातको नष्ट करता है॥ १२१ ॥

(२) माषप्रस्थं समावाप्य पचेत्सम्यग्जलाढके ॥ पादशेषे रसे तस्मिन्क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ १२२ ॥ प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वा च साधितम् ॥ जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पी च सैन्धवम् ॥ १२३ ॥ रास्नाऽऽत्मगुप्तामधुकं बलाव्योषत्रिकण्टकम् ॥ पक्षाघातेऽर्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ १२४ ॥ मन्दश्रुतौ च श्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ॥ हस्तकम्पे शिरःकम्पे विसूच्यामवबाहुके ॥ १२५ ॥ शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ॥ माषतैलमिदं श्रेष्ठं मूर्धजन्तुगदापहम् ॥ १२६ ॥

भा० टी०–१ प्रस्थ उडदको ४ प्रस्थ जलमें पकावे। जब चतुर्थांश रस रहे तब उसमें चौगुना दूध और एक प्रस्थ तिलतैलको मिलादेवे। साथ ही जीवनीय गणकी आठ औषधि, तथा सौंफ, सेंधा, रासना, कौंछ, मुलहठी, खिरेंटी, त्रिकटु, त्रिकण्ट (गोखरु), इनके कल्कको भी डालकर भली प्रकार पकावे। यह सिद्ध तैल–पक्षाघात, अर्दितवात, कर्णशूल ॥ १२२ ॥ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ तथा कानके बधिरपन, त्रिदोषसे उपजे तिमिररोग, हस्तकम्प, शिरःकम्प, विसूची, अवबाहुकवात ॥ १२५ ॥ और कलायखञ्जवातमें भी पान, अभ्यंग और वस्तिकर्म करनेसे श्रेष्ठ है। किंबहुना यह श्रेष्ठ माषतैल–मूर्धजन्तु (निनाई) नामक रोगको भी नष्ट करसकता है ॥ १२६ ॥

(३) माषातसीयवकुरण्टककण्टकारीगोकण्टटुण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः ॥ कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलक्काथेन बस्तपिशितस्य रसेन वाऽपि ॥ १२७ ॥ शुण्ठ्या समांशिकतया शतपुष्पया

---

१ नाभेरधस्ताद्यच्छन्यः कम्पते च यदावाधि। कलायखञ्ज इत्युक्तो मुक्तसन्धिनिबन्धनः ॥

च सैरण्डमूलकपुनर्नवया सरण्या ॥ रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदवबाहुकहारि तैलम् ॥१२८॥ अर्द्धांगशोथमपतानमथाऽर्दितञ्च साक्षेपकं सभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ॥ नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन हन्यात्कटीजघनजानुरुजः समीरान्॥१२९॥

भा० टी०–उडद, अलसी–मसीना, जव, पीली कटसरैया, कण्टकारी, गोखरु, टैंटुक, बालछड, कौंछ, सुगन्धवाला इनके कल्ककरके सिद्ध कियेहुए बिनौले, शणबीज, कुलथी और कोलके क्काथमें वा बकरीके मांसरसमें शोंठ, सौंफ, एरंडीकी जड, पुनर्नवा, पसरन, रासना, खिरेंटी, गिलोय, तथा त्रिकटु इनके समभागोंके साथ पकायाहुआ तैल अवबाहुकनामक वातको हरता, एवं नस्यविधि तथा बस्तिकर्म और परिषेचन विधानसे उपयोगमें लायेजानेके कारण आधे अङ्गकी सूजन, अपतानवात, अर्दितवात, आक्षेपकवात, भुजकम्पवात, शिरःकम्पवात, तथा कटि, जघन और जानुको रुग्ण करनेवाले वातसमूहको भी नष्ट करता है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अथ बृहन्माषतैलम् ।

माषक्काथे बलाक्काथे रास्नाया दशमूलजे ॥ यवकोलकुलत्थानां छागमांसरसे पृथक् ॥ १३० ॥ प्रस्थन्तु तिलतैलस्य क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥१३१॥ जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षसमैर्भिषक् ॥ हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽवबाहुके॥१३२॥बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे ॥ विसूच्यामर्दिते वाते गृध्रस्यामपतानके ॥ १३३ ॥ वस्त्यभ्यञ्जनपानाख्यविधानैः सम्प्रयोजयेत् ॥ माषतैलमिदं श्रेष्ठं मूर्द्धजन्तुगदापहम् ॥ १३४ ॥

भा० टी०–उडद, खिरेंटी, रासन, दशमूल, जव, कोल, कुलथी, इनके पृथक् २ क्काथोमें तथा बकरीके मांसरसमें एकप्रस्थ तिलतैल और चौगुना दूध देकर रासना, कौंछ, सैंधव, सौंफ एरण्डीकी जड, मोथा, जीवनीयगणके द्रव्य, खिरेंटी, त्रिकटु इनके २ तोले प्रमाणवाले भागोंके साथ वैद्य पकावे । सिद्ध होनेपर इस तैलको हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाहुशोष, अवबाहुक, बधिरता, कर्णशूल, कर्णनाद, विसूची, अर्दितवात, गृध्रसीवात, और अपतानकवातमें वस्तिकर्म

१ धमनीः सकलाः प्रभञ्जनः कुपितोऽभ्येति मुहुर्मुहुश्चरः । तनुमाक्षिपतीह सर्वतो भिषजाऽऽक्षेपकवायुरीरितः ॥ कल्पवल्ल्याम् ।

तथा अभ्यंग और पान विधानके द्वारा प्रयुक्त करे । विशेषकर मूर्द्धजन्तुनामक रोगको नष्टकरनेवाला यह माषतैल श्रेष्ठ है ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अथ महामाषतैलम् ।

अथो माषमर्द्धाढकं वै तुलार्द्धं दशांघ्रेः पलं चाऽपि छागस्य त्रिंशत् ॥ पलान्याशु वैद्यो जलद्रोणभागे विपाच्याथ पादावशिष्टेन तेन ॥ ॥ १३५ ॥ तिलप्रस्थतैलं चतुःप्रस्थदुग्धं शताह्वारुणाजीवनीयैः समस्तैः ॥ बलाव्योषकृष्णांघ्रिचव्यानलैश्च विधानप्रमाणप्रतिज्ञानवीरः ॥ १३६ ॥ शिवैरण्डधात्र्यात्मगुप्ताश्वगन्धावचाकुष्ठरास्नात्रिकण्टैश्च सद्यः ॥ तथादेवकाष्ठैः कटूनां त्रयैश्च समं कल्कितैरक्षमात्रैः पृथग्वा ॥ १३७ ॥ सुसिद्धं महामाषसंज्ञं विशेषाद्धरेत्पक्षघातं हनुस्तम्भमुग्रम् ॥ शिरोनेत्रकर्णामये ग्रीवरोगेऽपबाहौ च पङ्गौ च खंजे विमर्द्यम् ॥ १३८ ॥ श्रुतौ पूरणेऽभ्यञ्जने वस्तियोगे तथा नस्यकर्मण्यथो पानयोगे ॥ त्रिदोषे च वायौ समस्ते समस्तैर्मुनीशैरलं तैलमेतत्प्रदिष्टम् ॥ १३९ ॥

भा० टी०–आधा आढक (२ प्रस्थ) उडद, ५१ पल दशमूल, और ३० पल बकरेके मांसको एक द्रोण जलमें पकावे । जब चतुर्थांश रहे तब उसमें ॥ १३५ ॥ एक प्रस्थ तैल और ४ प्रस्थ दुग्धको–सौंफ, मंजीठ, जीवनीयगणके द्रव्य, खिरेंटी, त्रिकटु, कारिआवासाऊं, चव्य, चीता, हरड, एरण्डी, आंवला, कौंछ, असगन्ध, वचा, कूडा, रासना, गोखरु, देवदार इनके अक्षप्रमाण भाग लेकर भिन्न २ वा एकसाथ बनायेहुए कल्कके साथ पकावे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ सिद्ध होनेपर यह महामाषसंज्ञक तैल हुआ । यह तैल विशेषकरके अर्धांगवात, हनुस्तंभ, तथा शिर, नेत्र, और कर्णके रोग, गर्द्दनपीडा, अपबाहुकवात, पंगुवात, और खञ्जवातमें भी शरीरपर मर्द्दन करने और ॥ १३८ ॥ कानमें भरने तथा अभ्यंग करने, और नस्यकर्म, वस्तिकर्म एवं पान करनेसे अत्यन्त उपयोगी है । पूर्वाचार्य्योंने इस तैलको त्रैदोषिक विप्लव व केवल वातविकारमें निर्भर कहाहै ॥ १३९ ॥

अथ केतकीतैलम् ।

केतकिमूलबलातिबलानां यद्बहुलेन रसेन विपक्वम् ॥
तैलमलं परुषोदकसिद्धं मारुतमस्थिगतं विनिहन्ति ॥ १४० ॥

भा० टी०–केवडेकी जड, खिरेंटी, और सहदेईके अधिकांश रसमें पकायाहुआ तैल काञ्जीमें सिद्धकियेजानेसे अस्थिगत वायुको नष्ट करताहै ॥ १४० ॥

अथाश्वगन्धादितैलम् ।

वाजिगन्धाबलाविश्वादशमूलाम्बुकल्कितम् ॥
गृध्रस्यां तैलमभ्यङ्गपानवस्तिषु शस्यते ॥ १४१ ॥

भा० टी०-असगन्ध, खिरेंटी, अतीस, दशमूल इनके रस और कल्कमें सिद्धकियाहुआ तैल गृध्रसीवातमें अभ्यङ्ग, पान और वस्तिकर्मके द्वारा उपयोगी कहाताहै ॥ १४१ ॥

अथ रसोनतैलम् ।

रसोनकल्कस्य रसेन सिद्धं तैलं पिबेद्यस्त्वनिलामयार्तः ॥
तस्याऽऽशु नश्यन्ति हि वातरोगा विशालरूपा इव दुर्गृहीताः ॥ १४२ ॥

भा० टी०--लशुनके कल्कके रसमें सिद्धकिये तैलको जो वातपीडित मनुष्य पीवे उसके विशालरूप दुर्ग्रह वातरोग शीघ्र नष्ट होतेहैं ॥ १४२ ॥

अथ प्रसारिणीतैलम् ।

प्रसारिण्यास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलतः ॥ तुलां तुलां पृथग्वारि-द्रोणे पक्त्वांऽशशेषिते ॥ १४३ ॥ तैलाढकं चतुःक्षीरं दधि तुल्यं द्विकांजिकम् ॥ द्विपलैर्ग्रन्थिकक्षारसरणामूलसैन्धवैः ॥ १४४ ॥ समंजिष्ठाग्नियष्ट्याह्वैः पलिकैर्जीवनीयकैः ॥ शुण्ठ्याः पञ्चपलं दत्त्वा त्रिवृद्भल्लातकानि च ॥ १४५ ॥ पचेत्तदर्दितं वातं हन्ति सन्धिशिरोऽस्थिगम् ॥ पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञाबलवर्णाग्निवर्द्ध-नम् ॥ १४६ ॥

भा० टी०-१०० पल पसरन, १०० पल असगन्ध, १०० पल दशमूल इनको अलग २ एक द्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई बाकी रहे तब उसमें ४ प्रस्थ तैल, और चौगुना दूध, एवं तुल्यभागवाला (४ प्रस्थ) दधि और दुगुनी कांजीको दो २ पल भागवाले गठिवन, खार, पसरनकी जड, सेंधा, मंजीठ, चीता, मुलहठी, एवं एक २ पल भागवाले जीवनीयगणके द्रव्य, तथा पञ्चपल सोंठ और निसोत, भिलावेके साथ पकावे ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ सिद्ध होनेपर यह तैल-अर्दितवात, सन्धिगतवात, शिरोगतवात, और अस्थिगतवातको भी नष्ट करता एवं पुरुषता, उत्साह, स्मरणशक्ति, बुद्धि, बल, वर्ण और अग्निको बढाता है ॥ १४६ ॥

अथ महाश्वगन्धाद्यं तैलम् ।

शुभदेशे सम्भूतं मूलशतं सम्यगश्वगन्धायाः ॥ सङ्कुट्योलूखलतः प्रपचेद्द्रोणेऽम्भसि प्राज्ञः ॥ १४७ ॥ ज्ञात्वांशशेषमिष्टं गृह्णीयात्तद्रसं

-पूर्णम् ॥ द्विशतपलानि च मतिमान्दद्याच्छागस्य मांसस्य॥ १४८॥ प्रस्थमितं किल सर्पिर्गव्यं क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात् ॥ कल्कानक्षसमानान्द्रव्याणां वक्ष्यमाणानाम् ॥ १४९ ॥ वृद्धिद्वयमेदाद्वयकाकोलीयुग्मजीवयुग्गुताः ॥ ऋषभकमेलामधुकं मृद्वीका चाऽपि वृषपर्णी ॥ १५० ॥ जीवन्ती मुद्गपर्णी बला विदारी शतावरी वाजी ॥ दत्त्वा सम्यग्विपचेत्सर्पिरथोद्धृत्य शीतेऽस्मिन् ॥ १५१ ॥ मधुशर्करयोः कुडवं दत्त्वा भाण्डे शुभे रक्षेत् ॥ लीढ्वा पाणितलं तद्यथेष्टमाहारमश्नीयात् ॥ १५२ ॥ क्षीणक्षतशिशुवृद्धाः क्षीणेन्द्रियबुद्धिकान्तयो ये च ॥ पुष्टिबलायुर्वर्णानारोग्यं तेऽधिगच्छन्ति ॥ ॥ १५३ ॥ उपयोगादेतस्य सप्ततिवर्षायुतोऽपि जीर्णोऽपि ॥ बहुशः स्त्रियोऽनुगच्छति न चाऽपि शुक्रक्षयं लभते ॥ १५४ ॥ पुत्रार्थिनी तु लभते पुत्रानेतद्घृतोपयोगेन ॥ श्रेष्ठं वाजीकरणं निर्दिष्टं पूर्वमश्विभ्याम् ॥ १५५ ॥

भा० टी०–सुन्दर भूमिमें उपजीहुई असगन्धकी १०० पल जडको उलूखलमें कूटकर एक द्रोणजलमें पकावे ॥ १४७ ॥ चतुर्थांश रहनेपर उस रसको निकाल लेवे और तब उसमें २०० पल बकरामांस, १ प्रस्थ घृत, घृतसे चौगुना गोदुग्ध, और वक्ष्यमाण द्रव्योंके पृथक् २ दो २ तोले कल्कको मिलावे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ वक्ष्यमाण द्रव्य यह हैं–वृद्धि, ऋद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, कौंछ, ऋषभक, इलायची, मुलहठी, दाख, मूसाकर्णी ॥ १९० ॥ जीवन्ती, मुगवन, खिरेंटी, विदारीकन्द, शतावर, असगन्ध इनके मिलानेके अनन्तर घृतको भली प्रकार पकावे । सिद्ध होनेपर जब ठंढा होरहे तब उसमें ३२ तोले मधु और शक्कर देकर स्निग्ध पात्रमें रखछोडे । अनन्तर हथेलीके प्रमाणसे इसको चाटकर यथेष्ट भोजन करे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ क्षीण तथा क्षतक्षयरोगवाले, एवं बालक, वृद्ध और क्षीण होगई हैं इन्द्रिय बल बुद्धि और कान्ति जिन्होंकी ऐसे मनुष्य भी इस घृतके उपयोगसे पुष्टि, बल, आयु, कान्ति और नैरुज्यको पाते हैं ॥ १९३ ॥ सत्तर वर्षका बुड्ढा भी इसके उपयोगसे बहुत सी स्त्रियोंका पीछा करता है और तिस पर भी धातुक्षयको प्राप्त नहीं होता ॥ १९४ ॥ वन्ध्या स्त्री भी इसके उपयोगसे पुत्रोंको पाती है । किंबहुना–अश्विनीकुमारोंने पूर्वकालमें इस घृतको श्रेष्ठ वाजीकरण कहा है ॥ १९९ ॥

अथ कुब्जप्रसारिणीतैलम् ।

प्रसारिणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे ॥ पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात्प्रकान्तिकम् ॥ १५६ ॥ द्विगुणञ्च पयो दत्त्वा कल्कान्द्वि-पलिकाँस्तथा ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुसैन्धवकं वचा ॥ १५७ ॥ शतपुष्पा देवदारु रास्ना वारणपिप्पली ॥ प्रसारिण्याश्च मूलानि मांसीभल्लातकानि च ॥ १५८ ॥ पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मा-मयापहम् ॥ नराणामपि वृद्धानां वातरोगान्व्यपोहति ॥ १५९ ॥ कुब्जस्तिमितपङ्गुत्वं गृध्रसीक्षेपकार्दितम् ॥ हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्त-म्भञ्चाऽऽशु नियच्छति ॥ १६० ॥

भा० टी०–१०० पल पसरनको कूटकर अर्मण (१ द्रोण) जलमें पकावे । जब चतुर्थांश रहे तब उसमें ४ प्रस्थ तैल और दधि एवं तैलसे दुगुना दूध देकर चीता, पीपलामूल, मुलहठी, सेंधा, वचा ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ सौंफ, देवदार, रासना, गजपिपली, पसरनकी जड, मासी, भिलावे ॥ १५८ ॥ इनके दो २ पलवाले कल्कोंके साथ कोमल अग्निसे पकावे । वातकफके रोगोंको नष्ट करनेवाला यह तैल बुड्ढोंके भी वातरोगोंको नाशता है ॥ १५९ ॥ इसके अतिरिक्त कुबड़ापन, निश्चलता, पंगुता गृध्रसी, आक्षेपक, अर्दित, तथा हनु, पृष्ठ, शिर, ग्रीवा इनको स्तब्ध करनेवाले वायुको भी शीघ्र निगृहीत करता है ॥ १६० ॥

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारिणीम् ॥ शतं ग्राह्यं सहचरा-च्छतावर्य्याः शतं तथा ॥ १६१ ॥ बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां शतं शतम् ॥ पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवे तैलाढकं पचेत् ॥ १६२ ॥ मधुमांसरसं चुक्रं पयसश्चाऽऽढकं तथा ॥ दत्त्वा पचेत मृदुना वह्निना योगवित्तमः ॥ १६३ ॥ द्रव्याणान्तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलांशिका ॥ तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचा ॥ १६४ ॥ रास्नासैन्धवपिप्पल्यौ मांसीमञ्जिष्ठयष्टिकाः ॥ तथा मेदामहामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ॥ १६५ ॥ शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च ॥ काकोली क्षीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा ॥ १६६ ॥ पेषयित्वा समांशेन समानीय

प्रसारिणीम् ॥ नातिपक्वं नातिहीनं सिद्धं पूतं निधापयेत्॥ १६७॥ यत्र यत्र प्रदातव्यं तन्मे निगदतः शृणु ॥ कुब्जानामथ पंगूनां वामनानां तथैव च ॥ १६८ ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः॥ वातशोणितदुष्टानां वातार्तिद्रुतचेतसाम्॥ १६९॥ स्त्रीमदक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् ॥ वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रयोजयेत् ॥ १७० ॥

भा० टी०–जड और पत्तोंसहित पसरनको शरत्कालमें कोजागरके अनन्तर उखाडकर रक्खे। तब १०० पल कटसरैया, १०० पल शतावरी, १०० पल खिरेंटी, १०० पल कौंछ, १०० पल असगन्ध, १०० पल केतकी इन सबको द्रव्यसे चौगुने जलमें पकावे, अनन्तर चतुर्थांश रसमें ८ सेर तैल और मधु, मांसरस, चूक, और दूधको ८ सेरके प्रमाणसे मन्दअग्निमें पकावे॥ १६१ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ इसमें तगर, मैनफल, कूडा, केशर, मोथा, दालचीनी, रासना, सेंधा, पीपल, मासी, मंजीठ, मुलहठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नखी (गन्धद्रव्यविशेष), सोंठ, देवदार, काकोली, क्षीरकाकोली, वचा, भिलावा इनकी आधा २ पलवाली मात्राओंको पीसकर पूर्वसञ्चित पसरनके साथ पकावे परन्तु ध्यान रहे कि, यह तैलपाक न बहुत पकै न बहुत कच्चा रहै। योग्यताके साथ सिद्ध और शुद्ध बनाय, एक उत्तम पात्रमें रखदेवे॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ अब जिस २ रोगमें यह तैल देना चाहिये सो सुनिये। कुबडे, पंगु, वामन ॥१६८॥ और जिसका एक अंग सूख रहा हो, हड्डी और संधि (जोड) टूटगईहों, जो वातरक्तसे दूषित हों, एवं जिनका चित्त वातपीडासे विप्लुत हुआहो, जिनका शुक्र स्त्रीसंबन्धी काममदसे खींचागयाहो उन सबके लिये यह तैल उत्तम वाजीकरण है। वस्ति, पान, अभ्यंग, और भोजनमें इसका उपयोग करे। (इस तैलका नाम सतशतिकाप्रसारिणी तैल है)॥ १६९॥ १७० ॥

अथ महाप्रसारिणीतैलम्।

शाखामूलदलैः प्रसारिणितुलास्तिस्रः कुरुण्टातुले छिन्नायाश्च तुले तुले रुबुकतो रास्नासमीषातुलाम् ॥ देवाह्वाच सकेतकाद्धटशते निक्वाथ्य पादांशिके तोये तैलघटं तुषाम्बुकलशौ दत्त्वाऽऽदकं मस्तुनः ॥१७१ ॥ शुक्ताच्छागरसाच्च सेक्षुरसतः क्षीरं च दत्त्वाऽऽ-

---

१ यन्मस्त्वादिशुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् । धान्यराशौ त्रिरात्रिस्थं शुक्तं चुक्तं तदुच्यते ॥ अपि च–स्वभावतो मधुरादिरसानि कालवशेनोदकवासादिना चाऽम्लयन्ति तानि शुक्तानीति मन्वर्थमुक्तावल्यां कुल्लूकभट्टः।

ढकं स्पृक्काकर्कटजीवकादिविकसाकाकोलिकाकाक्षुरैः ॥ सूक्ष्मैला-घनसारकुन्तिसरलैः काश्मीरमांसीनखैः कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकङ्कोलकग्रन्थिकैः ॥ १७२ ॥ चाम्पेयाभयवोचपूगकटुकाजातीफलैर्निर्मलैः श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः ॥ तैलाम्भोदकटम्भरांघ्रिनलिकावृश्चीरकर्वूरकैः कस्तूरीदशमूलकेतकहुमध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः ॥ १७३ ॥ कौन्तीताक्ष्यजशल्लकीफललघुश्यामाशताह्वामयैर्भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः ॥ सव्योषैस्त्रिपलैर्महीयसि पचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना पानाभ्यञ्जनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् ॥ १७४ ॥ सर्वाङ्गैकाङ्गगतं तथा नयनगं सन्ध्यस्थिमज्जाश्रितं श्लेष्मोत्थानपि पैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान् ॥ धातून्वृंहयति स्थिरं च कुरुते पुंसां नवं यौवनं वृद्धस्याऽपि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदम् ॥ १७५ ॥ पीत्वा तैलमिदं तु सत्त्वयुतया वीरः सुतः सूयते धीरो रोगगणप्रहीणहृदयो दीर्घायुषाश्लेषितः ॥ सिक्ताः पोषमुपागताश्च फलिनः पुष्पादिसम्पद्वृताः क्षुद्राश्चापि महीरुहास्तरुवरा हन्तापरे किम्पुनः १७६

भा० टी०-शाखा जड और पत्तोंसहित पसरन २०० पल, तथा २०० पल पीली कटसरैया, २०० पल एरण्डीकी जड, १०० पलके प्रमाणसे रासना और सैनी, एवं सौ २ पलके प्रमाण देवदार और केतकी इनको १०० घट (१०० द्रोण) जलमें क्वथित करनेके अनंतर शेष रहे चतुर्थांश रसमें एक घट तैल और वही एक घट काञ्जी, तथा ४ प्रस्थ दधिजलको मिलाकर ॥ १७१ ॥ शुक्तनामक दूसरी प्रकारकी काञ्जी, एवं बकरेका मांसरस, तथा ईखका रस और गोदुग्धको भी चार चार प्रस्थके प्रमाणसे मिलावे । अनंतर इस मिश्रित तैलको असवरग, काकडासिंगी, जीवक, ऋषभक प्रभृति अष्टवर्गान्तर्गत द्रव्य, मंजीठ, काकोली, काकजंघा, गोखरु, छोटी इलायची, कपूर, गोगल, धूपसरल, केशर, मासी, नखी, कृष्णचन्दन, नीलकमल, पद्माख, हलदी, शीतलचीनी, गठिवन, ॥ १७२ ॥ नागकेशर, खस, तज, सुपारी, कटुकी, जायफल, श्वेतचन्दन, देवदार, रक्तचन्दन, वचा, शिलापुष्प, सैंधा, शिलारस, नागरमोथा, पसरनकी जड, नली (मूंगाकी आकृतिवाली सुगंधित वस्तु); श्वेत विषखपरा, कपूर, हलदी, शुद्ध कस्तूरी, दशमूल, केतकीकी जड, तगर, गन्धितृण, असगन्ध, सुगन्धवाला ॥ १७३ ॥ रेणुका, रसोत, सेमरकी जड, कायफल, अगर, फूलप्रियंगु, सौंफ, कूठ, भिलावा, त्रिफला, कमलकी

केशर, कालीशर, लवङ्ग, त्रिकटु इनके तीन तीन पलवाले भागोंके साथ बडे पात्रपर मन्द आँचसे पकावे । सिद्ध होनेपर-यह तैल पान, अभ्यंग, वस्तिकर्म और नस्यविधानसे ॥ १७४ ॥ सर्वाङ्ग वा एकाङ्ग, नेत्र, वा सन्धि, हड्डी, और मज्जामें प्राप्तहुए वायुको नष्ट करता और कफ तथा पित्तसे उपजेहुए अनेक रोगोंको शान्त करता, धातुको पुष्ट बनाता, मनुष्योंके यौवनको नवीन और अचल रखता वृद्धको भी बलिष्ठ बनाता, और बांझ स्त्रियोंको गर्भ देता है १७५ ॥ किंबहुना—इस तैलके पान करनेसे गर्भवती स्त्री धीर वीर और नीरोग एवं चिरजीवी पुत्रको पैदा करती है । एवं क्षुद्रवृक्ष भी इस तैलके निषेक पानसे फल फूल आदि सम्पत्तिसे युक्त बनकर, तरुवर कहलाने लगते हैं तो और जीवधारियोंके लिये क्या कहना है ? ॥ १७६ ॥

या गन्धे केतकीनां वहति परिमलं वर्णतः पिञ्जराभा स्वादे तिक्ता कटुर्वा परिलघुतुलिता मर्दिता चिक्कणा स्यात् ॥ दग्ध्वा तोयात्त-भस्मच्छितिछिमितिकरी चर्मगन्धा हुतान्ते सा शुद्धा शोभनीया वरमृगतनुजा राजभोग्या प्रदिष्टा ॥ १७७ ॥ अपि च॥ करतल-जलमध्ये स्थापयित्वा वहद्भिः पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीयं मुहूर्तम् ॥ भवति यदि सरक्तं तज्जलं पीतवर्णं न भवति मृगनाभिः कृत्रिमोऽसौ विकारः ॥ १७८ ॥

भा० टी०—जो सुगन्धमें केतकीकी सुगन्धि रखतीहो और वर्णमें हरतालके समान एवं खानेमें तिक्त और कडवी, तथा तोलमें हलकी, और मर्दनकरनेपर चिक्कणरूप, एवं अग्निमें जलानेके अनन्तर जलमें डालकर 'छितिछिम' इस प्रकार शब्द करती और जलनेपर चमडेके समान गन्धवाली हो वह कस्तूरी श्रेष्ठमृगकी नाभिसे उपजीहुई शुद्ध और राजाओंके भोगनेयोग्य कही है ॥ १७७ ॥ हथेलीमें पानी रखकर उस पानीमें कस्तूरीको डालकर दो घडी पर्य्यन्त विचारपूर्वक देखता रहे यदि वह जल ललाईसे मिलेहुए पीले वर्णवाला हो तो जान लेना कि यह कस्तूरी नहीं, प्रत्युत बनावटी विकारविशेष है ॥ १७८ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे वातरोगाधिकारः ॥ २६ ॥

अथ वातरक्ताधिकारः २७.

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वातशोणितम् ॥
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ॥ १ ॥

भा० टी०—(कुपितहुआ वायु रक्तमें आ पहुंचता है इसका नाम वातरक्त है.) यह वात-

रक्त उत्तान और गंभीर भेदसे दो प्रकारका है तहां त्वचा और मांसमें रहनेवाला वायु उत्तान, और अन्तरायाममें रहनेवाला वायु गंभीर कहलाता है ॥ १ ॥

उत्तानं लेपनाभ्यङ्गपरिसेकावगाहनैः ॥
विरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गंभीरमाचरेत् ॥ २ ॥

भा० टी०–उत्ताननामक वातरक्तको लेप, अभ्यङ्ग, परिसेक, स्नान इन करके चिकित्सित करे। और गभीरनामक वातरक्तको विरेचन, आस्थापनवावस्ति और स्नेहपानके द्वारा चिकित्सित करे २॥

पिण्डतैलादिनाऽभ्यङ्गः पानं तिक्तादिसर्पिषः ॥
सेकालेपास्त्वसृङ्मोक्षः शोधनञ्चोभयोर्हितम् ॥ ३ ॥

भा० टी०–वक्ष्यमाण पिण्डतैल आदिसे अभ्यङ्ग करना, तथा तिक्तादिघृतका सेवन करना, सेक, लेप एवं यन्त्रादिसे रक्तका निकालना और शोधनकर्म भी दोनों वातरक्तोंमें हितकारी है ॥३॥

गाढे विशेषतः सर्पिःपानं शुद्धिः शिराव्यधः ॥
शस्यते शास्त्रतत्त्वज्ञैः पथ्यं लघु च भोजनम् ॥ ४ ॥

भा० टी०–गाढ (गंभीर) नामक वातरक्तमें विशेषकरके शास्त्रोक्त घृतका पान, शोधनकर्म, शिराभेदन, और पथ्य तथा हलका भोजन करना शास्त्रतत्त्वके ज्ञाताओंने भला कहा है॥४॥

गोधूमचूर्ण छगलीपयश्च सच्छागदुग्धं रुबुबीजकल्कम् ॥
लेपे विधेयं शतधौतसर्पिः सेके पयश्चाऽऽविकमेव शस्तम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–गेहूंका चूर्ण और बकरीका दूध, वा बकरीके दूधसे युक्त एरंडीके बीजोंका कल्क लेपनकर्ममें लाना । और सौ वार धोयाहुआ घृत तथा केवल बकरीका दूध सेककर्ममें भला है ॥ ५ ॥

अमृतानागरधान्याकर्षत्रितयेन पाचनं सिद्धम् ॥
जयति सरक्तं सामं वातं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ६ ॥

भा० टी०–गिलोय, शोंठ, धनियां इनके तीन तीन कर्ष भागोंसे सिद्ध कियाहुआ पाचन रक्तवात, आमवात, और सबप्रकारके कुष्ठरोगोंको जीतता है ॥ ६ ॥

वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुसंयुतः ॥
समीरणसमायुक्तं शोणितं सम्प्रसाधयेत् ॥ ७ ॥

भा० टी०–गोगलसहित गिलोयका क्वाथ भी वातरक्तको भलीभांति साधता है ॥ ७ ॥

वासागुडूचीचतुरंगुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् ॥
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ८ ॥

भा० टी०–वांसा, गिलोय और अमलतासके क्राथको एरंडीके तैलके साथ पीवे । क्योंकि यह क्राथ समस्त शरीरमें उपजेहुए वातरक्तके विकारको क्रमशः जीतताहै ॥ ८ ॥

विश्वौषधं जीर्णगुडेन पथ्यां जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम् ॥
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुसंभिन्नमपि ह्यवश्यम् ॥ ९ ॥

भा० टी०–प्राचीन गुडके साथ सोंठ और हरडको खाकर ऊपरसे गिलोयके क्राथको पीवे । यह विधान अतिउत्कट वातरक्तको भी अवश्य जीतताहै ॥ ९ ॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च ॥
वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा शुण्ठ्याऽमवातं शमयेद्गुडूची ॥ १० ॥

भा० टी०–गिलोय घृतके साथ उपयोगमें लायेजानेसे वातरोगको, और गुडके साथ अफारेको, शक्करके साथ पित्तको, मधुके साथ कफको तथा एरण्डीके तैलके साथ भयंकर वातरक्तको, और सोंठके साथ उपयुक्त होनेसे आमवातको शान्त करतीहै ॥ १० ॥

अमृता कफवातघ्नी कफमेदोविशोषिणी ॥ वातरक्तप्रशमनी कच्छूवीसर्पनाशिनी ॥ ११ ॥ गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्राथमेव च ॥ प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ १२ ॥

भा० टी०–गिलोय कफवातको नष्टकरनेवाली, तथा कफयुक्त मेदको सुखानेवाली और वातरक्तको शान्त करनेवाली एवं कच्छूनाम कोढ और विसर्परोगको दुरानेवाली है ॥ ११ ॥ अतः गिलोयके स्वरस वा कल्क वा चूर्ण वा क्राथको वहुतकालतक सेवन करनेसे मनुष्य वातरक्तरोगसे मुक्त होताहै ॥ १२ ॥

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलविनाशनम् ॥
परिसेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ १३ ॥

भा० टी०–दशमूलके साथ कढाहुआ दूध, तत्काल शूलको नष्ट करताहै । एवं वातकी अधिकतावाले शूलमें मन्दोष्ण घृतसे कियाहुआ परिसेक भी शूलनाशक जानिये ॥ १३ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम् ॥
क्राथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–परवल, कुटुकी, भीरु (एक प्रकारकी ईख), त्रिफला, गिलोय इन करके सिद्ध कियेहुए क्राथको पीनेसे मनुष्य दाहयुक्त वातरक्तको जीते ॥ १४ ॥

धात्रीमुस्ताहरिद्राणां कषायं तु कफाधिके ॥
कोकिलाख्यामृताक्राथं प्रपिबेद्रोषणान्वितम् ॥ १५ ॥

भा० टी०—कफकी अधिकतावाले वातरक्तमें आंवला, मोथा, हलदी इनके क्वाथको, वा तालमखाना और गिलोयके क्वाथको पीपलके साथ पीवे ॥ १५ ॥

कफरक्तप्रशमनं कच्छूवीसर्पनाशनम् ॥
वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥ १६ ॥

भा० टी०—गुडघृतनामक योग कफरक्तको शान्त करनेवाला, तथा कच्छू (कोढ) और विसर्परोगको नाशनेवाला एवं वातरक्तका शामक और रुच्य कहाहै ॥ १६ ॥

सर्वेषु सगुडां पथ्यां गुडूचीक्काथमेव च ॥
पिप्पलीवर्द्धमानं वा शीलयेत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥

भा० टी०—सब प्रकारके वातरक्तोमें गुडसहित हरड, वा गिलोयके क्वाथ, वा पिपली-सहित एरण्डीका सेवन सावधान होकर करतारहे ॥ १७ ॥

लाङ्गल्याः कन्दमुद्धृत्य यत्नतस्तु सुधोपमम् ॥ योजयेत्त्रिफला-लोहरजस्त्रिकटुकैः सह ॥ १८ ॥ गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्मातुलुङ्गरसेन वा ॥ त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसंमिताः ॥ १९ ॥ भक्षयेन्मस्तुनाऽलोड्य शृणु सर्वत्र यत्फलम् ॥ पादस्फोटं महाघोरं स्फुटितं सर्वगश्च यत् ॥ असाध्यं साधयत्याशु तत्सर्वं वात-शोणितम् ॥ २० ॥

भा० टी०—लाङ्गलीके अमृतोपम कन्दको यत्नसे उखाडकर त्रिफला, मंडूर, और त्रिकटुके साथ युक्त करनेके अनन्तर लालसैंजिन और गिलोयके वा बिजोरानींबूके रसमें खरल करके त्रिफ-लाके रसमें भावित करे । अनन्तर एक एक तोलाके प्रमाणसे गुटिका बनाय दधिजलमें घोलकर खावे । भांति भांतिके रक्तविकारोंमें इसका जो फल है सो सुनिये । भयंकररूप बिवाई, तथा फटकर समस्त शरीरमें फैलेहुए सब प्रकारके असाध्यरूप वातरक्तको यह साधतीहै ॥ १८–२० ॥

अथ नवकार्षिकम् ।

त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठावचाकटुकरोहिणी ॥ वत्सादनीदारुनिशाक-षायं नवकार्षिकम् ॥ २१ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तम-ण्डलम् ॥ कृच्छ्रं कापालिकाकुष्ठं पानादेवाऽपकर्षति ॥ २२ ॥

भा० टी०—त्रिफला, नीम, मंजीठ, वचा, कटुकी, गिलोय, दारुहलदी इनके नौ नौ कर्ष भाग लेनेसे सिद्ध कियाहुआ कषाय वातरक्त, कोढ, खुजली, दूषित रक्तके चकत्ते और गहनरूप कापालिकानामक कोढको भी पान मात्रसे ही खींचताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ ध्यान रहे कि, कार्षिक क्वाथमें द्रव्यसे आठगुणा जल दियाजाता है ।

अथ गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं स्मृतम् ॥
हन्ति रक्तं तथा कुष्ठं वातं जयति दुस्तरम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–गिलोयके क्वाथ और कल्कमें इनके समभागी घृतको पकाना कहा है यह घृत दूषित रक्त और कुष्ठको नष्टकरता और दुर्वार वायुको भी जीतता है ॥ २३ ॥

अथ सहस्रशतपाकं तैलम् ।

बलाकल्ककषायाभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत् ॥ सहस्रशतपाकं तद्वा-तासृग्वातरोगनुत् ॥ २४ ॥ रसायनं मुख्यतममिन्द्रियाणां प्रसाद-नम् ॥ जीवनं बृंहणं स्वर्य्यं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ २५ ॥

भा० टी०–खिरेंटीके कल्क और क्वाथके साथ उतना ही तैल और उतना ही दूधको पकावे १००० वार वा १०० वार पकायाहुआ यह तैल वातरक्त और वातरोगोंको दूरकरता है ॥ २४ ॥ यह एक उत्तम रसायन है और इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला जीवनरक्षा एवं धातुवर्द्धक और स्वरमें हित पहुंचानेवाला एवं शुक्रदोष और रक्तदोषका नाशक है ॥ २५ ॥ (मतान्तरमें इस तैलको दश वार पकाना भी कहा है)

अथ पिण्डतैलम् ।

सारिवासर्ज्जमंजिष्ठायष्टीक्वाथैः पयोन्वितैः ॥
पक्वं तैलं प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्यं वातशोणिते ॥ २६ ॥

भा० टी०–सरिवन, पियासाल, मजीठ, मुलहठी इनके क्वाथोंके तथा दूधके साथ पकाया-हुआ पिण्डनामक तैल वातरक्तमें प्रयुक्त करना ॥ २६ ॥

अथ नागबलाद्यं तैलम् ।

शुद्धां पचेन्नागबलातुलान्तु जलार्मणे पादकषायशिष्टाम् ॥
विस्राव्य तैलाढकमत्र दद्यात्तथा पयस्तैलविमिश्रितन्तु ॥ २७ ॥
नतस्य यष्टीमधुकस्य कल्कं पृथक्पचेत्पञ्चपलं विपक्वम् ॥
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं वस्तिप्रधानेन हि सप्तरात्रात् ॥ २८ ॥

भा० टी०–१०० पल शुद्ध गंगेरनको एक द्रोण जलमें पकावे । शेष रहे चतुर्थांश रसको निकालकर उसमें ४ प्रस्थ तैल और दूधको मिलावे । अनन्तर तैलके साथ मिलायेहुए तगर और मुलहठीके कल्कको अलग २ पांच पलके प्रमाणसे पकावे । इसभांति पकायाहुआ यह तैल वस्तिआदि कर्ममें उपयुक्त किये जानेसे सात ही रात्रिमें उत्कट वातरक्तको शान्त करता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ पिण्डतैलान्तरम् ।

आरनालाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम् ॥ प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥ २९ ॥ समधूच्छिष्टमंजिष्ठं ससर्जरससारिवम् ॥ पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम् ॥ ३० ॥

भा० टी०-४ प्रस्थकांजीमें चौथाई तैल और चौथाई रालको बहुतसा जल डालकर, करछीसे मथताहुआ पकावे । सिद्ध होनेपर यह तैल ज्वर, दाह और पीडाको दूर करता है ॥ २९ ॥ इसी तैलमें मोम, मञ्जीठ, राल, और सरिवनके मिलानेसे दूसरी भांतिका पिण्डतैल सिद्ध होता है इस तैलके अभ्यङ्गसे वातरक्त रोग नष्ट होता है ॥ ३० ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकल्करसे दद्याच्चैव चतुर्गुणे ॥
तुल्यभागं घृतं क्षीरं सिद्धं वातासृगाचमेत् ॥ ३१ ॥

भा० टी०-शतावरीके चौगुने कल्क और रसमें तुल्यभागवाले घृत और दूधको पकावे । सिद्धहोनेपर यह घृत वातरक्तका शोषक है ॥ ३१ ॥

अथ योगसारामृतम् ।

वनमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ॥ प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां यथोक्तपरिमाणाम् ॥ ३२ ॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ॥ विपचेत्तदप्रमत्तो दार्व्या संघट्टयन्मुहुर्मतवित् ॥ ३३ ॥ अर्धक्षपितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् ॥ अवतार्य्य वस्त्रपूतं पुनरपि सम्पाचयेत्पात्रे ॥ ३४ ॥ सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य्य हिमोपलप्रख्ये ॥ चूर्णं प्रवक्ष्यमाणं सिद्ध्यै संमेलयेद्विद्वान् ॥ ३५ ॥ शतावरीनागबलावृद्धदारकमर्कटी ॥ पुनर्नवामृताकृष्णावाजिगन्धात्रिकण्टकम् ॥ ३६ ॥ पृथग्दशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ तदर्द्धशर्क्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद्बुधः ॥ ३७ ॥ स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे मध्वर्द्धाढकसंयुतम् ॥ घृतप्रस्थेन चाऽऽलोड्य त्रिसुगन्धिपलेन च ॥ ३८ ॥ तत्खादेत्पथ्यभोज्याशी यथावह्निबलं नरः ॥ वातं पित्तं क्षयं कुष्ठं कासं पित्तांशसम्भवम् ॥ ३९ ॥ वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान् ॥ हत्वा करोति पुरुषं

निर्वलीपलितं शनैः ॥ ४० ॥ योगसारामृतं नाम लक्ष्मीकान्ति-विवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥

भा० टी०–वनमहिषके नेत्रोंके भीतरी भागके समान कान्तिवाला गोगल २ सेर, त्रिफला २ सेर, और गिलोय ३२ पल लेकर ३२ सेर जलमें बार २ करछीसे मथताहुआ यत्नसे पकावे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जब अग्निके संयोगसे आधा जल जलजाय तब उसे उतारकर कपडेसे छाने और फिर भी पूर्ववत् पात्रमें पकावे ॥ ३४ ॥ जब वह पकते २ ओलेके समान शुभ्र और गाढा होरहे तब उसे उतारकर उसमें द्रव्यसिद्धिके लिये वक्ष्यमाण चूर्णको मिलावे ॥ ३५ ॥ वक्ष्यमाण चूर्ण इसप्रकार है–शतावरी, गंगेरन, विधारा, कौंछ, विषखपरा, गिलोय, पीपल, असगन्ध, गोखरु, इनके ॥ ३६ ॥ अलग २ दश पल भागोंको लेकर सुन्दर चूर्ण बनावे और चूर्णका आधा शक्कर मिलाय उसका मर्द्दन करे ॥ ३७ ॥ अनन्तर इस चूर्णको और २ प्रस्थ मधुको भी उसमें मिलाय एक दृढ पात्रमें रखदे उसी समय उसमें १ प्रस्थ घी और १ पल त्रिसुगन्ध (इलायची, दालचीनी, तेजपात) को मिलालेवे ॥ ३८ ॥ इस योगसारामृत नामक पदार्थको मनुष्य पथ्यभोजन करताहुआ अग्निबलके अनुसार सेवनकरे। यह योग वात, पित्त, क्षय, कुष्ठ और पित्तके अंशसे उपजेहुए कास, तथा वात पित्त कफसे उपजेहुए अन्यान्य रोगोंको भी नष्टकरके मनुष्यको धीरे २ वलीपलितादिवैरूप्यसे रहित और बलिष्ठ बनाताहै ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ किंबहुना–यह योगसारामृतनामक योग शारीरिक लक्ष्मी और कांतिका वर्द्धक है॥४१॥

दिवास्वमाग्निसन्तापव्यायामान्मैथुनं त्यजेत् ॥
कटूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणानि च वर्ज्जयेत् ॥ ४२ ॥

भा० टी०–वातरक्तवालेको उचित है कि, दिवास्वाप, आगका तापना, कसरत, मैथुन (स्त्रीप्रसंग) तथा कडुवे गरिष्ठ अभिष्यन्दी और नमकीन पदर्थोंको त्यागदेवे ॥ ४२ ॥

अथ महामञ्जिष्ठादिः।

मञ्जिष्ठाकुटजामृतावनवचाशुण्ठीहरिद्राद्वयं द्राक्षारिष्टपटोलपत्रकटु-काभार्ङ्गीविडङ्गाग्निकम् ॥ मूर्वादारुकलिङ्गश्रृङ्गमभयापूतीकमास्फो-टकम् ॥ गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बासनं चन्दनम् ॥४३॥ श्यामारग्वधचन्दनं वरुणकं पाठाशताक्षारकं वासापर्पटसारिवाप्रति-विषानन्ताविशालाञ्जनम् ॥ मञ्जिष्ठादिरसौ कषायविधिना संसा-धितो देहिनां त्वद्दोषानखिलान्निहन्ति न चिरात्कुष्ठानि चाऽष्टा-दश ॥ ४४ ॥ वातरक्ते प्रसुप्ते च विद्रधौ च प्रमेहके ॥ सर्वेषु रक्तरोगेषु मञ्जिष्ठादिः प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

भा० टी०—मंजीठ, कूडा, गिलोय, बनवचा, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, दाख, नीम, परवलके पत्ते, कटुकी, भारङ्गी, वायविडङ्ग, चीता, मरोरफली, देवदार, कैथ, शृङ्ग (कमल) अभया (हरड) पूतिकरञ्ज, अखरोट, खैर, त्रिफला, चिरायता, बकायननीम, जीवक, लालचन्दन ॥ ४३ ॥ प्रियंगु, अमलतास, श्वेतचन्दन, वरना, पाठा, सौंफ, जवाखार, सज्जीखार, वांसा, पितपापड, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायण, रसोत, यह मंजिष्ठादिगण कषायविधिसे सिद्धकियेजानेसे मनुष्योंके समस्त त्वचागत दोषों (छीपीप्रभृति) को और अठारह भांतिके कोढोंको अल्पकालहीमें नष्ट करताहै ॥ ४४ ॥ इसके अतिरिक्त यह मंजिष्ठादिकषाय प्रसुप्त वातरक्तमें, विद्रधिरोगमें, प्रमेहमें, और सब प्रकारके रक्तरोगोंमें भला कहाताहै ॥ ४५ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे वातरक्ताधिकारः ॥ २७ ॥

अथोरुस्तम्भाधिकारः २८.

ऊरुस्तम्भे न च स्नेहो न च संशोधनं हितम् ॥ श्लेष्मामसेदोबाहुल्यात्कुर्यात्तत्क्षपणान्यतः ॥ १ ॥ कुर्य्याद्रूक्षोपचारांश्च यवश्यामाककोद्रवाः ॥ शाकैरलवणैः शस्ताः किञ्चित्तैलैर्जलैः शृतैः ॥ २ ॥ जांगलैरघृतैर्मांसैर्मध्वम्भोरिष्टपायिनः ॥ वत्सकादिर्हरिद्रादिर्वचादिर्वा ससैन्धवैः ॥३॥ आमवाते सुखाम्भोभिः पेयः षट्चरणोऽथवा॥ लिह्यात्क्षौद्रेण वा श्रेष्ठाचव्यतिक्ताकणाघनान् ॥ ४ ॥ कल्कं समधु वा चव्यपथ्याग्निसुरदारुजम् ॥ मूत्रैर्वा शीलयेत्पथ्यां गुग्गुलुं गिरिसम्भवम् ॥ ५ ॥ व्योषाग्निमुस्तत्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ॥ खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ ६ ॥

भा० टी०--दूषित वायु दोनों जंघाओंको जकडकर भारी बनादेताहै इसीका नाम ऊरुस्तम्भ है, ऊरुस्तम्भनामक वातमें स्नेहका प्रयोग और संशोधन कर्म भी हित नहीं है । इसमें कफ आमवात और मेदके अधिक होनेके कारण इन्हींके नाशकरनेवाले उपचारोंको करे ॥ १ ॥ अथवा रूखे पदार्थोंको प्रयुक्त करे । जव, श्यामाक[2], मंडुवा (कोदों धान), यह पदार्थ, कुछ तैल और जलमें पकायेहुए नमकरहित शाकोंके ॥ २ ॥ एवं जलमें पकायेहुए घृतरहित जांगलदेशीय मृगमांसोंके साथ मधु जल और अरिष्ट पीनेवाले मनुष्यके लिये हित हैं । आमवातके दूरकरनेके लिये

---

१ परकीयाविव गुरू स्यातामतिशयव्यथौ ॥ ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राछर्द्यरुचिज्वरैः ॥ १ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः॥ तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥२॥ इति चरकः ।

२ 'झूंगोरां' अन्न विशेष ।

वत्सकादिगण, वा हरिद्रादिगण, वा वचादिगणके औषध, वा पूर्वोक्त षट्चरणनामक योगको सेंधानोन-सहित मंदोष्ण जलके साथ सेवनकरे । किंवा मेदा, चव्य, कटुकी, पीपल और मोथेको मधुके साथ चाटे ॥ ३ ॥ ४ ॥ किंवा चव्य, हरड, चीता और देवदारके कल्कको मधुके संग उपयुक्त करे । अथवा पर्वतमें उपजीहुई गोगल और हरडको गोमूत्रके साथ सेवतारहे ॥५॥ किंवा त्रिकटु, चीता, मोथ, त्रिफला, बायविडङ्ग, और इनकी समभागवाली गोगलको नित्य खाताहुआ मेदा, कफ और आम-वातसे उपजेहुए समस्त रोगोंको जीते ॥ ६ ॥

शाम्यत्येवं कफाक्रान्तः समेदस्कः प्रभञ्जनः ॥
क्षारमूत्रान्वितैः स्वेदैः सेकैरुद्वर्तनैरपि ॥ ७ ॥

भा० टी०–इसप्रकारके प्रयोगों, तथा क्षार और गोमूत्रसे युक्त किये स्वेदों, एवं सेक और उबटनोंसे भी कफसे दबाहुआ मेदसहित वायु शान्त होजाता है ॥ ७ ॥

रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिसूचकः ॥
स्नेहैः स्वेदैश्च सुतरामानुकूल्यं नयेत्सुधीः ॥ ८ ॥

भा० टी०–यदि रूखे उपचारोंसे निद्रानाशकी व्यथाको सूचित करनेवाला वायुकोप हुआहो तो इस दशामें स्नेह और स्वेदों (पसीना) के द्वारा वायुको अनुकूल करे ॥ ८ ॥

अथामृताख्यो गुग्गुलुः ।

प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च प्रस्थमर्द्धञ्च गुग्गुलोः ॥ प्रत्येकं त्रिफलायाश्च तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य क्वथयेन्नल्वनेऽम्भसि ॥ पादशेषं परिस्राव्याऽवतार्य्य समधिश्रयेत् ॥ १० ॥ तावत्पचेत्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमापतेत् ॥ दन्तीव्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचः ॥ ११ ॥ ततश्चाऽर्द्धपलं पेयं गृह्णीयाद्वा प्रतिप्रति ॥ कर्षन्तु त्रिफलायाश्च सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ १२ ॥ तस्मिन्सुसिद्धे विज्ञाते कवोष्णे निक्षिपेद्बुधः ॥ ततश्चाग्निबलं ज्ञात्वा तस्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं गुद-जान्यग्निसादनम् ॥ दुष्टव्रणप्रमेहांश्च सामवातभगन्दरान् ॥ १४ ॥ समीरणोत्थं श्वयथुं सर्वानेतान्व्यपोहति ॥ अश्विभ्यां निर्मितः पूर्वममृताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ १५ ॥

भा० टी०–एक प्रस्थ गिलोय, आधा प्रस्थ गोगल, और आधा आधा प्रस्थके प्रमाणसे हरड, बहेडा, इन सबको एकपात्रमें भलीभांति कूटकरके ३२ सेर जलमें पकावे । जब चौथाई रहे

तब उसे उतारकरके रस निकाले और फिर भी तबतक पकातारहे जबतक पाक गाढा हो । सिद्ध होनेपर दन्ती, त्रिकटु, वायविडङ्ग, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी, इनके चूर्णको वा केवलं त्रिफलाके ३ कर्ष प्रमाण चूर्णको उसमें मिलाकर नित्य आधा आधा पलके प्रमाणसे, वा अग्नि-बलके अनुसार मात्रा बनाय खावे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ पूर्वकालमें अश्विनी-कुमारोंका रचाहुआ यह अमृतगुग्गुलु वातरक्त, कुष्ठ, बवासीर, अग्निमान्द्य, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, और वातसे उपजेहुए शोथको भी नष्टकरता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथामृतागुग्गुलुः ।

अमृतायाश्च द्विप्रस्थं प्रस्थमेकञ्च गुग्गुलोः ॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ १६ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य क्वथयेन्नल्वनेऽम्भसि ॥ पुनः प्रचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमापतेत् ॥ १७ ॥ दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वफलत्रिकैः ॥ गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलोन्मितम् ॥ १८ ॥ त्रिवृतायाः कर्षमेकं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ सिद्धे कोष्णे क्षिपेत्तत्र सोऽमृतागुग्गुलुः परः ॥ १९ ॥ यथावह्निबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ २० ॥ दुष्टव्रणप्रमेहांश्च सामवातं भगन्दरम् ॥ नाड्याढ्यवाताञ्श्वयथुं हन्यात्सर्वामयानयम् ॥ २१ ॥ अश्विभ्यां निर्मितः पूर्वममृतागुग्गुलुः परः ॥ २२ ॥

भा० टी०–दो प्रस्थ गिलोय, एक प्रस्थ गोगल, एक २ प्रस्थके प्रमाणसे हरड, बहेडा, आंवला और १प्रस्थ पुनर्नवा इन सबको ॥ १६ ॥ एक जगह कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । चौथाई रहनेपर रसको निकालकर फिर भी पकातारहे, जबतक कि, वह गाढा हो ॥ १७ ॥ सिद्ध होनेपर दन्ती, चीतेकी जड, पीपल, शोंठ, त्रिफला, गिलोय, दालचीनी, वायविडङ्ग, इन सबके आधा २ पल भाग और निसोतका एक कर्ष भाग लेकर एक जगह चूर्ण बनाय उस मन्दोष्णहुए क्राथमें डालदेवे, इससे यह अमृतागुग्गुलु ठीक सिद्ध बनजायगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस अमृतागुग्गुलुको विशेष करके अम्लपित्तवाला रोगी खावे । इसके अतिरिक्त यह योग वात-रक्त, कुष्ट, बवासीर, अग्निमान्द्य, दुष्टव्रग, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीवात, आढ्यवात (ऊरुस्तम्भ), सूजन और अन्यान्य वातरोगोंको भी नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ इस योगको पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने बनायाथा ॥ २२ ॥

---

१ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी । अत्युष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः ॥१॥ पित्तला रेचनी हन्ति श्वासकासोदरज्वरान् । कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शःप्लीहशूलाममारुतान् ॥२॥ इति निघण्टुः ।

विजानता क्रमस्तत्र कार्य्यो वातामयापहः ॥ सह्येऽसह्ये च व्यायामे यथाकालं प्रवर्तयेत् ॥ २३ ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ॥ सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनःपुनः ॥ २४ ॥ नारीः संशीलयेत्प्रौढाः पीनोन्नतपयोधराः ॥ शक्तितो लंघयेद्धीमान्स्थलान्युच्चावचानि हि ॥ २५ ॥ श्लेष्ममेदःक्षये चाऽत्र स्नेहादीनुपचारयेत् ॥ २६ ॥

भा० टी०-इस रोगमें विद्वान् वैद्यने वातनाशक क्रिया करनी अर्थात् रोगीको समय २ में सहनेयोग्य व्यायाममें प्रवृत्त करे॥ २३ ॥ ठण्डे जलवाली मंगलरूप नदीको पैरावे । एवं निर्मल जलवाले थाह सरोवरमें वारवार अवगाहन करावे ॥ २४ ॥ एवं पुष्ट और उन्नत स्तनवाली प्रौढा स्त्रियोंका संशीलन शक्तिपूर्वक करावे । तथा सुंदर सुंदर स्थलोंमे चंक्रमण करावे ॥ २५ ॥ इस प्रकार व्यायाम और उपचार करनेसे कफ और मेदके नष्ट होनेपर इस रोगमें स्नेह आदिका भी उपचार करलेवे ॥ २६ ॥

शैलेयं गुग्गुलुं चाऽपि पिप्पलीमथ नागरम् ॥
ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ २७ ॥

भा० टी०-शिलाजीत, गूगल, पीपल, सोंठ इनको गोमूत्र वा दशमूलके रसमें सेवनकरे॥ २७ ॥

भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ॥
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिवर्हणाः ॥ २८ ॥

भा० टी०-भिलावा, गिलोय, सोंठ, देवदार, हरड, विषखपरा यह द्रव्य दशमूलके साथ उपयुक्त होनेसे ऊरुस्तंभरोगके नाशक होतेहैं ॥ २८ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च ॥
कल्कं मधुयुतं पीत्वा चोरुस्तम्भाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥

भा० टी०-पीपली, पीपलीमूल और भिलावेके फल इनके कल्कको मधुके साथ सेवन करनेसे मनुष्य ऊरुस्तम्भरोगसे मुक्त होताहै ॥ २९ ॥

त्रिफलाचव्यत्रिकटुमेथिकं मधुना लिहेत् ॥
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ३० ॥

भा० टी०-त्रिफला, चव्य, त्रिकटु, मेथी इनके चूर्णको मधुके साथ चाटे । किंवा ऊरुस्तंभके विनाशार्थ गूगलको गोमूत्रके साथ पीवे ॥ ३० ॥

लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥
सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षट्चरणं ततः ॥ ३१ ॥

भा० टी०-किंवा कटुकीसहित त्रिफलाके चूर्णको मधुके संग चाटे । यद्वा षट्चरणके द्रव्योंका चूर्ण वनाय मन्दोष्ण जलके संग पीवे ॥ ३१ ॥

पिप्पलीं वर्द्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ॥
ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव च ॥ ३२ ॥

भा० टी०-पिपली वा एरण्डीके तैलको मधु वा गुडके साथ सेवन करना, एवं शुंडिया-शाकके अरिष्टका अभ्यास भी ऊरुस्तंभमें उत्तम कहाहै ॥ ३२ ॥

अथाष्टषट्चरं तैलम् ।

फलाभ्यां पिप्पलीमूलान्नागरादष्टषट्चरः ॥
तैलप्रस्थं दधिसमं गृध्रस्यूरुग्रहापहम् ॥
सतैलदधिसम्भूतं तैलं षट्चर उच्यते ॥ ३३ ॥

भा० टी०--मिरच पिपली सहित पिपलामूल और सोंठके ८ पल भाग, एक प्रस्थ तैल और उतनाही दधि मिलाकर पकानेसे अष्टषट्चर तैल सिद्ध होताहै । यह तैल गृध्रसी और ऊरुस्तं-भवातका नाशक है । तैलसहित दधिसे उपजाहुआ तैल 'षट्चर' कहाता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द ऊरुस्तम्भाधिकारः ॥ २८ ॥

अथाऽऽमवाताधिकारः २९.

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ॥
विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥ १ ॥

भा० टी०--आमवात रोगमें लंघन, स्वेदन (पसीना देना) तथा तिक्त, दीपन और कडुवे पदार्थ एवं विरेचन, स्नेहपान, और वस्तिकर्म भी हितकारी हैं ॥ १ ॥

अथ रास्नादिकषायः ।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरीदुःस्पर्शवासामृतादेवाह्वातिविषावराघनशठी-शुण्ठीकषायः कृतः ॥ पीतः सोरुवुतैल एष विहितः सामे सशूलेऽनि-ले कटयूरुत्रिकपार्श्वपृष्ठजठरक्रोडेषु वातार्तिजित् ॥ २ ॥

---

१ युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ॥ स्तब्धञ्च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ १ ॥

भा० टी०–रासना, एरण्डीकी जड, शतावरी, कटसरैया, जवासा, वासा, गिलोय, देव-दार, अतीस, त्रिफला, मोथा, कचूर, सोंठ इन करके सिद्धकियाहुआ कषाय एरण्डीतेलके संग पानकियेजानेसे आमवात और शूलवातमें गुण करताहै । इसके अतिरिक्त कटि, जंघा, त्रिक-सन्धि, पसली, पीठ, पेट और छातीमें उपजीहुई वातपीडाको जीतताहै ॥ २ ॥

शुण्ठीशठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषाऽमृता ॥
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ ३ ॥

भा० टी०–सोंठ, कचूर, हरड, अजवायन, देवदार, अतीस, गिलोय इन करके सिद्ध कियाहुआ कषाय और रूक्ष भोजन भी आमवातका पाचक होता है ॥ ३ ॥

शठीविश्वौषधं कल्कं वर्षाभूक्काथसंयुतम् ॥
सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥ ४ ॥

भा० टी०–कचूर, सोंठ, इनके कल्कको पुनर्नवाके काथमें मिलाय सात रात्रि पर्य्यन्त पानकरनेसे आमवात नष्ट होय ॥ ४ ॥

दशमूल्यमृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः ॥
क्काथोरुबुकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–दशमूल, गिलोय, एरंडकी जड, रासन, शोंठ, देवदार इन करके सिद्ध कियाहुआ क्काथ एरंडतैलके साथ उपयुक्त होनेसे आमसहित गुरुवातको नष्ट करता है ॥ ५ ॥

दशमूलीकषायेन पिबेद्वा नागराम्भसा ॥
कुक्षिवस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–दशमूलमें सिद्धकिये कषायके संग वा सोंठसे सिद्धकियेहुए जलके संग एरंडीके तैलको कोख वस्ति और कटीके शूलमें पानकरे ॥ ६ ॥

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु सनागरम् ॥
पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ ७ ॥

भा० टी०–आमवात, सन्धिवात, अस्थिगतवात, मज्जागतवात और सर्वाङ्गसम्बन्धी वातमें भी रासना, गिलोय, एरंडीकी जड, देवदार, सोंठ इनके कषायको पीवे ॥ ७ ॥

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवाभिः ॥
क्काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ ८ ॥

भा० टी०–जंघा, पीठ, त्रिकसन्धि और पसलीमें शूलवाला मनुष्य रासना, गिलोय, अमल-तास, देवदार, गोखरु, एरंडीकी जड, विषखपरा इनके क्वाथको सोंठके चूर्णमें मिलाकर पीवे ॥ ८ ॥

शुण्ठीगोक्षुरकक्काथः प्रातःप्रातर्निषेवितः ॥
सामे वाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ ९ ॥

भा० टी०–आमवात और कटिशूलमें सोंठ और गोखरुका क्काथ नित्य प्रातः सेवन किये-जानेसे पाचक होनेके कारण रोगनाशक होता है ॥ ९ ॥

यवक्षारसमायुक्तो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ "महौषधगुडूच्योस्तु क्काथं पिप्पलिसंयुतम् ॥ १० ॥ पिबेदामे सरुक्शोफे कटिशूले विशेषतः ॥"
आमवाते कणायुक्तं दशमूलजलं पिबेत् ॥ ११ ॥

भा० टी०–इस पूर्वोक्त क्काथमें जवाखार मिलानेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। "सोंठ और गिलोयके क्काथमें पिपलीका चूर्ण मिलाय ॥ १० ॥ आमवात और रोगसहित सूजन और विशेष-करके कटिशूलमें पीवे"। किंवा आमवातमें पीपलयुक्त दशमूलके जलको पीवे ॥ ११ ॥

एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् ॥
आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसिवृद्धयर्द्दितो नित्यम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–आमवात और गृध्रसीवातसे पीडितहुआ मनुष्य नित्य विधिपूर्वक एरंडीके तेलसे युक्त हरडको खावे ॥ १२ ॥

कर्ष नागरचूर्णस्य कांजिकेन पिबेत्सदा ॥
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–२ तोला सोंठके चूर्णको नित्य काञ्जीके साथ पीवे यह चूर्ण आमवात और कफ-वातको शान्त करता है ॥ १३ ॥

पञ्चकोलकचूर्णन्तु पिबेदुष्णेन वारिणा ॥
मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–मन्दाग्नि, शूल, गुल्म (फीहा), आमवात, कफ और अरुचिको नष्टकरने-वाले पञ्चकोलके चूर्णको गरम जलके संग पीवे ॥ १४ ॥

अमृतानागरगोक्षुरमुंडितिकावरुणकृतं चूर्णम् ॥
मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–गिलोय, सोंठ, गोखरु, गोरखमुंडी, और बरनाका चूर्ण दधिजल और काञ्जीके संग पान किये जानेसे आमवातका नाशक कहा है ॥ १५ ॥

अथ वैश्वानरचूर्णम् ।

प्रतिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव हि ॥ त्रयोंऽशास्त्वाजमो-

दीया नागराद्भागाश्चकम् ॥ १६ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ १७ ॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्वस्तिजान्गदान् ॥ प्लीहानं ग्रन्थिशूला-दीनर्शांस्यानाहमेव च ॥ १८ ॥ विबन्धाञ्जाठरान्रोगांस्तथा वै हस्तपादजान् ॥ वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–२ भाग सैन्धव, २ भाग अजवायन, ३ भाग अजमोदा, ६ भाग सोंठ ॥ १६ ॥ १२ भाग हरड इन सबको एकत्रित करके महीन बनाय चूर्ण करे दधिजल काञ्जी वा छांछ वा घृत वा गरम जलके संग पान किये जानेके कारण आमवात, गुल्मरोग, वस्तिगत रोग, प्लीहा, गंठियाशूल, बवासीर, आनाह, विबन्ध, पेटके रोग और हाथपैरोंमें उपजेहुए रोगोंको भी नष्ट करके यह वैश्वानरचूर्ण वायुको अनुकूल मार्गपर पहुंचाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथालम्बुषाद्यं चूर्णम् ।

अलंबुषां गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम् ॥ पिप्पलीं त्रिवृतां मुस्तं वरुणं च पुनर्नवाम् ॥ २० ॥ त्रिफलां नागरञ्चैव सूक्ष्मं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा ॥ २१ ॥ आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ २२ ॥

भा० टी०–गोरखमुंडी, गोखरू, गिलोय, विधारा, पिपली, निसोत, मोथा, बरना, पुनर्नवा, त्रिफला, सोंठ इनका चूर्ण बनाय दधिजल, कांजी, वा छांछ, वा दूध, वा मांसरसके संग उपयुक्त कियेजानेसे शीघ्र ही आमवात और संधिगत शोथको नष्ट करताहै ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

शतपुष्पाविडङ्गानि सैन्धवं मरिचं समम् ॥
चूर्णं हि मस्तुना पीतमग्निसन्दीपनं परम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–सौंफ, वायविडंग, सेंधा, मिरिच इनके समभाग चूर्ण बनाय दधिजलके संग उपयुक्त होनेसे अत्यंत अग्निवर्द्धक होताहै ॥ २३ ॥

हिंगुचव्यविडं शुण्ठी कृष्णाजाजी च पौष्करम् ॥
भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ २४ ॥

भा० टी०–हींग, चव्य, सौवर्चल लोन, सोंठ, पीपल, काली जीर, पोहकरमूल, इनके उत्तरोत्तर क्रमसे भाग बढाकर चूर्ण बनावे । यह भी पूर्वोक्त वस्तुओंके संग आमवातका नाशक है ॥ २४ ॥

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानीं कारवीं तथा ॥ विडङ्गमजमोदाञ्च जीरकं सुरदारु च ॥ २५ ॥ चव्यैलासैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम् ॥ त्रिफलां मुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ २६ ॥ तालीशपत्रं पत्रञ्च श्लक्ष्णं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ यावन्मानं चूर्णमिदं तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥ २७ ॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे पात्रे निधापयेत् ॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ २८ ॥ योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ आमवातं च वातोत्थान्क्रमिदुष्टव्रणानपि ॥ २९ ॥ प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ अग्निश्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥ ३० ॥ वातरोगाञ्जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥ ३१ ॥

भा० टी०–चीता, पिपलीमूल, अजवायन, सौंफ, बायविडङ्ग, अजमोद, जीरक, देवदार, चव्य, इलायची, सेंधा, कूडा, रासन, गोखरु, धनियां, त्रिफला, मोथ, त्रिकटु, दाऊचीनी, खस, इन्द्रजौ, तालीसपत्र, तेजपात इनका चूर्ण बनावे और चूर्णके समान भागवाले गूगलको घृतके संग पीसकर चूर्ण बनाय एक स्निग्ध पात्रमें रखदेवे । अनन्तर यथेच्छ भोजन करताहुआ इसकी मात्राका प्रयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ इस योगका नाम योगराज है, यह अमृतके समान होनेसे आमवात और आमसे उपजेहुए क्रमिरोग तथा दुष्टव्रण, फीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, और बवाशीरोंको भी नष्ट करता तथा अग्नि, बल और तेजको बढाता ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ एवं सन्धिगत मज्जागत वातरोगोंको भी नष्ट करताहै ॥ ३१ ॥

अथ प्रकारान्तरेणाऽऽलम्बुषाद्यं चूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं त्रिफलानागरामृताः ॥ यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णन्तु तत्समम् ॥ ३२ ॥ पिबेन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ॥ आमवातं निहन्त्याऽऽशु सशोथं वातशोणितम् ॥ ३३ ॥ त्रिकजानूरुसन्ध्यस्थिज्वरारोचकनाशनम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०–गोरखमुण्डी, गोखुरू, त्रिफला, सोंठ, गिलोय, इनके उत्तरोत्तर क्रमसे भाग बढाकर इन सबके समान श्यामाका भाग ले चूर्ण बनावे ॥ ३२ ॥ इस चूर्णको दधिजल वा मद्य वा छांछ वा कांजी वा गरम जलके संग पानकरनेसे आमवात और शोथ सहित वातरक्त तथा त्रिकसन्धि, जानुसन्धि, जंघासन्धि और हड्डीमें प्राप्तहुए वातज्वर एवं अरुचिको नष्ट करताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

त्रिफलारग्वधग्रन्थिककटुकारास्नामृताकषायस्तु ॥
पीतः शमयति सामं वातं कम्पाभिधश्चाऽपि ॥ ३५ ॥

भा० टी०–त्रिफला, अमलतास, गठिवन, कटुकी, रासन, गिलोय इनका कषाय पान कियेजानेसे आमवात और शिरःकम्पनामक वातका भी शामक है ॥ ३५ ॥

गद्यम्–अजमोदामरिचपिप्पलीविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वासैन्धवपिप्पलीमूलभागा नवनवपलिकाः स्युः ॥ ३६ ॥ ॥ शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ॥ पथ्यापलानि पञ्च सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ३७ ॥ समगुडवटकान्कृत्वा नरस्य मन्दोष्णवारिणा पिबतः ॥ नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुदारुणाश्चाऽपि ॥ ३८ ॥ विश्वाविसर्पकाख्या दुष्टा रोगाश्च गृध्रसी चोग्रा ॥ कटिवस्तिस्फुटनञ्च स्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ॥ ३९ ॥ श्वयथुं तथाङ्गसन्धिषु ये चाऽन्येऽप्यामसम्भूताः ॥ सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्य्यांशुविध्वस्तम् ॥ ४० ॥

भा० टी०–अजमोद, मिरिच, पिपली, वायविडङ्ग, देवदार, चीता, सौंफ, सैंधव, पिपलीमूल इनके प्रत्येक नौ नौ पल भाग ॥ ३६ ॥ सोंठ दशपल, विधारा १० पल, हरड ५ पल इन सबको एकत्र करके चूर्ण बनावे ॥ ३७ ॥ अनन्तर इसमें चूर्णके बराबर गुड मिलाय वटक बनालेवे । इन वटकोंको मन्दोष्ण जलके संग सेवन करतेहुए मनुष्यके आमवातसे उपजेहुए दारुण रोग भी नष्ट होते और विश्वा विसर्प प्रभृति दुष्टरोग, एवं गृध्रसीवात, तथा कटिभाग और वस्तिभागका विकृत होकर फूटना, एवं हड्डी और जंघाका फूटना, तथा शरीरकी सन्धियोंमें सूजन, तथा और भी आमवातसे उपजेहुए समस्त रोग इस योगसे विध्वस्त होकर ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्य्यकिरणोंसे अन्धकार ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ शुण्ठीघृतम् ।

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ चतुर्गुणेन तेनाऽथ केवलेनोदकेन वा ॥ ४१ ॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् ॥ नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामानिलशूलजित ॥ ४२ ॥

भा० टी०–सोंठके क्वाथ और कल्कके साथ एक प्रस्थ घीको पकावे । यहां शोंठका क्वाथ तसे चौगुना होना उचित है किंवा केवल चौगुने जलके साथ शुंठीकल्क और घृत पकाना

योग्य है । यह शुंठीघृत वातकफको शान्त करता, अग्निको बढाता और आमवातसे उपजे-हुए कटिशूलको जीतता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ गुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः कषायेन कल्केन च महौषधात् ॥ मृद्वग्निना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं परम् ॥ ४३ ॥ आमवातादिवातोत्थक्रमिदुष्टव्रणानपि ॥ अर्शांसि गुल्मांश्च तथा नाशयेत्तत्प्रयोजितम् ॥ ४४ ॥

भा० टी०–गिलोयके कषाय और शोंठके कल्कके साथ कोमल अग्निसे पकायाहुआ घृत वातरक्तको हरता, और आमवातादि वातसमूह, तथा वातसे उपजीहुई कृमि और दुष्टव्रणों एवं बवाशीर और गुल्मरोगोंको भी नष्ट करता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

हिंगुत्रिकटुकं चव्यं प्रतिमन्थं तथैव च ॥ कल्कान्कृत्वा तु पलिकान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिरुदरापहम् ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ ४६ ॥ नाशयेद् ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ पुष्ट्यर्थं पयसा सिद्धं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे ॥ दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥ ४७ ॥

भा० टी०–हींग, त्रिकटु, चव्य, सेंधा इनके एक एक पल कल्कके साथ ४ प्रस्थ काञ्जी मिलाय एक प्रस्थ घी सहित पकावे यह घृत उदररोग, शूल, विबंध, आनाह, आमवात, कटिग्रह, और ग्रहणीदोषको भी नष्ट करता है और मन्दहुए अग्निको बढाता है । इस घृतमें यह भी एक दूसरा संग्रह है कि, पुष्टिके अर्थ दूधके संग पकाना (कांजीके संग नही), और विष्टा तथा मूत्रके निरोधमें दधिके संग एवं दीपनके अर्थ दधिजलके संग पकाना कहा है॥४५॥४६॥४७

सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरं च चतुर्गुणम् ॥
सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ४८ ॥

भा० टी०–घी और घीसे चौगुनी सौवीरकाञ्जी सोंठके कल्कके साथ सिद्ध होनेसे शुंठीघृत बनता है । यह घृत अग्निवर्द्धक है और आमवातको हरता है ॥ ४८ ॥

रास्नावातारिमूलञ्च वासकं सदुरालभम् ॥ शठीदारुबलामुस्तं नागरातिविषाभयम् ॥ ४९ ॥ श्वदंष्ट्राव्याधिघातश्च मिसीधान्यपुनर्नवम् ॥ अश्वगन्धामृताकृष्णावृद्धदारं शतावरी ॥ ५० ॥ वचासहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् ॥ समभागान्वितैरेतै रास्नात्रिगुणभागि-

कम् ॥ ५१ ॥ कषायं विपचेदेतमष्टभागावशेषितम् ॥ शुण्ठीचूर्ण-समायुक्तमभयादिकसंयुतम् ॥ ५२ ॥ अलम्बुषादिना वाऽपि ह्यज-मोदादिकेन वा ॥ यथादोषं यथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्बुधः ॥५३॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जागतेषु च ॥ आनाहेषु च सर्वेषु सकम्पे-ऽप्यनिलेषु च ॥ ५४ ॥ कुब्जके विषमे चैव पक्षाघाते तथार्दिते ॥ जानुजङ्घास्थिपीडासु गृध्रस्यामववाहके ॥ ५५ ॥ अजस्रं वातरक्ते स्यादूरुस्तम्भे तथाऽर्शसि ॥ गुल्मव्रणविसूचीषु विद्रधौ क्रोष्टुशीर्षके ॥ ५६ ॥ अन्त्रवृद्धौ श्लीपदे च योनिशुक्रामये तथा ॥ पुंसां मेढ्र-गते वाते स्त्रीणां वन्ध्यामये तथा ॥ ५७ ॥ योषितां गर्भदं श्रेष्ठं नाऽस्ति किञ्चिदतः परम् ॥ सर्वेषां पाचनं श्रेष्ठं सर्वामयविशोध-नम् ॥ ५८ ॥ महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥

भा० टी०–रासना, एरंडीकी जड, बांसा, दुरालभा, कचूर, देवदार, खिरेंटी, मोथ, सोंठ अतीस, हरड, ॥ ४९ ॥ गोखरू, अमलतास, जटामांसी, धनियां, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पिपली, विधारा, शतावरी ॥५०॥ वचा, कटसरैया, चव्य, कटैरी, कंटकारी इन सबके समान भाग और रासनका तिगुना भाग लेकर ॥ ५१ ॥ कषाय पकावे। जब आठवां भाग शेष रहे तब उसमें सोंठ और त्रिफलाके चूर्णको ॥५२॥ वा अलम्बुषादि वा अजमोदादि चूर्णको वा दोष और रोगबल के अनुसार द्रव्योंको मिलावे ॥ ५३ ॥ सिद्ध होनेपर यह महारास्नादि क्वाथ सब प्रका-रके वातरोगों अर्थात् सन्धिगत, मज्जागत और सबप्रकारके आनाह शिरःकंपप्रभृति सकम्पवात, कुब्जवात, विषमवात, अर्धांगवात, अर्दितवात, जानुपीडा, जंघापीडा, अस्थिपीडा, गृध्रसीवात, अवबाहुकवात, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवाशीर, गुल्मरोग, व्रणविसूची, विद्रधिरोग, क्रोष्टुशीर्ष-कनामक वात, अन्त्रवृद्धि, श्लीपद (पादरोग), योनिरोग,शुक्ररोग मनुष्योंके लिंगगतवायु, स्त्रियोंके वन्ध्यतारोग इत्यादि विप्लवोंमें गुणकारी है। और स्त्रियोंके गर्भ देनेवाली श्रेष्ठ वस्तु इससे दूसरी नहीं। सब दोषोंका पाचक और सब रोगोंको शोधनेवाला यह कषाय साक्षात् प्रजापतिसे बनाया जानो ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ खण्डशुण्ठी।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिः ॥ द्विप्रस्थक्षारसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं न्यसेत् ॥ ५९ ॥ शताह्वाजीरकव्योषत्रिसुगन्धि-यवानिकम् ॥ कारवीवंशमुस्तञ्च नागाह्वञ्च पलं पलम् ॥ ६० ॥

त्रिजातकं पचेदम्बुपलांशमुपकल्पयेत् ॥ बल्यमायुष्करञ्चैव वली-पलितनाशनम् ॥ ६१ ॥

भा० टी०–८ पल सोंठ, २० पल घी, २ प्रस्थ जवाखार, सज्जीखार, ५० पल खांड ॥ ५९ ॥ और एक एक पलके प्रमाणसे सौंफ, जीरा, त्रिकटु, इलायची दालचीनी, तेजपात, जवायन, कालीजीर, वंशलोचन, मोथा, नागकेशर ॥ ६० ॥ सुगन्धवाला इन सबको पकावे। सिद्ध होनेपर यह योग बलकारी तथा आयुको बढानेवाला और वलीपलितादिवैरूप्यका नाशक है ॥ ६१ ॥

अथ रसोनपिण्डः ।

तुला सम्यग्रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ॥ हिंगुत्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ ६२ ॥ शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूल-चित्रकौ ॥ अजमोदा यवानी च धान्यकञ्चाऽपि बुद्धिमान् ॥ ६३ ॥ प्रत्येकं च पलं चैषां श्लक्ष्णं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेत्षोडशाहकम् ॥ ६४ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानं च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च ॥ खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ६५ ॥ आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रिते॥ अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे भगन्दरे ॥ ६६ ॥ सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते॥

भा० टी०–सुजात लहशुनके १०० पल, ४ प्रस्थ तिल, और एक एक पलके प्रमाणसे हींग, त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार, पञ्चलवण ॥ ६२ ॥ सौंफ, कूठा, पिपलीमूल, चीता, अजमोद, अजवायन, धनियां ॥ ६३ ॥ इन सबका चूर्ण बनाय घृतसे स्निग्धहुए पात्रपर सोलह दिन पर्य्यन्त रक्खेरहे ॥ ६४ ॥ अनन्तर उसमें एक मान तैल और आधा प्रस्थ कांजीको मिलाय दो तोलेके प्रमाणसे खावे और पीछेसे जल वा मद्यको पीवे ॥ ६५ ॥ यह योग आमवात, सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात, मृगीरोग, मंदाग्नि, कास, श्वास, भगन्दर, उन्माद, वातभग्न, और शूलमें भी उत्तम कहाताहै ॥ ६६ ॥

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकम् ॥ वर्ज्जयेदामवातार्तो मांसमानूपजं च यत् ॥ ६७ ॥ अभिष्यन्दकरा ये च येचाऽन्ये गुरुपिच्छिला[1]: ॥ वर्ज्जनीयाः प्रयत्नेन नरैरामानिलार्द्दितैः ॥ ६८ ॥

---

१ पिच्छा भक्तादिमण्डोऽस्याऽस्तीति पिच्छिलः 'पिच्छादित्वादिलच्' । तथाहि पिच्छिलं तु भक्तमण्डयुक्तमिति राजमुकुटः । सरसव्यञ्जनादीति भरतः । सूपादीति रमानाथः । स्निग्धसूपादीति भानुदीक्षितः । मण्डयुक्तव्यञ्जनमिति नीलकण्ठः ॥

भा० टी०–दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडद, पीठी, और जलप्रायदेशीय जीवोंके मांसको भी आमवातसे पीडित मनुष्य त्यागदेवे ॥ ६७ ॥ जो पदार्थ अभिष्यन्दी (मलवर्द्धक) और गरिष्ठ एवं मंडयुक्त हों वे भी आमवातसे पीडित मनुष्योंको यत्नसे त्यागने उचित हैं ॥ ६८ ॥

अथ सिंहनादगुग्गुलुः।

मर्दिताद्गुग्गुलोर्मानीकटुतैलं पलाष्टकम् ॥ सार्द्धप्रस्थं तु त्रिफला जले द्रोणे ततः पचेत् ॥ ६९ ॥ पादशेषं ततश्चैतत्पुनरग्नावधिश्रयेत ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडङ्गपलिकांशकान् ॥ ७० ॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दन्तीचव्यशूरणमानकम् ॥ पारदं गन्धकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ७१ ॥ सहस्रं कनकफलं सिद्धे सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत् ॥ ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ ७२ ॥ आमवातं शिरोवातं ग्रन्थिवातं भगन्दरम् ॥ जानुजंघाश्रितं वातं सकटीग्रहमेव च ॥ ७३ ॥ अपस्मारं मूत्रकृच्छ्रं भग्नं सकृमिकोदरम् ॥ कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयञ्च विषमज्वरम् ॥ ७४ ॥ प्लीहानं श्लीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यञ्चैवाऽपकर्षति ॥ ७५ ॥ कफामयगजत्रासी सिंहनादोऽयमिष्यते ॥ नाम्ना प्रसिद्धो भूलोके योगोऽयममृतोपमः ॥ ७६ ॥

भा० टी०–मर्दन कीहुई गूगल भाग १ सेर, ८ पल कडुवा तैल, और डेढ प्रस्थ त्रिफलाको एक द्रोण जलमें पकावे ॥६९॥ शेषरहे चतुर्थांशको छानकर फिर भी अग्निमें पकावे। सिद्ध होनेपर एक एक पलके प्रमाणसे त्रिकटु, त्रिफला, मोथ, वायबिडंग, और वही चार चार तोलेके प्रमाणसे गिलोय, चीता, निशोत, दन्ती, चव्य, जमीकन्द, मानकन्द, शुद्ध पारा, गन्धक और हजार कचनारके फलोंको भी चूर्ण करके उसमें डालदेवे तब प्रतिदिन दो २ मासाके प्रमाणसे इसे सेवन करे और पीछेसे गरम जल प्रभृति पेयको पीवे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ यह योग आम·

---

१ महिषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि ॥ हिरण्यः पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥ १ ॥ भृङ्गाञ्जनसवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः॥ महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनामसमलक्षणः ॥२॥ कुमुदः कुमुदाभः स्यात्पद्मो माणिक्यसन्निभः ॥ हिरण्याख्यस्तु हेमाभः पञ्चानां लिङ्गमीरितम् ॥ ३ ॥ विशेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्तितः॥ स चाऽपि नूतनः प्रायो पूर्णवीर्यस्तु नेतरः ॥४॥ मरुपृष्ठे हि जायन्ते प्रत्यृतुस्पन्दशालिनः ॥ पुरवृक्षाः पञ्चविधं गुग्गुलं प्रस्रवन्ति ते ॥ ५ ॥ इति निघण्टुमतम्।

घात, शिरोगतवात, गँठियावात, भगन्दर, जानुवात, जंघावात, कटिग्रहवात ॥ ७३ ॥ मृगी, मूत्रकृच्छ्र, भग्नवात, कृमिरोग, उदररोग, पांच प्रकारका (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, द्वन्द्वज, सान्निपातिक) कास, श्वास, क्षय, विषमज्वर ॥ ७४ ॥ प्लीहा, श्लीपदरोग, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, कामला, अम्लपित्त और स्थूलतारोगको भी खींचता है ॥ ७५ ॥ और कफरोग रूपी हाथीके डरानेमें सिंहनाद स्वरूप भूलोकमें प्रसिद्ध यह सिंहनाद गुग्गुलु नामक योग अमृतके समान है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द आमवाताधिकारः ॥ २९ ॥

अथ शूलरोगाधिकारः ३०.

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ॥ क्षारचूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥ आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ २ ॥

भा० टी०–वातपित्तादिदोषोंको बलाबलके अनुसार वमन, लंघन, स्वेदविधि, पाचन, तमालफलवर्तिका, खार, चूर्ण और अनेकप्रकारकी उपयोगी वटिका भी शूलकी शान्तिके अर्थ उत्तम कहेगये हैं ॥ १ ॥वायु अधिक वेगवाला होता है । अतः वायुको शीघ्रतासे जीते । प्रथम तो शूलसे पीडित मनुष्यके लिये पसीना देना ही सुखदायक है ॥ २ ॥

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः ॥ ससैन्धवव्योषयुतः सलाजः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाद्यः ॥ ३ ॥

भा० टी०–सेंधा, त्रिकटु, खीलें, हींग, कालानोन और दाडिमादिगणके चूर्णसे युक्त कुलथीका स्निग्ध यूष वातसे उपजे शूलको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ३ ॥

हिंगुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयम् ॥ बलापुनर्नवैरण्डं बृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ ४ ॥ सहिंगुलवणोपेतं सद्यःशूलनिवारणम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–हिंगु (हींगपत्री), अतीस, त्रिकटु, वचा, कालानोन, हरड खिरेंटी, पुनर्नवा, एरण्डी, कंटकारी, कटेहरी, गोखुरु, हींग, लवण इनका चूर्ण गरम जलके संग उपयुक्त होनेसे तत्काल शूलको निर्मूल करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

हिंगुपुष्करमूलाभ्यां हिंगुसौवर्चलेन वा ॥ विश्वैरण्डयवक्वाथः पीतः शूलनिवारणः ॥ ६ ॥

भा० टी०–हींग और पोहकरमूलके वा हींग और कालेनोनके संग सोंठ एरंडीकी जड और इन्द्रजौका क्वाथ उपयुक्त होनेसे शूलको दुराता है ॥ ६ ॥

यवानीहिंगुसिन्धूत्थक्षारसौवर्च्चलाभयाः ॥
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ७ ॥

भा० टी०–अजवायन, हींग, सेंधा, खार, कालानोन, हरड, इन वातशूलनाशक द्रव्योंको मद्यमंडके संग सेवन करना उचित है ॥ ७ ॥

सौवर्च्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ॥
मातुलुङ्गरसैः पिष्टैर्गुटिकाऽनिलशूलनुत् ॥ ८ ॥

भा० टी०–कालानोन, इमली, काली जीर, मरिच इनके उत्तरोत्तर क्रमसे भागोंको बढा २ कर बिजोरा नीबूके रसमें पीसे अनन्तर गुटिका बनाय खावे तो वातशूल नष्ट होय ॥ ८ ॥

हिंग्वम्लकृष्णामलकं यवानीक्षाराभयासैन्धवतुल्यभागाः ॥
चूर्णं पिबेद्वारुणिमण्डमिश्रं शूले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥ ९ ॥

भा० टी०–वातशूलके अत्यन्त बढनेपर हींग, अम्ल, पिपली, आंवला, अजवायन, खार, हरड, सेंधा इनके तुल्य भागोंसे निष्पन्न चूर्णको मद्यमंडमें मिलाय पीवे ॥ ९ ॥

तिलानां कल्कमादाय मर्दयेज्जठरोपरि ॥
शमयत्याऽऽशु शूलं तद्वातिकं चाति दुःसहम् ॥ १० ॥

भा० टी०–तिलोंके कल्कको लेकर पेटपर मर्दन करे तो शीघ्र ही दुःसह वातशूलको शान्त करता है ॥ १० ॥

नाभिलिप्तो जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः ॥
जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलहा ॥ ११ ॥

भा० टी०–काञ्जीसे युक्त मैनफलका कल्क नाभिपर लेप करनेसे शूलको जीतता है । किंवा जीवन्तीकी जडको पीसकर तेलमें मिलाय लेप करनेसे पसलीशूल नष्ट होय ॥ ११ ॥

गुडः क्षीरं यवाः शालिः सर्पिष्पानं विरेचनम् ॥
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–शास्त्रोक्त गुड, दुग्ध, चावल, शास्त्रोक्त घृतका पान, विरेचन, और जांगलदेशीय मृगोंके मांस भी पित्तजशूलवालोंकी चिकित्साके अर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

पैत्ते च शूले वमनं पयोरसैः शस्तैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः ॥ शीतावगाहाः पुलिनाः सवाता भाण्डानि कांस्यानि जलप्लुतानि॥ १३॥
शीतोपचाराः शस्ताः स्युश्चन्दनार्द्राः करास्तथा ॥ मणिराजतता-

म्राणि भाजनानि च सर्वतः ॥ १४ ॥ परिपूर्णानि तोयेन शूलस्योपरि निक्षिपेत् ॥ १५ ॥

भा० टी०-पित्तजनित शूलमें दुग्धयुक्त उपयोगी रसों वा परवल और नीमके रससहित इक्षुरसोंकरके वमनदेना भला है । एवं शीत स्पर्शवाले त्रिविधवायुसम्पन्न वालुकातीर और शीतल जलसे भिगोयेहुए कांसीके पात्र भी पित्तजशूलके ऊपर उपयोगी होतेहैं ॥ १३ ॥ ठण्डे २ उपचार, और चन्दनसे गीले करतल, एवं मणि, चांदी, और तांबेके जलपूरित पात्रोंको शूलके ऊपर रखना लाभदायक है ॥ १४ ॥ १५ ॥

विरेचनं पित्तहरञ्च शस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ॥ सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीता मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ १६ ॥ छर्द्या ज्वरे पित्तभवे सशूले घोरे विदाहे तृषितेऽतिमात्रम् ॥ यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां पिबेत्सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥ १७ ॥

भा० टी०-पित्तहरनेवाले विरेचन, एवं खरहा और लवा पक्षियोंके मांसरस, तथा खीलें और मधुसे युक्त तर्पण, एवं मधुयुक्त ठंढे अन्यान्य उपचार भी पैत्तिक शूलमें हितकारी हैं ॥ १६॥ पित्तसे उपजेहुए शूलसहित ज्वरमें, छर्दीमें, विदाहमें और अतितृष्णा (प्यास) में सुखचाहनेवाला मनुष्य जवोंसे सिद्ध कीहुई मधुयुक्त ठंढी पेयाको पीवे ॥ १७ ॥

धात्र्या रसं विदार्य्या वा त्रायन्त्या गोस्तनाम्बु वा ॥ पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥ १८ ॥ शतावरीरसं क्षौद्रयुक्तं प्रातः पिबेन्नरः ॥ दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ १९ ॥

भा० टी०-आंवलेके वा विदारीकन्दके वा त्रायमाणके वा दाखके रसमें शक्कर मिलाय पीवे तो तत्काल पित्तज शूल नष्टहोय ॥ १८॥ किंवा दाह और शूलकी शांतिके लिये मनुष्य सब प्रकारके पित्तज रोगोंको नष्टकरनेवाले शतावरीके रसमें मधु मिलाय प्रतिदिन प्रातःकालमें पीवे ॥ १९ ॥

शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः ॥ शृतं शीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥२०॥ पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो वातज्वरापहम् ॥ त्रिफलानिम्बयष्ट्याह्वकटुकारग्वधैः शृतम् ॥ २१ ॥ पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥ २२ ॥

---

१ लावा विष्किरवर्गे स्युस्ते चतुर्द्धा मता बुधैः । पांशुलो गौरकोऽन्योऽस्ति पौण्ड्रको दर्भकस्तथा ॥ लावा वह्निकराः स्निग्धा ज्वरघ्ना ग्राहिणो हिमाः ॥ इति निघण्टुमतम् ।

भा० टी०—शतावरी, मुलहठी, खिरेंटी, कुश, गोखरु इन करके कढेहुए ठंढे जलमें गुड, सहद, और शक्कर मिलाय पीवे तो ॥२०॥ तत्काल ही पित्तसे उपजाहुआ रक्तदाह तथा शूल और वातज्वर नष्ट होय। एवं त्रिफला, नीम, मुलहटी, कटुकी, अमलतास इन करके कढेहुए जलमें मधु मिलाय दाहशूलकी शांतिके अर्थ पीवे ॥ २१ ॥ २२ ॥

बृहत्यौ गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुवालिकाः ॥
पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ २३ ॥

भा० टी०—कटेरी, कंटकारी, गोखरु, एरण्डीजड, कुश, काश, तालमखाना इनके रसमें शक्कर मिलाय पानकरनेसे पित्तसे उपजा दारुण शूल नष्ट होय ॥ २३ ॥

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥
अन्ये योगाश्च कर्तव्या बुधैः पैत्तिकशान्तये ॥ २४ ॥

भा० टी०-किंवा पित्तज शूलको दुरानेवाले आंवलेके चूर्णको मधुके संग चाटे। इस भांति विद्वान् वैद्योंने पित्तजशूलकी शांतिके लिये अन्यान्य उपाय भी करने ॥ २४ ॥

श्लेष्मोत्थे लंघनं वान्तिः प्रशस्येते ततः परम् ॥
योगैः कफहरैरुष्णैरूषणादिभिराचरेत् ॥ २५ ॥

भा० टी०—कफसे उपजेहुए शूलमें लंघन और वमन भलेहैं। अनन्तर कफको हरनेवाले गरम और कटुक पदार्थोंसे संपन्न उपायोंद्वारा उपाचरित करे ॥ २५ ॥

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् ॥
हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलहरं परम् ॥ २६ ॥

भा० टी०—बेलकी जड, एरण्डीजड, चीता, सोंठ इनके चूर्णमें हींग सेंधा मिलाय, उपयुक्त करनेसे तत्काल कफजनित शूल दूर होय ॥ २६ ॥

त्र्यूषणं त्रिवृतामुस्तत्रिफलाचित्रकं तथा ॥ एकैकस्य समो भागस्तदर्द्धं रसगन्धयोः ॥ २७ ॥ लौहाभ्रकविडङ्गानां भागास्तद्द्विगुणा मताः ॥ त्रिफलायाः कषायेन गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ २८ ॥ एकैकां कर्षप्रमितां भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ शूलं हन्ति त्रिदोषोत्थं चाऽम्लपित्तं वमिं तथा ॥२९॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिवस्तिगुदोद्भवम् ॥ भक्तवारीति विख्यातो भक्तवारि पिबेदनु ॥ ३० ॥

भा० टी०—त्रिकटु, निशोत, मोथा, त्रिफला, चीता, यह सब समान भाग, इनके आधा पारा और गंधक ॥२७॥ तथा मंडूर, अभ्रक और वायविडङ्गके दुगुने भाग लेकर त्रिफलाके कषा-

यमें दो २ तोलाकी एक २ गुटिका बनावे ॥ २८ ॥ अनंतर प्रतिदिन प्रातःकालमें उठकर एक एक गुटिकाको खावे । यह गुटिका त्रैदोषिक शूल, अम्लपित्त, छर्दी, हृदयशूल, पसलीशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, और गुदाशूलको नष्ट करतीहै । इसके खानेके पीछे भक्तवारि (मंड) को पीवे । इसीसे इस योगका नाम 'भक्तवारि' है ॥ २९ ॥ ३० ॥

मातुलुङ्गरसो वाऽपि शिग्रुक्काथस्तथाऽपरः ॥
सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्वस्तिशूलनुत् ॥ ३१ ॥

भा० टी०–किंवा बिजोरानींबूके रस, वा सैंजिनेके क्काथमें खार मिलाय मधुके संग पान-करनेसे पसलीशूल, हृदयशूल और वस्तिशूल दूर होयं ॥ ३१ ॥

श्लेष्मशूलहरा पेया पञ्चकोलेन साधिता ॥
विदारी दाडिमरसः सव्योषो लवणान्वितः ॥ ३२ ॥
क्षौद्रयुक्तो जयत्याऽऽशु शूलं दोषत्रयोद्भवम् ॥ ३३ ॥

भा० टी०–पञ्चकोल करके सिद्धकियेहुए विदारीकन्दके रसको पीनेसे कफजनित शूल नष्ट होय । एवं दाडिमके रसमें त्रिकटु और सेंधा मिलाय मधुके सेंग पान कियेजानेसे शीघ्र ही त्रैदो-षिक शूलको जीतताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथैरण्डद्वादशकः ।

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् ॥ पर्णिन्यः सहदेवी च सिंह-पुच्छीक्षुवालिकाः ॥ ३४ ॥ तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवाक्षारयुतं पिबेत् ॥ पृथग्दोषभवं शूलं हन्यात्सर्वभवं तथा ॥ ३५ ॥

भा० टी०–एरण्डीके फल और जड, कंटकारी, कटेहरी, गोखरु, शालवन, पिठवन, मुगवन, मषवन, सहदेई, चितवन (चित्रपर्णिका), तालमखाना ॥ ३४ ॥ इनके समभागों करके कढेहुए जलमें जवाखार मिलाय पीवे । यह योग अलग २ दोषों वा सब दोषोंसे उपजेहुए शूलको नष्ट करताहै ॥ ३५ ॥

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ॥ विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं त्रैदोषिकं जयेत् ॥ ३६ ॥ शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गुव्योषसंयु-तम् ॥ उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ३७ ॥

भा० टी०–गोमूत्रसे शोधीहुई मंडूरमें त्रिफलाका चूर्ण मिलाय मधुघृतके संग चाटताहुआ मनुष्य सन्निपातसे उपजे शूलको जीतताहै ॥ ३६ ॥ एवं शंखचूरमें सेंधा, हींग, और त्रिकटुको मिलाकर गरम जलके संग पान करनेसे त्रिदोषसे उपजा शूल नष्ट होताहै ॥ ३७ ॥

आमशूले क्रिया कार्य्या कफशूलविनाशिनी ॥
शेषमामहरं श्रेष्ठं यद्यदग्निविवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥

भा० टी०–आमदोषसे उपजेहुए शूलमें वही क्रिया करनी, जो क्रिया कफशूलको दुराती-। बाकी जो २ द्रव्य अग्निबलको बढावें वही आमदोषके हरनेमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३८ ॥

एरण्डविश्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः ॥
सक्षारहिङ्गुलवणोरुवुतैलमिश्रः श्रोणीसमेढ्रहृदयस्तनरुक्ष देयः॥ ३९॥

भा० टी०-एरण्डीजड, शोंठ, कंटकारी, कटेहरी, बिजोरा नींबू, पाषाणभेद, त्रिकटुकी जडें, इनके कषायमें जवाखार, हींग, सेंधा, और एरण्डीके तेलको मिलाय कटिशूल, लिङ्गशूल, हृदयशूल और स्तनशूल, तथा इन स्थानोंके यावन्मात्ररोगोंमें इसको देना उचित है ॥ ३९ ॥

सहिङ्गुतुम्बुरुव्योषयवानीचित्रकाभयम् ॥
सक्षारलवणं चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ॥ ४० ॥

भा० टी०–हींग, धनियां, त्रिकटु, अजवायन, चीता, हरड इनके चूर्णमें खार और सेंधा मिलाय मन्दोष्ण जलके संग प्रतिदिन सवेरे पीवे ॥ ४० ॥

विण्मूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥ ४१ ॥

भा० टी०–यह योग विष्ठाशूल, मूत्रशूल, और वातशूल को नष्टकरता एवं पाचक और अग्निवर्द्धक है ॥ ४१ ॥

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यं जले शृतम्
शूलानाहविबन्धेषु सहिङ्गुविडसैन्धवम् ॥ ४२ ॥

भा० टी०–चीता, गठिवन, एरण्डीजड, शोंठ, धनियां इनके जलमें कढेहुए रसको हींग, विडलोन, और सेंधाके साथ मिलाय शूल, आनाह, और विबंधमें पीवे ॥ ४२ ॥

दीपकं सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःसमम् ॥
चूर्णं शूलं जयत्याऽऽशु मन्दस्याऽग्नेश्च दीपनम् ॥ ४३ ॥

भा० टी०–अजवायन, सेंधा, हरड,सोंठ इनके सम भागोंसे निष्पन्न चूर्ण तत्काल शूलको जीतता और मन्दहुए अग्निको बढाताहै ॥ ४३ ॥

समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत्पित्तानिलात्मिके ॥
व्यामिश्रं वा विधिं कुर्य्याच्छूले मारुतपित्तजे ॥ ४४ ॥

भा० टी०–वातपित्तसे उपजेहुए शूलमें बृहत्यादिगणके औषधोंको मधुके संग सेवे । किंवा वातनाशक और पित्तनाशक द्रव्योंका मेल करके उपचारित करे ॥ ४४

पटोलत्रिफलारिष्टकाथं मधुयुतं पिबेत् ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ ४५ ॥

भा० टी०-पित्त और कफसे उपजेहुए ज्वर, छर्दि, दाह, और शूलकी शांतिके लिये परवल, त्रिफला, नीम इनके काथमें मधु मिलाय पीवे ॥ ४५ ॥

पित्तजे कफजे वापि क्रिया याः कथिताः पृथक् ॥
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत शूले तु कफपित्तजे ॥ ४६ ॥

भा० टी०-अथवा पित्तज और कफज शूलमें जो जो क्रिया अलग २ कही हैं उनका एक मेल करके कफपित्तके शूलमें प्रयुक्त करे ॥ ४६ ॥

वमनं च विरेकश्च वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥
कर्तव्यं कफपित्तोक्तं यथायोगं भिषग्जिता ॥ ४७ ॥

भा० टी०-तत्तद्दोषोंका बलाबल देखकर कफपित्तमें कहेहुए वमन विरेचनको यथायोग करना उचित है ॥ ४७ ॥

चूर्णं समं रुचुकहिंगुमहौषधानां शुद्धाम्बुना कफसमीरणसम्भवासु ॥
हृत्पार्श्वशूलजठरार्तिविसूचिकासु पेयं तथा यवरसेन तु विड्विबन्धे ॥४८॥

भा० टी०-एरण्डी, हींग, शोंठ इनके समभागोंसे निष्पन्न चूर्णको सैंधव और मिरिचयुक्त जलके साथ कफवातसे उपजेहुए हृदयशूल, पसलीशूल, उदरपीडा, और विसूचिकामें पीवे । और विड्विबन्धमें तो जवरसके संग पीवे ॥ ४८ ॥

हिङ्गुनः स्वल्पमाहार्य्यं समशब्दे सहार्थता ॥
रुचकादिकचूर्णेऽस्मिञ्ज्ञेया वृद्धोपदेशतः ॥ ४९ ॥

भा० टी०-यहां उक्त एरण्ड्यादिचूर्णमें हींगका लघुभाग लेना चाहिये । वहां समशब्द समानार्थका वाचक नहीं किन्तु सह पदार्थका वाचक है इस भांति वृद्धोंका उपदेश है ॥ ४९ ॥

विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा च द्विक्षारहिंगुलवणत्रयपुष्कराणाम् ॥
चूर्णं पिबेद्धृदयपार्श्वकटिग्रहार्शःपक्काशयांशगतरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥५०॥

भा० टी०-सोंठ, एरंडीजड, दशमूल, इन्द्रजव इन करके सिद्धकियेहुए जलके संग सज्जीखार, जवाखार, हींग, सैंधा, चोहारकोडा, विरियासञ्चरलोन और कूडाके चूर्णको पानकरे जब कि मनुष्य हृदय, पसली और कमरमें पीडित एवं बवासीर और पक्काशयके रोगसे ग्रस्त तथा ज्वर, गुल्म और शूलरोगसे पीडित हो ॥ ५० ॥

हिंगुसौवर्च्चलं पथ्याविडं सैन्धवसंयुतम् ॥
पौष्करं वा पिबेच्चूर्णं दशमूलयवाम्भसा ॥ ५१ ॥

भा० टी०—हींग, कालानोन, हरड, बिडलोन, सेंधा इनके वा कूडाके चूर्णको दशमूल और इन्द्रजवसे सिद्धकिये जलके संग पीवे ॥ ५१ ॥

पार्श्वहृत्कटिपृष्ठांसशूले तन्द्रावतानके ॥
शोथे श्लेष्मप्रमेहे च गलरोगे च शस्यते ॥ ५२ ॥

भा० टी०—यह योग पसलीशूल, हृदयशूल, पृष्ठशूल और कंधाशूलमें तथा तन्द्रा (निद्रालस्य) और अपतानवायुमें एवं शोथ और कफजनित प्रमेह तथा गलरोगमें भी उत्तम है ॥ ५२ ॥

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः ॥
वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्तुं वह्निदीप्तये ॥ ५३ ॥

भा० टी०—मद्यकी इच्छावाला मनुष्य वातकफसे उपजे शूलको नष्ट करने और अग्निबलके बढानेके अर्थ प्रतिदिन प्रातःकालमें लहसुनसंयुक्त मद्यको पीवे ॥ ५३ ॥

हिंगुत्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ॥ मातुलुङ्गरसे पेयं प्लीहशूलापहं रजः ॥५४॥ तीक्ष्णायाश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ॥
प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०—हींग, त्रिकटु, कूडा, जवाखार, सेंधा इनके चूर्णको बिजोरानीबूके रसमें पीवे। यह योग फीहा और शूलका नाशक है ॥ ५४ ॥ एवं वचाके चूर्णसहित त्रिफलाके चूर्णको मधु, घृतके साथ प्रयुक्त करे इससे सब प्रकारके शूल दूर हों ॥ ५५ ॥

मूत्रावष्टम्भितां शुक्लां लोहचूर्णसमन्विताम् ॥
सगुडामभयामद्यात्सर्वशूलोपशान्तये ॥ ५६ ॥

भा० टी०—सब प्रकारके शूलोंकी शान्तिके लिये गोमूत्रमें शोधीहुई मंडूरसहित शुक्ल बिदारीको वा गुडसहित हरडको खावे ॥ ५६ ॥

वाते निरूहाः सविरेचनाश्च क्षीरप्रयोगा मधुराश्च पित्ते ॥
तिक्ताः कषायाः कटुकास्तथैव वाम्याश्च शूले कफसन्निसृष्टे ॥५७॥

भा० टी०—वातसंबन्धी शूलमें निरूह (वस्तिकर्मविशेष), विरेचन तथा क्षीरप्रयोग और मधुर उपाय करने। पित्तजशूलमें तिक्त कषाय और कफजशूलमें वमन तथा कटुकद्रव्यसम्पन्न उपाय करने उचित हैं ॥ ५७ ॥

---

१ वस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरूहश्चेति संज्ञितः। यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः। कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते।

अथ दाधिकं घृतम् ।

पिप्पली नागरं बिल्वं कारवीचव्यचित्रकम् ॥ हिंगुदाडिमवृक्षाम्ल-वचाक्षाराम्लवेतसम् ॥५८॥ वर्षाभूः कृष्णलवणमजाजीबीजपूर-कम् ॥ दधित्रिगुणितं सर्पिस्तत्सिद्धं दाधिकं स्मृतम् ॥ ५९ ॥ गु-ल्मार्शःप्लीहहृत्पार्श्वशूलयोनिरुजापहम् ॥ दोषप्रशमनं श्रेष्ठं दाधिकं परमं घृतम् ॥ ६० ॥

भा० टी०--पिपली, सोंठ, बेलगिरी, अजवायन, चव्य, चीता, हींग, दाडिम, इमली वचा, जवाखार, सज्जीखार, अमलवेत ॥ ५८ ॥ विषखपरा, काला लोन, कालीजीरी, बिजोरा नीबू इनके समभाग और इनसे तिगुना दधि और दधिसे तिगुना घृत लेकर पकावे। सिद्ध होनेपर यह दाधिक घृत हुआ ॥ ५९ ॥ यह घृत गुल्म, बवाशीर, फीहा, हृदयशूल, पसलीशूल और योनिरोगका नाशक एवं दोषोंको शान्तकरनेवाला परम श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥

कम्बलावृतगात्रस्य प्राणायामं प्रकुर्वतः ॥
कटुतैलाक्तसक्तूनां धूपः शूलहरः परः ॥ ६१ ॥

भा० टी०--शरीरपर कम्बलको ओढेहुए शूलरोगीके प्राणायाम करते समय कडुवे तेलमें भिगोईहुई सत्तूकी धूप भी अत्यन्त शूलनाशक है ॥ ६१ ॥

वेदना च तृषा मूर्च्छा चाऽऽनाहो गौरवारुची ॥
कासः श्वासश्च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ ६२ ॥

भा० टी०--पेट, पसली आदिमें अत्यन्त पीडा, प्यास, मूर्च्छा, आनाह, गुरुत्व (भारीपन), अरुचि, कास, श्वास, हिचकी यह सब शूलके उपद्रव होतेहैं ॥ ६२ ॥

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च ॥
वेगरोधं शुचं क्रोधं द्विदलं शूलयुक् त्यजेत् ॥ ६३ ॥

भा० टी०--शूलरोगवाला मनुष्य व्यायाम, मैथुन, मद्य, लवण, चरपरे और कडुवे पदार्थ तथा मलमूत्रके वेगको रोकना, और शोक, क्रोध तथा द्विदलान्न इनको त्यागदेवे ॥६३॥

अन्यच्च-वर्ज्जयेद्द्विदलं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी स्त्रियम् ॥
द्रवमन्नमतीसारी सर्वं हि तरुणज्वरी ॥ ६४ ॥

भा० टी०--शूलवाला द्विदलान्नको, कुष्ठी मांसको, क्षयरोगी स्त्रीप्रसंगको, अतिसारवाला रेचक अन्नको, और तरुणज्वरवाला इन सबको छोडदेवे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे शूलरोगाधिकारः ॥ ३० ॥

अथ परिणामशूलाधिकारः ३१.

लंघनं वमनं शस्तं विरेकश्चाऽनुवासनम् ॥
निरूहकर्म चैतानि शस्तानि परिणामजे ॥ १ ॥

भा० टी०–लंघन, वमन, विरेचन, अनुवासनवस्ति, निरूहवस्ति, यह सब कर्म परिणाम शूलमें श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥

पटोलदाडिमद्राक्षाधात्रीकूष्माण्डसूरणम् ॥
खर्ज्जूरतालिनारङ्गं प्रभवेत्पक्तिशूलनुत् ॥ २ ॥

भा० टी०–परवल, दाडिम, दाख, आंवला, कुह्मडा, जमीकन्द, खजूर, भुईआँवला, नारंग इनका योग परिणामशूलको दुराता है ॥ २ ॥

विडङ्गतण्डुलं व्योषत्रिवृद्दन्तीकचित्रकम् ॥ सर्वमेतत्समाहृत्य सूक्ष्मं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ ३ ॥ गुडेन मोदकं कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ उष्णोदकानुपानञ्च दद्यादग्निविवर्द्धनम् ॥ ४ ॥ जयेत्त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–वायविडङ्ग, कणहिया, त्रिकटु, निसोत, दन्ती, चीता इन सबको एकत्रित करके सूक्ष्म चूर्ण बनावे ॥ ३ ॥ पीछे गुडके साथ मोदक बनाय प्रातः उठकर खावे और पीछेसे अग्निबलको बढानेवाले गरम जलको पीवे ॥ ४ ॥ यह योग त्रिदोषसे उपजेहुए परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ ५ ॥

नागरगुडतिलकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमान्खादेत् ॥
उग्रं परिणतिशूलं तस्याऽपैति त्रिसप्तरात्रेण ॥ ६ ॥

भा० टी०–जो मनुष्य शोंठ, गुड और तिलके कल्कको दूधके संग सिद्ध करके खावे उसका भयंकर परिणामशूल रोग २१ दिनमें दूर हो ॥ ६ ॥

एरण्डवह्निशम्बूकवर्षाभूगोक्षुरं समम् ॥
अन्तर्दग्धं पिबेदद्भिरुष्णाभिः शूलशान्तये ॥ ७ ॥

भा० टी०–एरंडीजड, चीता, जलसीपी, पुनर्नवा, गोखरु इनके समभागोंको भली प्रकार अग्निमें भस्मकरके शूलकी शान्तिके लिये गरमजलके संग पीवे ॥ ७ ॥

शम्बूकभस्मपीतं वा जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ॥
पक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवाऽसुरान् ॥ ८ ॥

भा० टी०–किंवा गरम जलके संग पानकियाहुआ केवल जल सीपीका भस्म परिणाम शूलको कैसे नष्ट करता है जैसे विष्णु दानवोंको ॥ ८ ॥

शम्बूकं त्र्यूषणञ्चैव पञ्चैव लवणानि च ॥ समांशा गुटिकाः कृत्वा कलम्बकरसेन वा ॥ ९ ॥ प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ॥ शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ १० ॥

भा० टी०–जलसीपी, त्रिकटु, पञ्चलवण इनके समभाग निष्पन्न चूर्णके द्वारा धाराकदंबके रसमें गुटिका बनाय ॥ ९ ॥ प्रातःकाल वा भोजनकालमें अग्निबलके अनुसार खावे। इससे मनुष्य एकाएक परिणामशूलसे मुक्त होता है ॥ १० ॥

यः पिबति सप्तरात्रं सक्तूनेकान्कलाययूषेण ॥
स जयति परिणामरुजं चिरजामपि किम्पुनस्तनुजाम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–जो मनुष्य केवल सत्तुओंको ही मटरयूषके संग ७ रात्रिपर्य्यन्त पान करे तो वह बहुत कालसे उपजेहुए भी परिणामशूलको जीतता है अल्पकालिककी तो क्या कथा ? ॥ ११ ॥

लोहचूर्णं बलायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा ॥ पक्तिशूलं च शमयेत्तन्मूलं वा प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥ कृष्णाभयालोहचूर्णं लिह्यात्समधुशर्क्करम् ॥ परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–खिरेंटी वा खिरेंटीकी जडसे युक्त मंडूरको मधुघृतके संग उपयुक्त करनेसे तत्काल ही दारुणरूप परिणामशूल नष्ट होय ॥ १२ ॥ एवं पिपली, हरड और मण्डूरके चूर्णको मधु शक्करके साथ चाटे । यह योग तत्काल दारुणरूप परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

पथ्यालोहरजःशुण्ठीचूर्णं माक्षिकसर्पिषा ॥
परिणामरुजं हन्ति वातपित्तकफात्मिकाम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–हरड, मण्डूर और सोंठका चूर्ण मधु घृतके संग उपयुक्त होनेसे त्रिदोषसे उपजेहुए परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रोमकं विलम् ॥ दन्तीलोहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् ॥ १५ ॥ तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ जीर्णे तत्प्रतिभुञ्जीत मांसादिघृतसाधितम् ॥ १६ ॥ नाभिशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहभवञ्च यत् ॥ विद्रध्यष्ठीलकं हन्ति कफवातोद्भवं तथा ॥ १७ ॥

शूलानामपि सर्वेषामौषधं नाऽस्त्यतः परम् ॥ परिणामसमुत्थस्य विशेषेणाऽन्तकृन्मतम् ॥ १८ ॥

भा० टी०–पांगा, सेंधा, सज्जीखार, जवाखार, एरंडीजड, रेहगमानोन, बेंतकी जड, दन्ती, लोहकीट, निसोत, जमीकन्द इनके समभागोंको दधि, गोमूत्र और दूधके चौगुने भागके संग मन्द आंचसे पकावे ॥ १५ ॥ सिद्ध होनेपर इस चूर्णको गरम जलके संग अग्निबलके अनुसार खावे । जीर्णरोगमें मांसादिघृतके संग सिद्ध करके खावे ॥ १६ ॥ यह योग नाभिशूल, यकृच्छूल, गुल्मशूल, प्लीहाशूल, विद्रधिरोग, अष्ठीलकरोग (नाभिके अधोभागमें पाषाणपिण्डकी भांति वायुका आकार) एवं कफ वातसे उपजे उपद्रवोंको भी नष्ट करता है॥ १७ ॥ सब प्रकारके शूलोंकी औषधी इससे दूसरी कोई नहीं । विशेष करके परिणामशूलका नाशक योग यही मानागया है ॥ १८ ॥

बीजपूरकमेरण्डरास्नागोक्षुरकं बला ॥ पृथक्पञ्चपलान्भागान्यवप्रस्थसमन्वितान् ॥ १९ ॥ साधयेद्द्रोणजलतो यावत्पादावशेषितम् ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाऽक्षसम्मितम् ॥ २० ॥ तुम्बुरूण्यभयाव्योषहिङ्गुसौवर्चलं विडम्॥ वचायावकशूकं च स्वर्जिकाचाऽम्लवेतसम् ॥ २१ ॥ मस्तुप्रस्थद्वयं दद्यात्सिद्धं मृद्वग्निना भिषक् ॥ एतत्पीतं तु पित्तोत्थं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २२ ॥ वातशूलं पक्तिशूलं गुल्मप्लीहापहं परम् ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलं च शूलं चाऽऽमसमुद्भवम् ॥ बलवर्णकरं हृद्यमम्लपित्तापहं परम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–बिजोरानींबूकी जड, एरण्डीजड, रासना, गोखुरू, खिरेंटी इनके अलग २ पांच २ पल भागों और १ प्रस्थ जवोंको लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । चतुर्थांश रहनेपर वक्ष्यमाण द्रव्योंके दो २ तोला कल्क डालकर उसमें एक प्रस्थ घृतको पकावे ॥ १९ ॥ २० ॥ वक्ष्यमाण द्रव्य यह हैं, तुंबुरुके फल, हरड, त्रिकटु, हींग, कालानोन, विडलोन, वचा, जवाखार, सज्जीखार, अमलवेत ॥ २१ ॥ अनन्तर दो प्रस्थ दधिजल डालकर कोमल आंचसे पकावे । सिद्ध होनेपर पान कियेजानेसे यह योग पित्तशूल, त्रैदोषिकशूल, वातशूल, परिणामशूल, गुल्म, प्लीहा, हृदयशूल, पसलीशूल, आमदोषजशूल और अम्लपित्तको भी नष्ट करके बलवर्णको बढानेवाला एवं हृद्यरूप है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ कोलादिः ।

कोलाग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं मण्डूरं सुरभीजलेऽष्ट-

गुणिते पक्काऽथ सान्द्रीकृतम् ॥ तत्खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुग्जेतुं वातकफामयान्परिणतं शूलं च शूलानि च ॥ २४ ॥

भा० टी०–चव्य, गठिवन, अदरख, पिपली, सज्जीखार, जवाखार इनके संग चूर्णित कीहुई मंडूरको आठगुने गोमूत्रमें पकाकर गाढा बनावे । सिद्ध होनेपर वातकफके रोगोंको और परिणामशूल तथा अन्य शूलोंको जीतनेके लिये भोजनके आदि मध्य और अवसानमें इसे खावे, भोजन भी इसमें प्रायः दुग्धान्नका होना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ पिप्पलीमण्डूरम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ भृङ्गराजयवक्षारपटोलाचिकरिष्टकैः॥२५॥ त्रिवृतामूलसहितैस्त्रिफलालाङ्गलीयकैः॥ प्रत्येकं पलिकैरेतैश्चूर्णितैर्यत्नतः पचेत् ॥ २६ ॥ अयोमलरजःप्रस्थं गोमूत्राष्टगुणेन च ॥ पिण्डीकृत्य ततश्चूर्णं योजयेच्छूलनाशनम्॥२७॥ विबन्धश्च तथाऽऽनाहं नाशयेदग्निदीप्तिकृत् ॥ परिणामाह्वयं शूलं जयेदेतन्न संशयः ॥ २८ ॥

भा० टी०–पिपली, पिपलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ, भृंगराज, जवाखार, परवल, एरण्डीजड, लालसैंजिन, निसोतकी जड, त्रिफला, लांगली इनके एक २ पल भागोंको लेकर चूर्ण बनावे ॥ २५ ॥ २६ ॥ अनन्तर १ प्रस्थ मंडूरको चूर्णके संग मिलाय अठगुने गोमूत्रमें यत्नसे पकावे । सिद्ध होनेपर इस द्रव्यको पिंडाकार बनाय प्रयुक्त करे ॥ २७ ॥ यह शूलनाशक योग विबन्ध, आनाह और परिणामशूलको नष्ट करके अग्निको बढाताहै ॥ २८ ॥

अथ भीमवटकमण्डूरम् ।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विश्वौषधमागधीयवक्षारैः ॥ प्रस्थमयोमलरजसः पलांशिकैश्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥ २९ ॥ अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमपाकात्पिण्डतां नयेत्सद्यः॥कोलप्रमाणगुटिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ च॥ ३०॥ रससर्पिर्यूषपयोमांसैर्भुक्त्वा नरो निवारयति ॥ अन्त्रविवर्तनशूलं गुल्मप्लीहाग्निमान्द्यञ्च ॥ ३१ ॥

भा० टी०–बेर, गठिवन, सोंठ, जूही, जवाखार इनके एक एक पल भागोंको एक साथ चूर्णित करके एकप्रस्थ मंडूरके साथ ॥ २९ ॥ अठगुने गोमूत्रमें क्रमपूर्वक पकानेसे पिंडभावको प्राप्त करे और तत्काल एक २ तोलाकी एक २ गुटिका बनालेवे । अनंतर एक गुटिका भोजनके

आदिमें, एक मध्यमें और एक अन्तमें ॥ ३० ॥ रसवृतसे संपन्न यूप, दूध और मांसरसके संग उपयुक्त करके मनुष्य आंतडेको विवृतकरनेवाले परिणामशूल तथा गुल्म, फीहा और अग्निमान्द्यको नष्ट करताहै ॥ ३१ ॥

अथ क्षीरमण्डूरम्।

मण्डूरस्य पलान्यष्टौ गोमूत्रेऽर्द्धाढके पचेत् ॥
क्षीरप्रस्थे ततः सिद्धं पक्तिशूलहरं नृणाम् ॥ ३२ ॥

भा० टी०–८ पल मंडूरको २ प्रस्थ गोमूत्रमें पकाकर एक प्रस्थ दूधमें सिद्ध करे यह क्षीरमंडूर मनुष्योंके परिणामशूलका नाशक है ॥ ३२ ॥

अथ शर्करामंडूरम्।

शतावरीरसप्रस्थं प्रस्थञ्च सुरभीजलम् ॥ अजागोपयसः प्रस्थं प्रस्थं धात्रीरसस्य च ॥ ३३ ॥ लोहकिट्टपलान्यष्टौ शर्करायाश्च षोडश ॥ दत्त्वाऽष्टकुडवञ्चैव पचेन्मृद्वग्निना शनैः ॥ ३४ ॥ सिद्धे शीते घनीभूते चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ लवङ्गत्रिफलाव्योषं यवानी गजपिप्पली ॥ ३५ ॥ द्विजीरकघनं श्लक्ष्णं सर्वमेतत्समांशकम् ॥ खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः ॥ ३६ ॥ निहन्ति पक्तिशूलं च दारुणं च हलीमकम्॥ रक्तपित्ताङ्गदाहं च पाण्डुरोगाम्लपित्तकम् ॥ ३७ ॥

भा० टी०–१ प्रस्थ शतावरीरस, १ प्रस्थ गोमूत्र, १ प्रस्थ बकरी और गायका दूध, १ प्रस्थ आंवलेका रस,८ पल मंडूर,और८कुडव (१६ पल) शक्कर इन सबको एकत्रित करके मन्द आंचसे पकावे॥३३॥३४॥जब पकते२गाढा और सिद्ध होरहे तब शीतल होनेपर उसमें लवंग,त्रिफला,त्रिकटु, जवायण, गजपीपल ॥३५॥ सुफेद जीर, काली जीर, मोथा इन सबका समभाग निष्पन्न चूर्ण बनाय उसमें डालदेवे अनन्तर अग्निबलके अनुसार भोजनके आदिमें इसका सेवन करे ॥ ३६ ॥ यह योग दारुण परिणामशूल, हलीमकरोग, रक्तपित्त, अङ्गदाह, पाण्डुरोग, तथा अम्लपित्त इन सबको नष्ट करताहै ॥ ३७ ॥

मण्डूरस्य पलान्यष्टौ गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ चपलां नागरं क्षारं पिप्पलीं मूलपिप्पलीम् ॥ ३८ ॥ सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत्तत्र पलांशं सान्द्रतां गते ॥ गुटिकाः कल्पयेत्तेन पक्तिशूलनिवारिणीः ॥ ३९॥

भा० टी०–८ पल मंडूरको अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब पकते २ गाढा होजावे

उसमें भंग, सोंठ, खार, पिपली, पिपलीमूल इनके एक २ पल भागोंको चूर्णितकरके डालदेवे। अनंतर परिणामशूलको नष्टकरनेवाली वटिका बनालेवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ शतावरीघृतमण्डूरम् ।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम् ॥ शतावरीरसस्याऽष्टौ दध्नस्तु पयसस्तथा ॥ ४० ॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः ॥ विपचेत्सर्वमेकस्थं यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ४१ ॥ सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याऽग्रतोऽपि वा ॥ वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४२ ॥ निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ॥ ४३ ॥

भा० टी०-८ पल मंडूरको शोधकर चूर्ण बनावे। अनन्तर ८ पल शतावरीरस, ८ पल दधि, ८ पल दूध, ४ पल गोघृत इन सबको एक पात्रमें मंडूरके संग पकावे जबतक वह गाढा न हो ॥ ४० ॥ ४१ ॥ सिद्ध होनेपर भोजनके आदि वा मध्यमें खावे। यह मंडूरका योग वातजशूल, पित्तज शूल और परिणामशूलको भी निःसन्देह नष्ट करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ तारामण्डूरगुडः ।

विडङ्गचित्रचविकत्रिफलात्र्यूषणानि च ॥ नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ॥ ४४ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्द्धकगुडं तथा ॥ शनैर्मृद्वग्निना पक्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥ ४५ ॥ स्निग्धे भाण्डे विनिःक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ॥ प्राग्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥४६॥ योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ॥ कामलां पाण्डुरोगं च शोथं मन्दानलं तथा ॥४७॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यञ्चैवाऽपकर्षति ॥ ४८ ॥ वर्जयेच्छुष्कशाकञ्च विदाह्यम्लकटूनि च ॥ तारया कीर्तितश्चासौ प्रयोगो गुडसंज्ञितः ॥ ४९ ॥

भा० टी०-बायविडङ्ग, चीता, चव्य, त्रिफला ३, त्रिकटु ३, इन नवोंके नव ९ भाग, और वही नव ९ भाग मंडूर, तथा इनसे तिगुना गोमूत्र, और गोमूत्रसे आधा गुडभाग लेकर धीरे २ मंद आंचसे पकावे। जब पककर सिद्ध और गाढा होजाय तब उसको स्निग्धपात्रमें रखकर एक तोलाके प्रमाणसे खातारहे। यह मंडूरगुडका योग भोजनके आदि मध्य अवसानमें प्रयुक्त

कियेजानेसे तत्काल दारुणरूप परिणामशूल, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, मंदाग्नि, बवासीर, ग्रहणीरोग, कृमि, गुल्म, तथा उदररोग इन सबको नष्ट करता और अम्लपित्त तथा स्थूलताको भी खींचता है । ताराके कहे हुए इस मंडूरगुडके सेवनकालमें सूखे शाक और विदाही अम्ल (खट्टे) तथा कटुक पदार्थोंको त्यागदेवे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ त्रिफलामण्डूरम् ।

अक्षामलकशुभानां स्वरसैः पक्कं सुलोहमण्डूरम् ॥
सगुडं यद्युपयुक्तं नश्यति शूलं त्रिदोषजश्चाऽपि ॥ ५० ॥

भा० टी०–बहेडा, आंवला, और हरड, इनके स्वरसकरके पकीहुई शुभ मंडूर यदि गुडके संग उपयुक्त कीजाय तो परिणामशूल और त्रैदोषिक शूल भी नष्ट होय ॥ ५० ॥

अथ धात्रीलौहम् ।

धात्रीचूर्णस्याऽष्टौ पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्य ॥ यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दत्त्वा पचेद्घृते द्विपले ॥ ५१ ॥ अमृताक्वाथेनैतद्द्रव्यं भाव्यन्तु सप्ताहम् ॥ चण्डातपे सुशुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥ ५२॥ घृतमधुना संयुक्तं भक्तादौ मध्यतोऽन्ते च ॥ त्रीनपि वारान्खादेत्पथ्यं दोषानुसारेण ॥ ५३ ॥ भक्तस्याऽऽदौ नाशयति दोषान्पित्तानिलोद्भूतान् ॥ मध्येऽन्नं विष्टब्धं जयति नृणां विदह्यते नान्नम् ॥ ५४ ॥ दोषान्पानान्नकृतान्भक्तान्ते शीलितं जयति ॥ अतिकष्टदमपि नृणां शूलं परिणामजं हन्यात् ॥ ५५ ॥ चक्षुष्यं पलितघ्नं कफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्दोषान् ॥ रुधिरं प्रसादयति च पाण्डुत्वं कामलां जयति ॥ ५६ ॥

भा० टी०–८ पल आंवलेका चूर्ण, ४ पल मंडूर, २ पल मुलहटीका चूर्ण, इन सब द्रव्योंको २ पल घृतमें भूनकर सातदिवस पर्य्यन्त गिलोयके क्वाथमें भावित करे । अनन्तर उस द्रव्यको प्रचण्ड घाममें भलीभांति सुखाकर दुबारा खरड करनेके अनन्तर कोरी हंडियामें रखदेवे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब घृत मधुके संग मात्रा बनाय वातादिदोषबलके अनुसार भोजनके आदि वा मध्य वा अंतमें खानेसे पथ्य है ॥ ५३ ॥ भोजनके आदिमें खायेजानेसे पित्तवातसे उपजेहुए दोषोंको नष्ट करता है । भोजनके मध्यमें उपयुक्त होनेसे विष्टब्ध अन्नको जीतता और पेटमें अन्न भी विदाह (जलन) युक्त नहीं होता ॥ ५४ ॥ भोजनके अन्तमें सेवन कियेजानेसे अन्न पान करके उपजेहुए दोषोंको जीतता है । एवं मनुष्योंके अतिकष्टदायी परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ ५५॥ कि-

बहुना, यह धात्रीलोह नेत्रोंके लिये हितकर, और बलिपलितादिदोषोंका नाशक, तथा कफपित्तसे उपजेहुए दोषोंको जीतनेवाला एवं कामला, पांडुरोगका नाशक और रक्तशोधक है ॥ ५६ ॥

अथ खण्डामलकम् ।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डतुलार्द्धं भृष्टमाज्यतः ॥ प्रस्थार्द्धात्खण्डतुल्यैश्च पचेदामलकीरसैः ॥ ५७ ॥ मन्दानलार्चिषा सम्यग्यत्नतः परिघट्टयन् ॥ दर्व्या पाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ॥ ५८॥ द्वेद्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च । पलं तालीशधान्याकं चातुर्जातकमुस्तकम् ॥ ५९ ॥ कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च ॥ पक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयकृतं च यत् ॥ ६० ॥ छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासकासावरोचकान् ॥ हृच्छूलं रक्तपित्तञ्च पृथक्छूलञ्च नाशयेत् ॥ ६१ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम् ॥ ६२ ॥

भा० टी०–५० पल कुम्हडाको भलीभांति पकाकर आधाप्रस्थ घीमें भूनलेवै अनन्तर इस घृतपक्व कुम्हडेको ५० पल आंवलारसके संग कोमल अग्निकी आंचमें भले यत्नसे करछीके द्वारा घट्टितकरताहुआ पकावे । पाकसिद्धि होनेपर २ पल पिपली, २ पल कालीजीर, २ पल शौंठ, २ पल मरिच, १ पल तालीशपत्र, १ पल धनियां, २ तोला दालचीनी, २ तोला इलायची, २ तोला तेजपात, २ तोला नागकेशर, २ तोला मोथ इनका चूर्ण बनाय उसमें मिलावे और पीछेसे आधाप्रस्थ मधु भी मिलालेवे । यह खण्डामलक नाम रसायन परिणामशूल, त्रैदोषिक शूल, छर्दि, अम्लपित्त, मूर्च्छा, श्वास, कास, अरुचि, हृदयशूल, रक्तपित्त तथा पृथक् २ वातादिदोषोंसे उपजेहुए शूल इन सबको नष्ट करता है॥५७॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥

कलायचूर्णभागौ द्वौ लोहचूर्णस्य चाऽपरम् ॥ कारवेल्लपलाशानां रसेनैव विमर्द्दयेत् ॥ ६३ ॥ कर्षप्रमाणां गुटिकामेकां संभक्षयेन्नरः । मण्डानुपानात्सा हन्ति जरत्पित्तं सुदारुणम् ॥ ६४ ॥

भा० टी०–परिणामशूलके संबंधसे जरत्पित्त और अन्नद्रव शूलकी चिकित्सा कहते हैं । २ भाग वडकी जटाका चूर्ण , और एकभाग मंडूरका चूर्ण लेकर करेलेके पत्तोंके रसमें खरड करे ॥ ६३ ॥ अनन्तर कर्षप्रमाण गुटिका बनाय खावे और पीछेसे मंडको पीवे । क्योंकि यह गुटिका दारुण जरत्पित्तको नष्ट करती है ॥ ६४ ॥

लिह्याद्वा त्रैफलं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम् ॥
यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्वदे ॥ ६५ ॥

भा० टी०–किंवा मंडूरसे वा मुलहठीके चूर्णसे युक्त त्रिफलाके चूर्णको मधुके संग जरत्पित्तमें खावे ॥ ६५ ॥

अन्नद्रवे तु तत्कार्य्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ॥
आमपक्काशये शुद्धे गच्छेदन्नभवं शमम् ॥ ६६ ॥

भा० टी०–जरत्पित्तमें जो क्रिया कही है वही अन्नद्रवशूलमें भी करनी। विशेष करके जब आमाशय और पक्वाशय शुद्ध होरहें तब इनमें उपजेहुए अन्नद्रवादिरोग शान्त होते हैं ॥ ६६ ॥

पथ्यागुडामलकचूर्णपलं तथैव प्रत्येकशः पलमितं त्रिपलं च किट्टम्॥
लोहस्य माक्षिकघृतैरनुवेलमद्यादाद्यन्तमध्यमशनेषु यथाऽक्षमात्रम् ॥६७॥

भा० टी०–१ पल हरड, १ पल गुड, १ पल आंवला, ३ पल मंडूर इनके चूर्णको प्रतिवेलामें भोजनके आदि मध्य अन्तमें २ तोलाके प्रमाणसे मधु घृतके संग खावे ॥ ६७ ॥

दुर्विज्ञेयस्त्वन्नद्रवो दुश्चिकित्स्यो महागदः ॥ तस्मादस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ ६८ ॥ अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः ॥ तस्मादतोऽन्नपानानि मात्राहीनानि कल्पयेत् ॥ ६९ ॥ अन्नद्रवे तु यत्प्रोक्तं जरत्पित्ते तु तद्धितम् ॥ इति संक्षेपतः प्रोक्तमन्नद्रवचिकित्सितम् ॥ ७० ॥

भा० टी०–अन्नद्रवशूलका रंग ढंग दुर्बोध है अतः इस बडे रोगकी चिकित्सा महाकठिन है। तथापि इसकी शांतिके अर्थ बुद्धिमान् उत्कृष्ट उपाय करे ॥ ६८ ॥ अन्नद्रव और जरत्पित्तमें अग्निमान्द्य हो रहता है। अतः इन रोगोंकी वर्तमानदशामें अन्नपानकी मात्रा घटादेवे ॥ ६९॥ अन्नद्रवकी जो चिकित्सा कही है वह जरत्पित्तमें भी हित है। इस प्रकार संक्षेपसे यह अन्नद्रवकी चिकित्सा कह दी है ॥ ७० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे परिणामशूलाधिकारः ॥ ३१ ॥

अथोदावर्तानाहाधिकारः ३२.

गोधूममुद्गयष्टीनां पथ्यं वातापहश्च यत् ॥
उदावर्ते प्रयोक्तव्यमायुर्वेदविशारदैः ॥ १ ॥

भा० टी०–गेहूँ, मूंग, मुलहठी एवं अन्यान्य वातनाशक पदार्थोंका पथ्य आयुर्वेदके विद्वानोंने उदावर्तरोगमें प्रयुक्त करना ॥१॥ (जब वायुका भौंर ऊपर उमडता है तब पेट फूलजाता और मलमूत्रका सहसा निरोध होता है इसीका नाम उदावर्त है) ॥

---

१ यदाऽऽवर्त ऊर्ध्वं समीरस्य गच्छेदुदावर्तरोगः प्रभुस्तत्र वायुः ॥

चूर्णं शिवापीलुनिकात्रिवृद्भिः सयावशूकं सुघृतेन पीतम् ॥
निहन्त्युदावर्तगदं जवेन श्लक्ष्णीकृतं पथ्यभुजो नरस्य ॥ २ ॥

भा० टी०–हरड, जुरनहार, निसोत इनका चूर्ण जवाखारसहित घृतके संग उपयुक्त होनेसे पथ्यभोजी मनुष्यके उदावर्त रोगको तत्काल नष्ट करता है ॥ २ ॥

श्यामादन्तीसप्तलाशंखिनीनां हेमक्षीरीतिल्वकम्पिल्लकानाम् ॥ श्वेताश्यामाराजवृक्षद्रवन्तीयक्षैश्चैषां द्रव्यतैलैर्गणोऽयम् ॥ ३ ॥ क्वाथैः कल्कैर्मांसनीरैरनेकैर्योगैरन्यैः सेवितश्चेत्तदाऽऽशु ॥ आनाहोदावर्तगुल्मोदराद्या नश्यन्त्येवं ये विषोत्थाश्च रोगाः ॥ ४ ॥

भा० टी०–श्यामा, दन्ती, सातला, चोरहुली, पीले दूधवाली कटेहरी, लोध, कवीला, अतीस, गोगल, अमलतास, मूसाकानी, करञ्ज इसगणका क्वाथ, वा कल्क, वा चूर्ण, घृत, तैलके वा मांसरसके वा अन्यान्य योगोंके संग उपयुक्त होनेसे तत्काल आनाह, उदावर्त, गुल्मरोग, उदररोग और विषभक्षणसे उपजीहुई व्यथा यह सब नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः ॥
गुटिका गुडतुल्यास्ता विद्धि बन्धगदापहाः ॥ ५ ॥

भा० टी०–२ भाग निशोत, ४ भाग पिपली, ५ भाग हरड और ११ भाग गुड इनके कल्कसे बनीहुई गुटिकाको उदावर्तरोगकी नाशक जानिये ॥ ५ ॥

हरीतकी यवक्षारो मुण्डीरी च त्रिवृत्तथा ॥
घृतेन पीतं तच्चूर्णमुदावर्तविनाशनम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–हरड, जवाखार, गोरखमुंडी, निसोत इनका चूर्ण घृतके संग उपयुक्त होनेसे उदावर्तरोगको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

हिंगुकुष्ठवचास्वर्जीविडञ्चेति द्विरुत्तरम् ॥
पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तविनाशनम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–हींग, कूडा, वचा, सज्जी, विडलोन इनका द्विरुत्तर भागवाला चूर्ण मद्यके संग उपयुक्त होनेसे उदावर्तरोगका नाशक है ॥ ७ ॥

खण्डपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ॥ प्राग्भोजनाच्च समधु बिडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ८ ॥ एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ॥ स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णनाराचको नाम्ना ॥ ९ ॥

भा० टी०–एक पल खांड, एक पल निसोत और २ तोला पिप्पलीके चूर्णको भोजनसे पहिले मधुके संग दो तोलांके प्रमाणसे खावे ॥ ८ ॥ परन्तु यह चूर्ण प्रायः मलकी गाढी-दशामें, तथा पित्त और कफमें नियुक्त करना उचित है। यह नाराचक चूर्ण नामक योग स्वादिष्ट और राजभोग्य है ॥ ९ ॥

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः कृतां वर्तिं सुवर्तिताम् ॥ घृताभ्यक्ते गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥ १० ॥ मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ॥ गुडक्षारसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ ११ ॥

भा० टी०–हींग, माक्षिक, सैन्धव इनकरके सुन्दर बनाई वर्तिकाको घृतसे गीले किये-हुए गुदद्वारमें देनेसे उदावर्तरोग नष्ट होय ॥ १० ॥ मैनफल, पिप्पली, कूडा, वचा, श्वेत-सरसों, गुड, जवाखार इनकरके सम्पन्न फलवर्तिका उदावर्तमें प्रशस्त कही गई है ॥ ११ ॥

अगुरूद्भवसिन्धूत्थतैलयुक्ताम्लमूलकम् ॥
क्षुण्णनिर्गुण्डिपत्रं वा स्विन्ने पायौ क्षिपेद्बुधः ॥ १२ ॥

भा० टी०–अथवा उदावर्तरोगीके स्वेदित कियेहुए गुदद्वारमें अगरका धूप, वा सेंधा और तैलसे युक्त अमलवेतकी जडको, वा मर्दन कियेहुए मेउडीके पत्तेको निक्षित करे ॥ १२ ॥

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥
एलामपि च मद्येन क्षीरतोयं पिबेदथ ॥ १३ ॥

भा० टी०–मूत्राघात (मूत्रका बन्द होना) में काले नोनसे युक्त मदिराको, वा मद्यके संग इलायचीको, वा दूधजलको दोषके अनुसार पानकरे ॥ १३ ॥

दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च ॥
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम् ॥ १४ ॥

भा०टी०–अथवा कौंछके स्वरसको, वा कूडाके कषायको वा जलके संग या सेंधाके साथ बडी ककडीके बीजको मूत्राघातमें सेवनकरे ॥ १४ ॥

पञ्चमूलशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥
सर्वथैवोपयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–पञ्चमूलके संग पके हुए दूध वा दाखके रसको और मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरीरोग (पथरी) में कहेहुए विधान भी मूत्राघातमें सर्वथा प्रयुक्त करे ॥ १५ ॥

स्नेहस्वेदैरुदावर्तजृम्भं समुपकल्पयेत् ॥
असृङ्मोक्षोऽस्रजे कार्य्यः स्निग्धस्विन्नस्य यत्नतः ॥ १६ ॥

भा० टी०–उदावर्तके विजृम्भको स्नेह और स्वेदोंके द्वारा उपाचरित करे एवं रक्तसे उपजेहुए उदावर्तमें स्निग्ध और स्वेदित कियेहुए मनुष्यके रक्तको यत्नसे निकालना उचित है॥ १६॥

क्षयजे क्षययत्नेन घ्राणास्येनाऽऽनयेत्क्षवम् ॥
उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ १७ ॥

भा० टी०–क्षयसे उपजेहुए उवर्तमें क्षयोपयोगी उपचारोंसे नाकमुखके द्वारा छींक निकाले । उद्गार (उद्गमन) से उपजेहुए उदावर्तमें यथाक्रम स्नेहका धूप देवे ॥ १७ ॥

छर्द्याघातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत् ॥ वस्तिशुद्धिकरैरेवं चतुर्गुणजलं पयः ॥ १८ ॥ आवारिनाशात्कथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥ रमयेयुः प्रिया नार्य्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ १९ ॥ तत्राऽभ्यङ्गावगाहाश्च मदिराश्च रसान्विताः ॥शालिः पयो निरूहाश्च मैथुनञ्च हितं भवेत् ॥ २० ॥

भा० टी०–उदावर्तसंवन्धी छर्दीके आघातको दोषवलके अनुसार नस्य और स्नेहआदिकोंके प्रयोगसे जीते जिससे नानावस्तियोंका भी शोधन हो । एवं दूधमें चौगुना जल मिलाय ॥ १८॥ पकावे, जब जल जलजाय और दूधमात्र बाकी रहे तब उसको शुक्रसे उपजे उदावर्तवाला मनुष्य यथेच्छ पीवे । अनंतर सर्वांगसुन्दरी युवतियां उसको रमावें ॥ १९ ॥ शुक्रसे उपजे उदावर्तमें अभ्यङ्ग जलावगाहन, सरस मदिरा, शालि चावल, दूध, निरूहवस्ति और मैथुन भी हित हैं॥२०॥

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पञ्च भोजनम् ॥ तृष्णाघाते पिबेन्मद्यं यवागूं वा सुशीतलाम् ॥ २१ ॥ रसेनाऽद्यात्सुविश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः ॥ गुर्व्वभिष्यन्दि रहितमविदाहि सुखास्पदम् ॥ २२॥

भा० टी०–भूखके विघातमें स्निग्ध, उष्ण और हलका भोजन हित है । तृष्णाके विघातमें मद्य वा शीतल यवागूको पीवे ॥२१॥ परिश्रम और श्वाससे व्याकुल हुआ मनुष्य उदावर्तमें हलके और अनभिष्यन्दि एवं अविदाहि और आनंदजनक पदार्थोंको चैनसे स्वादपूर्वक खावे ॥२२॥

निद्राघाते पिबेत्क्षीरं सुप्याच्चेष्टकथारतः ॥
आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत ह्युदावर्तोदितां क्रियाम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–उदावर्तसंबन्धी निद्राके आघातमें दूधको पीवे और पीते ही रोचक कथाके श्रवणमें प्रीति करताहुआ धीरे २ सोजावे । इस प्रकार उदावर्तरोगमें कहीहुई क्रियाको आनाहरोगमें भी प्रयुक्त करे ॥ २३ ॥

द्विरुत्तरा हिंगु वचा सकुष्ठा सुवर्च्चिका चैव विडंगचूर्णम् ॥
सुखाम्बुनानाहविसूचिकार्तिहृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ २४ ॥

भा० टी०–हींग, वचा, कूडा, सज्जीखार, बायबिडङ्ग इनके उत्तरोत्तर क्रमसे दो २ भाग बढाकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण मन्दोष्ण जलके संग उपयुक्त होनेसे आनाह, विसूचिका, पीडा, हृद्रोग, गुल्म, ऊर्द्ध्ववात इन सबको नष्ट करताहै ॥ २४ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकाः सपिप्पलीकातिविषाः सकुष्ठाः ॥
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वा जयेदाशु हितौदनाशी ॥ २५ ॥

भा० टी०–वचा, हरड, चीता, जवाखार, पिप्पली, अतीस, कूडा इनके समभाग निष्कल चूर्णको गरमजलके संग पानकरके पथ्यभोजन करताहुआ आनाह और विमूढ वातको जय करताहै ॥ २५ ॥

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ॥
वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चाऽऽनाहभेदिकाः ॥ २६ ॥

भा० टी०–निसोत, हरड, श्यामा इनको थूहरके दूधमें भावितकरे । अनन्तर वटिका बनाय गोमूत्रके संग पीवे । यह आनाहको भेदनेवाली श्रेष्ठ वटिका है ॥ २६ ॥

वर्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ॥ मधुनि गुडे वा दर्वीकलिताऽङ्गुष्ठप्रमाणेयम् ॥ २७ ॥ चिरकालादृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता गुदेऽभ्यक्ते ॥ आनाहोदावर्तकगुल्मोदरनाशिनी ख्याता ॥ २८ ॥

भा० टी०–त्रिकटु, सेंधा, सरसों, घरके धुआंकी धूली, कूडा, मैनफल इनकरके रचीहुई अंगुष्ठप्रमाण वर्तिका मधु वा गुडमें करछीसे पकाकर घृतसे गीले बनाये गुदद्वारमें धीरे २ नियुक्त कीजातीहुई आनाह, उदावर्त, गुल्म, उदर इतने रोगोंको नष्ट करतीहै । बहुत कालसे यह अज-माई गई है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ शुष्कमूलाद्यं घृतम् ।

मूलकं शुष्कमार्द्रञ्च वर्षाभूर्मूलपञ्चकम् ॥ आरेवतफलं वाऽप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ॥ २९ ॥ तत्पीयमानं शमयेदुदावर्तमशेषतः ॥ आनाहमपि वेगेन चिरादृष्टफलं त्विदम् ॥ ३० ॥

भा० टी०–सूखी और गीली मूली, पुनर्नवा, पञ्चमूल, इनको वा अमलतासके फलको जलमें पकाकर इनके संग घृत पकावे ॥ २९ ॥ यह घृत उदावर्त और आनाहको वेगसे निर्मूल करताहै यह भी बहुत कालसे परीक्षित है ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द उदावर्तानाहाधिकारः ॥ ३२ ॥

अथ गुल्मरोगाधिकारः ३३.

लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ॥
बृंहणं यद्भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥

भा० टी०—सभीप्रकारके गुल्मरोगवालोंके लिये दीपन, स्निग्ध, गरम और वायुको अनुलोमन करनेवाले एवं बृंहण पदार्थ और लंघनकर्म हित हैं ॥ १ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वथा विधिवदाचरितव्या ॥
मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ २॥

भा० टी०—गुल्मरोगवालोंकी वायुशांति उचित उपायोंके द्वारा सर्वथा विधिपूर्वक करनी उचित है । वायुके जीतेजानेपर अन्य दोषोंको छोटासा प्रयोग भी नष्ट करसकता है ॥ २ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ॥
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ ३ ॥

भा० टी०—स्निग्ध कियेहुए गुल्मरोगीके शारीरिक स्रोतोंको कोमल बनाने, तथा उत्कट वायुको जीतने, और विबंधको भेदनकरने अनन्तर कियाहुआ स्वेद कर्म गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

प्रागेव वातिके गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं मतम् ॥ रेचितं स्नेहसेकैश्च निरूहैश्चाऽनुवासनैः ॥ ४ ॥ उपाचरेद्भिषक्प्राज्ञो मात्राकालविचारतः ॥ उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः सान्त्वनादयः ॥ ५ ॥ स्थानावशेषो रक्तश्च बाहुमध्ये शिराव्यधः ॥ स्वेदोऽनुलोमनञ्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—वातसे उपजेहुए गुल्मरोगमें प्रथम रोगीको भलीभांति स्निग्ध स्वेदित और रेचित करे तदुत्तर देश काल और अवस्थाके अनुसार स्नेह, सेक और निरूह, अनुवासन बस्तियोंके द्वारा ॥ ४ ॥ उपाचरित करे । तदुत्तर मन्दोष्ण उपनाहनकर्म और सांत्वना करनी उचित है ॥ ५ ॥ तथा रक्तमोक्ष और भुजाके मध्यमें शिराभेदन कर्म, एवं स्वेद, और वायुका अनुलोमन करना यह सब कर्म सबप्रकारके गुल्मरोगवालोंके लिये प्रशस्त हैं ॥ ६ ॥

---

१ दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः । कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वौ हृन्नाभिवस्तयः । हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारीय इवाऽचलः ॥ वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः । स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ॥ २ गुल्म—पेटमें वायुके गोलेको कहते हैं ।

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् ॥
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ ७ ॥

भा० टी०-बिजोरानीबूका रस, हींग, दाडिम, विडलोन, सेंधालोन इनको मदिरामंडके संग पानकरनेसे वातजगुल्म नष्ट होवे ॥ ७ ॥

पिबेदेरण्डजं तैलं वारुणीमण्डमिश्रितम् ॥
तदेव तैलं पयसा वातगुल्महरं पिबेत् ॥ ८ ॥

भा० टी०-एरंडीके तैलको मदिरामंडके वा दूधके संग मिलाय पान करनेसे वातज गुल्म नष्ट होताहै ॥ ८ ॥

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोऽपि वा ॥
तेनैव पीतः शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ ९ ॥

भा० टी०-अथवा सज्जीखार और कूठसहित केतकीखार भी एरंडीतैलके संग पानकिये जानेसे वातजगुल्मको शान्त करताहै ॥ ९ ॥

वातगुल्मप्रतीकारात्प्रकुप्यति यदा कफः ॥ उष्णोषणविनिष्पन्नं चूर्णाद्यन्तु कफापहम् ॥ १० ॥ यदि कुप्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेषजम् ॥ दोषघ्नैरप्यशान्ते तु गुल्मे शोणितभोजनम् ॥ ११ ॥

भा० टी०-यदि वातज गुल्मके प्रतिकार (इलाज) करनेसे कफकोप होवे तो उष्ण और ऊषण द्रव्योंसे निष्पन्न चूर्णादिकके प्रयोगसे वह नष्ट होता है ॥ १० ॥ एवं पित्तकोप होवे तो इस दशामें विरेचनमात्र चिकित्सा है । यदि गुल्मरोग दोषनाशक पदार्थोंसे भी शान्त न हो तो इस दशामें रुधिर भोजन करना उचित है ॥ ११ ॥

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् ॥
स्निग्धं संस्रावयेत्पश्चाद्वस्तिकर्म च योजयेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०-काकोल्यादिगण (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गिलोय, मुगवन, मषवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडासिंगी, पुंडरिया, जीवन्ती, मुलहठी, दाख,) बकायन नीम और वांसादिद्रव्योंसे सिद्धकियेहुए तैलके पानसे स्निग्धहुए पैत्तिकगुल्मवालेको विरेचन करावे और तत्पश्चात् वस्तिकर्मको प्रयुक्त करे ॥ १२ ॥

दाहशूलार्तिसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः ॥ विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मं तदुपनाहयेत् ॥ १३ ॥ पक्वे तु व्रणवत्कार्य्यं व्याध्यशोधनरोपणम् ॥

१ वह पदार्थ (जांद) विशेष जिससे मदिरा चुआई जाती है ।

स्वयमूर्द्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रवर्तते ॥ १४ ॥ द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् ॥ लंघनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संबुभुक्षिते ॥ १५॥ घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं पित्तगुल्मिना ॥ वचाभयाविडाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीपकाः ॥ १६ ॥ द्वित्रिषट्चतुरे काष्ठपञ्चपञ्चांशकाः क्रमात् ॥ चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम् ॥ १७ ॥ शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ १८ ॥

भा० टी०–जिस समय दाह, शूल, पीडा, विक्षोभ, निद्राका नाश, अरुचि, और ज्वर-प्रभृति उपद्रवोंसे विदाहयुक्त होताहुआ गुल्मरोग जानपडे उसी समय उसको उपनाहनकर्मके द्वारा पक्क बनावे ॥ १३ ॥ पक्क होनेपर व्रणशोथमें कही क्रियाके अनुसार भेदन लेपन आदि कर्म करे । जब विना भेदनके ही अपनेआप वह दोष (राध) ऊर्द्ध्वभाग वा अधोभागसे प्रवृत्त होनेलगे तब १२ दिन पर्य्यन्त शोधनादि कर्म न करके प्रतीक्षा करे और इस बीच उपजनेवाले अन्यान्य उपद्रवोंको तो शान्त करे । पैत्तिक गुल्ममें लंघन, लेखन, और स्वेदकर्मके निष्पन्न होने तथा अग्निके बढने और रोगीके भूखे होनेपर ॥ १४ ॥ १५ ॥ त्रिकटु और जवाखारके कल्कसे सिद्ध किये घृतको पीवे । एवं २ भाग वचा, ३ भाग हरड, ६ भाग विडलोन, ४ भाग शोंठ, १ भाग हींग, ८ भाग कूडा, ५ भाग चीता, और पांच ही भाग अजवायणको लेकर चूर्ण बनाय मद्य आदिके संग पान कियेजानेसे गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, बवाशीर, श्वास, कास, और ग्रहणीरोगको भी नष्ट करता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥ पञ्चमूलीशृतं तोयं पुराणं वारुणीरसम् ॥ १९ ॥ कफगुल्मी पिबेत्कालं जीर्णं माध्वीकमेव वा ॥ यवानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम् ॥२०॥ पिबेत्सन्दीपनं वातमूत्रवर्च्चोनुलोमकम् ॥ व्यामिश्रदोषे व्यामिश्र एव कार्य्यः क्रियाक्रमः ॥ २१ ॥

भा० टी०–कफजनित गुल्ममें वातगुल्मोक्त प्रयोगोंका उपचार करे । अथवा पंचमूलके संग कढेहुए जलको वा प्राचीनमदिराको वा महुवेके फूलोंसे बनाई प्राचीन मदिराको कुछ काल-पर्य्यन्त पीवे । किंवा अजवायनके चूर्ण और विडलोनसे युक्त छांछको पीवे । यह छांछ अग्निको बढाती और वायु, मूत्र, मलका अनुलोमन करतीहै । मिलित दोषों (वातपित्त आदि द्वन्द्वज दोष) में तत्तत् अंशवाली मिश्रक्रिया करनी उचित है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ त्रिलवणाद्यं चूर्णम् ।

कोपलवल्लीदण्डकेनाऽऽह–त्रिलवणहवुषाऽजमोदाऽश्वगन्धा वचा

हिंगु पाचोपकुञ्ची सहाजीरकाजाजिकुस्तुम्बुरुस्वर्ज्जिकं कारवी यावशूको जटा पौष्करं दाडिमस्तिन्तिडीकं विडङ्गानि भार्ङ्गी वरा वेतसाम्लोमिसी,मरिचगजकणाभयापञ्चकोलं निकुम्भीविशालाजवाणीसुराह्वश्च तत्सर्वमेकत्र सञ्चूर्णयेद्यत्नतो बीजपूराद्रसेनाऽसकृद्भावितं यः पिबेत्प्रातरुत्थाय चाऽऽहारकालेऽथवा मासमात्रं हिताशी नरः, प्लुतमशिशिरवारिणा जीर्णमद्येन तक्रेण कोलाम्भसा सर्पिषोष्णेन कौलत्थयूषेण वा क्षारनिष्ठ्यूततोयेन वा दाडिमाद्वारसेनाऽऽत्मवानेभिरेवौषधैः साधितं वा घृतम्, हृदयगुदकटीयकृत्प्लीहगुह्याश्रितं तस्य शूलं प्रणश्येत्तथा गुल्मविष्टम्भदुर्नामहृद्रोगकृच्छ्रोदराध्मानयक्ष्मारुचिश्वासकासा लयं प्राप्नुयुः पावकः प्राश्यमानानि पाषाणचूर्णानि पक्तुं क्षमः ॥ २२ ॥

भा० टी०–त्रिलवण (सेंधानोन, विडलोन, कालानोन,) हाऊवेर, अजमोद, असगंध, वचा, हींग, कूडा, छोटी इलायची, घीकुवार, जीरक, कालीजीर, धनियां, सञ्जीखार, सौंफ, जवाखार, जटामांसी, पोहकरमूल, दाडिम, इमली, वायविडङ्ग, भारंगी, गिलोय, अमलवेत, सोआ (मधुरिका), मरिच, गजपीपल, हरड, पञ्चकोलोक्तद्रव्य, दन्ती, इन्द्रायण, अजवायन, देवदार इन सबका चूर्ण बनाय बिजोरानींबूके रससे वार २ भावना देवे। इस चूर्णको जो मनुष्य प्रातःकाल उठतेही वा भोजनकालमें एकमास पर्य्यन्त गरम जल, वा प्राचीन मदिरा, वा छांछ वा पञ्चकोलमें सिद्ध किया जल वा घृत वा गरम २ कुलथीका यूप वा खारसे सिद्धकिये जलके वा अनाररस संग सेवन करे और पथ्य भोजन करता रहे किंवा उन पूर्वोक्त औषधियोंसे सिद्ध किये घृतको सेवे तो निःसन्देह उस मनुष्यके हृदय, गुदा, कटिदेश,पशली,तथा गुह्यभागमें उपजे हुए शूल नष्ट होते और गुल्म, विष्टम्भ, बवाशीर, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, जलोदर, आनाह, क्षय, अरुचि, श्वास, कास यह सब रोग विलयको प्राप्त होतेहैं। एवं औदरिक अग्नि वार २ चर्वण कियेजाते हुए पाषाण चूर्णको भी पचानेको समर्थ है ॥ २२ ॥

यवानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयम् ॥
सुरामण्डेन पातव्यं गुल्मशूलनिषूदनम् ॥ २३ ॥

भा० टी०–अजवायन, हींग, सेंधा, खार, कालानोन, हरड इनका चूर्ण सुरामण्डके संग पान कियेजानेसे गुल्म शूलका नाशक है ॥ २३ ॥

अथ हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम् ।

गद्येनाऽऽह—हिङ्गुत्रिकटुकवचाजमोदाधान्यकाश्वगन्धादाडिमतिन्तिडी- कपाठाचित्रकचव्यसैन्धवविडसौवर्चलयवक्षारसुवर्चिकापिप्पलीमूला- म्लवेतसशटीपुष्करहवुषाजाजीपथ्याः सञ्चूर्ण्य मातुलुङ्गाम्ले बहुशः परिभाव्याऽक्षमात्रा गुटिकाः कुर्वीत, ततश्च प्रातरेकैकां वातरोगी भक्षयेदेष खलु योगो गुल्मश्वासकासारोचकहृद्रोगाध्मानपार्श्वोरुब- स्तिशूलानाहमूत्रकृच्छ्रार्शःपार्श्वप्लीहोदरपाण्डुरोगानपहन्ति, तूणी- प्रतूण्योश्चाऽयमत्यर्थमुपयुज्यते ॥ २४ ॥

भा० टी०—हींग, त्रिकटु, वचा, अजमोद, धनियां, असगंध, दाडिम, इमली, पाठा, चीता, चव्य, सेंधा, विडलोन, कालानोन, जवाखार, चोहारकोडा, पिपलीमूल, अमलवेत, कचूर, कूडा, हाऊबेर, कालीजीर, हरड इनका चूर्ण बनाय अनेकवार उसको बिजोरा नींबूके रसमें भावना देकर दो २ तोलाकी एक २ गुटिका बनावे और प्रतिदिन प्रातःकालमें वातरोगवाला एक २ गुटिका खावे और पीछेसे पूर्वोक्त अनुपान करे । यह योग गुल्म, श्वास, कास, अरुचि, हृद्रोग, आध्मान, पशलीशूल, जंघाशूल, वस्तिशूल, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, बवाशीर, पशलीका फीहा, जलोदर, पाण्डु इन रोगोंको नष्ट करता और तूणी प्रतूणी नामक रोगोंमें भी उपयोगी होताहै ॥ २४ ॥

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी ॥ श्यामा विडं सैन्धवञ्च यवक्षारं महौषधम् ॥ २५ ॥ यवक्वाथोदकेनैतद्घृतभृष्टन्तु पाययेत् ॥ तेनाऽस्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २६ ॥

भा० टी०—हींग, पुष्करमूल, तुम्बुरु, हरड, निसोत, सेंधानोन, विडलोन, जवाखार और शोंठ इनके समभाग निष्पन्न चूर्णको घीमें भूनकर जवोंके काथके संग पिलावे इससे रोगीका गुल्म और गुल्मके उपद्रव भेदित होकर नष्ट होजाते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवञ्चाऽम्लवेतसम् ॥ यवक्षारं यवानीञ्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २७ ॥ एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् ॥ भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥ २८ ॥

भा० टी०—वचा, हरड, हींग, सेंधा, अमलवेत, जवाखार और अजवायण इनके चूर्णको गरमजलके संग पानकरनेसे सात ही दिनमें शूलादि उपद्रवसहित गुल्मरोग भेदित होकर अग्निकी वृद्धि होती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः ॥
युक्ता पीता सुरा हन्ति गुल्ममाशु सुदुस्तरम् ॥ २९ ॥

भा० टी०–पिपली, पिपलामूल, चीता, कालीजीर, सेंधा इनके चूर्णसे युक्त कीहुई मदिराके पानसे तत्काल कठिनरूप गुल्म नष्ट होताहै ॥ २९ ॥

नादेयाकुटजार्कशिग्रुबृहतीकम्पिल्लभल्लातकीव्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटापामार्गतिष्याग्निकम् ॥ वासामुष्ककपाटलं सलवणं जग्ध्वा जले पाचितम् ॥ हिंग्वादिप्रतिपाचमेतदुदितं गुल्मोदरप्लीहिषु ॥ ३० ॥

भा० टी०–नादेई, कूडा, अर्ककी जड, सैंजना, कंटकारी, कबीला, भिलावाफल, कटेहरी, ढांक, नीम, जटामांसी, अपामार्ग (चिरचिरा), आंवला, चीता, वांसा, कठपाढर, पाढरके फूल इनको लवणसहित जलमें हिंगु आदिके संग पकाय खावे । यह योग गुल्म, उदर, और प्लीहरोगवालोंके लिये हित कहा है ॥ ३० ॥

हिङ्गूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ॥
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविसूचिकासु ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हींग, वचा, विडलोन, शोंठ, कालीजीर, हरड, पोहकरमूल, कूडा इनके उत्तरोत्तरक्रमसे भाग बढाकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण गुल्म, उदर, अजीर्ण और विसूचिकामें अभीष्ट है ॥ ३१ ॥

त्रिफलाकाञ्चनपरासप्तलानलिनीवचाः॥ त्रायन्तीहबुषातिक्तात्रिवृत्सैन्धवपिप्पलीः ॥ ३२॥ पिबेद्विचूर्ण्य मूत्रोष्णावारिमांसरसादिभिः ॥ सर्वगुल्मोदरप्लीहकुष्ठार्शःशोषपीडितः ॥ ३३ ॥

भा० टी०–त्रिफला, कचनार, वनककोडा, सातला, नलिनी, वचा, त्रायमाण, हाऊबेर, कटुकी, निशोत, सेंधा, पिपली इनका चूर्ण बनाय गोमूत्र, वा गरमजल, वा मांसरस आदिकोंके संग वह मनुष्य पान करे जो गुल्म, उदर, प्लीह, कुष्ट, और बवाशीर तथा शोषरोगसे पीडित हो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

शताह्वाचिरविल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ॥
कल्कः पीतो हरेद्गुल्मं तिलक्काथेन रक्तजम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०–सौंफ, करंजकी छाल, देवदार, भारङ्गी, पिपली इनके कल्कको तिलक्काथके संग पानकरनेसे रक्तसे उपजा गुल्म नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

तिलक्काथो गुडव्योषहिङ्गुभार्ङ्गीयुतो भवेत् ॥
शस्तो रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०–गुड, त्रिकटु, हींग, भारङ्गी इनकरके युक्त तिलक्काथ रक्तजन्य गुल्ममें और स्त्रीसम्बन्धीरजोधर्मके विप्लवमें भी प्रशस्त होताहै ॥ ३५ ॥

पीतो धात्रीरसो युक्त्या किंशुकक्षारभावितः ॥
क्षारत्र्यूषणयुक्ता वा मदिरा वातगुल्मनुत् ॥ ३६ ॥

भा० टी०–आंवलेके रसको युक्तिसे ढांककी खारमें भावना देकर पीवे । किंवा मदिराको जवाखार, त्रिकटुके संग मिलाय पीवे । यह दोनों योग वातगुल्मके नाशक हैं ॥ ३६ ॥

अथ हबुषाद्यं घृतम् ।

हबुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ॥ साजाजिपिप्पलीमूलैर्दीपकैर्विपचेद् घृतम् ॥ ३७ ॥ सकोलमूलकरसं सक्षीरदधिदाडिमम् ॥ तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ ३८ ॥ योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ॥ पार्श्वहृद्वस्तिशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ३९ ॥

भा० टी०–हाऊबेर, त्रिकटु, इलायची, चव्य, चीता, सेंधा, कालीजीर, पिपलीमूल, अजवायन इनके पृथक् २ एक २ पलभाग लेकर कल्क बनावे । अनन्तर २ सेर बेरका काथ, २ सेर सूखी मूलीका काथ, २ सेर दूध २ सेर दधि और २ सेर दाडिमका काथ लेकर एक पात्रमें रक्खे । पश्चात् उस पूर्वोक्त कल्कको और २ सेर घृतको इस काथमें मिलाय पकावे । सिद्ध होनेपर यह घृत वातगुल्म, शूल, आनाह, विबन्ध, योनिरोग, बवासीर, ग्रहणीदोष, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, पसलीशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल इन सब रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ दन्त्यभयाख्यो योगः ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाऽभया ॥ दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ४० ॥ तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्त्या समं गुडम्॥ अभयास्त्रिवृतश्चूर्णं तैलञ्चाऽपि चतुष्पलम्॥ ४१॥ पलमेकं कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहेऽथ शीतले ॥ क्षौद्रार्द्धकुडवं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ४२ ॥ ततो लेहपलं लीढा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ॥ स्निग्धो विरिच्यते दोषः पथ्यमद्यादसौदनम् ॥४३॥

प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः॥ शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वर-कुष्ठान्यरोचकाः ॥ ४४ ॥

भा० टी०–२५ हरड, २५ पल दन्ती, २५ पल चीता इनको एक द्रोण जलमें पकावे। जब अष्टमांश शेष रहे तब उसको छानकर निकाल ले, और उन २५ हरडोंको तथा ४ पल ल, और ४ पल निसोत, एवं एक पल पिपली और शोंठके चूर्णको तथा २५ पल गुडको ले उस रसमें पकावे। जब लेहकी भांति सिद्ध होजाय तब शीतल होनेपर उसमें १६ तोला सहद और एकपल इलायची, दालचीनी, तेजपात तथा नागकेशरके चूर्णको मिलावे॥ ४० ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ अनन्तर पलभर लेहको चाटकर पीछेसे उन पकाई हरडोंमेंसे एक हरड खावे। इससे गुलमसंबन्धी दोष (राध) स्निग्ध होकर निकलने लगता है इस दशामें गुलमरोगी रससहित भातका पथ्य खावे॥ ४३ ॥ इस प्रयोगसे प्लीहा, शोथ, गुल्म, बवाशीर, हृद्रोग, पांडुरोग, ग्रहणीदोष, उत्क्लेश, विषमज्वर, कुष्ठ, अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ४४ ॥

अथ त्र्यूषणाद्यं घृतम्।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गचव्यचित्रकैः॥
कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥ ४५ ॥

भा० टी०–त्रिकटु, त्रिफला, मोथ, वायविडङ्ग, चव्य, चीता इनके कल्क करके दूधके संग सिद्ध किया घृत वातज गुलमको दूर करताहै ॥ ४५ ॥

अथ द्राक्षाद्यं घृतम्।

द्राक्षामधुकखर्ज्जूरं विदारी सशतावरी ॥ परूषकानि त्रिफला साधयेत्पलिका इमाः ॥ ४६ ॥ जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च ॥ घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादकम् ॥ ४७ ॥ साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्क्कराक्षौद्रपादिकम् ॥ पित्तगुल्महरं सर्पिः सर्वपित्ता-मयापहम् ॥ ४८ ॥

भा० टी०–दाख, मुलहठी, खजूर, विदारी, शतावरी, फालसा, त्रिफला इनके एक एक पलभाग लेकर ४ प्रस्थ जलमें पकावे॥ ४६ ॥ जब चतुर्थांश रहे तब रसको छान ले, तब रसकी समान आंवलेका रस, और उतना ही घृत तथा घृतके समान दूध, और उतना ही इक्षुरस, तथा चतुर्थांश हरडके कल्कको ले उस रसमें पकावे। सिद्ध और शीतल होनेपर घृतकी चौथाई मधु और उतना ही शक्कर मिलावे। यह सिद्ध घृत पैत्तिक गुल्म तथा सब प्रकारके पित्तज रोगोंको नष्ट करताहै॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ व्योषाद्यं घृतम् ।

सव्योषक्षारलवणं दशमूलशृतं घृतम् ॥
कफगुल्महरं शीघ्रं सहिङ्गुबिडदाडिमम् ॥ ४९ ॥

भा० टी०—त्रिकटु, खारीनोन, हींग, विडलोन, अनार इनके संग दशमूल करके सिद्ध हुआ घृत शीघ्र ही कफजनित गुल्मको हरताहै ॥ ४९ ॥

अथ क्षीरषट्पलं घृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥५०॥ क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मनरोचकम्॥ ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहकासज्वरापहम् ॥ ५१ ॥

भा० टी०—पिपली १, पिपलीमूल २, चव्य ३, चीता ४, शोंठ ५, जवाखार ६, इनके अलग २ एक २ पलभाग कल्क और एक प्रस्थ घृत तथा एक प्रस्थ दूधको ले एकत्र पकावे ॥ ५० ॥ सिद्धहोनेपर यह घृत गुल्मरोग, अरुचि, ग्रहणी, पांडुरोग, हृद्रोग, फीहा, कास, ज्वर इन सबको नष्ट करताहै ॥ ५१ ॥

धात्रीफलानां स्वरसे षडङ्गं विपचेद् घृतम् ॥
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ५२ ॥

भा० टी०—आंवलाफलोंके ४ सेर स्वरसमें १ सेर घृत और १ सेर दूधको क्षीरषट्पलमें कहे द्रव्योंके तत्प्रमाणभागोंके संग पकावे और सिद्ध होनेपर उसमें शक्कर और सेंधा मिलाय खानेसे सब प्रकारके गुल्मरोगवालोंके लिये हितकर है ॥ ५२ ॥

अथ वृश्चीरारिष्टः ।

वृश्चीरमुरुबूकश्च वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ॥ चित्रकश्च जले द्रोणे पचेत्पादावशेषितम् ॥ ५३ ॥ मगधाचित्रकक्षौद्रलिप्ते कुम्भे निधापयेत् ॥ मधुनः प्रस्थमादाय पथ्याचूर्णार्द्धसम्मितम् ॥ ५४ ॥ व्युषितस्तु दशाहेन जीर्णतक्रेण सेवितः ॥ अरिष्टोऽयं जयेद्गुल्ममविपाकं सुदुस्तरम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०—श्वेत पुनर्नवा, एरंडीकी जड, रक्त पुनर्नवा, कटेरी, कंटकारी, चीता इनके आठ २ पल भाग लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब चतुर्थांश रहे तब उसे छानकर ॥ ५३ ॥ पिपली, चीता और सहदके लेपसे लिप्तकिये कलशमें रखदेवे । अनंतर उसमें १ प्रस्थ मधु और आधाभाग हरडके चूर्णको मिलाय दश दिनतक वैसे ही कलशमें रहने देवे, तब पर्य्युषित

(बहुतकालकी) छाछके संग इस अरिष्टको सेवन करे । यह योग आमदोषसहित दुस्तर गुल्मको जीतता है ॥ ९४ ॥ ९९ ॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि वै दलम् ।
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ५६ ॥

भा० टी०–गुल्मरोगवाला मनुष्य वल्लूर (सूखा मांस तथा सूकरमांस) मूली, मछलियां, सूखे शाक, द्विदलान्न आलु, शाक और मधुरफलोंको भी न खावे ॥ ९६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे गुल्मरोगाधिकारः ॥ ३२ ॥

अथ हृद्रोगाधिकारः ३४.

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदि संश्रिताः ॥
पीडां तत्र प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ १ ॥

भा० टी०–वातादिदोष कुपित हो रसधातुको दूषित करके हृदयमें आश्रय करतेहुए वहां पीडा करते हैं इसीका नाम हृद्रोग कहा है ॥ १ ॥

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ॥
द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च ॥ २ ॥

भा० टी०–वातसे उपजेहुए हृद्रोगमें रोगीको तैल और लवणसहित दशमूलके क्वाथसे वमन करावे ॥ २ ॥

पिप्पल्येला वचा हिंगुर्यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ॥ सौवर्चलमथो शुण्ठी ह्यजमोदा च चूर्णितम् ॥ ३ ॥ फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्या-सवादिभिः ॥ पाययेच्छुद्धदेहं तं स्नेहेनाऽन्यतमेन वा ॥ ४ ॥

भा० टी०–पिपली, इलायची, वचा, हींग, जवाखार, सेंधा, कालानोन, शोंठ, अजमोद इनके चूर्णको त्रिफलाक्वाथके संग वा कांजीके संग वा कुलथीयूपके संग वा दधि, मदिरा, आसव वा अन्य किसी स्नेहके संग शुद्ध शरीरवाले हृद्रोगीको पिलावे ॥ ३ ॥ ४ ॥

नागरं वा पिबेदुष्णं कषायं वह्निवर्द्धनम् ॥
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ ५ ॥

भा० टी०–अथवा यह रोगी गरम २ शोंठके क्वाथको पीवे । यह क्वाथ अग्निवर्द्धक और श्वास, कास, वात तथा शूल और हृद्रोगका नाशक है ॥ ५ ॥

शीताः प्रदेहाः परिसेचनानि तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ॥
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–पित्तदोषसे उपजे हृदयरोगमें चन्दनादिके शीतल प्रलेप, शीतल जलका सेचन, एवं विरेचन आदि उपचार करे, विरेचनादिसे शरीरका शोधन होनेपर दाख, चीनी, मधु और फालसेके साथ पित्तनाशक अन्न पान करे ॥ ६ ॥

सितान्वितेन नीरेण यष्टीं तिक्तकरोहिणीम् ॥
पिष्ट्वा पिबेदुरोरोगपीडितस्तत्प्रशान्तये ॥ ७ ॥

भा० टी०–हृद्रोगसे पीडितहुआ मनुष्य रोगशान्तिके लिये शक्करमिश्रित जलके संग मुलहठी और कटुकीको पीसकर पीवे ॥ ७ ॥

अर्ज्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये ॥
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥ ८ ॥

भा० टी०–अर्ज्जुनकी छाल, शक्कर, लघुपञ्चमूल, खिरेंटी, मुलहठी इनमेंसे किसी एक द्रव्यके संग सिद्धकियेहुए दूधको हृद्रोगमें प्रयुक्त करना ॥ ८ ॥

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ॥
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ९ ॥

भा० टी०–घी, दूध वा गुडके सर्वतके संग अर्ज्जुनवृक्षकी छालको सेवन करनेसे हृद्रोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तको नष्ट करके रोगी चिरजीवी होते हैं ॥ ९ ॥

दाडिमः कृष्णलवणः शुण्ठी हिंग्वम्लवेतसम् ॥
अपतन्त्रकहृद्रोगश्वासकासज्वरापहम् ॥ १० ॥

भा० टी०–दाडिम (अनार) काला नोन, शोंठ, हींग, अमलवेत इनका योग अपतन्त्रक वात, हृद्रोग, श्वास, कास और ज्वरका नाशक है ॥ १० ॥

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते ॥
वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च पाययेत् ॥ ११ ॥

भा० टी०–कफसे उपजेहुए हृदयरोगमें वचा और नीमकी छालका क्राथ पिलाकर वमन करावे और वातज हृद्रोगमें कहे पिप्पल्यादि चूर्णोंको देवे ॥ ११ ॥

त्रिदोषजे लंघनमादितः स्यादन्नं च सर्वेषु हितं विधेयम् ॥
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्य्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–त्रिदोषसे उपजेहुए हृद्रोगमें प्रथम लंघन करावे और पश्चात् दोषानुकूल पथ्य अन्न पान देवे एवं वातादिदोषोंकी हीनता, प्रबलता और समत्वके विचारसे तीनों दोषोंमें यथोचित चिकित्सा करनी ॥ १२ ॥

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समन्वितम् ॥

हृद्रोगश्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ १३ ॥

भा० टी०—कूडाके चूर्णको मधुके संग चाटनेसे भी हृद्रोग, श्वास, कास, क्षय, और हिचकी यह सब दूर होतेहैं ॥ १३ ॥

तैलाष्टगुडविपक्कं चूर्णं गोधूमजं वाऽपि ॥

पिबति पयोऽनु च स भवेदाजीवनविरहितामयः पुरुषः ॥ १४ ॥

भा० टी०—तैलसे आठगुने गुडके संग पकायेहुए गेहूंचूर्णको खाकर पीछेसे दूधको पीनेवाला मनुष्य जीवनपर्यन्त नीरोग रहता है ॥ १४ ॥

गोधूमककुभचूर्णं छागपयोगव्यसर्पिषा पक्कम् ॥

मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धूतं पुंसाम् ॥ १५ ॥

भा० टी०—गेहूं और अर्ज्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको बकरीदूध और गोघृतमें पकावे पीछे मधु, शक्कर मिलाय पीवे । यह योग उद्धत हृद्रोगको भी शांत करताहै ॥ १५ ॥

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत्॥ हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ १६ ॥ रसायनं परं बल्यं वातजिन्मत्स्ययोजितम् ॥ संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १७ ॥

भा० टी०—गंगेरनकी जडके चूर्णको वा अर्ज्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको दूधके संग पिलावे । यह योग हृद्रोग और श्वास कासका नाशक एवं मत्स्यनाथका बनायाहुआ परम बलकर रसायनरूप है, वर्षपर्य्यन्त इसके प्रयोग करनेसे मनुष्य १०० वर्षपर्य्यन्त जीताहै॥ १६ ॥ १७ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥

पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ १८ ॥

भा० टी०—हींग, वचा, विडलोन, शोंठ, पिपली, कूडा, हरड, चीता, जवाखार, कालानोन, पोहकरमूल इनके चूर्णको जवोंके काथके संग पीनेसे शूल और हृद्रोग नष्ट होवें॥ १८॥

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारयोजितः ॥

श्वासं कासं सहृद्रोगं गुल्मशूलञ्च नाशयेत् ॥ १९ ॥

भा० टी०—दशमूलका कषाय लवणक्षारके संग प्रयुक्त होनेसे श्वास, कास, हृद्रोग, और गुल्मशूलको भी नष्ट करता है ॥ १९ ॥

कृमिहृद्रोगिणां स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ॥

दध्ना समन्वितं वैद्यस्त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ २० ॥

भा० टी०-वैद्यको उचित है कि, कृमिजन्य हृद्रोगवालोंको तीन दिनतक दधिके संग स्निग्ध मांसौदन (मांसके संग सिद्धकिया भात) खिलावे तदुत्तर विरेचन करावे ॥ २० ॥

सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः सम्यक्ससर्शकरैः । विडङ्गगाढैर्वात्यम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ २१ ॥ कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम् ॥ हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात्कृमयो नृणाम् ॥ २२ ॥ यवान्नं वितरेच्चाऽस्मै सविडङ्गमतः परम् ॥ निशायां च निशां पक्वां दद्यादुष्णेन वारिणा ॥ २३ ॥

भा० टी०--सुगंधित, और लवणसहित तथा शक्करयुक्त, एवं वायविडङ्गकी अधिकतावाले योगोंसे वा अत्यन्त अम्लरससम्पन्न हित उपायोंसे इस रोगीको उपचारित करे ॥ २१ ॥ किंवा कृमिजन्य हृद्रोगमें वायविडङ्ग और कूडाके चूर्णसे युक्त गोमूत्रको पीनेसे हृदयस्थानकी कृमि नीचे गिरकर मलके संग निकल जाती हैं ॥ २२ ॥ कृमिजन्य हृद्रोगीके लिये वायविडंगसहित यवान्नको देवे, और रात्रिके समय काची हलदीको पकाकर गरमजलके संग देवे ॥ २३ ॥

अथ श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्य्यकत्तृणम्॥ दर्भमूलं पृथक्पर्णी चैलासर्षपकौ स्थिरा ॥ २४ ॥ पलिकाः साधयेत्तेषां रसे क्षीरं चतुर्गुणे॥ कल्कैः स्वगुप्तर्षभकौ मेदाजीवन्तिजीवकैः ॥ २५ ॥ शतावर्य्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीवृषैः ॥ सिद्धं घृतं वातपित्तहृद्रोगश्वासशूलनुत ॥ २६ ॥ मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शोनिलकासक्षयापहः । उत्साहयेद्बलोद्रेकैर्धनुःस्त्रीमद्यकर्षितान् ॥ २७ ॥

भा० टी०-गोखरु, खश, मंजीठ,खिरेंटी, गंभारी, पिठवन, कुशाकी जड, इलायची, सरसों, शालवन इनके एक २ पल भाग लेकर काढा बनावे चौथाई रहनेपर छान ले तदुत्तर काढेका चौथाई दूध और उतनेही घृतको कौंछ, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीवक, शतावरी, ऋद्धि, दाख, शक्कर, मुंडी, वांसा इनके कल्कके संग उस काढेमें पकावे । सिद्ध होनेपर यह घृत वात, पित्त, हृद्रोग, श्वास, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, बवाशीर, वातज कास, क्षय इन रोगोंको दुराता और धनुष चलाने तथा स्त्रीप्रसङ्ग और मद्यपान करनेसे माडेवडेहुए मनुष्योंको भी बलिष्ठ बनाय उत्साहित करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ बलाद्यं घृतम् ।

घृतं बलानागबलार्ज्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ॥ हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक्छमयत्युदीर्णम् ॥ २८ ॥

भा० टी०–खिरेंटी, गंगेरन और अर्ज्जुनछालके क्वाथमें मुलहठीका कल्क डालकर घृत पकावे। यह सिद्ध घृत हृद्रोग, शूल, क्षतक्षय, रक्तपित्त, कास, वातरक्त इनको शान्त करताहै ॥२८॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे हृद्रोगाधिकारः ॥ ३४ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ३९.

पृथङ्मलाः स्वैः कुपितानिदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ ॥
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ १ ॥

भा० टी०–व्यायाम, मद्यपान, अतिस्त्रीप्रसङ्ग आदि अपने कारणोंसे कुपितहुए वातादि-दोष भिन्न २ वा त्रैदोषिकभावसे बस्तिस्थानमें प्राप्त होकर मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं अतएव रोगीको बडे संकटसे जबतब पेशाब करना होता है इसीका नाम मूत्रकृच्छ्र है ॥ १ ॥

अश्मरीशान्तिविधयो य उक्ताः प्रसमीक्ष्य तान् ॥
यथादोषं प्रयुञ्जीत स्नेहादिक्रममत्र च ॥ २ ॥

भा० टी०--पथरी रोगकी शान्तिके लिये जो विधान कहे हैं उनको, और स्नेहादि-क्रमको भी दोषबलके अनुसार विचारपूर्वक मूत्रकृच्छ्रमें प्रयुक्त करे ॥ २ ॥

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ॥
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चाऽनिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३ ॥

भा० टी०–वातजन्य मूत्रकृच्छ्रमें शास्त्रोक्त तैल आदिसे अभ्यङ्ग, स्नेहबस्ति, निरूहबस्ति, स्वेदकर्म्म, प्रलेप, उत्तरबस्ति, परिषेक, आदि उपाय करे तथा शालपर्न आदि वातनाशक द्रव्योंसे सिद्धकिये मांसादिरसोंको देवे ॥ ३ ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहाः ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविरेकाः ॥
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्य्याः ॥ ४ ॥

भा० टी०–पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्रमें ठण्ढे जलसे शरीरको सींचना, एवं शीतल जलाशयमें स्नान करना, शीतल द्रव्यों (खश चन्दन आदि) का लेप, ग्रीष्मकालिक उपचार, बस्तिकर्म, दूधके द्वारा विरेचन, तथा दाख विदारीकन्द और ईखके रसको घृतके संग पानकरना आदि उपायोंको करे ॥ ४ ॥

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः ॥
तक्रं सतिक्तौषधिसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

भा० टी०–कफसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें क्षार, उष्णद्रव्य, पञ्चकोलादि तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण भोजन, स्वेदकर्म, यवान्न, वमन, निरूहवस्ति, एवं तिक्त औषधियोंसे सिद्ध किये तैलसहित तक्रका मर्दन और पानकरना आदि उपाय करे ॥ ५ ॥

सर्वे त्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्य्यम् ॥
त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं विरेकः पित्ते कफे स्यात्पवने तु वस्तिः ॥ ६ ॥

भा० टी०–त्रिदोषसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें पूर्वोक्त वातादिदोषोंके उपचारोंको मिश्रीभावसे दोषोंकी अवस्थानुसार प्रयुक्त करे । कफाधिक त्रिदोषमें प्रथम वमन, और पित्ताधिकमें प्रथम विरेचन, एवं वाताधिकमें प्रथम बस्तिकर्म करना उचित है ॥ ६ ॥

अमृता नागरं धात्रीवाजिगन्धात्रिकण्टकान् ॥
प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ ७ ॥

भा० टी०–गिलोय, शोंठ, आंवला, असगन्ध, गोखरु इनके चूर्णको वातरोगसे पीडित एवं शूल और मूत्रकृच्छ्रवाला मनुष्य गरमजलके संग पीवे ॥ ७ ॥

कुशकाशशरा दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ॥
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥ ८ ॥

भा० टी०–कुश, कास, रामशर, दाभा, ईख इन पञ्चमूलसंज्ञक तृणोंकी जडका सरबत पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रका नाशक और बस्तिका शोधक है ॥ ८ ॥

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥ ९ ॥

भा० टी०–पूर्वोक्त पञ्चतृणोंका क्वाथ सिद्धहोनेपर दूधके संग पान कियेजानेसे लिंगगत दूषित रुधिरको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकशेरुकानाम् ॥
क्काथं सुशीतं मधुशर्कराढ्यं पानाज्जयेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम् ॥ १० ॥

भा० टी०–शतावरी, काश, कुश, गोखरु, विदारीकन्द, सालवन, ईख, कशेरुकन्द, इनका क्वाथ जब शीतल होजाय तब उसमें मधु, शक्कर मिलाय पानकरनेसे पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्रको जीते ॥ १० ॥

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभित्त्वग्युतवासकानाम् ॥
क्काथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहार्तिविबन्धयुक्ते ॥ ११ ॥

भा० टी०–दाह, पीडा और विबन्धसे युक्त मूत्रकृच्छ्रमें हरड, गोखरु, अमलतास, पाषाणभेद, दालचीनी और वांसा इनके क्वाथको मधुके संग पीवे ॥ ११ ॥

गुडेनाऽऽमलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम् ॥ पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ १२ ॥ मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा ॥ कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ १३ ॥

भा० टी०–गुडयुक्त आंवला वृष्य, श्रमनाशक, तर्पण, रोचक और पित्त रक्तदाह शूल तथा मूत्रकृच्छ्का नाशक है ॥ १२ ॥ छोटी इलायचीको गोमूत्र, वा मद्य, वा केलेके स्वरसमें महीन पीसकर पीवे इससे कफजन्य मूत्रकृच्छ्र नष्ट होय ॥ १३ ॥

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकः ॥
पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रं त्रैदोषिकं जयेत् ॥ १४ ॥

भा० टी०–कंटकारी, पिठवन, पाठा, मुलहठी, कूडा यह पाचनीय बृहत्यादिगण त्रिदोषजन्य मूत्रकृच्छ्रको जीतता है ॥ १४ ॥

गुडेन मिश्रितं क्षीरं कदूष्णं कामतः पिबेत् ॥
मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरुक्षु च ॥ १५ ॥

भा० टी०–सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र तथा शर्करा नाम प्रमेह और वातरोगोंमें गरम २ गुडमिश्रित दूधको पीवे ॥ १५ ॥

तथाऽभिघातजे कुर्य्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥
मूत्रकृच्छ्रे सदा चाऽस्य कार्य्या वातहरी क्रिया ॥ १६ ॥

भा० टी०–अभिघातसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें सद्योव्रणमें कहीहुई चिकित्सा करनी उचित है। तथा इस मूत्रकृच्छ्रमें नित्य वातनाशक उपाय करने चाहिये ॥ १६ ॥

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे ॥ १७ ॥

भा० टी०–मलसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें स्वेदकर्म, चूर्णक्रिया, अभ्यङ्ग, वस्तिकर्म आदि उपाय करने उचित हैं ॥ १७ ॥

क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत् ॥ मूत्रकृच्छ्रं महाकृच्छ्रं पीतं शीघ्रं विनाशयेत्॥ १८॥ शर्कराश्मारिकृच्छ्रेषु शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ एलाहिंगुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ॥ १९ ॥

भा० टी०–गोखरुबीजके काथको जवाखारसहित पीनेसे अतिकठिन मूत्रकृच्छ्र भी सहसा नष्ट होवे ॥ १८ ॥ शर्कराप्रमेह, पथरी, और मूत्रकृच्छ्रमें इलायची और हींगके चूर्णसे युक्त दूधमें घृत मिलाय पानकरे ॥ १९ ॥

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः ॥
निघ्नन्ति लीढा मधुनाश्मरीञ्च सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ २० ॥

भा० टी०-गोखरु, अमलतास, दाभ, काश, दुरालभा, पाषाणभेद, हरड इनका चूर्ण मधुके संग उपयुक्त होनेसे सम्मुख मृत्युवाले मनुष्यके भी पथरीरोग और मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करताहै ॥ २० ॥

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ॥ यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य सम्यगासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्रात् ॥ २१ ॥

भा० टी०-इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पिपली इनके चूर्णको तंडुलजल वा गुडके संग सेवन करनेसे सम्मुख मृत्युवाला भी मूत्रकृच्छ्ररोगसे बचा रहताहै ॥ २१ ॥

अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ २२ ॥ सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रप्रणाशनः ॥ निदिग्धिकारसो वाऽपि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥ २३ ॥

भा० टी०-महीन पीसीहुइ मंडूरको मधुके संग तीन ही वार उपयुक्त करनेसे मूत्रकृच्छ्र निःसन्देह नष्ट होय ॥ २२ ॥ एवं शक्कर और जवाखारको समभाग लेकर सेवे तो सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र नष्ट होतेहैं । तथा कण्टकारीके रसमें मधु मिलाय पीनेसे भी मूत्रकृच्छ्र दूर होय ॥ २३ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम् ॥
सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २४ ॥

भा० टी०-शतावरी, काश, कुश, गोखरु, विदारीकन्द, ईख, आंवला इनकरके सिद्ध कियेहुए घृत वा दूधको शक्करके संग पित्तज मूत्रकृच्छ्रोंमें उपयुक्त करे ॥ २४ ॥

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ॥
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातशान्त्यै ॥ २५ ॥

भा० टी०-गोखरु, एरण्डीकी जड, कुशादिपञ्चमूल, शतावरी, तरबूज, ईख इनके स्वरस करके सिद्ध कियेहुए घृतमें घृतसे आधा गुड मिलाय पीवे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, और मूत्राघात रोग नष्टहोय ॥ २५ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मूत्रकृच्छ्राधिकारः ॥ ३९ ॥

अथ मूत्राघाताधिकारः ३६.

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ॥
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

भा० टी०–प्रायः मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेके कारण वातादिदोषोंके कुपित होनेसे वातकुण्डलिकादि तेरह प्रकारके मूत्राघातरोग उत्पन्न होतेहैं। आदि शब्दसे अष्ठीला, वातवस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रक्षय, मूत्रशुक्र, उष्णवात, मूत्रसाद, विड्विघात, बस्तिकुण्डल, मूत्रग्रंथि यह भेद जानने। इन तेरहोंका विशेष विवरण शास्त्रान्तरोंमें सम्पादित है॥ १॥

स्नेहः स्वेदस्तथा नस्यं हितं स्नेहविरेचनम् ॥
ततो विशुद्धदेहस्य हिताश्चोत्तरवस्तयः ॥ २ ॥

भा० टी०–स्नेहपान, स्वेदकर्म, नस्य, और स्नेहके द्वारा विरेचनकर्म, एवं शोधनकर्मके अनन्तर उत्तरवस्तिका कर्म भी मूत्राघातमें हितकर है॥ २॥

पाटलायावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ॥ क्षारोदकेण मदिरां त्वगेलोषणसंयुताम् ॥३॥ पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान्पृथक्पृथक् ॥ जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥४॥ सतैलं पाटलाभस्म क्षारवद्वा परिस्रुतम् ॥ सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः॥५॥

भा० टी०–पाढरकी छाल, जवाखार, फरहद, तिल इनकी पृथक् २ खार बनाय जलमें डालदेवे अनंतर इस क्षारयुक्त जलके संग दालचीनी, इलायची, और मिरिचके चूर्णसे युक्त मदिराको पीवे॥ ३॥ किंवा उक्तप्रकारके क्षार जलमें गुड मिलाय पीवे। एवं केशरके कल्कको मधुके संग जलमें डालकर रातभर रक्खेरहे और प्रातःकालमें पीवे॥ ४॥ किंवा पाढरके छालकी भस्मको जलमें डालकर क्षारके तुल्य ७ वार नितारकर तैलके संग पीवे अथवा काले नोंनके संग मदिरा पीवे इन सब प्रयोगोंसे मूत्राघात नष्ट होता है॥ ५॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ॥ धान्याम्लसंयुतं पीत्वा मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥६॥ पिबेच्छिलाजतुक्काथे गणे वीरतरादिके ॥ रसं दुरालभायाश्च कषायं वासकस्य वा ॥ ७ ॥

भा० टी०–तोलाभर ककडीबीजोंके कल्कको सेंधानोनके संग कांजीमें मिलाय पानकरनेसे मूत्राघातरोगसे मुक्त होताहै॥ ६॥ किंवा वीरतरादिगणके क्वाथमें शिलाजीत मिलाय पीवे। एवं दुरालभाके रसको, वा वांसेके कषायको पानकरनेसे भी मूत्राघात दूर होता है॥ ७॥

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूले ॥
गुडः प्रगाढः सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ८ ॥

भा० टी०–गोखरु, एरण्डीजड, शतावरी इनकरके सिद्ध किया दूध, वा कुशादि पञ्चमूलमें सिद्धकिया गुड, वा घृत, वा दूध भी मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंमें प्रशस्त है ॥ ८ ॥

विघृष्टमर्धाक्षयुतं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ॥
पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठं मूत्राघाते सशोणिते ॥ ९ ॥

भा० टी०–रुधिरयुक्त मूत्राघातमें तंडुलजलके संग घिसेहुए आधातोला चन्दनरसको शक्करके संग बार २ पीवे ॥ ९ ॥

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य विप्लुतम् ॥
मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणाय हितो विधिः ॥ १० ॥

भा० टी०–स्त्रियोंके अतिप्रसङ्गसे जिसका रुधिर दूषित होकर विप्लुत हुआ है उसके लिये स्त्रीप्रसङ्ग न करना ही एकमात्र पौष्टिक विधि है ॥ १० ॥

ताम्रचूडवसातैलं हितञ्चोत्तरवस्तिषु ॥ स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुर-सितारजः ॥ ११ ॥ समांशेनाऽर्द्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ सर्वं सम्यग्विमर्द्याऽक्षमात्रं लीढ्वा जलं पिबेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०–कुक्कुटकी चर्बीका तैल उत्तरवस्तिकर्ममें हित है। एवं कौंछके बीज, त्रिफला, दाख, पिपली, गोखरु, शक्कर इनके समभाग निष्पन्न चूर्णको आधाभाग दूध मधु और घृतके संग भलीभांति खरड करके अक्षप्रमाणसे खावे और पीछेसे जल पीवे ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ चित्रकाद्यं घृतम् ।

चित्रकं सारिवा द्राक्षा पिप्पली त्रिफला भवेत् ॥ तथैव मधुकं दद्याद्द्यादामलकानि च ॥ १३ ॥ घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ॥ १४ ॥ शीतं परिस्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ तुगाक्षीर्य्या च तत्सर्वं मतिमान् प्रतिमिश्रयेत ॥ १५ ॥ ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥ वातरेताः पित्तरेताः श्लेष्मरेताश्च यो भवेत् ॥ १६ ॥ रक्तरेता ग्रन्थिरेता मूत्रदोषशताकुलः ॥ जीवनीयश्च वृष्यश्च सर्पिरेतत्सुदारुणम् ॥ १७ ॥ प्रज्ञाहितकरं सत्यं सर्वरोगापहं शिवम् ॥ सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री

गर्भं लभतेऽचिरात् ॥ १८ ॥ असृग्दोषाञ्जयेच्चाऽपि योनिदोषान्सुसंहतान् ॥ मूत्रदोषेषु कृच्छ्रेषु कुर्य्यादेतच्चिकित्सितम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–चीतेकी जड, सरिवन, दाख, पिपली, त्रिफला, मुलहठी, आंवला इन प्रत्येकका अक्षप्रमाण कल्क बनाय एकद्रोण जल और एकद्रोण दूधमें उसे डालकर ४ प्रस्थ घृत सहित पकावे । सिद्ध होनेपर उतारलेवे ॥ १३ ॥ १४ ॥ जब ठण्ढा होजाय तब उसे छानकर एकप्रस्थ शक्कर और पलभर वंशलोचन मिलाले ॥ १५ ॥ अनन्तर यथाकाल दोषबलके अनुसार इस घृतको वह मनुष्य पीवे जिसके शुक्राशयमें वात, पित्त, कफ, रक्त, ग्रन्थि इनमेंसे कोई भी दोष हो एवं जो मूत्रसंबन्धी सैकडों दोषोंसे व्याकुल हो । यह घृत जीवनीय है, पौष्टिक है, रोगभयंकर है, एवं बुद्धिका हितकारी और सब रोगोंका संहारी है इसके प्रयोगसे वन्ध्या स्त्री भी शीघ्र ही गर्भको पाती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ यह घृत रक्तदोष और अनेकशः योनिदोषोंको जय करता है अतः मूत्राघातादि कठिन मूत्रदोषोंमें यह चिकित्सा उचित है ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मूत्राघाताधिकारः ॥ ३६ ॥

अथाऽश्मर्य्यधिकारः ३७.

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा ॥
प्रायः कफाश्रयाः सर्वा अश्मर्य्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

भा० टी०–वात, पित्त, कफ, और शुक्र इन चार दोषोंसे ४ प्रकारका पथरी रोग होता है । इनमेंसे वातादि तीनोंप्रकारकी पथरी प्रायः कफाश्रित रहती है यह सब प्रकारकी पथरी कालदण्डके समान दुःखदायिका हैं ॥ १ ॥

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ॥ यवक्षारगुडं दत्त्वा क्वथयित्वा पिबेद्धि ताम् ॥ २ ॥ अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ॥ ॥ ३ ॥ रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्क्कराश्मरिनाशनम् ॥ क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिनाशनः ॥ ४ ॥

भा० टी०–शोंठ, और गोखरुसहित वरनेकी छालको जवाखार और गुडके संग क्वथित करके पीवे ॥ २ ॥ यह क्वाथ बहुतकालसे उपजी हुई वातिक पथरीको नष्ट करता है एवं कुम्हडेके रसमें जवाखार और गुड मिलाय पीनेसे मूत्रविबन्ध, शर्करामेह, और पथरीरोग नष्ट होते हैं । एवं मन्दोष्ण २ सैंजिनजडके क्वाथको पीनेसे भी पथरीरोग नष्ट होवे ॥ ३ ॥ ४ ॥

वेल्लन्तरारणिकबूकवृषाश्मभेदगोकण्टकेत्कटसहाचरबाणकाशाः ॥ वृक्षादनीनलकुशद्वयगुण्ठगुन्द्राभल्लूकमोरटकुरंटकरम्भपार्थाः ॥ ५ ॥ वर्गो वीरतराद्योऽयं हन्ति वातकृतान्गदान् ॥ अश्मरीशर्क्करामूत्र-कृच्छ्रघातरुजाहरः ॥ ६ ॥

भा० टी०-खस, अरनी, ईश्वरमल्लिका, बांसा, पाषाणभेद, गोखरु, दीर्घलोहितयष्टि, पीली कटसरैया, नीलीकटसरैया, काश, अमरवेल, नड, कुश, दाभ, बृन्ततृण, एरका, सोना-पाठा, मूर्वा, कुरंटक, उत्तम अरनी, सूर्यवेल ॥ ५ ॥ यह वीरतरादिगण वातज रोगोंको नष्ट करता, एवं पथरी, शर्करामेह, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातको दुराता है ॥ ६ ॥

शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ कपोतवङ्कातिबलाभ-ल्लूकोशीरकन्तकम् ॥ ७ ॥ वृक्षादनी च वरुणः शाकजं फलमेव च ॥ यवाः कुलत्थाः कोलानि करकस्य फलानि च ॥ ८ ॥ उषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ॥ भिनत्ति वातसम्भूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम् ॥ ९ ॥

भा० टी०-शतावरी, गोखरु, कटेरी, कण्टकारी ब्राह्मी, गंगेरन, सोनापाठा, खश, कंतक-फल ॥७॥ अमरवेल, वरना, शाकफल, जव, कुलथी, कोल, अनारके फल, इनके क्वाथमें उषकादिगणके[1] द्रव्योंसे प्रतिवाप देकर घृतको पकावे । सिद्ध होनेपर यह घृत वातसे उपजी हुई पथरीको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

कुशः काशः शरो गुण्ठ इत्कटो मोरटोऽश्मभित् ॥ दर्भो विदारी वाराही शालीमूलं त्रिकण्टकः ॥ १० ॥ भल्लुकः पाटली पाठा प-त्तूरः सकुरण्टकः ॥ पुनर्नवा शिरीषश्चै-तेषां क्वाथे पचेद् घृतम् ॥ ११ ॥ पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनेन्दीवरेण वा ॥ मधुकेन शिलाजेन तत्पि-त्ताश्मरिभेदनम् ॥ १२ ॥

भा० टी०-कुश, कास, रामशर, गुंडतृण, इत्कट, मूर्वा, पाषाणभेद, दाभ, विदारीकंद, वाराहीकन्द, चौलाईकी जड, गोखरु ॥ १० ॥ सोनापाठा, पाटला, पाठा, पतंग, कुरंटा, पुनर्नवा (विषखपरा), शिरस इनके क्वाथमें ककडी आदिके बीजसे, वा नीलकमलसे वा मुल-

---

१ उषकादिगण-उषकस्तुत्थकं हिंगुकासीसद्वयसैन्धवम् ॥ सशिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापह-म् ॥ १ ॥ भा०-खारी माटी, नीलाथोथा, हींग, दोनोंकासीस, सेंधा, शिलाजीत-यह उषकादिगण मूत्रकृच्छ्र, पथरी, मेदोरोग और कफरोगका नाशक है ॥ १ ॥ अष्टाङ्गहृदये ॥

हठीसे, वा शिलाजीतसे प्रतिवाप देकर घृत पकावे । यह घृत पान होते ही पित्तज पथरीको काट डालता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

गणे वरुणकादौ तु गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः ॥ कुष्ठमुस्ताह्वमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः ॥ १३ ॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरुषकादिगणेषु च ॥ भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तत् ॥ १४ ॥

भा० टी०–गोगल, इलायची, रेणुका, कूडा, मोथा, मरिच, चीता, देवदार इनके कल्कके संग वरुणादिगणमें वा उषकादिगणमें सिद्ध कियाहुआ बकरीका घृत शीघ्र ही कफसे उपजीहुई पथरीको छेदताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ॥
भोजनानि च कुर्वीत गणेष्वेषु यथाक्रमम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–वातज पथरीमें पूर्वोक्त वातनाशक गणसे, पित्तज पथरीमें पूर्वोक्त पित्तनाशक गणसे, तथा कफज पथरीमें कफनाशक गणसे सिद्ध कियेहुए खार, यवागू, पेया, कषाय, दूध और भोजनको देवे ॥ १५ ॥

वरुणसैर्य्यकयुग्मशतावरीदहनमोरटबिल्वविषाणिकाः ॥ द्विबृहतीद्विकरञ्जजयाद्वयं वहलपल्लवदर्भरुजाकराः ॥ १६ ॥ वरुणादिः कफं मेदो मन्दाग्नित्वं नियच्छति ॥ अधोवातं शिरःशूलं गुल्मञ्चान्तः सविद्रधिम् ॥ १७ ॥

भा० टी०–वरना, दोनों प्रकारकी कटसरैया, शतावरी, चीता, मूर्वा, बेलगिरी, मेंढाशिंगी, कटेहरी, कंटकारी दोनोंप्रकारके करञ्जुवे, अरनी, हरड, सैंजन, दाभ, हिताल ॥ १६ ॥ यह वरुणादिगण कफ, मेद, मन्दाग्नि, अधोवायु, मस्तकशूल, गुल्म और विद्रधिरोगको भी नष्ट करताहै ॥ १७ ॥

शुक्राश्मर्य्यास्तु सामान्यो विधिस्तस्या विनाशकः ॥
सेवेत पूर्वं विहितं कौष्मांडं रसमुत्तमम् ॥ १८ ॥

भा० टी०–शुक्रदोषसे उपजीहुई पथरीका नाशनेवाला साधारण उपाय यह है कि, पेठेके रसमें गुड और जवाखार मिलाय पीवे ॥ १८ ॥

नागरवरुणकगोक्षुरकपोतवंकोद्भवः क्वाथः ॥
गुडयवशूकविमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–शोंठ, वरनेकी छाल, गोखरु, ब्राह्मी इनके क्वाथमें गुड और जवाखार मिलाय पीनेसे भयंकर पथरी नष्ट होय ॥ १९ ॥

वरुणत्वक्छिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः ॥ कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिनत्त्यसौ॥ २०॥ वरुणत्वक्कषायस्तु पीतो गुडसमन्वितः॥ अश्मरीं घातयत्याशु वस्तिशूलनिषूदनः ॥ २१ ॥

भा० टी०–वरनेकी छाल, पाषाणभेद, सोंठ, गोखरु इनके कषायमें जवाखार मिलाय पीनेसे पथरी नाश होतीहै ॥ २० ॥ एवं केवल वरनेकी छालके कषायमें गुड मिलाय पीनेसे भी पथरी नष्ट होती और वस्तिशूल भी दूर होताहै ॥ २१ ॥

कुष्ठेन कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये ॥
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे मूत्राभिघाते च समूत्रबन्धे ॥ २२ ॥

भा० टी०–वरनाके क्काथमें कूडा, पेठा और गोखरुके कल्कको मिलाय घृतको पकावे। सिद्ध होनेपर इस घृतको सबप्रकारकी पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र, मूत्राभिघात और मूत्रविबन्धमें प्रयुक्त करे ॥ २२ ॥

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद् घृतम् ॥
प्रस्थं गोक्षुरकल्केन सिद्धमद्यात्सशर्करम् ॥ २३ ॥
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ २४ ॥

भा० टी०–रामशर, कुश, काश, आदि पञ्चमूलके कषायमें गोखरु कल्कके संग एक प्रस्थ घृत पकावे। सिद्ध होनेपर शक्कर मिलाय खावे। यह घृत पथरी, मूत्रकृच्छ्र और शुक्रमार्गके रोगोंको नष्ट करताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ वरुणाद्यं घृतम् ।

वरुणत्वक्तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत्॥ पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५ ॥ अक्षमात्रं पिबेज्जन्तुर्देशकालादितत्त्ववित् ॥ जीर्णे चाऽस्मिन्पिबेदेतत्सागुरूषितमस्तुना ॥२६॥ अश्मरीं शर्कराश्चैव मूत्रकृच्छ्रञ्च नाशयेत् ॥ २७ ॥

भा० टी०–महीन पीसीहुई १०० पल वरनेकी छालको एक द्रोणजलमें पकावे जब चतुर्थांश रहे तब उसे नितारकर उसमें १ प्रस्थ घी पकावे ॥ २५ ॥ सिद्ध होनेपर देशकालादिके विचारपूर्वक इसकी अक्षप्रमाण मात्रा बनाय पीवे। जब यह घृत जीर्ण होजाय तब इसमें अगरु मिलाय पर्य्युषित दधि तोडके संग पीवे। यह घृत पथरी, शर्करामेह और मूत्रकृच्छ्रको भी नष्ट करताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ सैन्धवाद्यं तैलम्।

सैन्धवाद्यञ्च यत्तैलमृषिभिः परिकीर्तितम्॥ तत्तैलं द्विगुणं क्षीरं पचेद्वीरतरादिना ॥ २८ ॥ क्वाथेन पूर्वकल्केन साधितन्तु भिषग्वरैः॥ एतत्तैलं सर्वश्रेष्ठमश्मरीणां विनाशनम् ॥२९॥ मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे मथिते मर्दिते तथा ॥ भग्नांगे पतिते चैव तैलमेतत्प्रयोजयेत्॥३०॥

भा० टी०–मुनियोंका कथन कियाहुआ सैंधवादि तैल और इससे दुगुने दूधको पूर्वोक्त वीरतरादिगणोक्त द्रव्योंके क्वाथमें पूर्वोक्त कल्कके संग पकावे। सिद्ध होनेपर यह तैल पथरीका नाशकरनेवाला एक सर्वश्रेष्ठ उपाय है ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस तैलको मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, तथा मथित, मर्दित, भग्नांग और पाषाणादिसे पतितहुए मनुष्यपर भी प्रयुक्त करे ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्देऽश्मर्यधिकारः ॥ ३७ ॥

अथ प्रमेहमधुमेहपिडिकाधिकारः ३८.

दोषा वस्तिगता धातून्दैहिकान्परिकृष्य ते ॥
भिन्ना वा सन्निपतिता नानामेहान्प्रकुर्वते ॥ १ ॥

भा० टी०–जब अपने कारणोंसे कुपितहुए वातादिदोष भिन्न २ वा सन्निपातरूपसे वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर शरीरकी धातुओं (रक्त, मज्जा, वसा, मांसादि) को खींचतेहैं तब दोषसंस्थानके अनुसार अनेक प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकि ॥
कुलत्थाश्च हिता भोज्याः पुराणा मेहिनां सदा ॥ २ ॥

भा० टी०–समाधान्य, कोदों, वनकोदों, गेहूँ, चणे, अरहर और पुरानी कुलथी यह पदार्थ प्रमेहवाले मनुष्योंकेलिये हित हैं । और इनसे अतिरिक्त गुड, गुडविकार, गरिष्ट अन्न (मत्स्यमांसादि) यह सब अहित हैं ॥ २ ॥

मेहिनां तिक्तशाकानि जांगला हरिणाण्डजाः ॥
यवान्नविकृतिर्मुद्गाः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः ॥ ३ ॥

भा० टी०–कडुवे शाक, जांगलदेशी मृगोंके और मुरगा, तीतर आदि पक्षियोंके मांसरस भी, एवं यवान्नके विकार, मूंग, शालिधान्य, साठीचावल यह सब पदार्थ प्रमेहवालोंके लिये हितकारक हैं ॥ ३ ॥

दूर्वाकसेरुपूतीककुम्भीकप्लवशैवलम् ॥
जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ४ ॥

भा० टी०-दूब, कसेरु, पूतिकरञ्ज, नागकेशर, कैवर्तीमोथा, सिवार इनको जलमें क्वथित करके पीनेसे शुक्रप्रमेह दूर होवे ॥ ४ ॥

त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः ॥
शीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५ ॥

भा० टी०-त्रिफला, अमलतास, और दाख इनका कषाय शीतल होनेपर मधुके संग उपयुक्त होनेसे मनुष्योंके फेनप्रमेहको नष्ट करता है ॥ ५ ॥

लोध्राभयाकटफलमुस्तकानां (१) विडङ्गपाठार्ज्जुनधन्वकानाम् (२)॥ कदम्बशालार्ज्जुनदीपकानां (३) विडङ्गदार्वीधवशल्लका-नाम् (४)॥६॥ नीलोत्पलैलातिविषार्ज्जुनैश्च चत्वार एते विहिताः कषायाः॥पित्तप्रमेहे मधुसम्प्रयुक्ता निघ्नन्ति वेगादशनिर्यथाऽद्रिम् ॥ ७ ॥

भा० टी०-लोध, हरड, कट्फल, मोथा (१), वायविडङ्ग, अर्ज्जुनकी छाल, पाठा, धामिन (२), कदम्ब, शाल, अर्ज्जुन, मोरशिखा (३), वायविडङ्ग, दारुहलदी, धाईके फूल, सोनापाठा, नीलकमल, इलायची, पेठा, अर्ज्जुन (४) इन चारप्रकारके कषायोंको मधुके संग उपयुक्त करनेसे तत्काल पित्तजप्रमेह ऐसा नष्ट होता है जैसे वज्रसे पर्वत ॥ ६ ॥ ७ ॥

चतुरंगुलमश्वत्थो न्यग्रोधादिः फलत्रयम् ॥ सरक्तसारमञ्जिष्ठा क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥ ८ ॥ नीलहारिद्रशुक्राढ्यान्मेहान्निघ्न-न्ति दारुणान् ॥ मधुना ह्युपयुक्तास्ते रक्तमेहं जयन्ति हि ॥ ९ ॥

भा० टी०-अमलतास (१), (पीपल (२), न्यग्रोधादिगणके द्रव्य (३), त्रिफला (४), तथा रक्तचन्दनसहित मञ्जीठ (५), इनकरके पृथक् २ सिद्ध कियेहुए पांचप्रकारके क्वाथ मधुके संग उपयुक्त होनेसे नीलमेह, हारिद्रप्रमेह, शुक्रप्रमेह, एवं रक्तप्रमेहको नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ परन्तु इन क्वाथोंको वातादिदोषोंके अनुसार क्रमशः वितीर्ण करे ॥

क्वाथान्खर्ज्जूरकाश्मर्य्यतिन्दुकाख्यामृताकृतान् ॥
क्षुण्णान्वह्निकषायेण पालं कुटजरामठम् ॥ १० ॥
तिक्तां कुष्ठञ्च सञ्चूर्ण्य सर्पिर्मेही पिबेन्नरः ॥ ११ ॥

भा० टी०-खजूर, कंभारी, तेन्दुक, गिलोय इनके पृथक् २ क्वाथोंको चीतेके कषायमें सिद्धकरके चीता, कूडा, हींग, कटुकी और कूठके चूर्णको मिलाय घृतप्रमेहवाला मनुष्य पीवे॥ १० ॥ ११ ॥

अथ चन्द्रप्रभावटिका ।

रिपुदहनं व्योषञ्च त्रिफलामरदारुभूनिम्बान् ॥ मागधिमूलं मुस्तं शठीवचास्वर्णमाक्षिकञ्चैव ॥ १२ ॥ लवणक्षारनिशायुक्कुस्तुम्बुरुगजकणातिविषाः ॥ कर्षांशाश्चाऽष्टपलं शैलेयं पुरपले शुद्धे ॥ १३ ॥ द्विपलं स्यान्मण्डूरं सिता चतुष्कं पलं वंश्याः ॥ कुम्भनिकुम्भसुगन्धित्रयपलिकं भागमादाय ॥ १४ ॥ चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया गव्ये घृते क्षौद्रयुतां प्रलिह्यात् ॥ भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रेण वा मस्तुजलेन वापि ॥ १५ ॥ छागीरसो जांगलजो रसो वा पयोऽथवा शीतजलानुपानम् ॥ अर्शांसि निर्णाशयते नगाह्वाद्भगन्दरं कामलपाण्डुरोगान् ॥ १६ ॥ विनष्टवह्निं कुरुते प्रदीप्तं हन्ति ज्वरान्पित्तकफानिलोत्थान् ॥ नाडीव्रणे मर्मव्रणे च यक्ष्मक्षये तथा गृध्रसिराजरोगे ॥ १७ ॥ मेहोपनाम्नि प्रदरे प्रयोज्या शुक्रक्षये चाऽश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामयेषु हन्यादसौ वातकृतानशेषान् ॥ १८ ॥ न पानभोज्ये परिहारमस्ति तथा च वातातपमैथुनेषु ॥ बलेन नागस्तुरगो जवेन दृष्टौ सुपर्णः श्रवणे वराहः ॥ १९ ॥ तांस्तान्दोषान्विनिर्धूय प्रमेहानपि विंशतिम् ॥ वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २० ॥

भा० टी०–भटेउर, चीता, त्रिकटु, त्रिफला, देवदार, चिरायता, पिपलामूल, मोथ, कचूर, वचा, सोनामाखी ॥ १२ ॥ लवण, खार, हलदी, दारुहलदी, धनियां, गजपीपल, अतीस इनके एक २ कर्ष प्रमाणभाग, ८ पल शिलाजीत, २ पल शुद्ध गोगल ॥ १३ ॥ २ पल मण्डूर, ४ पल शक्कर, १ पल वंशलोचन, १ पल निसोत, १ पल दन्ती, १ पल त्रिसुगन्धभागको लेकर खरड करे ॥ १४ ॥ अनन्तर गोघृतमें वटिका बनावे इनका नाम चन्द्रप्रभा वटिका हुआ । इन वटिकाओंको भोजनके पूर्व सहदके संग खावे और पीछेसे वक्ष्यमाण रोगोंके अनुसार छांछ, वा दधितोड ॥ १५ ॥ वा बकरेका मांसरस, वा जांगलदेशी मृगोंका मांसरस, वा दूध, वा शीतलजलको पीवे । यह वटिका सात ही दिनमें बवासीर, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोगको नष्ट करती ॥ १६ ॥ और मन्द हुए अग्निको बढाती, तथा वातपित्तादिसे उपजे हुए प्राचीन ज्वरोंको नशाती, और नाडीव्रण, मर्मव्रण राजयक्ष्मा, गृध्रसीवात, तथा अन्यान्य राज-

रोगोमें भी प्रयोजनीय है ॥ १७ ॥ इसके अतिरिक्त प्रदररोग, शुक्रक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्र-प्रवाह, उदररोग, और सबप्रकारके वातजन्य रोगोंको नष्ट करती है ॥ १८ ॥ इसके सेवनेमें प्राय: खान पान शीत उष्ण वात मैथुन आदिका भी विशेष वर्ज्यावर्ज्यविचार नहीं । किंबहुना, इसको सेवनेवाला मनुष्य बलमें हाथी, वेगमें घोडा, दृष्टिचमत्कारमें गरुड, और सुननेमें सूकरके समान होरहता है ॥१९॥एवं वातपित्तादि दोषोंसे, तथा २० प्रकारके प्रमेहोंसे, और वलिपलितादि वैरूप्यसे निर्मुक्त होकर बुड्ढा भी तरुणकी भांति बनबैठता है ॥ २० ॥

कदरः खदिरः पूगः क्वाथं क्षौद्राह्वये पिबेत् ॥ अग्निमन्थकषायञ्च वसामेहे प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥ पाठाशिरीषदुःस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकान् ॥ कपित्थानां भिषक् क्वाथं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥

भा० टी०-पापरी कत्था, खैर, सुपारी इनके क्वाथको मधुमेहरोगमें पीवे । वसाप्रमेह (चर्बीको झिरानेवाले प्रमेह) में अरनीके कषायको प्रयुक्त करे ॥ २१ ॥ हस्तिमेह (हाथीके समान रुक २ कर मूतना) में पाठा, शिरीष, कौंछ, मूर्वा, ढांक, तेन्दुआ, कैथ इनके क्वाथको प्रयुक्त करे ॥ २२ ॥

**कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहीतककौटजानि ॥
कपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ २३ ॥**

भा० टी०-कबीला, सतौना, शाल, बहेडा, रोहिडा कूडा, कैथ इनके फूलोंका चूर्ण बनाय मधुके संग कफपित्तसम्बन्धी प्रमेहवाला जन लेह करे ॥ २३ ॥

स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढं पाययेद्रसम् ॥ धात्र्याः सर्वप्रमेहेषु निशाक्षौद्रसमन्वितम् ॥ २४ ॥ कषायमथवा दारुत्रिफलामुस्तकैः शृतम् ॥ त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहजित् ॥ २५ ॥ कुटजासनदार्व्यब्दफलत्रयभवोऽथवा ॥ गुडूच्याः स्वरसः पेयो मधुना सर्वमेहजित् ॥ २६ ॥ शालमुष्ककम्पिल्लकल्कमक्षसमं पिबेत् ॥ धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ २७ ॥

भा० टी०-जब प्रमेही मनुष्यके वातकफादिदोषोंके अनुसार स्नेहकर्म, तथा वमन, विरेचन, और निरूहबस्ति होचुके तब उसको सबप्रकारके प्रमेहोंमें हलदी और मधुयुक्त आंवलेके रसको पियावे ॥ २४ ॥ अथवा देवदार, त्रिफला, और मोथके काढेको, किंवा त्रिफला, देवदारु दारुहलदी और मोथके काढेको मधुके संग पिलानेसे सर्वप्रकारके मेह दूर होते हैं ॥ २५ ॥ अथवा कूडा, विजयसार, दारुहलदी, मोथ, त्रिफला इनके क्वाथको, वा गिलोयके स्वरसको मधुके

संग पान करनेसे भी सब प्रकारके प्रमेह दूर होते हैं॥ २६ ॥ एवं शाल, कठपाढर, कबीला नके कल्कको अक्षप्रमाण लेकर मधु और आंवलारसके संग पीनेसे सर्व मेह दूर होते हैं ॥ २७ ॥

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां मुस्तञ्च निष्काथ्य सनैशकल्कम् ॥
पिबेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥ २८ ॥

भा० टी०–त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायण, मोथ इनको हलदीकल्कके संग कथित करके सब प्रकारके प्रमेहोंमें मधुके संग पीवे ॥ २८ ॥

मधुना त्रिफलाचूर्णमथवाऽश्मजतूद्भवम् ॥
लोहजं वाऽभयोत्थं वा लिह्यान्मेहनिवृत्तये ॥ २९ ॥

भा० टी०–एवं त्रिफलाका चूर्ण वा शिलाजीत वा मंडूर वा अभया (हरड) के चूर्णको प्रमेहोंको हटानेके लिये मधुके संग चाटे ॥ २९ ॥

अथ न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारग्वधासनम् ॥ आम्रं कपित्थं जम्बूञ्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ३० ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ॥ पटोलं मेषशृङ्गञ्च दन्तीं चित्रकमाढकीम् ॥ ३१ ॥ करञ्जं त्रिफलां शक्रं भल्लातकफलानि च ॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णं चूर्णं प्रकारयेत् ॥ ३२ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ॥ फलत्रयरसञ्चाऽनु पिबेन्मूत्रं विशुद्ध्यति ॥ ३३ ॥ एतेन निखिला मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥ प्रशमं यान्ति योगेन पिडिका च न जायते ॥ ३४ ॥

भा० टी०–(पत्रीके अनुसार) वटकी छाल, गूलरछाल, पिप्पलकी छाल, सोनापाठाकी छाल, अमलतास, विजयसार, आम्रयाठी, कैथ, जामुन, चिरौंजी, अर्ज्जुनकी छाल, धव ॥ ३० ॥ महुआ, मुलहठी, लोध, वरना, फरहद, परवल, मेंढाशिंगी, दन्ती, चीता, डुम्बरिफल, पूतिकरञ्ज, त्रिफला, इन्द्रजौ भिलावाफल इनके समान भाग लेकर महीन चूर्ण बनावे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसका नाम न्यग्रोधादि चूर्ण है । इसको ८ मासाके प्रमाणसे मधुके संग चाटे और पीछेसे पलभर त्रिफलारसको पीवे इससे विकृत मूत्रकी शुद्धि होती और ॥ ३३ ॥ बीसप्रकारके प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र आदि शान्त होते हैं और पिडिका (एकप्रकारके विस्फोटक) भी नहीं उपजते हैं ॥ ३४ ॥

अथ त्रिकण्टकाद्यं घृतम् ।

त्रिकण्टकनिशालोध्रसोमवल्कवचार्ज्जुनैः॥ पद्मकाश्मन्तकारिष्टचन्द-

नागुरुदीप्यकैः ॥ ३५ ॥ पटोलमुस्तमञ्जिष्ठामार्ङ्गीभल्लातकैः पचेत् ॥ तैलं वातकफे पित्ते घृतं मिश्रेषु मिश्रकम् ॥ ३६ ॥

भा० टी०–गोखरु, हलदी, लोध, श्वेतखैर, बचा, अर्ज्जुन (कौह), पखाख, आवुटा (दीपाधाराच्छादन–वृक्ष), नीम, चन्दन, अगरु, अजमोद ॥ ३५ ॥ परवल, मोथ, मंजीठ, काला अतीस और भिलावाफल इनके समभागोंके संग वात कफके संबन्धमें तैलको और पित्तके सम्बन्धमें घृतको तथा मिश्रदोषोंके सम्बन्धज प्रमेहमें घृत, तैल, दोनोंको पकावे। सिद्ध होनेपर प्रमेहनाशक है ॥ ३६ ॥

त्रिकटु त्रिफलाचूर्णं तुल्यगुग्गुलुनाऽन्वितम् ॥ गोक्षुरकाथसंयुक्तं गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३७ ॥ देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिनीम् ॥ न चाऽत्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्य्याद्यथेप्सितम् ॥ ३८ ॥ प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ॥ मूत्राघातं मूत्रदोषानश्मरीश्च विनाशयेत् ॥ ३९ ॥

भा० टी०–त्रिकटु और त्रिफलाके समभाग चूर्णमें उतना ही गोगल मिलाय गोखरुकाथमें खरड करके वटिका बनालेवे ॥ ३७ ॥ देश, काल और बलके अनुसार इस गुटिकाको खावे। यह गुटिका वातादिदोषोंका अनुलोमन करनेवाली है। और इसके सेवनमें वर्ज्यावर्ज्यका विचार भी प्रायः नहीं है, मनुष्य मनमाने आहार विहार करसक्ता है ॥ ३८ ॥ किंबहुना, सब प्रकारके प्रमेह तथा वातरोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रविकार और पथरीरोगको भी नष्ट करती है ॥ ३९ ॥

कफमेहहरकाथसिद्धं सर्पिः कफापहम् ॥
पित्तमेहघ्ननिर्य्यूहसिद्धं पित्ते हितं घृतम् ॥ ४० ॥

भा० टी०–कफजमेहके नाश करनेवाले काथमें सिद्ध कियाहुआ घृत कफके सम्बन्धमें और पित्तप्रमेहनाशक काथमें सिद्धकिया घृत पित्तके संबन्धमें हित है ॥ ४० ॥

अथ धान्वन्तरघृतम्।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारुहरीतकी॥ वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ४१ ॥ सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वं भल्लातकानि च शठीपुष्करमूलञ्च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ४२ ॥ पृथग्दशपलानेतान्भागाँस्तोयार्मणे पचेत् ॥ यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ॥ ४३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ निचुलं

त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषी गजपिप्पली ॥ ४४ ॥ शृङ्गबेरविडङ्गानि वचा काम्पिल्लकं तथा ॥ गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेच्च यथाबलम् ॥ ॥ ४५ ॥ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं घृतमुत्तमम् ॥ कुष्ठगुल्मप्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ ४६ ॥ प्लीहोदरं तथाऽर्शांसि विद्रधिं पित्तकं तथा॥अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ४७ ॥

भा० टी०–दशमूल, दोनों प्रकारका करञ्ज, देवदार, हरड, लाल पुनर्नवा, वरना, दन्ती, चीता, श्वेतपुनर्नवा, थूहर, कदम, बडीकदम, बेलगिरी, भिलावाफल, कचूर, पोहकरमूल, पिप्पलीमूल ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इनके अलग २ दश २ पल भागोंको, और १६ पल जौ, १६ पल बेर, १६ पल कुलथीको एकद्रोण जलमें पकावे (और कहींकहीं जलसे अठगुना क्वाथ भी पाकके लिये लिया है) ॥ ४३ ॥ निदान पकते २ जब चौथाई रस शेष रहे तब उसे छानकर उसमें एकप्रस्थ घृत पकावे । और हिज्जल, त्रिफला, भारङ्गी, सुगंधितृण (रोहिषशोधिया) गजपीपल, अदरख, वायविडङ्ग, वचा, कबीला इनका कल्क मिलाय सिद्ध करे और अग्निबलके अनुसार इसे पिलावे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ यह धान्वन्तरनामक विख्यात घृत कुष्ट, गुल्म, प्रमेह, शोथ, वातरक्त, प्लीहोदर, बवाशीर, विद्रधिरोग, पैत्तिकरोग, मृगी, उन्माद इन सर्वोका निग्रह करता है॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु ॥ पिबेत्तेनैव संशुद्धकायः पिष्टं यथाबलम् ॥ ४८ ॥ जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिञ्जीर्णे च भोजनम् ॥ कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥ ४९ ॥ मधुमेहं विजित्याऽसौ शर्करामश्मरीं तथा ॥ वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ ५० ॥ माक्षीकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याऽप्ययं गुणः ॥ ५१ ॥

भा० टी०–वमन विरेचनादिके द्वारा शरीरसंशोधनके अनन्तर शुद्धशिलाजीतको शालसारादिगणीय द्रव्योंके रसमें भावना देकर उसी रसके संग खरडकरे और अग्निबलके अनुसार उसका प्रयोग करे ॥ ४८ ॥ तथा पीछेसे जांगलदेशी मृगोंका मांसरस पीवे, जब औषधी पचजाय तब पथ्यभोजन करे । इस प्रकार सेवन करते २ जब १०० पल शिलाजीतका प्रयोग करचुके तब वह मनुष्य मधुमेह, शर्करामेह, और पथरीआदि कठिन रोगोंको जीतकर बल, वर्ण तथा पुष्ट शरीरसे सम्पन्न बनकर १०० वर्ष पर्यन्त नीरोग हो जीवताहै । इसीप्रकार सोनामाखीके प्रयोगसे भी यही गुण जानने ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

---

१ पाठान्तरेऽर्मणं तोयं क्वाथञ्चाऽष्टगुणं त्विह ॥ इति मतान्तरे ।

शराविकाद्याः पिडिकाः साधयेच्छोथवद्भिषक् ॥ पक्वाश्चिकित्सेद्व्रण-वत्प्राग्रूपेषु च शस्यते ॥ ५२ ॥ क्षीरिवृक्षाम्बुपानञ्च वस्तमूत्रं च शस्यते ॥ तीक्ष्णञ्च शोधनं प्रायो दुर्विरेच्या हि मेहिनः ॥ ५३ ॥ एलादिकेन कुर्व्वीत तैलञ्च व्रणरोपणम् ॥ आरग्वधादिना कुर्य्या-त्काथमुद्वर्तनानि च ॥ ५४ ॥ परिषेकोऽसनाद्येन पानान्ने वत्सका-दिना ॥ कुर्व्वीत मेहिनां तावद्यावद्रोगान्न मोक्षणम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०—मेहसंबन्धी शराविका आदि फुनसियोंकी अपक्वदशामें शोथकी भांति चिकित्सा करे। और पीछे (पक्वदशामें) व्रणरोगकी तरह उपाचरित करे। तथा इनकी पूर्वरूपदशामें दूधवाले वृक्षोंका जल, तथा बकरेका मूत्र और तीक्ष्ण औषधके द्वारा शोधन कर्म करना भला है क्योंकि, मलके वैषम्यसे प्रमेही मनुष्य दुर्विरेच्य होते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ एलादिगणीय द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तैल व्रणको रोपता है एवं आरग्वधादिगणीय द्रव्योंकरके काथ और उवटन भी व्रणरोपणके अर्थ हैं ॥५४॥ एवं असनादिगणीय द्रव्योंसे परिषेक और वत्सकादिगणीय द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए अन्नपान भी तबतक प्रमेही मनुष्योंके अर्थ करने ही उचित हैं जबतक रोगमुक्ति न हो ॥ ५५ ॥

गुरु सौवीरकं मद्यं तैलं क्षीरं गुडं घृतम् ॥ अम्लभयिष्टेक्षुरसानूपमां-सानि वर्ज्जयेत् ॥ ५६ ॥ प्रमेहितस्य यन्मूत्रमनाविलमपिच्छि-लम् ॥ विशदं तिक्तकटुकं स्यादारोग्यं प्रचक्षते ॥ ५७ ॥

भा० टी०—प्रमेही मनुष्य गरिष्ठ, सौवीरकांजी, मद्य तैल, दूध, गुड, घृत, अधिक खटाई-वाले पदार्थ, ईखके रस, और जलप्रायदेशी जीवोंका मांस इनको त्यागदेवे ॥ ५६ ॥ प्रमेही मनुष्योंकी स्वच्छ, शुभ्र और निरुपद्रवरूप एवं कडुक तिक्त और कटुक पेशाबका होना आरोग्यसूचक है ॥ ५७ ॥

सूतकन्तु पलार्द्धञ्च पलमेकन्तु गन्धकम् ॥ आभ्यां कज्जलिकां कृत्वा खल्लयेदुपले दृढे ॥ ५८ ॥ त्रिफला त्र्यूषणं मुस्तं विडङ्गं दहनानि च ॥ एतानि पूर्वभागानि लोहकिट्टसमानि च ॥ ५९ ॥ एतच्चूर्णं समाहृत्य खल्लयेच्च पुनः पुनः ॥ शर्क्करामधुना लेह्यं भक्षयेत्कोलमात्रया ॥ ६० ॥ मूत्रकृच्छ्रप्रमेहाँश्च मूत्राघातं तथैव च ॥ अश्मरीमधुमेहाँश्च मेढ्रजं हन्ति शोणितम् ॥ ६१ ॥ शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहाँश्चाऽपि विंशतिम् ॥ वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ६२ ॥

भा० टी०–आधापल पारा और एकपल गन्धककी कज्जली बनाय दृढ शिलामें खरल करे। फिर त्रिफला, त्रिकटु, नागरमोथा, वायविडंग, चीता इनके तीन २ पल भाग, और इनके समान भागवाली लोहकीट इन सबको एकत्रित करके बार २ खरड करे । अनन्तर शक्कर और मधुके साथ १ तोलाके प्रमाणसे इस चूर्णको सेवन करे । क्योंकि यह चूर्ण मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, मधुमेह, लिङ्गज रुधिर, आठप्रकारके शुक्रदोष और बीसप्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करता है. किंबहुना, बुड्ढा मनुष्य भी वलिपलितादि वैरूप्यसे निर्मुक्त होकर तरुणोंकी भांति बनता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मधुमेहपिडिकाधिकारः ॥ ३८ ॥

अथ स्थौल्यरोगाधिकारः ३९.

पुराणाः शालयो मुद्गाः कुलत्थोद्दालकोद्रवाः ॥ लेखना वस्त यश्चैव सेव्या मेदस्विनां सदा ॥ १ ॥ चिन्ता क्रोधस्तथा धूमो व्यायामो रक्तमोक्षणम् ॥ उपवासोऽसुखाः शय्याः सत्त्वौदार्य्यतमोजयः ॥ २ ॥ निद्राभङ्गश्च मर्त्यानां स्थौल्यरोगविनाशकः ॥ तस्मात्तितिक्षुः स्थौल्यं स्वं शास्त्रोक्तविधिमर्हति॥ ३॥ व्यायामनित्यो जीर्णाशी यवगोधूमभोजनः ॥ सन्तर्पणकृतैर्दोषैर्लौल्यं मुक्त्वा विमुच्यते ॥ ४ ॥

भा० टी०–मेदाभरे शरीरवाले मनुष्योंके लिये पुराने धान, मूंग, कुलथी, वनकोदों, कोदों, तथा शोषक पदार्थ और वस्तिकर्म सेवना उचित है ॥ १ ॥ चिन्ता, क्रोध, धूमपान, कसरत करना, शरीरसे यन्त्रद्वारा रक्त निकालना, उपवास लेना, विशेष उपकरणोंसे रहित शय्यामें शयन करना, सत्त्वगुण उदारता और तमोगुणको जीतना ॥ २ ॥ तथा निद्रानाश यह सब कारण स्थूलताके नाशक हैं । अतः स्थूलताको नष्टकरना चाहताहुआ मनुष्य इन पूर्वोक्त विधानोंको करे ॥ ३ ॥ इसके अतिरिक्त जो मनुष्य मनमाने पदार्थोंके सेवनसे उपजेहुए स्थूलतादि दोषोंसे मुक्त होना चाहे उसको उचित है कि, नित्य व्यायाम करे, तथा भोजन पचजाने बाद भोजन करे नहीं तो नहीं, एवं नित्य जव और गेहूंका उपयोग करे तथा जिह्वाको संयममें रक्खे ॥ ४ ॥

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ॥ हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ ५ ॥ प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ॥ विडङ्गनागरक्षारकाललोहरजो मधु ॥ ६ ॥ यवामलकचूर्णश्च योगोतिस्थौल्यदोषजित् ॥

भा० टी०–परिश्रम करना, चिन्ता, मैथुन, मार्ग चलना, मधु सेवन, जागरण करना, जौ और समा धानोंका भोजन यह सब वस्तु अवश्य अतिस्थूलताको दुराते हैं॥ ५ ॥ प्रातःकालमें मधुयुक्त जलके सेवन करनेसे भी स्थूलतारोग नष्ट होय। एवं वायविडङ्ग, सोंठ, जवाखार, काले लोहकी मण्डूर, मधु ॥६॥ तथा जौ और आमलेका चूर्ण यह योग अतिस्थूलताको जीतता है॥

उष्णमन्नस्य मण्डं वा पीत्वा कृशतनुर्भवेत् ॥ ७ ॥ सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्च्चलानलाः ॥ मस्तुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ ८ ॥

भा० टी०–प्रतिदिन गरम २ अन्नमंडको पीनेसे स्थूल मनुष्यका शरीर कृश होरहता है ॥ ७ ॥ एवं चव्य, जीरा, त्रिकटु, हींग, कालानोन, चीता इनके चूर्णकरके युक्त सत्तूको दधितोडके संग पीनेसे मेद नष्ट होता और अग्नि बढता है ॥ ८ ॥

व्योषं विडङ्गशिग्रूणि त्रिफला कटुरोहिणी ॥ बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठा चाऽतिविषा स्थिरा ॥ ९ ॥ हिङ्गुकेमुकमूलानि यवानी चित्रकं तथा ॥ सौवर्च्चलमजाजी च हवुषा चेति चूर्णयेत्॥ १०॥ चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः ॥ सक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत् ॥ ११ ॥ प्रयोगात्तस्य नश्यंति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ॥ प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ १२ ॥ प्लीहा पाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकाः ॥ हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासः श्वासो गलग्रहः ॥ १३ ॥ क्रिमयो ग्रहणीदोषाः श्वैत्यस्थौल्यमतीव च ॥ नराणां दीप्यते चाऽग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ १४ ॥

भा० टी०–त्रिकटु, वायविडङ्ग, सैंजनेकी जड, त्रिफला, कटुकी, कटेरी, कण्टकारी, हलदी, दारुहलदी, पाठा, अतीस, शालवन ॥९॥ हींग, केंउआकी जड, जवायन, चीता, कालानोन, कालीजीर, हाऊबेर इनका चूर्ण १ भाग॥१०॥ १ भाग तैल, १ भाग घृत, १ भाग मधु और १६ भाग जौके सत्तू इन सबको एकत्रित करके किसी एक रोचक और शीतलपदार्थके संग पीवे ॥ ११ ॥ इसके प्रयोगसे तर्पणरूप पदार्थोंके सेवनसे उपजेहुए यावन्मात्र रोग, और प्रमेह, मूढवात, कोढ, बवासीर, कामला ॥ १२ ॥ पाण्डुरोग, फीहा, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, क्षय, कास, श्वास, गलग्रह, कृमिरोग, ग्रहणीदोष, शीतता, स्थूलता आदि कठिनरोग नष्ट होते और अग्नि, बल, बुद्धि तथा स्मृतिशक्ति बढती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ त्रिफलाद्यं तैलम्।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः॥ निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ १५ ॥ गुडूचीन्द्रसुताकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ॥ तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ १६ ॥ पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम् ॥ स्थूलतालस्यकम्पादीञ्जयेत्कफकृतान्गदान् ॥ १७ ॥

भा० टी०—त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निशोत, चीता, बांसा, नीम, अमलतास, वचा, सतवन, हलदी ॥ १५ ॥ गिलोय, अर्ज्जुनकी छाल, पिपली, कूडा, सरसों, शोंठ इनके समभागों करके पकेहुए तैलको सुरसादिगणीय द्रव्योंके क्वाथमें औटाकर ॥ १६ ॥ पान, मर्दन, गण्डूष, नस्य और वस्तिकर्मोमें प्रयुक्त करनेसे स्थूलतारोग, आलस्य और कम्प आदि कफजन्य रोगोंको जीतता है ॥ १७ ॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसन्तोदहरः प्रदिष्टः॥
पत्राम्बुलोहाभयचन्दनैस्तु शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ १८ ॥

भा० टी०—शिरिस, लामज्जकतृण (एकप्रकारका खस), नागकेशर, लोध इनकरके कियाहुआ लेप त्वचाके दोषका और व्यथाका नाशक है। एवं तेजपात, सुगन्धवाला, अगरु, खस, चन्दन इनकरके कियाहुआ लेप शरीरकी दुर्गन्धिका नाशक है ॥ १८ ॥

वासादलरसोपेतः शंखचूर्णेन योजितः ॥
बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ १९ ॥

भा० टी०—अथवा वेलपत्रीके रसमें बांसाके पत्तोंका रस मिलाय शंखचूरके संग प्रयुक्त करनेसे भी शरीरदुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ १९ ॥

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलञ्च ॥
एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जंघाकषायश्च नराधिपानाम्॥२०॥

भा० टी०—हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल, अनारके वक्कल इनके चूर्णका उवटन, और काकजंघाका क्वाथ भी राजविलासिनियोंकी अङ्गशोभा बढानेवाला उत्तम अङ्गराग है ॥२०॥

व्योषाग्निमुस्तैस्त्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ॥
नित्यं खादञ्जयेद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ २१ ॥

भा० टी०—त्रिकटु, चीता, मोथ, त्रिफला, वायविडङ्ग इनके चूर्णके संग तुल्यभाग गोगलको नित्य सेवन करनेवाला मनुष्य मेद, कफ और आमवातसे उपजेहुए रोगोंको जीतता है ॥२१॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे स्थौल्यरोगाधिकारः ॥ ३९ ॥

अथोदररोगाधिकारः ४०.

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संश्रिताः ॥
प्राणाग्न्यपानान्सन्दूष्य कुर्व्वतेऽष्टविधोदरम् ॥ १ ॥

भा० टी०–कुपित हुए वातादिदोष स्वेदवाहिनी और जलवाहिनी नाडियोंको रोककर तथा प्राणवायु, जठराग्नि और अपानवायुको दूषितकरके वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, यकृद्दाल्युदर, बद्धगुदोदर, क्षतोदर भेदसे आठप्रकारके उदररोगको उत्पन्न करते हैं, सब उदररोगोंकी असाध्यावस्था जलोदर है अर्थात् जब उदररोगियोंके पेटमें जल भरजाता है तब प्रत्येक उदररोग असाध्य हैं ॥ १ ॥

रक्तशालियवा मुद्गा जांगलस्वरसाः शुभाः । विरेकास्थापनं शस्तं सर्वेषु जठरेषु च ॥२॥ वातोदरं बलवतः स्नेहैः स्वेदैरुपाचरेत् ॥ स्निग्धाय स्वेदितांगाय दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥३॥सुविरिक्तोपमं मर्त्यं पुनराध्मानितं च तम् ॥ सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरुहैः समुपाचरेत् ॥४॥

भा० टी०–लालधान, जौ, मूंग, जांगलदेशी मृगमांसोंका स्वरस, विरेचन, आस्थापन-वस्तिकर्म, आदि उपाय सबप्रकारके उदररोगोंमें करने उचित हैं ॥ २ ॥ बलवान् रोगीके वातो-दरको स्नेह और स्वेदके द्वारा उपाचरित करे। स्निग्ध और स्वेदित होनेके अनन्तर रोगीको स्नेहपान कराय विरेचन करावे ॥ ३ ॥ जब भलीप्रकार रेचित होनेपर भी पेटमें अफारा उपजने-लगे तो वैद्यको उचित है कि, स्निग्ध, अम्ल, और लवणान्वित द्रव्योंकरके तथा निरूहबस्तिके द्वारा उपाचरित करे ॥ ४ ॥

अथ सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारो यवानामजमोदकानि ॥ सपिप्पली-चित्रकशृंगबेरं हिंगुर्विडश्चेति समानि कुष्ठम् ॥ ५ ॥ एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम् ॥ वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वातप्रकोपं ग्रहणीप्रदोषम् ॥ ६ ॥ अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरश्चेति निहन्ति सद्यः ॥ ७ ॥

भा० टी०–समुद्रलवण,कालानोन, सेंधानोंन, जवाखार, अजमोद, पिपली, चीता,अदरख, हींग, विडलोन, कूठ इनके समभाग लेकर ॥ ५ ॥ चूर्ण बनावे । अनन्तर उसको घीमें सानकर भोजनके आदिमें खावे । यह चूर्ण वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातकोप ग्रहणीदोष, बवासीर, पाण्डुरोग, भगन्दर इन सबरोगोंको तत्काल नष्ट करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥ शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत ॥ ८ ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ सन्निपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ ९ ॥

भा० टी०–वातोदरवाला मनुष्य छांछमें पिपली और नोन मिलाय पीवे । पित्तोदरवाला शक्कर और मरिचचूर्णसे युक्त एवं स्वादिष्ट तक्रको पीवे ॥ ८ ॥ कफोदरवाला मनुष्य जवायन सेंधा, कालीजीर और त्रिकटुसे युक्त मट्ठाको पीवे एवं सन्निपातोदररोगी छांछमें त्रिकटु, जवाखार और सेंधा मिलाय पीवे ॥ ९ ॥

स्नुहीपयोभावितानां पिप्पलीनां यथाबलम् ॥ सहस्रमुपयुञ्जीत प्राग्भोज्याज्जठरामयी ॥ १० ॥ शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रैफलस्य च ॥ स्नुहीक्षारस्य योगश्च शमयत्युदरामयम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–उदररोगीको उचित है कि एक सहस्र पिपलियोंको थूहरके दूधमें भावना देकर भोजनके पहिले यथा शक्ति पूर्वक खावे ॥ १० ॥ शिलाजीत, गोमूत्र, गोगल, त्रिफलाचूर्ण, थूहरखार इनका पृथक् २ प्रयोग करनेसे उदररोग शान्त होता है ॥ ११ ॥

स्नुक्पयसा परिभाविततण्डुलचूर्णैर्विमिश्रितो यूषः ॥
उदरमुदारं हन्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ १२ ॥

भा० टी०–थूहरके दूधमें भावना देनेके अनन्तर चूर्णित कियेहुए तंडुलकणोंकरके सिद्धकियाहुआ यूष सातदिनके प्रयोगसे ही उदररोगको नष्ट कर डालता है ॥ १२ ॥

पिप्पलीं वर्द्धमानं वा कल्पतः परियोजयेत् ॥
जठराणां विनाशाय नाऽस्ति तेन समं भुवि ॥ १३ ॥

भा० टी०–अथवा उदररोगको दुरानेके लिये पिपली और एरण्डी तैलको कल्पविधिसे प्रयुक्त करे इसके समान दूसरा प्रयोग संसारमें नहीं ॥ १३ ॥

दशमूलदारुनागरच्छिन्नरुहापुनर्नवाभयाक्वाथः ॥
जयति जलोदरशोथश्लीपदगलगण्डवातजान्रोगान् ॥ १४ ॥

भा० टी०–दशमूल, दारुहलदी, सोंठ, गिलोय, पुनर्नवा, अभया (हरड) इनका क्वाथ जलोदर (जलन्धर), शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातजन्यरोगोंको जीतताहै ॥ १४ ॥

अथ पटोलाद्यं चूर्णम् ।

पटोलमूलं त्रिफलां निशां वेल्लञ्च कार्षिकम् ॥ कम्पिल्लनीलिनीकुम्भभागान्द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ १५ ॥ पिबेत्सञ्चूर्ण्य मूत्रेण पूर्वं पेयां

ततो रसैः ॥ विरिक्तो जाङ्गलैरद्यात्ततः षड्दिवसं पयः ॥ १६ ॥ शृतं पिबेद्व्योषयुतं पीतमेवं पुनः पुनः ॥ हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥ १७ ॥

भा० टी०-परवलकी जड, त्रिफला, हलदी, वायविडङ्ग इनके एक २ कर्षप्रमाण भाग, और कवीला भाग २ तोला, नीली भाग ३ तोला, तथा निसोत भाग ४ तोला ॥ १५ ॥ इन सबका चूर्ण बनाय गोमूत्रके संग पीवे और पीछेसे जांगलदेशी मृगोंके मांसरसकी पेयाको पीवे। ऐसे प्रयोगसे जब भलीप्रकार विरेचन होचुकाहो तब छः दिनतक त्रिकटुचूर्णसे युक्त पक्व दुग्धको पीवे। इसप्रकार उक्त पटोलादिचूर्णको कितनेकवार प्रयुक्त करनेसे जलपूरित असाध्य उदररोग भी नष्ट होतेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ नारायणचूर्णम् ।

यवानी हबुषा धान्यं शतपुष्पोपकुञ्चिका ॥ कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शठी वचा ॥ १८ ॥ चित्रकाजाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम् ॥ द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ १९ ॥ विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा ॥ त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला च चतुर्गुणा ॥ २० ॥ एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ॥ नैनं प्राप्याऽभिवर्द्धन्ते रोगा विष्णुमिवाऽसुराः ॥२१॥ तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ॥ आनाहवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ २२ ॥ दधिमण्डेन विड्बन्धे दाडिमाम्भोभिरर्शसैः ॥ परिकर्ते सवृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ २३ ॥ भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्देऽनले ज्वरे ॥ २४ ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ॥ यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २५ ॥

भा० टी०-जवायन, हाऊवेर, धनियां, सौंफ, कलौंजी, हींगपत्री, वा अजमोद, पिपलामूल, तुलसी, कचूर, वचा ॥ १८ ॥ चीता, कालीजीर, शोंठ, मिरिच, पीपल, चोष, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, पोहकरमूल, कूठ, पांचों लवण, वायविडङ्ग इनके एक २ भाग, तथा दंतीभाग ३, निसोत और इन्द्रायण दो २ भाग, सातला ४ भाग ॥ १९ ॥ २० ॥ इन सबका चूर्ण बनावे। इसका नाम नारायणचूर्ण हुआ, इससे सब रोग हट जाते और कोई बढने नहीं पाते जैसे नारायणके समीप दानव ॥२१॥ उदररोगियोंको तक्रके संग और गुल्मरोगियोंको बडवेरीके

जलके संग इस चूर्णको पीना उचित है। एवं आनाहवातमें मदिराके संग, वातजरोगोंमें प्रसन्ना-नामकी मदिराके संग; विड्विबन्धमें दधितोडके संग, बवाशीरमें अनारके पानीके संग, परिकर्त-रोगमें कांजीके संग, अजीर्णमें गरमजलके संग, एवं भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोगमें ग्रहणीदोष, कुष्ठ, मंदाग्नि, ज्वर, कुक्कुर आदिके दाढका विष, मूलविष, कृत्रिमविष इन उपद्रवोंमें भी यथोचित अनुपानके संग यह विरेचक चूर्ण पीना उचित है॥२२॥२३॥२४॥२५॥

अथ दशमूलषट्पलिकं घृतम्।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ सक्षारपलिकैः षड्भिर्द्वि-प्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ २६ ॥ कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्य तुलार्द्धस्य रसेन तु ॥ दधिमण्डाढकं दत्त्वा तत्सर्पिरुदरापहम् ॥ २७ ॥ श्वयथुं वातविष्टम्भं गुल्मार्शांसि च नाशयेत् ॥ २८ ॥

भा० टी०-दशमूलके ५० पल भागसे कढेहुए रसमें पिपली, पिपलीमूल, चव्य, चीता, शोंठ, जवाखार इनके एक २ पल भाग कल्कोंको मिलाय तथा ४ प्रस्थ दधितोडको देकर २ प्रस्थ घीको पकावे। सिद्ध होनेपर यह घृत उदररोग, शोथ, वातविष्टम्भ, गुल्म और बवाशी-रको भी नष्ट करताहै॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ चित्रकघृतम्।

**चतुर्गुणजले मूत्रे द्विगुणे चित्रकाल्पके ॥
कल्के सिद्धं घृतं प्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ॥ २९ ॥**

भा० टी०-४ प्रस्थ जलमें २ प्रस्थ गोमूत्र और एकप्रस्थ वा परिमित चीतेके कल्कको मिलाय १ प्रस्थ घृत पकावे सिद्धहोनेपर जवाखारके संग उदररोगी पीवे॥ २९ ॥

अथ वृद्धबिन्दुघृतम्।

अर्कक्षीरपले द्वे तु स्नुहीक्षीरपलानि षट् ॥ पथ्या कम्पिल्लकं श्यामा सम्पाकगिरिकर्णिकम् ॥३०॥ नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा ॥ एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३१ ॥ तथाऽस्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रयोजयेत् ॥ यावतोऽस्य पिबे-द्बिन्दूंस्तावद्वेगैर्विरिच्यते ॥३२॥ गुल्मं कुष्ठमुदावर्तं श्वयथुं सभगन्दरम्॥ शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाऽभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ३३ ॥

भा० टी०-२ पल आकका दूध, ६ पल थूहरका दूध, (पाककेलिये प्रमाणित जल भी)

तथा हरड, कबीला, श्यामा, अमलतास, श्वेत किणही, नीली, निशोत, दन्ती, चोरहुली, चीता इनके एक २ पल कल्कोंके संग एकप्रस्थ घृत पकावे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सिद्ध होनेपर बिन्दुमात्र घृतको मलिन कोष्ठवाले उदररोगीके प्रयुक्त करे क्योंकि, जितने बिन्दु इस घृतके पिये जावेंगे उतने ही दस्त शीघ्रतासे उतरआवेंगे ॥ ३२ ॥ यह घृत गुल्म, कोढ, उदावर्त, शोथ, भगन्दर, और आठप्रकारके उदररोगोंको कैसे नष्टकरता है जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षोंको, इसका नाम बिन्दु-घृत है. जिसके, शरीरपर मर्द्दनकरते ही दस्त उतर आते हैं और पानकरनेकी तो न्यारी कथा रही ३३

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द उदररोगाधिकारः ॥ ४० ॥

अथ सविशेषोदरयकृत्प्लीहाधिकारः ४१.

यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीममचोद्भवानाम् ॥ प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥

भा० टी०–जवायन, चीता, जवाखार, पिपलीमूल, दंती, ममचा इनके चूर्णको गरमजल वा दधिजल वा मद्यके संग पानकरनेसे प्लीहरोग (फीहारोग) नष्ट होताहै ॥ १ ॥

पलाशक्षारतोयेन पिप्पली भाविता शुभा ॥ गुल्मप्लीहार्तिशमनी वह्निबोधकरी स्मृता ॥ २ ॥ विडङ्गान्यग्निसिन्धूत्थसक्तून्कृत्वा वचान्वितान् ॥ पिबेत्क्षीरेण सञ्चूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥ ३॥ अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं विपाचितम् ॥ मस्तुना वा पिबेत्क्षीरैः प्लीहरोगं व्यपोहति ॥ ४ ॥ पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेण दधिमस्तुना । पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥५॥ भल्लातकाभयाजाजीगुडेन सह मोदकः ॥ सप्तरात्रान्निहन्त्येष प्लीहानमतिदारुणम् ॥ ६ ॥ शौभाञ्जनकनिर्य्यूहं सैन्धवाग्निक-णान्वितम् ॥ पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥

भा० टी०–ढांकखारके जलसे भावना देकर सिद्धकीहुई पिपलियां गुल्म और प्लीहकी पीडाको शांत करती तथा जठराग्निको जगातीहैं ॥ २ ॥ वायविडङ्ग, चीता, सेंधा, और जवोंके सत्तूमें वचाका चूर्ण मिलाय दूधके संग औटाकर पीनेसे गुल्म, प्लीहा और उदररोग दूर हों ॥३॥ अन्तर्धूमविधिसे पकायाहुआ लवणसहित आकका पत्ता दधि जल वा दूधके संग उपयुक्त होनेसे प्लीहरोगको नष्ट करताहै ॥ ४ ॥ एवं प्लीहरोगकी शांतिके लिये दूधके संग पिपलियोंका प्रयोग करे वा प्रयोगविधिसे दूध वा दधिजलके संग जवाखारको पीवे ॥ ५ ॥ भिलावा, हरड, काली-

जीर, और गुड इनका कल्क बनाय मोदक बनावे । यह मोदक सात ही दिनके प्रयोगसे अतिदारुण फीहाको नष्ट करता है ॥ ६ ॥ एवं सैंजिनेके क्वाथमें सेंधा, चीता, और पिपलीको मिलाय पीवे, वा ढांकखारसे युक्त जवाखारका प्रयोग करे ॥ ७ ॥

तिलान्सलवणाँश्चैव घृतं षट्पलिकं तथा ॥ प्लीहोद्दिष्टां क्रियां सर्वां यकृतः सम्प्रकल्पयेत् ॥ ८ ॥ लशुनं पिप्पलीमूलमभयाश्चैव भक्षयेत् ॥ पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये ॥ ९ ॥

भा० टी०–यकृत्रोगमें लवणसहित तिलोंका, एवं षट्पलिक घृतका तथा प्लीहरोगमें कही क्रियाका प्रयोग करे ॥ ८ ॥ किंवा यकृत् प्लीहकी मुक्तिके लिये लशुन, पिपलीमूल, हरड इनको खावे और पीछेसे एक कुल्ला गोमूत्र पीवे ॥ ९ ॥

शरपुंखायाः कल्कः पीतस्तक्रैर्यथाग्निबलम् ॥
यदि न जयेत्प्लीहानं शैलोऽपि तदा जले प्लवते ॥ १० ॥

भा० टी०–यदि झुञ्झुरुका कल्क अग्निबलके अनुसार तक्रके संग उपयुक्त होनेसे भी यकृत्प्लीहको न जीतसके तो पर्वत भी जलमें पैरने लगे ॥ १० ॥

रोहीतकाभया क्षौद्रं मूत्रभावितमम्बुना ॥ पीतं सर्वोत्तमं प्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ ११ ॥ दध्ना भुक्तवतो रामं बाहुमध्ये शिरां भिषक् ॥ विध्येत प्लीहनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ॥ १२ ॥ प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रवृत्तये ॥ १३ ॥

भा० टी०–रोहेडा, हरड, मधु इनको गोमूत्रमें भावना देकर जलके संग पीनेसे फीहा, प्रमेह, बवाशीर, कृमि, गुल्मरोग यह सब दूर होते हैं ॥११॥ वैद्यको उचित है कि, प्लीहरोगीको दधिके संग कूठ खिलाकर दाहिने भुजाके मध्यमें शिराच्छेदन करे और इधर जोरसे फीहाके गोलाको मर्दन करे जिससे शिराव्रणके मार्गसे सब दूषित रक्त निकलजाय और यकृत प्लीहा नष्ट होरहे ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ दन्तीघृतम् ।

निकुम्भकुडवक्वाथोत्तमे तत्कल्कसंयुतम् ॥
सर्पिः प्रस्थं पचेत्प्लीहकामलापाण्डुरोगनुत् ॥ १४ ॥

भा० टी० ४ प्रस्थ दन्तीके क्वाथमें दन्तीका कल्क मिलाय एक प्रस्थ घृतको पकावे । सिद्ध होनेपर यह घृत प्लीह, कामला, पाण्डुरोगोंको दुराता है ॥ १४ ॥

अथ चित्रकघृतम् ।

चित्रकस्य तुलाक्काथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ आरनालं द्विगुणितं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १५॥ पञ्चकोलकतालीशक्षारैर्लवणसंयुतैः ॥ द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत् ॥ १६ ॥ प्लीहगुल्मोदरानाहपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ॥ वस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्तपीनसान् ॥ १७ ॥ हन्यात्पीतं तदर्शोघ्नं शोथघ्नं वह्निदीपनम् ॥ बलवर्णकरं चाऽपि भस्मकञ्च नियच्छति ॥ १८ ॥

भा० टी०–१०० पल चीतेके क्राथमें १ प्रस्थ घीको, २ प्रस्थ काञ्जी और ४ प्रस्थ दहीतोडको पकावे ॥ १५ ॥ पकातेसमय पञ्चकोल, तालीशपत्र, जवाखार, लवण, सफेद जीर, कालीजीर, हलदी, दारुहलदी, मरिच इनके एक २ पल कल्कको डालदेवे ॥ १६ ॥ सिद्ध होनेपर यह घृत प्लीह, गुल्म, उदर, आनाह, पाण्डुरोग, अरुचि, ज्वर, वस्तिशूल, हृदयशूल, पशलीशूल, कटिशूल, जंघाशूल, उदावर्त, पीनस, बवाशीर, शोथ, अग्निमान्द्य और भस्मकरोग इन सबका निग्रह करता और बल वर्णको बढाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ पिप्पलीघृतम् ।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥
पचेत्प्लीहाग्निमान्द्यादिहृद्रोगहरमुत्तमम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–पिपलीके कल्कसे युक्त घृतको घृतसे चौगुने दूधमें पकाकर सिद्ध करे । यह घृत प्लीह, मन्दाग्नि और हृद्रोगादि रोगोंका नाश करनेवाला एक उत्तम उपाय है ॥ १९ ॥

अथ रोहितकं घृतम् ।

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठपलानां पञ्चविंशतिः ॥ कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ॥ २० ॥ पलिकैः पञ्चकोलैस्तैः सर्वैश्चाऽपि सुचूर्णितैः ॥ रोहीतकत्वचं तुल्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१ ॥ प्लीहार्तिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम् ॥ तथा गुल्मोदरश्वासक्रमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ २२ ॥

भा० टी०–२५ पल रोहिडाकी छाल और दोप्रस्थ वडवेरका कषाय बनावे । चतुर्थांश रहनेपर ॥ २० ॥ ५ पल पञ्चकोल और वही पांच पल रोहिडाकी छालका चूर्ण बनाय उसमें मिलावे अनन्तर एक प्रस्थ घृत पकावे ॥ २१ ॥ यह घृत बढीहुई प्लीहपीडा, गुल्म, उदर, श्वास, क्रमि, पाण्डुरोग, कामला इन सबको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

अथ महारोहितकं घृतम्।

रोहीतकान्पलशतं क्षोदयेद्वदराढकम् ॥ साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषितम् ॥२३॥ घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ तस्मिन्दद्यादिमान्कल्कान्सर्वास्तानक्षसम्मितान् ॥ २४ ॥ व्योषं फलत्रिकं हिंगुं यवानीं तुम्बुरुं विडम् ॥ अजाजीं कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ २५ ॥ पुनर्नवां विशालाञ्च यवक्षारं सपौष्करम् ॥ विडङ्गं चित्रकञ्चैव हबुषा चविकावचम् ॥ २६ ॥ एतैर्घृतं विपक्वन्तु स्थापयेद्भाजने शुभे ॥ पाययेत्त्रिफलां पूर्वं मलरोगविशुद्धये ॥२७॥ रसकेनाऽथ यूषेण पयसा वाऽथ भोजनम् ॥ उपयुक्ते घृते तस्मिन्व्याधिं हन्यादिमान्बहून् ॥ २८ ॥ यकृत्प्लीहोदरञ्चैव शूलं प्लीहयकृद्भवम्॥हृदिशूलं कुक्षिशूलं पार्श्वशूलमरोचकान्॥२९॥ विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ सर्वातीसारशमनं तन्द्राज्वरविनाशनम्॥३०॥महारोहितकं नाम प्लीहश्रेष्ठमहौषधम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०–१०० पल रोहिडाकी छाल, और ४ प्रस्थ वेरको कूटछानकर १ द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाई शेष रहे तब १ प्रस्थ घी, ४ प्रस्थ बकरीका दूध और एक २ अक्ष, प्रमाणसे त्रिकटु, त्रिफला, हींग, जवायण धनियां, विडलोन, कालीजीर, कालानोन, अनार- देवदार, पुंडरिया, इन्द्रायण, जवाखार, पोहकरमूल, वायविडङ्ग, हाऊवेर, चविका, वचा ॥ २३॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इनके कल्कको उस काथमें पकावे। जब घृत सिद्ध होगया हो तब उसको एक उत्तम पात्रमें रखदे। और इधर रोगी मलरोगकी शुद्धिके लिये प्रथम त्रिफलाके काथको पीवे और मांसरस वा यूष वा दूधके संग पथ्य खाता, रहे जब कोष्ठ शुद्ध और स्निग्ध होरहे तब इस घृतको उपयुक्त करे, यह घृत यकृत्रोग, प्लीहरोग, उदररोग, यकृत्प्लीहसम्बन्धी शूल, हृदयशूल, कुक्षिशूल, पशलीशूल, अरुचि, विबन्धशूल, कामला, पांडुरोग, सब- प्रकारके अतिसार, आलस्य, ज्वर इन सब उपद्रवोंको नष्ट करताहै। इस घृतका नाम महारोहितक है यह प्लीहकी सर्वोत्तम औषधी है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे सविशेषोदरयकृत्प्लीहाधिकारः ॥ ४१ ॥

अथ शोथोदराधिकारः ४२.

हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाछिन्नरुहाकषायः ॥
सगुग्गुलुर्मूत्रयुतश्च पेयः शोथोदराणामुचितः प्रयोगः ॥ १ ॥
एरण्डतैलं दशमूलयुक्तं गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा ॥
निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ २ ॥

भा० टी०-हरड, शोंठ, देवदार, पुंडरिया, गिलोय इनके कषायको गोमूत्र और गोगलके संग शोथोदरवाले मनुष्योंको पान करना उचित है ॥ १ ॥ दशमूलके क्काथसे युक्त एरण्डीतेल, वा गोमूत्रसे युक्त त्रिफलाकाथ वा गोमूत्रयुक्त दशमूलका काथ भी वातोदर, शोथ और शूलको नष्ट करताहै ॥ २ ॥

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः ॥
शोथोदरं कासयुतं सशूलं श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ३ ॥

भा० टी०--पुंडरिया, नीम, परवल, शोंठ, कटुकी, गिलोय, दारुहलदी, हरड इनका कषाय कास और शूलसहित शोथोदरको तथा श्वासयुक्त पाण्डुरोगको दुराताहै ॥ ३ ॥

पुनर्नवादार्व्यभयागुडूचीं पिबेत्समत्रां महिषाक्षयुक्ताम् ॥ त्वग्दोष-शोथोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकार्द्रकफामयेषु ॥ ४ ॥ गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा क्षीरं हि गव्यं त्रिफलाविमिश्रम् ॥ क्षीरान्नभुक् केवलमेव गव्यं मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु ॥ ५ ॥

भा० टी०-पुंडरिया, दारुहलदी, हरड, गिलोय इनके कषायको गोमूत्र और महिषाक्ष-जातिके गोगलके संग पीवे, जब त्वचादोष (छीपीप्रभृति), शोथोदर, पाण्डुरोग, स्थूलता, प्रसे-कार्द्रकफ इन रोगोंकी संभूति हो ॥ ४ ॥ किंवा शोथोदर रोगोंमें गोमूत्रयुक्त महिषीके दूधको वा त्रिफलाचूर्णसे युक्त गोदुग्धको वा क्षीरान्न भोजन करताहुआ केवल गोमूत्रको पीवे ॥ ५ ॥

पुराणं मानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम् ॥ साधितं क्षीरतोक्राभ्या-मभ्यसेत्पायसं ततः ॥ ६ ॥ हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुता-मपि ॥ सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः ॥ ७ ॥

भा० टी०-पुरानी मानकन्दकी कल्क १ भाग, चावल दो भाग, दूध ८ भाग, कच्चे जौ १ भाग इन सबको विधिपूर्वक पकाय पायस बनावे, इसके अभ्याससे वातोदर, शोथ, ग्रहणी, पाण्डुरोग यह सब नष्ट होतेहैं इसको वैद्योंने प्रसिद्ध प्रयोग कहा है ॥ ६ ॥ ७ ॥

पुनर्नवा दार्व्यमृता पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका ॥ बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पली चित्रकं वृषम् ॥ ८ ॥ समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥ बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ॥ ९ ॥ हन्ति चाशूदरान्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ १० ॥

भा० टी०–पुंडरिया, देवदार, गिलोय, पाठा, बेल, गोखरु, कटेरी, कंटकारी, हलदी, दारुहलदी, पिपली, चीता, वांसा इनके समभागोंको चूर्णित करके गोमूत्रके संग पीनेसे समस्त शरीरपर फैलनेवाले अनेक प्रकारके शोथ तथा आठों प्रकारके उदररोग और उत्कटरूप व्रण भी दूर होतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

अम्बुपानं दिवास्वप्नं गुर्वभिष्यन्दि भोजनम् ॥
व्यायामं यानयानञ्च जठरी परिवर्ज्जयेत् ॥ ११ ॥

भा० टी०–इन पूर्वोक्त प्रकारवाले उदररोगियोंको उचित है कि, जलपान, दिवास्वाप, गरिष्ठ और विदाही भोजन, व्यायाम, सवारीपर चलना आदि अपथ्य वस्तुओंको त्यागे रहें ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे शोथोदराधिकारः ॥ ४२ ॥

अथ शोथाधिकारः ४३.

पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिःशिराः ॥ नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्य्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ १ ॥ उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः ॥ सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥ २ ॥

भा० टी०–शुष्कमांस, विषमभोजन, उपवास, अतिमैथुनआदि कारणोंसे दूषितवायु पित्त, रक्त और कफको दूषित करके बाह्य नाडियोंमें पहुंचादेताहै अतएव उसकी गति रुकनेके कारण वह त्वचा और मांसमें रहनेवाले उन्नत और सघनरूप शोजाको उन्नत करताहै। इसीसे शोजाको सन्निपातज कहतेहैं। परन्तु कारणविशेषोंसे उपजनेवाला शोजा वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, विषज, अभिघातजआदि भेदोंसे नौप्रकारका है ॥ १ ॥ २ ॥

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलीशृतजलम् ॥
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ ३ ॥

भा० टी०–शोंठ, पुंडरिया, एरण्डीजड, लघुपञ्चमूल इनकरके कढेहुए जलको वातज शोजेमें पीवे ॥ ३ ॥

क्षीराशनः पित्तकृतेऽथ शोथे त्रिवृद्गुडूचीत्रिफलाकषायम् ॥ पिबे-द्गवां मूत्रविमिश्रितं वा फलत्रिकाचूर्णमथाऽक्षमात्रम् ॥ ४ ॥ पुन-र्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूचीसम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम् ॥ शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं मूत्रं तथा शस्तमिति ब्रुवन्ति ॥ ५ ॥

भा० टी०–पित्तजनित शोथमें क्षीरभोजन करताहुआ निशोत, गिलोय और त्रिफलाके कषायको पीवे वा गोमूत्रके संग अक्षप्रमाण त्रिफलाचूर्णको सेवे ॥ ४ ॥ कफजन्य शोथमें पुंडरिया, शोंठ, निसोत, गिलोय, अमलतास, हरड, देवदार इनके कल्कको वा गोमूत्रको गोगलके संग पीना भला कहा है ॥ ५ ॥

अजाजिपाठाघनपञ्चकोलव्याघ्रीरजन्यः सुखतोयपीताः ॥
शोथं त्रिदोषं चिरजञ्च वृद्धं निघ्नन्ति भूनिम्बमहौषधञ्च ॥ ६ ॥

भा० टी०–कालीजीर, पाठा, मोथा, पञ्चकोल, कटेरी, हलदी इनको मन्दोष्णजलके संग सेवन करनेसे बहुतकालसे उपजाहुआ त्रैदोषिक शोजा नष्ट होताहै । एवं चिरायता और शोंठका गुण भी जानिये ॥ ६ ॥

पिप्पलीविरजोनाम चरके पठ्यते त्वयम् ॥
योगोऽत्र त्वभयास्थाने ग्राह्या मातङ्गपिप्पली ॥ ७ ॥

भा० टी०–पिपलीविरजकनामक योग जो चरकमें पढागयाहै वहां अभया (हरड)के स्थानमें गजपीपल लेकर शोथरोगमें प्रयुक्त करे ॥ ७ ॥

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः ॥
अजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ ८ ॥

भा० टी०–अदरखके रसमें पुराना गुड मिलाय पान करनेसे बकरीदूधको सेवनकरनेवाले मनुष्योंके सब प्रकारके शोथरोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

पुनर्नवादारुशुण्ठीक्काथे मूत्रेऽथ केवले ॥ दशमूलरसे वाऽपि गुग्गुलुः शोथनाशनः ॥ ९ ॥ बिल्वपत्ररसं वाऽथ सोषणं श्वयथौ त्रिजे ॥ विद्वांस्तथैव दुर्नाम्नि विदध्यात्कामलासु च ॥ १० ॥ गुडपिप्पलि-शुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशो-धनम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–पुंडरिया, देवदार, शोंठ इनके क्काथमें वा केवल गोमूत्रमें वा दशमूलके काढेमें गोगल मिलाय पीनेसे शोथरोग नष्ट होताहै ॥ ९ ॥ एवं त्रैदोषिक शोथ, बवाशीर और

पाण्डुरोगकामलामें बेलपत्रीके रसमें काली मिरचका चूर्ण मिलाय पीवे ॥ १० ॥ एवं गुड, पिपली, और शोंठका चूर्ण भी शोथ,आमारोचक और शूलका नाशक तथा वस्तिस्थानका शोधक है॥ ११॥

पुरं मूत्रेण संसेव्यं पिप्पली वा पयोन्विता ॥
गुडेन वाऽभया तुल्या विश्वं वा शोथरोगिणाम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–गोमूत्रके संग गोगल वा दूधके संग पिपली वा समभाग गुडके संग हरड वा गुडके संग शोंठ, सेवनी उचित है जिन्हें कि शोथ रोग हो ॥ १२ ॥

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा ॥ कर्षाभिवृद्ध्या त्रिफलाप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ १३ ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ॥ जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्हन्यात्तऽथान्यान्कफवातरोगान् ॥ १४ ॥

भा० टी०–गुड, अदरख वा गुड शोंठ वा गुड हरड वा गुड पीपल वा त्रिफला इनमेंसे किसीएक प्रयोगको पक्षपर्य्यन्त वा मासपर्य्यन्त सेवन करतेरहनेसे ॥ १३ ॥ शोथ, प्रतिश्याय, गलरोग, मुखरोग, श्वास, कास, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवाशीर, ग्रहणीविकार तथा कफवातजरोग यह सब नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

मूलपद्ममयं कल्कं पयसाऽऽलोड्य पाययेत् ॥ प्लीहामयहरश्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित् ॥ १५ ॥ क्षीरं शोथहरं दारुवर्षाभूनागरैः शृतम् ॥ पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम् ॥ १६ ॥

भा० टी०–पोहकरमूलके कल्कको दूधमें औटाकर पीनेसे प्लीहरोग तथा सर्वाङ्गशोथ और एकाङ्गशोथ नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ एवं देवदार, पुंडरिया, शोंठ इनकरके कढाहुआ वा चीता, त्रिकटु, निशोत, देवदार इनकरके सिद्धहुआ दूध शोथरोगियोंको पीना उचित है ॥ १६ ॥

सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं पीत्वा समाक्षिकम्॥कुष्ठं शोथं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥ १७ ॥ सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोथजित् ॥ यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ॥ १८ ॥ शोथं सारुष्करो हन्ति वृन्तैः शालदलस्य च ॥ शोथे विषनिमित्ते तु विषोक्ता शस्यते क्रिया ॥ १९ ॥

भा० टी०–वांसा, गिलोय, कटेहरी इनके क्वाथको मधुके संग पीनेसे मनुष्य कोढ, शोथ, कास, श्वास, ज्वर, छर्दी इन सबको जीतता है ॥ १७ ॥ अर्क, पुंडरिया, नीम इनके क्वाथसे कियाहुआ सेककर्म शोथनाशक है एवं मुलहटी, दूध, तिल, नवनीत इन करके तथा शालपत्रके

वृन्तोंसे भिलावाकल्कके संग कियाहुआ लेप शोथनाशक है । विषसे उपजेहुए शोथमें विषाधिकारोक्त क्रिया करनी ॥ १८ ॥ १९ ॥

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुपञ्चोषणक्षीरहरीतकीनाम् ॥
कल्केन पक्वं दशमूलतोये घृतोत्तमं शोथनिषूदनं स्यात् ॥ २० ॥

भा० टी०-पुण्डरिया, चीता, देवदार, पञ्चोषण (शोंठ, मिरच, पीपल, पिपलामूल, चीता), सरलका गोंद, हरड इनके कल्कको दशमूलके क्वाथमें मिलाय घृत पकावे, सिद्धहोनेपर यह घृत शोथनाशक होता है ॥ २० ॥

रसे विपाचयेत्सर्पिः पञ्चकोलकुलत्थयोः ॥
पुनर्नवायाः कल्केन घृतं शोथविनाशनम् ॥ २१ ॥

भा० टी०-पञ्चकोल और कुलथीके काढेमें पुण्डरियाके कल्कको मिलाय घृत पकावे इस घृतको भी शोथनाशक जानिये ॥ २१ ॥

विश्वौषधस्य कल्केन दशमूलरसे शृतम् ॥
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं सामतामपि ॥ २२ ॥

भा० टी०-दशमूलके क्वाथमें शोंठका कल्क मिलाय घृत पकावे । यह घृत शोथ और आमदोषसे युक्त ग्रहणीरोगको नष्ट करताहै ॥ २२ ॥

अथ चित्रकाद्यं घृतम् ।

सचित्रकं धान्ययवानिपाठाः सदीप्यकत्र्यूषणकाम्लवेतसः ॥
बैल्वं फलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥ २३ ॥
पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयोज्यम् ॥
अर्शांसि गुल्मं श्वयथुञ्च कृत्स्नं निहन्ति वह्निञ्च करोति दीप्तम् ॥ २४ ॥

भा० टी०-चीता, धनियां, पाठा, जवायन, अजमोद, त्रिकुटु, अमलवेत, वेलगिरी, अनार, जवाखार, पिपलीमूल, चव्य इनके अक्षप्रमाण भागोंको पीसकर चारप्रस्थ जलमें पकावे चतुर्थांश रहनेपर एकप्रस्थ घृतको भी पकावे । यह घृत बवाशीर, गुल्म और शोथरोगको निर्मूल करके जठराग्निको बढाताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते दध्यागतं साधु विमथ्य तेन ॥
आजं घृतं चित्रकमूलगर्भतक्रेण सिद्धं श्वयथुघ्नमुक्तम् ॥ २५ ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहाँस्तद्धन्ति संवर्द्धयते च वह्निम् ॥ २६ ॥

भा० टी०—चीतेके कल्कसे लिप्त कियेहुए मृण्मय कलशमें दधियुक्त दूधको भलेप्रकार मथन करनेसे जो तक्र उपजता है उसमें चीताजडकी कल्क मिलाय बकरीका घृत पकावे। यह घृत शोथ, बवाशीर, अतिसार, वातगुल्म, प्रमेह इन सबको नष्टकरके जठराग्निको बढाताहै॥२५॥२६॥

अथ मानकघृतम्।

मानककाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥
एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषोत्थञ्च नाशयेत् ॥ २७ ॥

भा० टी०—मानकन्दके काथमें मानकन्दका ही कल्क मिलाय १ प्रस्थ घृत पकावे सिद्ध होनेपर यह घृत एक दोषसे वा दो दोषोंसे वा त्रिदोषसे उपजेहुए शोथको नष्ट करताहै॥ २७॥

अथ शैलेयादितैलम्।

शैलेयकुष्ठागरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः ॥ प्रियङ्गुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ २८ ॥ श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः पक्वा नखैश्चाऽपि यथोपलाभम् ॥ वातान्विते ऽभ्यङ्गमुशन्ति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥ २९ ॥

भा० टी०—भूरिछरीला, कूठ, अगर, देवदार, रेणुका, दालचीनी, पद्माख, इलायची, सुगन्धवाला, ढांकके बीज, फूलप्रियंगु, थुनेर, नागकेशर, बालछड, तालीशपत्र, केवटी, मोथा, तेजपात, धनियां॥ २८ ॥ गन्धविरोजा, सुगन्धतृण, पिपली और नखद्रव्य इनके कल्कके संग तैलको पकाकर सिद्ध करे। इस तैलके शरीरपर मर्दन करने और उक्तद्रव्योंको पीसकर लेपकरनेसे भी वातज शोथ दूर होताहै॥ २९॥

अथ शुष्कमूलाद्यं तैलम्।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुमुस्तमहौषधैः ॥
पक्वमभ्यञ्जनात्तैलं सशैलं शोथनाशनम् ॥ ३० ॥

भा० टी०—सूखी मूली, पुण्डरिया, देवदार, मोथ, शोंठ इनके कल्कके संग पकाहुआ तैल शिलारसके संग शरीरपर मर्दितहोनेसे शोथनाशक है॥ ३०॥

अथ कंसहरीतकी।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानाञ्च शतं गुडाच्च ॥ लेहे सुशीते च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ३१ ॥ प्रस्थार्द्धमानं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ॥ एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ ३२॥ श्वासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ॥ कार्श्यामवातन्त्वसृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ३३ ॥

भा० टी०-कंस (चारप्रस्थ) दशमूलके कषायमें १०० हरड, और १०० पल गुड पकावे जब पककर लेहकी भांति सिद्ध और शीतल होरहे तब उसमें दो २ तोलेके प्रमाणसे त्रिकुटा, त्रिसुगंध जवाखार और आधाप्रस्थ मधु मिलादेवे। पीछे एक हरडको खाकर ऊपरसे ४ तोले लेहको चाटे इस योगसे बढाहुआ शोथ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीह, त्रिदोष, उदररोग, पांडुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष, शुक्रदोष यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ३३ ॥

अथ पुनर्नवावलेहः।

पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थे गुग्गुलोश्च तुलां पचेत् ॥ ३४ ॥ तत्सिद्धं व्योषपत्रैलात्वग्भिर्व्यैः कार्षिकैः पृथक् ॥ चूर्णीकृतैः क्षिपेच्छीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥ ३५ ॥ लेहः पुनर्नवो नाम शोथशूलनिषूदनः ॥ कासश्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ३६ ॥

भा० टी०-पुंडरिया, गिलोय, देवदार, दशमूल इनके ४ प्रस्थ काथमें एकप्रस्थ अदरखके रसको मिलाय १०० पल गोगल पकावे ॥ ३४ ॥ सिद्ध और शीतल होनेपर त्रिकटु, तेजपात, इलायची, दालचीनी इनके अलग २ दो २ तोले चूर्ण भागको तथा ३२ तोले मधुको मिलाय चाटे ॥ ३५ ॥ यह पुनर्नवनामक लेह शोथ, शूल, कास, श्वास और अरुचिको नष्ट करके बल, वर्ण और जठराग्निको बढाताहै ॥ ३६ ॥

**पिष्टान्नमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमजाङ्गलञ्च ॥
स्त्रियं घृतं तैलपयोगुरूणि शोथं जिघांसुः परिवर्ज्जयेत ॥ ३७ ॥**

भा० टी०-शोथरोगके विनाश चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि, पीसाहुआ अन्न, खट्टे और नमकीन पदार्थ, मद्य, मृत्तिका, दिवास्वाप, जांगलदेशी मृगमांसके अतिरिक्त मांस, स्त्रीप्रसङ्ग, घृत, तैल, दूध और गरिष्ठपदार्थोंको त्यागदेवें ॥ ३७ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे शोथाधिकारः ॥ ४३ ॥

अथ वृद्धिब्रध्नाधिकारः ४४.

गुग्गुलुं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥ सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ॥ तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ २ ॥ चन्दनं

मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्दाहशोथरुजापहः ॥ ३ ॥ पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ॥ पित्तवृद्धिहरं कार्य्यं रक्ते रक्तप्रमोक्षणम् ॥ ४ ॥ श्लेष्मवृद्धिश्चोष्णवीर्य्यैर्मूत्रैः पिष्टैः प्रलेपयेत्॥पीतदारुकषायश्च पिबेन्मूत्रेण संयुतम्॥५॥

भा० टी०--गोगलको वा एरण्डीतैलको गोमूत्रके सङ्ग पीनेसे बहुतकालसे उपजीहुई वातवृद्धि नष्ट होतीहै ॥ १ ॥ अथवा एरण्डीतैलको दूधके संग एक मासपर्य्यन्त पीतारहे किंवा पान, अभ्यङ्ग और बस्तिकर्मके द्वारा नारायणतैलका उपयोग करे ॥ २ ॥ चन्दन, मुलहठी, पद्माख, खश, नीलकमल इनको दूधमें पीसकर लेप करनेसे वातजन्य दाह और शोथरोग नष्ट होतेहैं ॥३॥ एवं बड, गूलर, पिप्पल, पाखर, वेत इन पांचोंकी छालका कल्क बनाय घृतके संग लेप करनेसे पित्तवृद्धि दूर होतीहै । रक्तवृद्धिमें यन्त्रआदिसे रक्त निकालना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ कफवृद्धिको दूरानेके लिये उष्णपराक्रमवाले (शोंठआदि) द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे वा धूपसरलके क्वाथको गोमूत्रके संग पीवे ॥ ५ ॥

स्विन्नं मेदःसमुत्थन्तु लेपयेत्सुरसादिना ॥ शिरोविरेकैर्द्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ६ ॥ संस्वेद्य मूत्रप्रभवां वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत ॥ सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येत्प्राणिमुखेन वा ॥ ७ ॥ व्रणश्च स्थगिकाबद्धं रोपयेदन्त्रहेतुके ॥ फलकोशमसम्प्राप्ते चिकित्सा वातवृद्धिवत् ॥ ८ ॥

भा० टी०-मेदसे उपजेहुए वृद्धिरोगमें स्वेद देकर सुरसादिगणीय द्रव्योंसे वा शिरको विरेचित करनेवाले द्रव्योंको गोमूत्रके संग मन्दोष्ण बनाय लेप करे ॥६॥ मूत्रसे उपजेहुए वृद्धिरोगमें स्निग्धद्रव्योंसे स्वेद देकर तथा वस्त्रपट्टसे वेष्टित करके सीमनके नीचे शस्त्र वा प्राणिमुखसे बींधे ॥ ७ ॥ और विशेषकरके बद्धहुए घावको आरोपित करे । आंतसे उपजाहुआ वृद्धिरोग यदि अण्डकोशमें प्राप्त न हुआ हो तो उसमें वातवृद्धिकी तरह चिकित्सा करे ॥ ८ ॥

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः ॥ क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ ९ ॥ तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं पयोन्वितम् ॥ आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ १० ॥

भा० टी०--रासना, मुलहठी, गिलोय, एरण्डीजड, खिरेंटी, गोखरु इनके क्वाथको एरण्डीके तैलमें मिलाय पीनेसे शीघ्र अन्त्रवृद्धिरोग दूर होताहै ॥ ९ ॥ एरण्डीतैलको खिरेंटीके कल्कमें सिद्ध करके पीनेसे आध्मान, शूलसे युक्त अन्त्रवृद्धि नष्ट होतीहै ॥ १० ॥

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्विताम् ॥
प्रातःप्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–हरडको गोमूत्रमें सिद्धकरनेके अनन्तर तैल और लवणके संग प्रतिदिन प्रातःकालमें सेवन करनेसे कफवातजन्य अंडरोग दूर होताहै ॥ ११ ॥

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् ॥
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानं निहन्ति वृद्धिं विरुजां प्रवृद्धाम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–हरडको गोमूत्रमें सिद्ध करनेके अनन्तर एरण्डीतैलमें सेंधाके संग पकाकर खावे और पीछेसे गरमजलको पीवे तो वातकफादिकोंसे उपजी वृद्धि दूर होतीहै ॥ १२ ॥

त्रिफलाक्काथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः ॥
कफवातोत्थितं हन्ति श्वयथुं तरुणोद्भवम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–प्रतिदिन प्रातःकालमें गोमूत्रके संग त्रिफलाक्काथको पीनेसे तरुणावस्थामें कफवातसे उपजाहुआ अंडकोशका शोथ नष्ट होताहै ॥ १३ ॥

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारु महौषधम् ॥ मूत्रारनालसम्पिष्टं शोथघ्नं कफवातजित् ॥ १४ ॥ पीतो रुबुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ॥
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ १५ ॥

भा० टी०–धूपसरल, अगरु, कूठ, देवदार, शोंठ इनको गोमूत्र और कांजीमें पीसकर पीनेसे शोथ और कफ वात नष्ट होतेहैं ॥ १४ ॥ हरडके कल्कको पिपली और सेंधानमकके संग एरण्डीतैलमें मिलाय पीनेसे वृद्धिरोग नष्ट होताहै ॥ १५ ॥

गव्यं घृतं सैन्धवचूर्णयुक्तं सुचुक्रभाण्डे निहितं प्रयत्नात् ॥
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं निहन्ति कोशाण्डमतिप्रवृद्धम् ॥ १६ ॥

भा० टी०–सेंधानमकके चूर्णसे युक्त गोघृतको चूकके पात्रमें यत्नसे रखकर सातदिन पर्यन्त सूर्य्यकी किरणोंसे पकावे तदुत्तर इसके सेवनसे अंडकोशोंकी अतिवृद्धि नष्ट होतीहै ॥ १६ ॥

वचासर्षपकल्केन लेपाच्छोथः प्रणश्यति ॥ १७ ॥

भा० टी०–वचा और सरसोंका कल्क बनाय लेपकरनेसे शोथ नष्ट होताहै ॥ १७ ॥

अथ वृद्धिरोगसम्बन्धिब्रध्नरोगस्य निदानपूर्वकचिकित्सा ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वामसेवनान्निचयं गतः ॥ करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वंक्षणसन्धिषु ॥ १८ ॥ ज्वरशूलाङ्गदाहान्त्यं तं ब्रध्नमिति

निर्दिशेत् ॥ यस्य पूर्वं फिरङ्गाख्यो रोगो भूत्वा प्रशाम्यति ॥ १९ ॥
तस्य जन्तोर्व्रध्नरोग इत्युक्तः सुश्रुतादिभिः ॥ २० ॥

भा० टी०–अत्यन्त अभिष्यन्दि, गरिष्ठ और कच्चे पदार्थोंके सेवनसे वृद्धिको प्राप्तहुआ दोष वस्तिके नीचे जंघा और लिङ्गकी अन्तरालसंधिमें ग्रन्थिकी भांति शोथ उत्पन्न करताहै इसीका नाम ब्रध्नरोग है, इसके होते ज्वर, शूल और अंगदाह भी रहताहै सुश्रुतआदि महर्षियोंने इस-प्रकार भी कहाहै कि, जिस मनुष्यके पहिले फिरङ्गरोग होकर शान्त होजाताहै उसके यह रोग उपजताहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याऽग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः ॥ श्यामापूतिकर-ञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम् ॥ कृष्णाग्रन्थिकचव्यपञ्चलवणक्षा-राजमोदान्वितम् ॥ पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णं कृतं ब्रध्नजित् ॥ २१ ॥

भा० टी०–बेलकी जड, कैथकी जड, सोनापाठाकी जड, चीतेकी जड, कटेरी और कंट-कारीकी जड, श्यामाकी जड, पूतिकरञ्जकी जड, सैंजनेकी जड, शोंठ, भिलावा, पीपल, गठिवन, चव्य, पञ्चलवण, जवाखार, अजमोद इनके चूर्णको कांजी या गरमजल या निर्जलछांछके संग पीनेसे ब्रध्नरोग दूर होताहै ॥ २१ ॥

अविक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य च ॥
प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्नशूलहरं परम् ॥ २२ ॥

भा० टी०–गेहूं और कुन्दुरुके कल्कको कुछ गरम बनाय भेडके दुग्धसे लेप करनेसे ब्रध्नपीडा दूर होतीहै ॥ २२ ॥

अथ बृहत्सैन्धवाद्यं तैलम् ।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम् ॥ ह्रीवेरं मधुकं भार्ङ्गीं देवदारु सनागरम् ॥ २३ ॥ कट्फलं पौष्करं मेदां चविकां चित्रकं शठीम् ॥ विडङ्गातिविषे श्यामां रेणुकां नीलिनीं स्थि-राम् ॥ २४ ॥ बिल्वाजमोदौ कृष्णाञ्च दन्तीं रास्नां प्रपिष्य च ॥ साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत् ॥ २५ ॥ ब्रध्नोदावर्तगु-ल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ॥ आनाहमश्मरीञ्चैव हन्यात्तदनु-वासनात् ॥ २६ ॥

भा० टी०-सैंधानोन, मैनफल, कूठ, सोया, समुद्रफल, वचा, सुगन्धवाला, मुलहठी, भारङ्गी, देवदार, शोंठ, कायफल, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, वायविडङ्ग, अतीस, अनन्तमूल, रेणुका, नील, शालवन ॥ २३ ॥ २४ ॥ बेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती, रासना इनके कल्कके संग एरंडीतैल वा तिलतैलको पकाकर सिद्ध करने तथा अनन्तर मर्दन करनेसे कफवात ॥ २५ ॥ ब्रध्नरोग, उदावर्त, गुल्म, बवाशीर, प्लीहा, प्रमेह, आढ्यवात यह सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे वृद्धिब्रध्नाधिकारः ॥ ४४ ॥

अथ गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदापचीचिकित्साधिकारः ४५.

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ॥ महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥ यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षञ्च भोजनम् ॥ छर्दिश्च रक्तमुक्तिश्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ निचुलं शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा ॥ आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं सम्प्रशस्यते ॥ ३ ॥ तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ॥ हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ ४ ॥ सर्षपाञ्छिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ॥ मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ५ ॥ गलगण्डग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः ॥ प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति ना चिरात् ॥ ६ ॥

भा० टी०-मनुष्यके गलेमें निश्चलरूप एवं छोटी वा बडी सूजन अंडकोशकी भांति उत्पन्न होकर लटकतीहै इसीका नाम गलगंड रोग है ॥ १ ॥ गलगंडरोगमें जव, मूंग, पटोलशाक तथा कडुवा और रूखा भोजन एवं वमन और फस्तकर्मको प्रयुक्त करे ॥ २ ॥ समुद्रफल, सैंजनेके बीज वा दशमूल इनके कल्कको कुछ गरम बनाय वातज गंडमें लेप करना भला है ॥ ३ ॥ एवं एरंड और पलाशकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर लेप करनेसे गलगंडरोग शान्त होताहै ॥ ४ ॥ सरसों, सैंजनेके बीज, शणके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीजोंको खट्टी छांछमें पीसकर लेप करनेसे गलगंड, ग्रंथिरोग, गंडमाला यह सब थोडे कालमें नष्ट होजातेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः ॥ नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ७ ॥ अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यान्मधुनाऽथ गल-

गण्डे ॥ महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटेन ॥ ८ ॥
जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्तिताः ॥ तासां स्थूल
शिरे द्वेऽधश्छिन्द्यात्ते च शनैःशनैः ॥ ९ ॥ वडिशेनैव संगृह्य
कुशपत्रेण बुद्धिमान् ॥ स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥ १० ॥

भा० टी०–प्राचीन तरबूजके रसमें बिडलोन और सेंधा मिलाय नस्य लेनेसे निःसन्देह तरुण गलगण्डरोग नष्ट होताहै ॥ ७ ॥ लोहकीटको भैंसके मूत्रमें कुछ कालतक भावना देकर अन्तर्धूमविधिसे भस्म बनावे पीछे उसको मधुके संग चाटनेसे गलगण्डरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥ जीभके पार्श्वके नीचे १२ नाडी हैं उनमेंसे दो नाडी स्थूल हैं इन दोनोंको धीरे २ संडसीसे दबोचकर कुशपत्रशस्त्रसे छेदन करे जब रुधिर निकलजाय तब घावमें गुडयुक्त अदरखको लगावे ॥ ९ ॥ १० ॥

भोजनञ्चाऽनभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ॥ ११ ॥
कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितञ्च यत् ॥
उपर्य्युपरितच्छिन्द्याद्गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–इस अवसरपर कफनाशक द्रव्योंका भोजन और कुलथीका यूष भला है ॥ ११ ॥ दोनों कानोंकी बाह्यसन्धिके मध्यभागके समीप ऊपर २ की ओर जो तीन नाडी हैं उनको गलगंडरोगकी वर्तमानदशामें छेदित करना उचित है ॥ १२ ॥

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः ॥
कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥ १३ ॥
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ १४ ॥

भा० टी०–वायविडंग, जवाखार, सेंधानोन, रासन, चीता, त्रिकटु, देवदार इनके कल्कको कडवी तुंबीके रसमें मिलाय कटुतैल पकावे ॥ १३ ॥ इस तैलका नस्य लेनेसे बहुत कालसे उपजाहुआ गलगण्डरोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

अलम्बुषादलोद्भूतस्वरसार्द्धपलं पिबेत् ॥
अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–गोरखमुण्डीके पत्तोंसे उपजेहुए स्वरसको आधा २ पल पीनेसे अपची, गंडमाला और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजयेत् ॥
पक्वा पुपलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥ १६ ॥

भा० टी०-यदि गंडमाला पकेनहीं वा पकनेपर उससे राध बहती रहे इधर कोई २ नष्ट होजायं और कोई २ उपजते रहें तो यह अपचीनामसे चरितार्थ होती है। इसकी चिकित्सा कहते हैं, वनकपासकी जडको चावलोंके संग पीसकर पूरी बनाय खानेसे अतिकठिन अपची नष्ट होती है ॥ १६ ॥

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ॥
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ १७ ॥

भा० टी०-सैंजनकी जड और देवदारको काञ्जीके संग पीसकर गरम २ लेप करनेसे अतिकठिन अपची रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

कोशातकीनां स्वरसेन नस्यं तुम्ब्यास्तथा पिप्पलिसंयुतेन ॥
तैलेन वाऽरिष्टमुखेन कुर्य्याद्वचोपकुल्ये सह माक्षिकेण ॥ १८ ॥

भा० टी०-तोरईके स्वरसमें वा तुम्बीके स्वरसमें पिपली मिलाय नास लेवे। एवं अरिष्टादि तैलके द्वारा वा मधुमिश्रित वचा और पिपली चूर्णका नस्य लेनेसे भी अपची दूर होतीहै ॥ १८॥

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्व्वीत भिषक्शोथप्रतिक्रियाम् ॥
पक्वानुत्पाट्य संशोध्य रोपयेद्व्रणभेषजैः ॥ १९ ॥

भा० टी०-वातादिदोष दूषित होकर मांस, रुधिर, मेद और नाडियोंको दूषित करके ऊंची २ कठिनरूप ग्रन्थिरूप सूजन उत्पन्न करते हैं इसीका नाम ग्रन्थिरोग है। अपक्व ग्रन्थिरोगमें शोथोक्त चिकित्सा करे और पकनेपर उनको छीलकर राध आदिको निकालने अनन्तर व्रणरोगोक्त औषधियोंसे घावको रोपे ॥ १९ ॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृताऽथ भार्ङ्गी श्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः ॥
गोमूत्रपिष्टाः सहतालपर्ण्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २० ॥

भा० टी०-वातजन्य ग्रन्थिरोगमें कटेरी, कटुकी, गिलोय, भारङ्गी, सोनापाठा, बेलगिरी अगर, सैंजनकी छाल, सौंफ इनको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरनेसे वह दूर होता है ॥ २० ॥

जलायुकाः पित्तकृते हिताः स्युः क्षीरोदकाभ्यां परिसेचनञ्च ॥ काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥२१॥ मधूकजम्ब्वर्ज्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ॥ हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक्श्लेष्मसमुत्थिते च ॥ २२ ॥ दन्तीचित्रकमूलत्वक्सौधार्कपयसी गुडः ॥ भल्लातकास्थिकाशीशं लेपाच्छिन्द्याच्छिलामपि ॥ २३ ॥ ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वानु-

कृत्य चाऽग्निं विदधीत वैद्यः ॥ क्षारेण चैतान्प्रतिसारयेत्तु सर्वांश्च संलिख्य यथोपदेशम् ॥ २४ ॥

भा० टी०–पित्तजन्य ग्रन्थिरोगमें जोंक लगाकर दूषितरक्तको निकालना, एवं क्षारजलसे रोगस्थानपर सेचन करना तथा काकोल्यादिगणीय द्रव्योंके क्वाथमें शक्कर मिलाय पानकरना भला है ॥ २१ ॥ कफजन्य ग्रन्थिरोगमें महुआ, जामुन, अर्ज्जुन, बेत इनकी छालको पीसकर क्रमशः लेपकरनेसे जब राध आदि दोष निकलजायं तब टसमें ॥ २२ ॥ दन्तीकी जड, चीतेकी जड, थूहरका दूध, आकका दूध, पुराना गुड, भिलावेकी गुठली, हीराकसीस इनका लेप करनेसे ग्रन्थि तो क्या प्रत्युत पत्थर भी फूटकर गिरजाता है ॥ २३ ॥ जो ग्रन्थि मर्मस्थानोंमें उत्पन्न न हुई एवं जो अपक्व हैं उनको छीलकर अग्निदग्ध करे वा क्षारसे प्रतिसारित करे ॥२४॥

भिषगर्ब्बुदरोगञ्च कुर्वन्ग्रन्थिप्रतिक्रियाम् ॥
प्रायश्चिकित्सितुं योग्यो यथाशास्त्रविधानवित् ॥ २५ ॥

भा० टी०–शास्त्रानुसार विधिको जाननेवाले वैद्यको उचित है कि, अर्बुदरोग (जो ग्रन्थि-रोगके सदृश शरीरमें मांसग्रन्थिरूपसे उपजता है) में भी प्रायः ग्रन्थिरोगोक्त चिकित्सा करे ॥२५॥

वातार्ब्बुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धैश्च मांसैरथ वेशवारैः ॥ स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्याः शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ २६ ॥ स्वेदोपनाहा मृदवश्च पथ्याः पित्तार्ब्बुदे कायविरेचनञ्च ॥ विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ २७ ॥ श्लक्ष्णी-कृतैः सर्ज्जरसप्रियंगुपतङ्गलोध्राञ्जनयष्टिकाह्वैः ॥ औपोदिकाभ्य-क्तिरदः पलाशैः प्रवेष्टनं नाशयतेऽर्ब्बुदानि ॥ २८ ॥

भा० टी०–वातजन्य अर्ब्बुदरोगमें स्निग्धमांसका वेशन बनाय लेप करना, स्वेददेना, नाभिसे शिङ्गीके द्वारा रक्त निकालना आदि कर्म करने श्रेष्ठ हैं ॥ २६ ॥ पित्तजन्य अर्ब्बुदरोगमें मृदुस्वेद, मृदुप्रलेप, पित्तनाशक पथ्य, विरेचन आदि कर्म श्रेष्ठ हैं। गूलर और गोजियाके पत्तोंमें मधु मिलाय लेप करनेसे अर्बुदरोग दूर होताहै ॥ २७ ॥ एवं राल, फूलप्रियंगु, जलमहुआ, लोध, रसोत, मुलहठी इनको एकसाथ महीन पीसकर लेप करे तथा रोगस्थानोंमें पोईका रस लगाकर ऊपरसे पोईके पत्तोंको बांधदेनेसे भी सबप्रकारके अर्ब्बुदरोग नष्ट होते हैं ॥ २८ ॥

लेपनं शंखचूर्णेन शुष्कमूलकभस्मना ॥
कफार्ब्बुदापहं कुर्य्याद्गन्धादिषु विशेषतः ॥ २९ ॥

भा० टी०–शंखचूर और सूखी मूलीके भस्मसे लेप करना कफजन्य अर्बुदका नाशक है। विशेषतः यह लेप गंध आदिकोंमें उपयोगी है ॥ २९ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च ॥ लेपं विदध्यात्कृमयो यथाऽत्र मुञ्चन्ति नाऽऽयान्ति च मक्षिकाश्च ॥ ३० ॥ अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् ॥ तस्याऽऽशु मूलं त्रपुताम्रयष्टीसंवेष्टपत्रैरथवाऽऽयसैश्च ॥ ३१ ॥ क्षाराग्निशस्त्राण्यवतारयेद्धि मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्षमाणः ॥ यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्धि धीमान् ॥ ३२ ॥

भा० टी०–लोबिया, खली, कुलथी, मांस इनको दधिके संग खरड करके लेप करे परन्तु उससमय ऐसा यत्न करे कि, जिससे घावमें कृमि और मक्खीका पतन न हो ॥ ३० ॥ घावमें कुछ दोष रहगया और कृमिपात होगया हो तो घावको शस्त्रसे छीलकर उसकी जडमें कांच, ताम्र वा लोहेकी सलाईसे अग्निदग्ध करे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार रोगीकी प्राणशक्तिको देखताहुआ बार २ क्षारप्रयोग, अग्निप्रयोग और शस्त्रप्रयोगको करतेरहे । यदि अर्बुद अपने आप पकगया हो तो व्रणपाकोक्त विधिके अनुसार चिकित्सा करे ॥ ३२ ॥

उत्पादिका काञ्जिकतक्रपिष्टा लेपोपनाहो लवणेन मिश्रः ॥ इष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिनेदिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ३३ ॥

भा० टी०–किसीने ऐसा कहा है कि, मर्मस्थानमें उपजे हुए अर्ब्बुदोंकी शान्तिके लिये प्रतिदिन और प्रतिरात्रिमें कांजी और तक्रके संग पीसीहुई पोईके कल्कमें नमक मिलाय लेप करे ॥ ३३ ॥

स्नुहीगण्डारिकास्वेदो नाशयत्यर्बुदानि च ॥ लवणेनाऽथवा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ ३४ ॥ हरिद्रालोध्रयष्टीभिर्गृहधूमो मनःशिला ॥ मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥ ३५ ॥ एतामेव क्रियां कुर्य्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ॥ छागमूत्रेण तत्पिष्ट्वा सापचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ३६ ॥

भा० टी०–थूहर और गंडारिका वा लवण वा सीसेके द्वारा विधिपूर्वक स्वेद देनेसे भी अर्बुदरोग नष्ट होताहै ॥ ३४ ॥ हलदी, लोध, मुलहठी, गृहधूमकी धूर, मनसिल इनके चूर्णमें अधिकांस मधु मिलाय लेपकरनेसे मेदसे उपजाहुआ अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥ इसी क्रियाको शर्क्कराजन्य अर्बुदमें भी करे । सरसों और नीमके पत्ते तथा भिलावाफलको अन्तर्धूमविधिसे भस्म करनेके अनंतर बकरीमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अपचीसहित अर्बुदरोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

पार्ष्णि प्रति द्वादशचांगुलानि मात्वेन्द्रवस्तिं परिवार्य्य सम्यक् ॥
विदार्य्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो निष्कृत्य जालान्यनलं विदध्यात् ३७॥

भा० टी०–एडीके प्रति बारह अंगुलका अन्तर छोडकर इन्द्रवस्तिके पशवाडोंको फाडनेके अनन्तर वहांसे मच्छीके अण्डोंके समान जालरूप दोषोंको निकालकर अग्निकर्म करे ॥ ३७ ॥

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्य्यादेतां क्रियां भिषक् ॥
अंगुलान्तारितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ३८ ॥

भा० टी०–किंवा मणिबन्ध (हाथका गट्टा) के ऊपर एक अंगुलका अन्तर छोडकर इस पूर्वोक्त क्रियाको करनेसे सवप्रकारके अपचीरोग शान्त होतेहैं ॥ ३८ ॥

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकं तथा ॥ निम्बत्वक्सारनिर्गुण्डी-साधितं वा तदर्थकृत ॥ ३९ ॥ अभ्यङ्गात्साधयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ छुच्छुन्दर्य्या विपक्केन तैलेनैकक्षणादपि ॥ ४० ॥ चन्दनं चाऽभया लाजा वचा कटुकरोहिणी ॥ एतैस्तैलं शृतं पीतं समूलमपचीं जयेत् ॥ ४१ ॥

भा० टी०–शाखोटकतैलके मर्दनसे वा नीम, बांस, सम्भालु इनके संग पकेहुए तैलके मर्दनसे दारुणरूप गण्डमाला नष्ट होतीहै ॥ ३९ ॥ एवं छुछुन्दरीके संग पकेहुए तैलके मर्दन करनेसे दारुणरूप गण्डमाला तत्काल दूर होतीहै ॥ ४० ॥ चन्दन, हरड, लज्जा, वचा, कटुकी इनके संग पकेहुए तैलको मर्दन करनेसे अपची रोग जडसे नष्ट होताहै ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे गलगण्डादिचिकित्साधिकारः ॥ ४५ ॥

अथ श्लीपदाधिकारः ४६.

पाणिनासौष्ठकर्णेषु वदन्त्येके तु पादवत् ॥ श्लीपदं जायते तच्च देशेऽनूपे भृशंभृशम् ॥ १॥ चन्दनालेपनैः स्वेदैरपरै रक्तमोक्षणैः ॥ प्रायः श्लेष्महरै रूक्षैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ २ ॥ धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ ३ ॥ निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ॥ प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ ४ ॥

भा० टी०-श्लीपदरोग केवल पैरोंमें ही नहीं प्रत्युत हाथ, नासिका, ओठ और कानोंमें भी पैरोंकी तरह उपजताहै, यह रोग अनूपदेशोंमें विशेषकर होताहै ॥ १ ॥ चन्दन आदिका लेप, स्वेदकर्म, फस्त और कफनाशक रूखे पदार्थोंके द्वारा प्रायः श्लीपदरोगकी चिकित्सा करे ॥ २ ॥ धतूरा, एरण्डीजड, निर्गुण्डी, पुंडरिया, सैंजन, सरसों इनके लेप करनेसे बहुतकालका उपजा- हुआ दारुण श्लीपदरोग भी नष्ट होताहै ॥ ३ ॥ सफेद आककी जड और दालचीनीको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे बद्धमूल और दृढरूप श्लीपद नष्ट होताहै ॥ ४ ॥

हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु च ॥ सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ५ ॥ स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ॥ कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तचतुरंगुले ॥ ६ ॥ गुल्फस्याधः शिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ॥ पित्तघ्नीश्च क्रियां कुर्य्यात्पित्तार्ब्बुदविसर्पवत् ॥ ७ ॥

भा० टी०-चीता और देवदार वा सरसों, सैंजन इनके कल्कको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरना भला है ॥ ५ ॥ वातजन्य श्लीपदमें स्नेहकर्म, स्वेदकर्म और लेप करके गुल्फके ऊपर चार अंगुलके अन्तरमें शिराभेदन करे ॥ ६ ॥ पितजन्य श्लीपदमें गुल्फके नीचे शिराभेदन करके पित्तजन्य अर्बुद और विसर्पकी भांति पित्तनाशक क्रिया करे ॥ ७ ॥

मञ्जिष्ठां मधुकं रास्नां हिंस्राञ्च सपुनर्नवाम् ॥ पिष्ट्वाऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ ८ ॥ शिरां सुविदितां विध्येदंगुष्ठे श्लेष्मश्ली- पदे ॥ मधुयुक्तानि वा तीक्ष्णकषायाणि पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

भा० टी०-मंजीठ, मुलहठी, रासना, बालछड इनको कांजीमें पीसकर लेपकरनेसे पित्त- जन्य श्लीपदरोग नष्ट होताहै ॥ ८ ॥ कफजन्य श्लीपदमें पैरके अंगूठेकी नाडीको वींधे और मधु- युक्त तीक्ष्ण क्वाथोंको पीवे ॥ ९ ॥

पिबेद्वाऽप्यभयाकल्कं मूत्रेणाऽन्यतमेन वा ॥ पिबेदेवं गुडूचीं वा नागरं भद्रदारु च ॥ १० ॥ रोगी सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये॥ करञ्जं सयवक्षाररसं वापि यथाबलम् ॥ ११ ॥

भा० टी०-अथवा हरडके कल्कको गोमूत्र वा किसी अन्य वस्तुके संग पीवे, इसीप्रकार गिलोय, शोंठ और देवदारका प्रयोग करे ॥ १० ॥ अथवा श्लीपदरोगीको उचित है कि, यथाशक्ति जवाखारके रससहित पूतिकरञ्जको सरसोंतैलके संग पीवे इससे श्लीपदरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

पलाशमूलस्वरसैः पिबेच्च तैलञ्च तुल्यं सितसर्षपाणाम् ॥ मूत्रेण पथ्यासुरदारुविश्वं सगुग्गुलु श्लीपदिभिर्निषेव्यम् ॥ १२ ॥ काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं वृद्धदारुकसम्भवम् ॥ निशां गुडसमायुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ १३ ॥ गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोपुरेण यः पिबति ॥ श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १४ ॥ धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् ॥ दीपनं वातदोषघ्नं मेहश्लीपदनाशनम् ॥ १५ ॥

भा० टी०–सफेद सरसोंके तैलमें उतना ही पलाशकी जडका स्वरस मिलाय पीवे । किंवा हरड, देवदार, शोंठ, गोगल इन सबको गोमूत्रके संग श्लीपदरोगियोंको सेवना उचित है ॥ १२ ॥ विधाराके चूर्णको कांजीके संग और गुडयुक्त हलदीको गोमूत्रके संग पीवे ॥ १३ ॥ जो मनुष्य गंधर्वतैलमें भुनीहुई हरडको केवटी मोथाके रस वा गोमूत्रके संग पीवे वह सात ही दिनमें श्लीपदके बन्धनसे मुक्त होताहै ॥ १४ ॥ तैलयुक्त काञ्जी कफवात, वातदोष, प्रमेह तथा श्लीपद-रोगका नाशक और दीपन होती है ॥ १५ ॥

अथ समवृद्धदारकं चूर्णम् ।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्व्वी वरुणगोक्षुरौ ॥ अलम्बुषा गुडूची च समभागानि चूर्णयेत् ॥ १६ ॥ सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम् ॥ काञ्जिकेन ततः पेयमक्षमात्रं सुधीमता ॥ १७ ॥ जीर्णेऽस्मिन्परिकर्तव्यं भोजनं सार्वकामिकम् ॥ नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातञ्च दारुणम् ॥ १८ ॥ गुल्मकुष्ठारुचिहरं वातश्लेष्मरुजापहम् ॥ १९ ॥

भा० टी०–त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहलदी, वरना, गोखरु, गोरखमुण्डी, गिलोय इन सबका समान भाग लेकर चूर्ण बनावे ॥ १६ ॥ पीछे इस चूर्णके समान विधाराके चूर्णको भी उसमें मिलाय अक्षप्रमाण मात्रा लेकर कांजीके संग पीवे ॥ १७ ॥ जीर्णरोग होय तो सेवनकालमें अभीष्ट भोजन करे नहीं तो पथ्यपूर्वक रहे । इस चूर्णसे श्लीपद, स्थूलता, आमवात, गुल्म, कोढ, अरुचि, वातकफसंबंधी रोग यह सब नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ पिप्पल्याद्यं चूर्णम् ।

पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्नवम् ॥ भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ २० ॥ कांजिकेन तु तच्चूर्णं पिबेत्कर्षप्रमाणतः ॥ जीर्णे

चाऽपरिहारः स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥ २१ ॥ श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च ॥ अग्निश्च कुरुते घोरं भस्मकञ्च नियच्छति ॥ २२ ॥

भा० टी०-पिपली, त्रिफला, देवदार, शोंठ, पुंडरिया इनके दो २ पल भाग और १४पल विधारा भागको लेकर चूर्ण बनावे ॥२०॥ इस चूर्णको एक २ कर्ष प्रमाणसे कांजीके संग पीवे । जीर्णरोग होय तो पथ्यमें वर्ज्यावर्ज्य वस्तुका विचार नहीं । यहांपर कोई ऐसा अर्थ करतेहैं कि, चूर्णके रीझजानेपर यथेच्छ भोजन करे नहीं तो पथ्यपूर्वक रहे ॥ २१ ॥ यह चूर्ण श्लीपद, वात-रोग, प्लीहा और भस्माग्निको नष्ट करके जठराग्निको बढाताहै ॥ २२ ॥

अथ कृष्णाद्यो मोदकः ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धं पलं पलम् ॥
विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् ॥ २३ ॥
मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हन्ति दारुणम् ॥ २४ ॥

भा० टी०-आधा कर्ष पिपली, आधा पल चीता, १ पल दंती, २० हरडे, २ पल गुड इन सबका मोदक बनाय मधुके संग खानेसे दारुण श्लीपदरोग नष्ट होताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ शौरेश्वरं घृतम् ।

सुरसाग्रन्थिकव्योषविडङ्गाग्निवचाशठी ॥ पाठैलाहबुषा श्यामा-चव्यदारुसमन्विता ॥ २५ ॥ सपञ्चलवणक्षारैः कार्षिकैर्विपचेद्धविः ॥ प्रस्थं तदंशैर्धान्याम्लदशमूलाम्बुमस्तुभिः ॥ २६ ॥ त्रिभिरेव दिनैः पानाच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ वृद्धयर्शोग्रहणीरोगगलगण्डार्बुदापचीः ॥ २७ ॥ घृतं शौरेश्वरं नाम कृमिश्लीपदकुष्ठनुत् ॥ २८ ॥

भा० टी०-एक प्रस्थ दशमूलके रसमें १ प्रस्थ कांजी, एकप्रस्थ दधिजल और एक २ कर्षप्रमाणसे तुलसी, गठिवन, त्रिकटु, वायविडङ्ग, चीता, वचा, कचूर, पाठा, इलायची, हाऊबेर, फूलप्रियंगु, चव्य, देवदार, पञ्चलवण, जवाखार इनके कल्कको मिलाय एक प्रस्थ घृत पकावे ॥ २५ ॥२६॥ इस घृतके सेवनेसे तीन ही दिनमें कठिन श्लीपद, अंडवृद्धि, बवासीर, ग्रहणीरोग, गलगंड, अर्बुद, अपची, कृमि, कोढ यह सब नष्ट होतेहैं । इसका नाम शौरेश्वर घृत है॥२७॥२८॥

अथ विडङ्गाद्यं तैलम् ।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ॥ भद्रदार्व्वेलकाव्वेषु सर्वेषु लवणेषु च ॥ २९ ॥ तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ३० ॥

भा० टी०-वायविडङ्ग, मिरच, आक, शोंठ, चीता, देवदार, इलायची, कालीजीर, पञ्च-लवण इनके कल्कमें तैलको पकाकर पानकरनेसे श्लीपदरोग दूर होता है ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे श्लीपदाधिकारः ॥ ४६ ॥

अथ विद्रधिरोगाधिकारः ४७.

जलौकःपातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ॥ मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोद्भवं विना ॥ १ ॥ वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतप्लुतैः ॥ सुखोष्णबहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥ स्वेदोपनाहाः कर्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः ॥ यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैश्च लेपयेत् ॥ ३ ॥ विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ॥ पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा ॥ ४ ॥ गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ पैत्तिकं शर्करालाजामधुकैः शारिवान्वितैः ॥ ५ ॥ प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयसोशीरचन्दनैः ॥ पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्कादिसंयुतम् ॥ ६ ॥ इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः ॥ मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ७ ॥ दशमूलकषायेण सस्नेहलवणेन च ॥ शोथं व्रणञ्च कोष्णेन सशूलं परिषेचयेत् ॥ ८ ॥

भा० टी०–वातादिदोष, त्वचा, मांस रुधिर आदि धातुओंको दूषित करके शूलयुक्त गोलाकार वा लंबी सूजनको उत्पन्न करते हैं इसीका नाम विद्रधिरोग है, यह बाह्य और अन्तःस्थ भेदसे दो प्रकारका है। बाह्य तो शरीरके बाहिर और अन्तर्विद्रधि शरीरके भीतर गुदा, वस्ति आदि अङ्गोंमें होता है। सबप्रकारके विद्रधिरोगमें जोक लगाकर दूषित रक्तको निकालना एवं हलका दस्त और हलका भोजन श्रेष्ठ है, स्वेदकर्म तो पित्तज विद्रधिके अतिरिक्त विद्रधियोंमें करना उचित है ॥१॥ वातजन्य विद्रधिमें वातनाशक औषधियोंके जडका कल्क बनाय वसा,घृत और तैलके संग मन्दोष्ण करे अनन्तर उसका गाढा लेप करे ॥ २ ॥ एवं सैंजनकी जडको पीसकर लेप करना और स्वेददेना उचित है। तथा जौ, गेहूं, मूंग इनको काले धतूरेके संग पीसकर लेप करनेसे तत्काल ॥ ३ ॥ अपक्व विद्रधिरोग भी नष्ट होता है। एवं पुंडरिया, देवदार, सोंठ, दशमूल, हरड इनके क्वाथमें ॥ ४ ॥ गोगल वा एरण्डीके तैलको मिलाय पीनेसे वातज विद्रधिरोग दूर होता है। पित्तजन्य विद्रधिरोगमें शकर, लाजा, मुलहठी, सारिवा ॥ ५ ॥ इनको दूधमें पीसकर वा खस, चन्दनको दूधमें पीसकर लेप करे। किंवा निशोत आदिके कल्कसे युक्त त्रिफलाके क्वाथको पीवे ॥ ६ ॥ ईंट, बालू, लोहा, गोबर, भूसा इनके चूरको गोमूत्रमें पीसकर स्वेद देनेसे कफजन्य विद्रधिरोग दूर होता है ॥ ७ ॥ स्नेह और लवणसहित दशमूलके क्वाथको मन्दोष्ण बनाय शूलयुक्त सूजन और घावमें परिषेक करे ॥ ८ ॥

पित्तविद्रधिवत्सर्वा क्रियां निरवशेषतः ॥
विद्रध्योः कुशलः कुर्य्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ९ ॥

भा० टी०–रक्तज और आगन्तुक विद्रधिरोगमें पित्तविद्रधिमें कहेहुए प्रयोग करने उचित है॥९॥

शोभाञ्जनकनिर्य्यूहो हिंगुसैन्धवसंयुतः ॥ अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातःप्रातर्निषेवितः ॥ १० ॥ शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत् ॥ तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ ११ ॥ श्वेतवर्षाभुवो मूलं त्वचं वरुणकस्य च ॥ जलेन कथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ १२ ॥ शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम् ॥ अन्तर्गतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १३ ॥ अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ॥ प्रियंगुधातकीलोध्रं कट्फलं तिनिसत्वचा ॥१४॥ एभिस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौ व्रणरोपणम् ॥१५॥

भा० टी०–सैंजिनेके क्वाथमें हींग, सेंधा मिलाय प्रतिदिन प्रातःकालमें सेवन करनेसे विद्रधिरोग नष्ट होता है॥ १० ॥ सैंजिनेकी जडको जलसे धोकर थोडा कूटदेवे अनन्तर उससे रस निचोडकर मधुके संग पीनेसे अन्तर्विद्रधिरोग नष्ट होता है॥ ११ ॥ सफेद पुनर्नवाकी जड और वरनाकी छालका क्वाथ बनाय पीनेसे अपक्व विद्रधि नष्ट जानिये ॥ १२ ॥ पाठाकी जडमें मधु मिलाय चावलजलके संग पीनेसे उद्धतरूप अन्तर्विद्रधिरोग नष्ट होता है॥ १३ ॥ यह सब क्रिया अपक्व विद्रधिके लिये कही है, पक्व विद्रधिमें तो व्रणशोथोक्त क्रिया करनी उचित है। प्रियंगु, धाई लोध, कायफल और तिरिच्छाकी छाल इनके कल्कके द्वारा तैल पकावे। यह तैल घावको रोपता है॥ १४ ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे विद्रधिरोगाधिकारः ॥ ४७ ॥

अथ व्रणशोथाधिकारः ४८.

आदौ विम्लापनं कुर्य्याद्द्वितीयमवसेचनम् ॥ तृतीयमुपनाहं तु चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥ १ ॥ पञ्चमं शोधनं कुर्य्यात्षष्ठं रोपणमिष्यते ॥ एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥ २ ॥ मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च सुरदारु महौषधम् ॥ अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ ३ ॥ दूर्वा च नलमूलञ्च मधुकं चन्दनं

तथा ॥ शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा ॥ ४ ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥ ससर्पिष्कैः प्रलेपस्तु शोथनिर्वापणः स्मृतः ॥ ५ ॥ शोथे तु शोणितोत्थे च एष एव विधीयते ॥ ६ ॥ अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला सरलया सह ॥ एकोऽपि चाऽजशृङ्ग्याश्च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ७ ॥

भा० टी०–किसी एक अंगमें प्रथम सूजन उत्पन्न होकर व्रण (घाव) होजाता है इसीका नाम व्रणशोथ है । यह वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, रक्तज, आगन्तुक भेदसे सात प्रकारका है । व्रणशोथमें प्रथम विम्लापन, द्वितीय अवसेचन, तृतीय प्रलेप, चतुर्थ व्रणच्छेदन, पञ्चम शोधन, छठा रोपणकर्म और सातवां वैकृतनाश यह विधान क्रमशः करने उचित हैं ॥ १ ॥ २ ॥ बिजोरा नीबू, अरणी, देवदार, शोंठ, काकादनी, रासना इनका लेप करनेसे वातजन्य व्रणशोथ दूर होता है ॥ ३ ॥ दूब, नीलकी जड, मुलहठी, चन्दन और उत्पलादि शीतलगणीय द्रव्योंका लेप करनेसे पित्तज व्रणशोथ दूर होता हैं ॥ ४ ॥ वट, गूलर, पीपल, पाखर और वेतकी छालको पीसकर लेप करनेसे पित्तज व्रणशोथ दूर होता है ॥ ५ ॥ प्रायः रक्तजन्य व्रणशोथमें भी यही क्रिया अभीष्ट है ॥ ६ ॥ तिलवन, असगंध, कलंबक और धूपसरल इनको पीसकर लेप करनेसे कफजन्य व्रणशोथ नष्ट होता है इसी प्रकार ककडाशिङ्गीके लेपका फल है ॥ ७ ॥

पुनर्नवादारुशिग्रुदशमूलमहौषधैः ॥
कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ॥ ८ ॥

भा० टी०—कफवातसे उपजेहुए व्रणशोथमें पुंडरिया, देवदार, सैंजन, दशमूल, शोंठ इनके कल्कको कुछ गरम बनाय लेप करना उचित है ॥ ८ ॥

शुष्यन्तं समुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ न मुखे चैनमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ॥ ९ ॥ कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः ॥ सुपर्ण इव नागानां वातशोथस्य नाशकः ॥ १० ॥ रक्तावसेचनं कुर्य्यादादावेव विचक्षणः ॥ शोथे महति संरब्धे वेदनावति च व्रणे ॥ ११ ॥ यो न याति शमं लेपैः स्वेदसेकावतर्पणैः ॥ सोऽपि तात व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ १२ ॥ एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ॥ रक्तं हि दोषमापन्नं तच्च नास्ति न नास्ति रुक् ॥ १३ ॥ न प्रशाम्यति यः शोथः

प्रलेपादिविधानतः ॥ द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ १४ ॥ सतिला सातसीबीजदध्यम्ला सक्तुपिण्डिका ॥ सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ १५ ॥ हस्तिदन्तं नलैर्घृष्टं बिन्दुमात्रप्रलेपनात् ॥ अत्यर्थकठिने चापि शोथे पाचनभेदनम् ॥ १६ ॥

भा० टी०-सूखते हुए व्रणपर प्रतीक्षा करे अर्थात् एकाएक चिकित्सा न करे किन्तु पीड़ाके प्रति लेपकरना उचित है, व्रणके मुखपर लेप न करे क्योंकि वह राधआदि दोष निकलनेका स्थान है ॥ ९ ॥ शाहोराकी छालके कल्कको कांजीमें पीसकर स्निग्ध बनाय लेपकरनेसे वातजन्य व्रणशोथको कैसे नष्ट करता है जैसे गरुड सर्पोंको ॥ १० ॥ बडे वेगसे उठतेहुए शोथमें और वेदनायुक्त व्रणके होनेमें प्रथम ही रक्तावसेचन कर्म करना उचित है ॥ ११ ॥ जो शोथ स्वेद, सेक, लेप और अवतर्पणोंसे भी शांत न हो वह दूषित रक्तके निकालने (फस्त) से शीघ्र ही शान्त होता है ॥ १२ ॥ सब उपाय एक ओर और दूषित रक्तका निकालना एक ओर, क्योंकि दूषित रक्तके अभावसे रोग भी नहीं रहता ॥ १३ ॥ अथवा प्रलेपादिसे शांत न होनेवाले व्रणशोथमें पकानेवाली औषधियोंका लेप करे ॥ १४ ॥ तिल, अलसीके बीज, दधि, छांछ इनकरके सत्तूकी पिण्डी बनाय कुछ गरम करने अनन्तर व्रणशोथके पाकके लिये लेप करना भला है ॥ १५ ॥ हाथीदांतको नीलके संग घिसकर बिन्दुमात्र लेपकरनेसे अत्यन्त कडा शोथ भी पककर फटजाता है ॥ १६ ॥

पिच्छिलानाञ्च द्रव्याणां त्वङ्मूलानि प्रलेपयेत् ॥ यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥ १७ ॥ न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ॥ न च पर्य्युषितं शुष्यमाणं नैवाऽवधारयेत् ॥ १८ ॥ चिरबिल्वाग्निकौ दन्ती चित्रको ह्यपसारकः ॥ कपोतकङ्कगृध्राणां पुरीषाणि च दारणः ॥ १९ ॥ क्षारद्रव्याणि चाऽम्लानि क्षारो वा दारणः परः ॥ ततः प्रक्षालनः क्वाथः पटोलारिष्टपत्रजः ॥ २० ॥ अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादिसमुद्भवः ॥ पञ्चमूलद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके ॥ २१ ॥ आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ अपेतपूतिदोषाणां निःशोथानाञ्च तत्क्षणात् ॥ २२ ॥ कल्कः संरोपणः कार्य्यस्तिलानां मधुकान्वितः ॥ निम्बपत्रमधूकाभ्यां युक्तः संशोधनः परः ॥ २३ ॥ मूर्वाभ्यां सर्पिषा वापि युक्तश्चाऽप्युपरोपणः ॥ निम्बपत्रतिलैः

कल्को मधुना क्षतशोधनः ॥ २४ ॥ रोपणः सर्पिषा युक्तो यव-कल्को ह्ययं विधिः ॥ निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता ॥२५॥ वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम् ॥ मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्व्रणरोपणः ॥ २६ ॥ त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादि-र्बला कुशाः ॥ निम्बमूलकपत्राणि कषायः शोधनो हितः ॥२७॥ यष्टीतिलाष्टयुक्ता वा सघृता व्रणरोपणा ॥ एकं वासारिष्टमूलं सर्वव्रण-विशोधनम् ॥ २८ ॥

भा० टी०–पिच्छिल द्रव्योंकी त्वचा और जडको तथा जौ, गेहूँ और उरदके चूनको पीसकर व्रणशोथमें लेप करे ॥ १७ ॥ रात्रिमें लेप न करे एवं जो लेप कियागया और जो लेप करनेबाद छूटगया उसका फिर दुबारा लेप न करे तथा लेपकरने अनन्तर जो सूखगया और वासी होचुका उस लेपको उतारदेवे ॥ १८ ॥ करंज, भिलावा, दंती, चीता यह व्रणशोथका अपसारक गण है, कपोतकी वीट, कङ्कपक्षीकी वीट, चीलकी वीट यह समुदाय व्रणशोथको पकाकर फाडता है ॥ १९ ॥ खट्टे और खारीपदार्थ वा केवल जवाखार भी व्रणशोथका विदारक है । एवं परवल और नीमके पत्तोंका क्वाथ व्रणशोथका शोधक है ॥ २० ॥ न्यग्रोधादिगणीय द्रव्योंका क्वाथ शुद्ध वा अशुद्ध व्रणशोथमें प्रयोजनीय है । वातजन्य व्रणशोथमें दशमूलका, पित्तज व्रणशोथमें न्यग्रोधादिगणीय द्रव्योंसे ॥ २१ ॥ और कफजन्य व्रणशोथमें आरग्वधादिगणीय द्रव्योंसे लेप सेकादि कर्म करने उचित हैं । जब घावपर दुर्गन्धि और राध आदि दोष तथा शोथकी शांति होचुकी तब ॥ २२ ॥ मुलहठी और तिलोंका कल्क बनाय घावको रोपे । नीमके पत्ते और मुलहठीका कल्क व्रणशोथका संशोधक है ॥ २३ ॥ एवं घृतयुक्त मरोरफलीका कल्क व्रणशोथका आरोपक है । पुनः नीमके पत्ते और तिलोंका कल्क मधुके संग व्रणका परम शोधक है ॥ २४ ॥ पुनः जौका कल्क घृतके संग व्रणका आरोपक होता है यह क्रमानुसार करनेका विधान है । नीमके पत्ते, घी, सहद, दारुहलदी, मुलहठी ॥ २५ ॥ और तिल इनके कल्ककी वर्तिका व्रणको शुद्ध करती और रोपती है । एवं मुलहठी और नीमके पत्तोंका लेप भी व्रणको रोपता है ॥ २६ ॥ त्रिफला, खैर, दारुहलदी, न्यग्रोधादिगण, खिरेंटी, कुशादि पञ्चमूल, नीमकी जड और पत्ते इनका कषाय भी व्रणको शुद्ध बनाता है ॥ २७ ॥ मुलहठी और तिलाष्टकवर्गीय द्रव्योंका लेप घृतके संग व्रणको रोपता है । वांसा और नीमकी जडका लेप करना व्रणशोधनका एकमात्र उपाय है ॥ २८ ॥

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपोऽयम् ॥ मधुयुक्ता सुरसा च सर्वव्रणरोपिणी कथिता ॥ २९ ॥ पञ्चवल्कलचूर्णं वा शुक्ति

चूर्णसमन्वितम् ॥ धातकीलोध्रचूर्णं वा समारोपयते व्रणान् ॥ ३० ॥ सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणा मारुतोत्तराः ॥ तिलान्भृष्टान्पयः- सिद्धांस्तेनैवापिष्य लेपयेत् ॥ ३१ ॥ करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणान्कृमीन् ॥ कलायविदलीपत्रकोषाम्रास्थिप्रपूरणम् ॥ ॥ ३२ ॥ सुरसादिरसैः सेको लेपनं लशुनेन वा ॥ निम्बसम्पा- कजात्यर्कसप्तपर्णाश्च मारकाः ॥ ३३ ॥ कृमिघ्ना मूत्रसंयुक्तसेकले- पावधारणैः ॥ प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा कृष्यन्ते कृमयः क्षणात् ॥ ॥ ३४ ॥ ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः सरुजः सशोथाः॥प्रयान्ति ते गुग्गुलुसंयुतेन पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन॥ ३५॥

भा० टी०-सतौनाके दूधका लेप करनेसे दुष्टव्रण भी शान्त होता है। मधुयुक्त तुलसीका लेप भी सब प्रकारके व्रणोंको रोपता है॥ २९॥ वट आदि पूर्वोक्त पांच वृक्षोंकी छालका "चूर्ण वो शंखचूरसहित धाई और लोधका चूर्ण भी घावको रोपता है॥ ३०॥ जो घाव वायुकी अधिकतासे उपजेहुए और दाह तथा वेदनासे युक्त हों उन घावोंपर यह चिकित्सा करनी कि, तिलोंको भूनकर दूधमें सिद्ध करे और पीछे उसी दूधमें उनको पीसकर लेप करे॥ ३१॥करञ्ज,नीम और निर्गुण्डीके रससे घावके कृमि नष्ट होकर घाव आराम होता है। कलाय धान और निशो- तके पत्ते तथा कोशामफलकी गुठलीके चूर्णसे घावको भरना॥ ३२॥ एवं सुरसादिगणके रससे सेक करना, लहशुनका लेपन तथा नीम, अमलतास, जाति, आक, सतौना यह सब मारक वस्तु हैं॥ ३३॥ अर्थात् गोमूत्रके संग इनका सेक और लेप करनेसे घावके कृमि नष्ट होते हैं। किंवा, मांसपेशीसे घावको ढकनेसे सब कृमि शीघ्र ही खींची जाती हैं॥ ३४॥ जो घाव बहुत बडे होकर क्लिन्न हों एवं जिनसे राध और दुर्गन्धि निकलती हो एवं जिनमें पीडा और सूजन अधिक हो वह घाव गोगलसहित त्रिफलारसके प्रयोगसे शान्त होते हैं॥ ३५॥

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः ॥ तिर्यग्व्रणविबन्धघ्नो व्रण- शोधनरोपणः ॥ ३६ ॥ अमृतागुग्गुलुः शस्तो हितं तैलं च वज्र- कम् ॥ विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना सह ॥ ३७ ॥ सर्पिषा वटिकाः कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः ॥ दुष्टव्रणापचीमेहनानाकुष्ठ- विशोधनः ॥ ३८ ॥ अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुकृमिघ्नानाम्॥ समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः॥ ३९॥प्रतिवासरमेकैकां खा- देदक्षांशपरिमाणाम्॥व्रणवातोदरगुल्मश्वयथून्पाण्डुं जयत्यशेषेण॥ ४०॥

भा० टी०–त्रिफलाचूर्ण और गोगलकी वटिका बनाय सेवन करनेसे तिर्य्यग्व्रणका विबंध नष्ट होता और व्रणमात्रका शोधन तथा रोपण होता है ॥ ३६ ॥ एवं अमृतागुग्गुलु–नामक योग और वज्रक तैल भी व्रणशोथमें भला है। अथवा वायविडङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु, गोगल इनकी घृतके संग वटिका बनाय सेवन करे और पीछेसे पथ्य भोजन करे इस योगसे दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह और नानाप्रकारके कुष्ठरोगोंका शोधन होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ गिलोय, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आंवला, शोंठ, मिरच, पीपल, वायविडङ्ग इनके पृथक् २ एक २ पल भाग और ९ पल गोगलभागको ले अक्षप्रमाण गुटिका बनावे। प्रतिदिन एक २ गुटिकाको सेवन करनेसे व्रणशोथ, वातोदर, गुल्म, शोथरोग और पाण्डुरोग भी निर्मूल होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

मनःशिला च मञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् ॥
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ॥ ४१ ॥

भा० टी०–मनशिल, मञ्जीठ, लाख, दोनों हलदी इनको पीसकर घृत और मधुके संग लेप करनेसे व्रणस्थानकी त्वचा शुद्ध होती है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे व्रणशोथाधिकारः ॥ ४८ ॥

अथ सद्योव्रणाधिकारः ४९.

सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ॥ यष्टीमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥ १ ॥ सद्योव्रणेष्वायतेषु सन्धानार्थं विशेषतः ॥ मधुसर्पिश्च युञ्जीत पित्तघ्नीश्च हिमाः क्रियाः ॥ २ ॥ क्षतोष्मणो निग्रहार्थं तत्कालं विसृतस्य च ॥ कषायाः शीतमधुराः स्निग्धा लेपादयो हिताः ॥ ३ ॥ आमाशयस्थे रुधिरे वमनं शस्तमुच्यते ॥ पक्वाशयस्थे देयं स्याद्विरेचनमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः ॥ सहिङ्गुसैन्धवः पीतः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥५॥ यवकोलकुलत्थानां रसैः स्नेहविवर्जितैः॥ भुञ्जीताऽन्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ ६ ॥ अत्यर्थमस्रं स्रवति प्रायशोऽन्यत्र विक्षते ॥ ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥ ७ ॥ स्नेहपानपरीषेकस्वेदलेपोपनाहनम् ॥ स्नेहवस्तिश्च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधितम् ॥ ८ ॥ इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः ॥ सप्ताहाद्गतवेगे तु पूर्वोक्तं विधिमाचरेत् ॥ ९ ॥

भा० टी०-टक्कर आदिके लगनेसे तत्काल जो घाव होता है उसका नाम सद्योव्रण है। इसके विघृष्ट मर्दित आदि आठ प्रकारके भेद हैं, वाग्भटआदि संहिताओंमें इनका विवरण विशेष है वैद्यको उचित है कि, पीडायुक्त सद्योव्रणमें मन्दोष्णरूप मुलहठी घृतसे परिसेक करे॥ १॥ बडे २ सद्योव्रणोंके जुडानेके निमित्त मधु, घृत देवे और पित्तनाशक शीतल उपचार करे॥ २॥ तत्काल बढीहुई घावकी गरमायशके दुरानेके लिये ठण्ढे और मधुर कषाय तथा स्निग्धरूप सेक लेप करने उचित हैं॥ ३॥ यदि ऊंची टक्कर खानेसे आमाशयमें (पेटमें) रक्त पडगया हो तो वमन कराना अच्छा है। पक्वाशयमें रक्त गिरगया हो तो उत्तम विरेचन देना उचित है॥ ४॥ वंश (सालकी छाल), दालचीनी, एरंडीजड, गोखरु, पाषाणभेद इनके क्वाथमें हींग और सेंधा मिलाय पीनेसे कोष्ठका रक्त फटजाता है॥ ५॥ अथवा जौ, वडवेर, कुलथी, इनके स्नेहरहित रसोंके संग सिद्धकिये अन्नको वा सेंधानोनसहित यवागूको खावे॥ ६॥ कहीं घावसे अधिक रक्त टपकजाता है तब रक्तक्षय होनेके कारण वायु कुपित होकर महती पीडा करता- है॥ ७॥ इस दशामें स्नेहपान, परिषेक, स्वेद, लेप, स्नेहवस्ति और वातनाशक औषधियोंका प्रयोग करे॥ ८॥ यह सद्योव्रणमें केवल प्रारंभिक ७ दिनका विधान कहा है। सप्ताहसे उपरांत वेगरहित सद्योव्रणमें व्रणशोथोचित चिकित्सा करनी उचित है॥ ९॥

अथ गौराद्यं तैलम्।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च॥ प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम्॥ १०॥ जातीनिम्बपटोलञ्च करञ्जः कटुरोहिणी॥ मधूच्छिष्टं समधकं तथैव च महासहा॥ ११॥ पञ्चवल्कलतोयेन तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ एतद्गौराद्यमुद्दीर्यं सर्वव्रणविशोधनम्॥ १२॥ आगन्तुका निजाश्चैव चिरोत्थाश्चापि ये व्रणाः॥ विषमानपि तान्नाडीं शोधयेत्क्षिप्रमेव तत्॥ १३॥

भा० टी०-सफेद सरसौ, हलदी, मंजीठ, मांसी, मुलहठी, पुण्डरिया, हाऊवेर, भद्रमोथ, चन्दन, जाती, नीम, परवर, करञ्ज, कटुकी, मोम, मषवन॥ १०॥ ११॥ इनके कल्कको पंचवल्कलके क्वाथमें मिलाय एक प्रस्थ तैलको पकावे सिद्ध होनेपर इसका नाम गौरादि तैल है, यह तैल अधिक पराक्रमी और सबप्रकारके व्रणोंको शुद्ध करता है॥ १२॥ किं बहुना, आगन्तुक (जो घाव टक्करलगनेसे उपजें), निज (जो घाव वातादिदोषोंसे उत्पन्न हों) और बहुतकालसे उपजेहुए विषम घाव तथा नाडीव्रण भी इस तैलके प्रभावसे शुद्ध होते हैं॥ १३॥

अथ करञ्जाद्यं तैलम्।

नक्तमालस्य पत्राणि तरुणी त्रिफला तथा॥ सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा॥ १४॥ द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरो-

ह्रिणी ॥ मंजिष्ठा चन्दनोशीरमुत्पलं सारिवा त्रिवृत् ॥ १५ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् ॥ १६ ॥

भा० टी०—करञ्जके पत्ते, घीकुवार, त्रिफला, चमेलीके पत्ते, परवलके पत्ते, नीमके पत्ते, दोनों हलदी, मोम, मुलहठी, कटुकी, मंजीठ, चन्दन, खस, नीलकमल, सारिवा, निसोत इनके एक २ कर्ष कल्कभागोंके संग एक प्रस्थ तैलको पकावे सिद्धहोनेपर यह तैल दुष्टव्रणोंको शांत-करता और नाडीव्रणको शोधता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ जातीकाद्यं घृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्व्वीनिशासारिवामञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ॥ सर्पिः साध्यमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च ॥ १७ ॥

भा० टी०—चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवलके पत्ते, कटुकी, दारुहलदी, हल्दी, अनन्त-मूल, मंजीठ, कालावाला, शिरसके बीज, तूतिया, मुलहठी, करञ्जके बीज इनकरके सिद्ध कियेहुए घृतके प्रयोगसे सूक्ष्ममुखवाले तथा मर्ममें आश्रितहुए और क्लेदवाले एवं गंभीर और बहनेवाले पीडायुक्त घाव तत्काल शुद्धहोकर जम आते हैं ॥ १७ ॥

मधूच्छिष्टं समधुकं लोध्रं सर्ज्जरसं तथा ॥
मंजिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ॥ १८ ॥
सर्वेषामेव दग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ॥ १९ ॥

भा० टी०—मोम, मुलहठी, लोध, राल, मंजीठ, चन्दन, मूर्वा इनको पीसकर पिष्टकल्कके संग घृत पकावे ॥ १८ ॥ यह घृत सर्वप्रकारके अग्निदग्धव्रणोंका रोपक है ॥ १९ ॥

प्रपौण्डरीकमंजिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ॥ सहरिद्रैः कृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम् ॥ २० ॥ सिद्धं कषायकल्काभ्यां पाटल्याः कटुतैलकम् ॥ दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ २१ ॥ चन्दनञ्च वटो गुञ्जा मंजिष्ठा मधुकं तथा ॥ एतैस्तैलं विपक्तव्यं सर्पिः क्षीरसमन्वितम् ॥ २२ ॥ अग्निदग्धे व्रणे श्रेष्ठं तत्क्षणाद्व्रणरोपणम् ॥ २३ ॥

भा० टी०—पुंडरिया, मंजीठ, मुलहठी, खस, पद्माख, हलदी इनके कल्कसे सिद्ध किया-आ दूधसहित घृत घावको जमाता है ॥ २० ॥ पाटलीके कषायमें पाटलीका कल्क मिलाय

कडुवे तैलको पकावे, यह तैल दग्धव्रणकी पीडा, बहाव, शूल, दाह और विस्फोटकको नष्ट करता है ॥२१॥ चन्दन, वडकी छाल, गुंजा, मंजीठ,मुलहठी इनके कल्कके संग घृत, दुग्धसहित तैलको पकाकर प्रयुक्त करनेसे अग्निदग्धव्रण तत्काल जम आता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ कुटेरकाद्यं तैलम् ।

कुटेरकात्पलशतं क्वथयेन्नल्वनेऽम्भसि ॥ तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४ ॥ कल्कैः कुटेरापामार्गप्रोष्ठिकामसिकोद्भवैः ॥ एतत्तैलं कुटेरस्य व्रणशोधनरोपणम् ॥ २५ ॥ नाडीषु परमोऽभ्यङ्गो निजास्वागन्तुकासु च ॥ २६ ॥

भा० टी०–१०० पल तुलसीको एक द्रोणजलमें पकावे जब चतुर्थांश रहे तब उसमें तुलसी, चिरचिरा, प्रोष्ठिका, निर्गुण्डी इनका कल्क मिलाय १ प्रस्थ तैलको पकावे यह कुटेरादितैल व्रगशोधक और व्रणरोपक है ॥ २४ ॥ २५ ॥ एवं आगंतुक वा निजरूप नाडीव्रणोंमें मर्दनकरनेसे हित है ॥ २६ ॥

अथ दूर्वाद्यन्तैलम् ।

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन च ॥
दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ २७ ॥

भा० टी०–दूर्वाके स्वरसमें कवीला और दारुहलदीकी छालका कल्क मिलाय पकायाहुआ तैल घावको रोपनेवाला है ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे सद्योव्रणाधिकारः ॥ ४९ ॥

अथ भग्नाधिकारः ५०.

शस्त्राघातेन पाताद्यैर्भङ्गोऽस्थ्नां यत्रकुत्रचित् ॥ भग्न इत्युच्यते तत्र प्रायः सौश्रुतिकं चरेत् ॥ १ ॥ अवनामितमुन्नह्येदुन्नतश्चाऽवपीडयेत् ॥ आञ्छेदनिक्षिप्तमधोगतश्चोपरि वर्तयेत् ॥ २ ॥ संस्थाप्य स्थापनोपायैर्बन्धनाद्यैः कुशान्वितैः ॥ सम्यक्चिकित्सेद्भिषजां वरिष्ठो भग्नमुल्वणम् ॥ ३ ॥ आलेपनार्थं मञ्जिष्ठामधुकञ्चाऽम्लवेतसम् ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टञ्च लेपनम् ॥ ४ ॥ त्र्यहात्त्र्यहाहतौ घर्मे सप्ताहान्मोक्षयेद्धिमे ॥ साधारणे तु पञ्चाहाद्भग्नदोषवशेन

वा ॥ ५ ॥ न्यग्रोधादिकषायेण ततः शीतेन सेचयेत् ॥ पञ्च-मूलीकषायन्तु क्षीरं दद्यात्सवेदने ॥ ६ ॥ सुखोष्णमवचार्य्यं वा कल्कतैलं विजानता ॥ विभज्य देशं कालं च वातघ्नौषधसाधितम् ॥ ७ ॥ मांसं मांसरसं क्षीरं सर्पिर्यूषरसांस्तथा ॥ बृंहणं चाऽन्नपानं स्याद्देयं भग्नाय जानता ॥ ८ ॥ गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ॥ शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ ॥ ९ ॥ सन्धिमुक्तेऽस्थिमुक्ते च पिबेत्क्षीरेण मानवः ॥ रसोनं मधुना साज्यसिताकल्कं समस्तुकम् ॥ १० ॥ तद्वद्वराटिकाचूर्णं द्विगुंजं वा त्रिगुञ्जकम् ॥ अपक्कक्षीरपीतं स्याद्भग्नास्थीनां प्ररोहणम् ॥ ११ ॥

भा० टी०–शस्त्रकी चोट लगने और पाषाण आदिसे गिरनेके कारण जहां तहां हड्डी टूटनेका नाम भग्न है, भग्नदशामें प्रायः सुश्रुतसंहिताके अनुसार बन्धनादि स्थापनोपाय करे ॥ १॥ नीचेको नमीहुई हड्डीको ऊंचाकरे और ऊपर उठीहुई हड्डीको नीचे नवावे, अत्यन्त क्षिप्तविक्षिप्तहुई हड्डीको आञ्छित करे और अत्यन्त नीचेको प्राप्तहुई हड्डीको ऊपरकी ओर लावे ॥ २ ॥ इसके अतिरिक्त कुशके द्वारा पट्टीबन्धनादि अन्यान्य स्थापनोपायोंसे टूटीहुई हड्डीको स्थापित करके भलीभांति चिकित्सा करे ॥ ३ ॥ मञ्जीठ, मुलहठी, अमलवेत, और १०० वार धोयेहुए घृतसे मिश्रित चावलपीठीका लेप करना भग्नस्थानमें उचित है ॥ ४ ॥ गरमीके दिनोंमें तीन २ दिनमें पट्टीको खोले तथा शीतकालमें सात २ दिनमें और शरद्, बसन्त आदि साधारण समयमें पांच २ दिनके बाद वा भग्नदोषके अनुसार पट्टीको उतारता रहे ॥ ५ ॥ पीछे न्यग्रोधादिगणीय औषधोंके शीतल क्काथसे सेंचन करे यदि पीडा विशेष हो तो पञ्चमूलके क्काथमें पकायेहुए दूधका सेचन करे ॥ ६ ॥ किंवा देशकालके अनुसार वातनाशक औषधियोंके कल्क और क्काथमें पकाये हुए तैलको मन्दोष्ण बनाय प्रयुक्त करे ॥ ७ ॥ भग्न मनुष्यके लिये मांस, मांसरस, दूध, घृत, यूष-रस और यत्किञ्चित् पौष्टिक अन्नपान देने उचित हैं ॥ ८ ॥ घृतसे युक्त और मधुर औषधोंसे साधित तथा लाखसे युक्त एकब्यानकी गायके शीतल दूधको प्रातःकालमें भग्नरोगी पीवे ॥ ९ ॥ जब हड्डी सन्धिस्थानसे छूटगई वा मांसस्थान हड्डीसे अलग होगया तब अस्थिसन्धानके लिये मधु, घृत, सक्कर सहित लशुनको दधिजलके संग खावे ॥ १० ॥ इसीप्रकार २ रत्ती वा ३ रत्तीके प्रमाणसे कौडीचूरको अपक्क दुग्धके संग पीनेसे टूटीहुई हड्डियां जम आती हैं ॥ ११ ॥

अथ लाक्षागुग्गुलुः ।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाचूर्णं तथा नागबलान्वितञ्च ॥
सद्रक्पुरश्चाऽस्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्य्यात्कुलिशोपमानि॥ १२॥

भा० टी०—लाख, हडजुडी, कोह, असगन्ध, गंगेरन इनके समभाग चूर्णमें चूर्णके समान गोगल मिलाय उपयुक्त करनेसे हड्डियोंकी पीडा दूर होती और प्रत्येक अंग वज्रके समान दृढ होते हैं ॥ १२ ॥

अथाभागुग्गुलुः ।

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेभिः समीकृतैः ॥
तुल्यो गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥ १३ ॥

भा० टी०—बबूर, त्रिफला, त्रिकटु इनके समभाग और इन सबके समान गोगलका प्रयोग करनेसे टूटेहुए जोड जुड जाते हैं ॥ १३ ॥

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणसर्पिर्मधूत्तरैः ॥ प्रतिकायकषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १४ ॥ भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ॥ वातव्याधिविनिर्दिष्टान्स्नेहानत्राऽपि योजयेत् ॥ १५ ॥ लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ॥ व्यायामं न च सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ १६ ॥

भा० टी०—यदि हड्डी टूटनेमें घाव भी फटगया हो तो सद्योव्रणमें कहेहुए घृत तथा मधुके संग प्रतिकारक कषायोंको प्रयुक्त करे, शेष क्रिया भग्नके समान करनी ॥ १४ ॥ वैद्यको ऐसा यत्न करना उचित है कि, जिससे भग्न पके नहीं । यहां वातरोगोक्त तैलोंका भी प्रयोग करना उचित है ॥ १५ ॥ भग्न मनुष्यको उचित है कि, आरामहोने पर्य्यन्त नमकीन, कडुवे, खारी तथा खट्टे पदार्थोंको एवं मैथुन, घाम, कसरत और रूखे अन्नको न सेवे ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे भग्नाधिकारः ॥ ५० ॥

अथ नाडीव्रणाधिकारः ५१.

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणाऽऽपाट्य कर्मवित् ॥ सर्वं व्रणक्रमं कुर्य्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥ १ ॥ नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक् ॥ प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः ससैन्धवैः ॥२॥

पैत्तीन्तु तिलमंजिष्ठानागदन्तीनिशाद्वयैः ॥ श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्या-ह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥ ३ ॥ शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छि-न्नशोधिताम् ॥ अशस्त्रकृत्या मेषिण्या भित्त्वान्ते सम्यगेषिताम् ॥ ॥ ४ ॥ क्षारपीतेन सूत्रेण बहुशो दारयेद्गतिम् ॥ व्रणेषु दुष्टसू-क्ष्मास्यगम्भीरादिषु साधनम् ॥ ५ ॥ या वर्त्यो यानि तैलानि तन्नाडीष्वपि शस्यते ॥ पिष्टं चंचुफलं लेपान्नाडीव्रणहरं परम् ॥ ॥ ६ ॥ घोण्टाफलत्वग्लवणं सलाक्षं बूकस्य पत्रं वनितापयश्च ॥ स्नुगर्कदुग्धान्वित एष कल्को वर्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥७॥

भा० टी०–क्रियाकुशल वैद्यको उचित है कि, नाडियोंकी गतिको भलेप्रकार ढूंढकर शस्त्रसे फाडे तदनन्तर व्रणरोगमें कही शोधनरोपणआदि क्रिया करे ॥ १ ॥ वातसे उपजीहुई नाडीको भलेप्रकार फाडकर चिरचिराके बीज, तिल, सेंधा इनको पीसकर पाटित स्थानमें लेप करे ॥ २ ॥ एवं पित्तजन्य नाडीको तिल, मंजीठ, हाथीशुण्डा, हलदी इनसे लिप्त करे तथा कफजन्य नाडीपर तिल, मुलहठी, दन्ती, नींम, सेंधा इनका लेप करे ॥ ३ ॥ एवं शल्यसे उपजी-हुई नाडीको फाडने और शोधनेके अनन्तर तिल, मधु, और घृतसे लेप करे। मेषिण्या नाडी-पर शोधन कर्म करे ॥ ४ ॥ और गतिको भलीभांति ढूंढकर क्षारपीत सूत्रसे अनेकवार विदीर्ण करे। दुष्ट, सूक्ष्ममुख और गंभीर आदि व्रणोंमें जो वर्तिका और जो तैल आदि साधन कहेहैं वही नाडीव्रणमें भी प्रयुक्त करने। तथा चेंवुनाके फलको पीसकर लेप करनेसे नाडीव्रण दूर होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सुपारीवृक्षकी छाल, सेंधा, लाख, एरंडीका पत्ता, स्त्रीका दूध, थूहरका दूध, आकका दूध इनके कल्कको वर्त्ति बना देनेसे थोडे कालमें नाडीव्रण दूर होता है ॥ ७ ॥

वर्त्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं च ॥ दुष्टव्रणं यद्विनिहन्ति तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ ८ ॥ जात्यर्क-सम्पाककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः ॥ वर्तिः कृता हन्त्य-चिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा सह चित्रकेण॥९॥ कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्म्माश्रिता च या॥क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन १०

भा० टी०–सेंधानोनकी बत्ती बनाय मधुके संग प्रयुक्त करनेसे नाडीव्रण नष्ट हो। एवं जो तैल दुष्टव्रणका नाशक है वही नाडीगतिका नाशक है ॥ ८ ॥ जाती, आक, अमलतास, करञ्ज, दन्ती, सेंधा, कालानोन, जवाखार, चीता इनको थूहरके दूधमें पीसकर वर्त्ति बनाय देनेसे तत्काल नाडीव्रण नष्ट होता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य कृश, दुर्बल और डरपोक हों उनकी नाडीको और मर्मपर रहनेवाली नाडीको भी क्षारपीतसूत्रसे विदीर्ण करे शस्त्रसे नहीं ॥ १० ॥

अथ सप्तांगगुग्गुलुः ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांसैराज्ययोजितैः ॥
नाडीं दुष्टव्रणं शूलं नाशयेच्च भगन्दरम् ॥ ११ ॥

भा० टी०-गोगल, त्रिफला, त्रिकुटु, मांस इनको घृतके संग प्रयुक्तकरनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण, शूल, भगन्दर यह नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यं तैलम् ।

स्वर्जिकाग्नी सिन्धुदन्तीरूपिकानलनीलिकाः ॥
खरमञ्जारिबीजानि तैलं गोमूत्रसाधितम् ॥ १२ ॥
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १३ ॥

भा० टी०-सज्जी, चीता, सफेद सुहागा, दन्ती, सफेद आक, नरसल, नीली, चिरचिराके बीज इनके कल्कको गोमूत्रमें मिलाय तैल पकावे॥ १२ ॥ यह तैल दुष्टव्रण और कफजन्य नाडीव्रणको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

अथ कुम्भीकाद्यं तैलम् ।

कुम्भीकखर्ज्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां कुशलोऽष्टवर्गे ॥ कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलं कल्कान्पलांशान्सरलात्प्रियङ्गोः ॥ १४ ॥ सौगन्धिकान्मोचरसाहिपुष्पाल्लोध्राच्च दत्त्वाऽत्र तु धातकीञ्च ॥ एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणाश्चापि सुखं द्रुतं स्यात् ॥ १५ ॥

भा० टी०-जलकुम्भी, खजूर, कैथ, वेल, पिपलियावेल और अष्टवर्गान्तर्गत औषधि इन सबका क्वाथ बनावे। चतुर्थांश रहनेपर उसमें धूपसरल, प्रियंगु, कमल, मोचरस, अहिपुष्प इनके एक २ पल कल्कोंको मिलाय तैल पकावे। इस तैलसे शल्यसे उपजीहुई नाडी और अन्य घाव भी जम आते हैं और सुख मिलता है॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ भल्लातकाद्यं तैलम् ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च ॥
श्यामार्कजेन च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणञ्च १६

भा० टी०-भिलावा, आक, मरिच, सेंधा, वायविडङ्ग, हलदी, दारुहलदी, चीता इनके कल्कको फूलप्रियंगु और आकके क्वाथमें मिलाय तैल पकावे। यह तैल कफवातसे उपजीहुई नाडी, अपची और व्रणको भी नष्ट करता है॥ १६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे नाडीव्रणाधिकारः ॥ ९१ ॥

अथ भगन्दराधिकारः ९२.

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोधयेन्नरः ॥ रक्तावसेचनं कुर्य्याद्यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥ वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ॥ सुपिष्टाः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ २ ॥ पिडिकानामपक्कानामवसन्तर्पणं पुरा ॥ कर्म कुर्य्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ३ ॥ एषणापाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् ॥ विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाबलम् ॥ ४ ॥ त्रिवृत्तिला नागदन्ती मंजिष्ठा सह सर्पिषा ॥ उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ ५ ॥ रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मंजिष्ठानिम्बपल्लवाः ॥ त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को दुर्नामनाशनः ॥ ६ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः॥भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः॥७॥ एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यादसंशयम् ॥ ८ ॥ तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशे वचा कुष्ठमगारधूमः ॥ भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ९ ॥ खराश्वपक्कभूरोहचूर्णलेपो भगन्दरे ॥ हस्तिदन्त्यग्र्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥ १० ॥ त्रिफलारसपिष्टेन मार्ज्जारास्थ्ना च लेपयेत् ॥ भगन्दरं निहन्त्याऽऽशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ ११ ॥ त्रिफलापुरकृष्णाभ्यश्चिपश्चैकांशयोजिता ॥ गुटिकाऽसौ शोधयति कुष्ठं नाडीं भगन्दरम् ॥ १२ ॥

भा० टी०–भग वा लिङ्गके नीचे गुदद्वारसे ऊपर वातादिदोषोंके अनुसार वर्णवाली पिडिका उत्पन्न होकर पकनेसे वह गुदद्वारसे लेकर भग वा लिंग पर्य्यन्तकी वस्तिको फाड डालती है इसीसे इसको भगन्दर कहते हैं । चिकित्सा कहते हैं, जिसीसमय गुदाके दो अंगुल ऊर्द्ध्व क्षेत्रमें शोजा दिखाईदे उसीसमय लंघन, वमन, विरेचनोंसे शोधनकरने अनन्तर जोंक आदिसे उस पिडिकाका रक्त निकालदेवे जिससे वह पके नहीं ॥ १ ॥ भगंदरकी उस पिडिकापर वटपत्री, ईटका चूर्ण, शोंठ, गिलोय, पुनर्नवा इनको पीसकर लेपकरे ॥ २ ॥ जबतक पिडिका पकी नहीं तबतक अवसन्तर्पण आदि विरेकान्त कर्म करने । पककर पृथक् २ रूप और भिन्न २ मुखवाली उन पिडिकाओंकी क्रिया कहतेहैं ॥ ३ ॥ भगंदरकी पिडिकापर बवाशीरकी भांति अनेक मुख हुआकरतेहैं सो प्रथम उन मुखोंको चूनना तब वातादिदोषोंके अनुसार क्रमशः उनको

फाडना, क्षारका प्रयोग करना, अग्निसे फूकडालना आदि कर्म करने अनंतर व्रणशोथकी भांति चिकित्सा करे ॥ ४ ॥ निशोथ, तिल, हाथीशुण्डा, मंजीठ, घृत, सेंधा, सहद इनका लेप भगंदरका उत्सादक होता है ॥ ५ ॥ रसोत, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, नीमके पत्ते, निशोत, तेजबल, दंती इनका कल्क भगंदरका नाशक है ॥ ६ ॥ थूहरका दूध, आकका दूध, दारुहलदी इनकी बत्ती बनाय भगंदरकी गतिको जानकर प्रयत्नसे प्रयुक्त करे ॥ ७ ॥ यह बत्ती समस्तशरीर-पर स्थित हुई नाडीको नष्ट करतीहै ॥ ८ ॥ तिल, हरड, लोध, नीमका पत्ता, हलदी, दारुह-लदी, वचा, कूठ, गृहधूमकी धूर इनको पीसकर लेप करनेसे भगंदर, नाडी और उपदंश तथा दुष्ट व्रण शुद्ध होकर जम आतेहैं ॥ ९ ॥ केंचुएको गदहीके दूधमें पकाकर लेप करनेसे वा हाथी-शुण्डा, चीता, अतीस इनको पीसकर लेप करनेसे भगंदर दूर हो एवं कुत्तेकी हड्डीको त्रिफला-रसमें घिसकर लेप करना भी हित है ॥ १० ॥ अथवा त्रिफलाके रसमें बिडालकी हड्डीको घिसकर लेप करनेसे भगंदर तथा दुष्ट व्रग नष्ट हो ॥ ११ ॥ तीन भाग त्रिफला, ५ भाग गोगल, १ भाग पिपलीको पीसकर गुटिका बनावे, यह गुटिका कुष्ठ नाडीव्रग और भगंदरको शोषित करती है ॥ १२ ॥

अथ सप्तविंशतिको योगः ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गामृतचित्रकम् ॥ त्रिवृता पिप्पलीमूलं हबुषा सुरदारु च ॥ १३ ॥ तुम्बुरुः पुष्करं चव्यं विशाला रज-नीद्वयम् ॥ विडं सौवर्चलं क्षारः सैन्धवं गजपिप्पली ॥ १४ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावत्रिगुणगुग्गुलुः ॥ कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ १५ ॥ कासं श्वासं तथा शोषमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिवस्तिगुदव्यथाम् ॥ १६ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन् ॥ चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ १७ ॥ आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च ॥ नाडीं दुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहं श्लीपदं तथा ॥ १८ ॥ सप्तविंशतिको ह्येष सर्वरोगनिषूदनः ॥ १९ ॥

भा० टी०--त्रिकटु त्रिफला, मोथ, वायविडङ्ग, गिलोय, चीता, निसोत, पिपलीमूल, हाऊबेर, देवदार ॥ १३ ॥ तुंबुरु, कूठ, चव्य, इन्द्रायण, हलदी, दारुहलदी, विडलोन, काला-नोन, जवाखार, सेंधा, गजपीपल ॥ १४ ॥ इनके समभाग लेकर जितना चूर्ग हो उससे तिगुनो गोगलको ले तोलाभर गुटिका बनाय मधुके संग खावे ॥ १५ ॥ यह गुटिका कास, श्वास, शोष, बवासीर, भगंदर, हृदयशूल, पसलीशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, गुदाशूल ॥ १६ ॥

पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमिरोग, जीर्णज्वर, क्षय ॥ १७ ॥ आनाह, उन्माद, कुष्ट, जलोदर, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह श्लीपद इन रोगोंको नष्ट करती है ॥ १८ ॥ सच तो यह है कि, यह सप्तविंशतिकयोग रोगसमूहका नाशक है ॥ १९ ॥

पञ्चतिक्तघृतः शस्तो गुग्गुलुश्च भगन्दरे ॥
न्यग्रोधादिगणो यस्तु हितः शोधनरोपणे ॥ २० ॥
तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगन्दरविनाशनम् ॥ २१ ॥

भा० टी०–पंचतिक्तसे युक्त गुग्गुलुयोग भी भगंदरमें भला है। न्यग्रोधादिगणीय द्रव्य भी भगंदरके शोधन और रोपणके लिये भले हैं ॥ २० ॥ अथवा इन पूर्वोक्त द्रव्योंमें सिद्ध किया तैल वा घृत भी भगंदरनाशक होता है ॥ २१ ॥

अथ विष्यन्दनतैलम्।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ॥ सुधां वचां लाङ्गलिकां हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ २२ ॥ ज्योतिष्मतीश्च संहत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥ २३ ॥ शोधनं रोपणश्चैव सावर्ण्यकरणं परम् ॥ २४ ॥

भा० टी०–चीतेकी जड, आककी जड, निसोत, पाठा, कठूमर, कनेरकी, जड, आकका दूध, वचा, कलिहारी, हरिताल, सज्जी, मालकांगनी इनके कल्कमें विधिपूर्वक तैल पकावे। सिद्ध होनेपर इसका नाम विष्यन्दन तैल है। इसके प्रयोगसे भगंदर शुद्ध होकर आराम होताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ करवीराद्यं तैलम्।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणादिभिः ॥
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ २५ ॥

भा० टी०-कनेर, हलदी, दंती, कलिहारी, सेंधा, बिजोरानींबूकी जड, आककी जड, कूडा इनके कल्कके संग तैलको पकाय भगंदरमें प्रयुक्त करे ॥ २५ ॥

अथ निशाद्य तैलम्।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुरदहनवत्सकैः ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ २६ ॥ व्यायामं मैथुनं युद्धं मिष्टं पानं गुरूणि च संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ २७ ॥

भा० टी०-हलदी, आकका दूध, सेंधा, गोगल, चीता कूडेकी छाल इनके कल्ककरके सिद्धकियाहुआ तैल भगंदरका नाशक होताहै ॥ २६ ॥ जब भगंदर जमचुके (आराम होजाय) तब भी रोगीको उचित है कि, एकवर्ष पर्य्यन्त कसरत, मैथुन, युद्ध, मधुर पदार्थ, मद्यपान, गरिष्ठ वस्तु इनको त्यागे रहे ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे भगन्दराधिकारः ॥ ९२ ॥

अथोपदंशाधिकारः ९३.

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य लिङ्गमध्ये शिराव्यधः ॥ जलौकः-पातनं वा स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ १ ॥ पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ प्रलेपैः क्षालनैश्चैव गुण्डनैस्तमुपाचरेत् ॥ २ ॥ पटोलनिम्बत्रिफलागुडूचीक्काथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ॥ सगुग्गुलुं वा त्रिफलान्वितं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ ३ ॥ प्रपौण्डरीकमधुकरास्नाकुष्ठपुनर्नवाः ॥ सरलागुरुभद्राह्वैर्वातिके लेपसेचने ॥ ४ ॥ गैरिकाञ्जनमंजिष्ठामधूकोशीरपद्मकैः ॥ सचन्दनोत्पलैः श्रेष्ठं पैत्तिके लेपनं मतम् ॥ ५ ॥ निम्बार्ज्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसेषु ॥ प्रक्षालनालेपघृतानि कृत्वा चूर्णश्च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ ६ ॥ शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम् ॥ सुरापिष्टाभिरुष्णाभिरुपदंशं प्रलेपयेत ॥ ७ ॥ त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ॥ व्रणप्रक्षालनं कुर्य्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ८ ॥ दहेत्कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम् ॥ उपदंशप्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ॥ ९ ॥ जयाजात्यश्वमारार्कसम्पाकानां दलैः पृथक् ॥ क्षतप्रक्षालनं क्काथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत ॥ १० ॥

भा० टी०-दुष्टयोनिके संसर्गसे तथा हाथकी चोट लगनेसे एवं अन्यान्य दुर्विषयोंके विषसे गुह्यस्थानमें उपदंश (आतशक वा फ़िरंग रोग) उपजता है, उपदंश रोगीको प्रथम स्निग्ध और स्वेदित बनाय लिंगके बीचमें शिराभेदन करे किंवा जोंक लगाकर दूषित रक्तको निकासे वा वमन विरेचनके द्वारा शोधन करे ॥१॥ वैद्यको उचित है कि, जिस प्रकार फुन्सी पके नहीं ऐसा यत्न करे क्योंकि पकनेसे लिङ्गके नाश होनेका भय है। अतः प्रलेप, क्षालन और गुंडन

आदि उपायोंसे उपदंशकी चिकित्सा करे ॥ २ ॥ परवलके पत्ते, नीम, त्रिफला, गिलोय इनके काथको अथवा खैर और शालके काथमें गोगल और त्रिफला मिलाय पीवे। यह योग सबप्रकारके उपदंशोंका नाशक है ॥ ३ ॥ पुंडरिया, मुलहठी, रासना, कूठ, पुनर्नवा, धूपसरल, अगरु, मोथ इनके द्वारा वातजन्य उपदंशमें लेप और सेक करना उचित है ॥ ४ ॥ गेरुमाटी, रसोत, मंजीठ, मह्वा, खस, पद्माख, चन्दन, नील कमल इनके द्वारा पित्तजन्य उपदंशमें लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ पित्त और रक्तसे उपजेहुए उपदंशमें नीम, अर्ज्जुन, पिप्पल, कदम, शाल, जामन, वट, गूलर, वेत इनके द्वारा क्षालन (घावको छालना) तथा लेपन, घृत और चूर्ण बनावे ॥ ६ ॥ कफसे उपजेहुए उपदंशमें शाल, विजयसार, लताशाल, धव इनकी छालोंको मदिरामें पीसकर गरम बनाय लेप करे ॥ ७ ॥ त्रिफलाके काथसे वा भृंगराजके रससे घावको धोदेनेसे उपदंशरोग शान्त होताहै ॥ ८ ॥ त्रिफलाके समभाग लेकर लोहेकी कढाईमें भूनकर मधुके संग पीसने अनन्तर घावमें लेप करनेसे तत्काल घाव जम आताहै ॥ ९ ॥ जयन्ती, चमेली, कनेर, आक, अमलतास इनके पत्तोंका काथ बनाकर उपदंशके घावको धोवे ॥ १० ॥

अथ करञ्जाद्यं घृतम्।

करञ्जनिम्बार्ज्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ॥ सर्पिर्निहन्यादुपदंशमेतद्दाहं च पाकं स्रुतिदोषयुक्तम् ॥ ११ ॥ रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ॥ सक्षौद्रं वा प्रलेपेन सर्वलिङ्गगदापहम् ॥ १२ ॥ बर्बोलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ॥ गुण्डनं त्रस्थिचूर्णेन ह्युपदंशहरं परम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–करञ्ज, नीम, अर्ज्जुन, शाल, जामन, वट इत्यादिकोंकी छालके कल्कसे और इन्हींके कषायकरके सिद्ध हुआ घृत दाह तथा पीवको बहानेवाले पाकसहित उपदंशको नष्ट करताहै ॥ ११ ॥ रसोतके चूर्णको सिरसके चूर्णके साथ वा हरडके संग सहद मिलाकर लेप करनेसे सबप्रकारके लिङ्गरोग दूर होतेहैं ॥ १२ ॥ बबूरके पत्तोंका चूर्ण वा अनारकी छालका चूर्ण वा मनुष्यके हाडका चूर्ण लेप कियेजानेसे उपदंशरोग दूर होताहै ॥ १३ ॥

अथ भूनिम्बाद्यं घृतम्।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिराशनानाम् ॥ सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

भा० टी०–चिरायता, नीमकी छाल, त्रिफला, परवलपत्र, करञ्ज, चमेली, खैर, विजयसार इनके काथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत सबप्रकारके उपदंशोंका नाशक है ॥ १४ ॥

अथागारधूमाद्यं तलम् ।

आगारधूमो रजनी सुराकिट्टञ्च तैस्त्रिभिः ॥ भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ १५ ॥ शोधनं रोपणं चैव सावर्ण्यकरणं परम् ॥ अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्य्योपदंशवत् ॥ १६ ॥ अयवान्नमकौपाम्बु लवणं च विदाहि च ॥ त्यजेन्नित्यं सुखार्थी य उपदंशरुजान्वितः ॥ १७ ॥

भा० टी०—गृहधूमकी धूर, हलदी, मदिराका मैल इन तीनोंके उत्तरोत्तरक्रमसे भागवृद्धि लेकर तैल पकावे । यह तैल खुजली, शोथको नष्ट करके घावको शुद्ध बनाता और रोपता है । इसके अतिरिक्त उपदंशमें वही क्रिया करनी जो क्रिया छिन्न दग्ध बवासीरोंकी होतीहै ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ सुख चाहनेवाले उपदंशरोगीको उचित है कि, आराम होनेपर्य्यन्त जौके अतिरिक्त अन्नको, कूपजलके अतिरिक्त जलको, लवणको, विदाही पदार्थोंको नित्य त्यागे रहे ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द उपदंशाधिकारः ॥ ५३ ॥

अथ शूकदोषरोगाधिकारः ५४.

शूकदोषरोगचिकित्सा ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ॥ व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाऽष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥ शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्ना कारयेत्क्रियाः ॥ हितञ्च सर्पिषः पानं पथ्यञ्चाऽपि विरेचनम् ॥ २ ॥ हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम् ॥ सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरेव चूर्णयेत् ॥ ३ ॥ क्रियैवमवमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः ॥ अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ४ ॥ कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ॥ तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ५ ॥ अलज्यां हृतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ॥ स्वेदयेद्ग्रन्थितं शश्वन्नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ॥ ६ ॥ सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ उत्तमाख्यां तु पिडिकां सञ्छिद्य बडिशोद्धृताम् ॥ ७ ॥ कल्कैश्चूर्णैः

कषायैश्च क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥ क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ ८ ॥ त्वक्पाके स्पर्शहानौ च सेचयेन्मृदिते पुनः ॥ बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ९ ॥ रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके॥पृथक्पर्ण्यादिसिद्धन्तु तैलं देयमनन्तरम्॥ १०॥ रक्तविद्रधिवच्चाऽपि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे ॥ कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ॥ ११ ॥ शोधनं रोपणञ्चैव वीक्ष्यवीक्ष्य प्रयोजयेत् ॥ सर्वेषां शूकदोषाणां क्रिया व्रणवदाचरेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०–जो मूर्ख शास्त्रक्रमको त्यागकर अर्थात् विषैली औषधियोंका प्रयोग करके लिङ्गको वढाना चाहतेहैं उनके सर्षपिका, अष्ठीला आदि भेदसे अठारह प्रकारके शूकदोष उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥ सब प्रकारके शूकदोषोंमें विषनाशक उपचार करे। इसके अतिरिक्त घृतपान, विरेचनकर्म ॥ २ ॥ फस्तदेना, हलका भोजन यह सब उपाय शूकदोषोंमें हितकर हैं। सर्षपिकानामक शूकदोषमें फस्त खुलवाकर वट, मंजीठ आदिके कषाय चूर्णोंसे घावको भरदे ॥ ३ ॥ इसीप्रकार अवमन्थनामक शूकदोषकी चिकित्सा करनी। अष्ठीलानामक शूकदोषमें दूषित रक्तके निकालने अनन्तर कफजन्य ग्रन्थिरोगकी भांति उपचार करे ॥ ४ ॥ कुंभिका नामक शूकदोषमें फस्त खुलवावे और पकगया हो तो राध निकालकर शुद्ध करे। अनन्तर तेन्दू, त्रिफला, लोध इनके लेप करने तथा व्रणशोधक तैलके प्रयोगसे घाव जम आताहै ॥ ५ ॥ यही क्रम अलजीनामक शूकदोषमें करना उचित है। ग्रन्थितनामा शूकदोषमें नाडीस्वेदके क्रमसे बार २ स्वेद देकर ॥ ६ ॥ स्निग्ध और मन्दोष्णरूप लेप करे। उत्तमा नामक शूकदोषकी पिडिकाको संडशीसे उखाडकर ॥ ७ ॥ व्रणशोधक द्रव्योंके कल्क, चूर्ण और कषायोंको मधुके संग प्रयुक्त करे। पुष्करी और संमूढसंज्ञक शूकदोषोंमें पैत्तिक विसर्परोगकी भांति चिकित्साक्रम करे ॥ ८ ॥ त्वक्पाक, तथा स्पर्शहानि और मृदितनामक शूकदोषोंके घावमें बलातैलको कुछ गरम बनाय सेचन करे, मधुर द्रव्योंसे लेप करे ॥ ९ ॥ शतपोनसंज्ञक शूकदोषमें फस्त देकर रसक्रिया करनी और पिठवन आदि द्रव्योंके द्वारा तैलको पकाकर प्रयुक्त करे॥१०॥रक्तजन्य अर्बुदनामक शूकदोषमें रक्तज विद्रधिकी भांति चिकित्सा करे। सब प्रकारके शूकदोषोंमें व्रणशोथकी भांति कषाय, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण, रसक्रिया, शोधन, रोपण आदि उपायोंको विचारपूर्वक करे ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे शूकदोषरोगाधिकारः ॥ ५४ ॥

अथ कुष्ठरोगाधिकारः ५९.

बहुदोषं संशोध्यं कुष्ठं बहुशोऽनुरक्ष्य च प्राणान् ॥ दोषेऽत्यतिमात्र-हृते वायोर्हन्याद्बलं शीघ्रम् ॥ १ ॥ पित्तोत्तरेषु योज्यो रक्तस्य विरेचनं चोग्रम् ॥ प्रच्छन्नेऽल्पे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यध-नम् ॥ २ ॥ वचावसापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः ॥ कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः ॥ ३ ॥ विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः ॥ एवमूर्द्ध्वमधःशुद्धौ लेपादिकमुपाचरेत् ॥ ४ ॥ मनःशिलैलामरिचानि तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ॥ करञ्जबी-जैडगजं सकुष्ठं गोमूत्रपिष्टं किल कुष्ठहारि ॥ ५ ॥ पर्णानि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तैलेन पर्णान्यथ काकमाच्याः ॥ तैलं क्रमात्तस्य नरस्य कुष्ठनुत्प्रवर्तयेदश्वहरच्छदैश्च ॥ ६ ॥ एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः कृमिघ्नैश्च ॥ कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ७ ॥ आरग्वधस्य पत्राणि चारनालेन पेषयेत् ॥ दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ ८ ॥ स्थौणेयरुग्निशादूर्वाः सप्तवारान्प्रलेपयेत् ॥ धत्तूररसपिष्टास्तु कण्डूरुक्सिध्मनाशकाः ॥ ९ ॥ कासमर्दकमू-लन्तु सौवीरेण तु पेषितम् ॥ दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेप-नम् ॥ १० ॥ बीजानि वै सर्षपमूलकानां लज्जारजन्यौ प्रपुनाटबी-जम् ॥ श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं मूत्रेण पिष्टं किल कुष्ठजातिनुत् ॥ ११ ॥

भा० टी०–मिथ्याहार, विहार, दिवास्वाप, उत्कट पाप इत्यादि कारणोंसे शारीरिक धातु-ओंको विकृत बनाकर कुष्ठरोग उपजताहै, अधिक दोषसम्पन्न होनेके कारण कुष्ठरोगमें रोगीके प्राण बचा २ कर वार २ वमन, विरेचन और रक्तमोक्षण आदिसे शोधनकर्म करे । जब भली-भांति दोषोंका संहार होचुका तब शीघ्र ही वायुबलको घटावे ॥ १ ॥ पित्तकी अधिकतावाले कुष्ठ-रोगोंमें ऐसा विरेचन देना जिससे दूषित रक्तकी रफाई हो । मुख्य बात तो यह है कि, गूढरूप और अल्प सत्तावाले वा अधिकरूप कुष्ठमें भी शिराभेदन कर्म करे ॥ २ ॥ वचा, मांसरोहिणी, परवल, नीम, प्रियंगुकी छाल इनके कषायमें मैनफल मिलाय पीनेसे कुष्ठशोषक वमन होतेहैं ॥ ३ ॥ निसोत, दंती, त्रिफला इनके द्वारा कुष्ठरोगीको विरेचन करावे । इस प्रकार वमन विरेचनोंसे शुद्धि होनेपर वक्ष्यमाण लेपादि कर्म करे ॥ ४ ॥ मनसिल, इलायची, मरिच, तैल, आकका दूध इनके

द्वारा विधिपूर्वक लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर हो। एवं करंजके बीज, चकवड, कूठ इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर हो ॥ ५ ॥ अमलतासके पत्तोंको तथा मकोयके पत्तोंको एवं कनेरके पत्तोंको पृथक् २ तैलमें पीसकर वातादि दोषोंके अनुसार लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होताहै ॥ ६ ॥ चकवड, कूठ, सेंधा, सौवीरकांजी, सरसों, वायविडङ्ग इनको पीसकर लेप करनेसे दाद, किट्टिम और कुष्ठ तथा किलासरोग नष्ट होतेहैं ॥ ७ ॥ अमलतासके पत्तोंको कांजीके संग पीसकर लेप करनेसे भी उक्त रोग नष्ट होतेहैं ॥८॥ थुनेर, कूठ, हलदी, दूर्वा इनको धतूरेके रसमें पीसकर सातवार लेप करनेसे खुजली, कोढ और किलासरोग नष्ट हों ॥ ९ ॥ कसौंदीकी जडको सौवीरकांजीमें पीसकर लेप करनेसे दाद, किट्टिम और कोढरोग नष्ट होतेहैं॥१०॥ सरसोंके बीज, मूलीके बीज, लज्जा, हलदी, चकवडके बीज, धूपसरल, त्रिकटु, वायविडंग, कूठ इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारकी कुष्ठजाति नष्ट होतीहैं ॥ ११ ॥

विडंगैलगजैः कुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः ॥ धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ १२ ॥ दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुटेरकाः कांजिकतक्रपिष्टाः ॥ त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलाः कण्डूश्च दद्रूश्च विनाशयन्ति ॥ १३ ॥ तुल्यो रसः शालतरोस्तुषेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविभागः ॥ पानीयभक्तेन तदम्बुपिष्टो लेपः कृतो दद्रुगजेन्द्रसिंहः ॥ १४ ॥ शिखरिरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मम् ॥ क्षारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १५ ॥ गन्धपाषाणचूर्णञ्च यवक्षारेण पेषितम् ॥ सिध्मानं नाशयत्याऽऽशु कटुतैलयुतेन च ॥ १६ ॥ कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ॥ गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्माख्यं परमौषधम् ॥ १७ ॥ धात्रीरसः सर्ज्जरसः सवाट्यः सौवीरपिष्टश्च नदीसुतश्च ॥ भवन्ति सिध्मानि यथा न भूयस्तथेदमुद्वर्तनकं करोति ॥ १८ ॥ पत्रकोषणकासीसतैलान्यपि मनःशिलाः ॥ सप्ताहमुषिताः कांस्ये सिध्मश्वित्रविनाशनाः ॥ १९ ॥ धात्र्यक्षपथ्याक्रमिशत्रुवह्निभल्लातकावल्गुजलोहभृंगैः ॥ भागाभिवृद्धैस्तिलतैलमिश्रैः सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेहः ॥ २० ॥ शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका सहुताशमूला ॥ सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठान्यपहन्ति लीढा ॥ २१ ॥

भा० टी०-वायविडङ्ग, चकवड, कूठ, हलदी, सेंधा, सरसों इनको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दाद और कुष्ठरोग नष्ट हों ॥ १२ ॥ दूर्वा, हरड, सेंधा, चकवड, तुंन इनको कांजीमें पीसकर तीनहीं वारके लेप करनेसे जडबंधीहुई खुजली और दाद नष्ट हों ॥ १३ ॥ १ भाग सालकी छाल, १ भाग चकवड, १ भाग हरड, १ भाग सोमराजी, ४ भाग गन्धरस इन सबको जलमें पीसकर कियाहुआ लेप दादरूपी गजेन्द्रके नाशकरनेमें सिंहस्वरूप है ॥ १४ ॥ चिरचिराके रसके संग वा हलदीयुक्त कदलीखारके संग मूलीके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे किलासरोग नष्ट होताहै ॥ १५ ॥ गंधकके चूर्णको जवाखार और कडुवे तैलके संग पीसकर लेप करनेसे तत्काल किलासरोग नष्ट हो ॥ १६ ॥ कसौंदीके बीज और मूलीके बीजोंको गन्धकके संग पीसकर लेप करना किलासरोगकी परम औषध है ॥ १७ ॥ आंवलेका रस, राल, खिरेंटी इनको कांजीमें पीसकर उबटन करनेसे किलासरोग नष्ट होकर फिर २ उत्पन्न नहीं होता ॥१८॥ तेजपात, मिरच, कासीस, तैल, मनशिल इन सबको पीसकर सातदिनतक एक कांसीके पात्रमें पर्य्युषित रखकर लेप करनेसे किलास और श्वेतकोढ दूर हों ॥ १९ ॥ आंवला, बहेडा, हरड, वायविडङ्ग, चीता, भिलावा, सोमराजी, अगरु, भृङ्गराज इनके उत्तरोत्तर क्रमसे एक २ भाग बढाकर तिलतैलके संग लेह करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ २० ॥ गिलोय वा सोमराजी, वायविडङ्गका सार, पिपली, चीतेकी जड, मंडूर, आंवला, तैल इनका लेह करनेसे सबप्रकारके कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ २१ ॥

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता ॥ वत्समूत्रेण निष्पिष्य लेपात्पामाविनाशिनी ॥ २२ ॥ चक्राह्वबीजं स्नुक्क्षीरभावितं मूत्रसंयुतम् ॥ रविप्रतप्तं किञ्चित्तल्लेपनं किट्टिमापहम् ॥ २३ ॥ नित्यं निम्बदलानाञ्च चूर्णमामलकस्य च ॥ प्रत्यूषे भक्षयेच्चैव तस्य कुष्ठं विनश्यति ॥ २४ ॥ क्षारे सदुग्धे गलगण्डजे च गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च ॥ द्रोणप्रमाणं दशभागयुक्तं दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य ॥ २५ ॥ एतद्यदा चिक्कणतामुपैति तदा सुसिद्धां गुटिकां प्रकुर्यात् ॥ श्वित्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं तदा व्रजत्याशु सुवर्णभावम् ॥ २६ ॥ उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा ॥ कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हन्ति विपादिकाम् ॥ २७ ॥ नारिकेलोदके न्यस्तास्तण्डुलाः पूतितां गताः ॥ लेपाद्विपादिकां घ्नन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ २८ ॥ अवल्गुजः कासमर्दश्चक्रमर्दनिशाह्वयम् ॥ मणिमन्थं च तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥२९॥

कच्छूं दद्रूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३० ॥ कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन संमिश्रम् ॥ दिवसत्रयेण नियतं क्षपयति कण्डूं विलेपेन ॥ ३१ ॥

भा० टी०–कौआठोडी, चकवड, कूठ, पिपली इनको पीसकर गुटिका बनाय रक्खे पीछे उन्हें गोवत्सके मूत्रमें पीसकर लेप करे तो खुजली नष्ट होय ॥ २२ ॥ चकवडके बीजको थूहरके दूधमें भावना देकर गोमूत्रके संग थोडा सूर्य्यकिरणोंमें तपावे तदुत्तर लेप कियेजानेसे कित्रिम कुष्ठको नष्ट करताहै ॥ २३ ॥ नीमके पत्तोंके और आंवलेके चूर्णको नित्य सवेरे ऊठकर सेवन करनेवाले मनुष्योंका कुष्टरोग नष्ट होताहै ॥ २४ ॥ हाथीकी विष्ठाका भस्म ३२ सेर लेकर हाथीके मूत्रमें २१ वार नितारकर छानलेवे इस क्षार जलको ६४ सेर लेवे फिर इसमें ६ सेर बावचीके बीज मिलाकर पकावे जब पकते २ गाढा व मुलायम होजाय तब उतारकर गोलियां बनालेवे, इन गोलियोंको घिसकर श्वेतकुष्टमें लगानेसे वह नष्ट होता और उज्ज्वलवर्ण होताहै ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ मानकन्दकी खारके जलमें धतूरेके बीजोंका कल्क मिलाय कडुवा तैल पकावे। यह तैल विपादिका कुष्ट (विमची) को नष्ट करताहै ॥ २७ ॥ नारियलके दूधमें चावलोंको रखदेवे जब उनमें दुर्गन्ध आनेलगे तब उनको पीसकर लेप करनेसे बहुतदिनोंकी विपादिका दूर होतीहै ॥२८॥ बावचीके बीज, कसौंदी, चकवड, हलदी, सेंधा इनके समभागोंको दधिजल और कांजीमें पीसकर लेप करनेसे कच्छू, कोढ और दाद नष्ट होतेहैं ॥२९॥ वांसाके कोमल पत्ते और हल्दीको तुलसीदलके रसमें पीसकर लेप करनेसे तीन ही दिनमें खुजली नष्ट होतीहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ महाभल्लातकगुडः।

निम्बं गोपारुणाकट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम् ॥ पर्प्पटस्वल्गुजानन्ता वचाखदिरचन्दनम् ॥ ३२ ॥ पाठाशुण्ठीशठीभार्ङ्गीवाशाभूनिम्बवत्सकम् ॥ श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गेन्द्रविषानलम् ॥ ॥ ३३ ॥ हस्तिकर्णामृताद्रेका पटोलं रजनीद्वयम् ॥ कणारग्वधसताह्वकृष्णवेत्रोच्चटाफलम् ॥ ३४ ॥ भूकन्दं तृणपर्णञ्च जिङ्गीपद्माटमूसली ॥ विष्वक्सेना च कैटर्य्यं शरपुंखाऽथ कंचुकी ॥ ३५ ॥ एषां द्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ३६ ॥ भल्लातकसहस्राणि त्रीणि छित्त्वाऽर्म्मणेऽम्भसि ॥ चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ॥ ३७ ॥ तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत् ॥ गुडस्य

च तुलां ताभ्यां कषायाभ्यां पचेद्भिषक् ॥ ३८ ॥ भल्लातकसहस्राणां मज्जनं तत्र दापयेत् ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम् ॥ ३९ ॥ दीपकस्य पलञ्चैव चातुर्ज्जातं पलांशिकम् ॥ सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेदत्र कन्दकञ्च चतुष्पलम् ॥ ४० ॥ स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य स्थापयेत्कुशलो भिषक् ॥ महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥ ४१ ॥ जगतस्तु हितार्थाय जयेच्छीघ्रं न संशयः ॥ श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृक्षजिह्वं सकाणकम् ॥ ४२ ॥ पुण्डरीकञ्च मर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा ॥ कण्डूं कपालगण्डूञ्च पामानं सविपादिकम् ॥ ४३ ॥ वातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं व्रणं कृमीन् ॥ अर्शांसि षट्प्रकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम् ॥ ४४ ॥ तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम् ॥ अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नाक्काथं पयोऽथ वा॥४५॥ भोजने च सदा भोज्यमुष्णञ्चाऽन्नं विशेषतः॥४६॥

भा० टी०–नीमकी छाल, अनन्तमूल, अतीस, कुटकी, त्रायमाण, त्रिफला, नागरमोथा, पित्तपापड, बावची, गौरीसर, वचा, खैर, लालचन्दन ॥ ३२ ॥ पाठा, शोंठ, कचूर, भारङ्गी, वांसाकी जड, चिरायता, कूडेकी छाल, निसोत, इन्द्रायण, मूर्वा, वायविडङ्ग, इन्द्रजौ, विष, चीता ॥ ३३ ॥ एरण्डकी जड, गिलोय, बकायननीम, परवलके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, पिपली, अमलतास, सोया, कालावेत, घुंवची, जमीकन्द, सुगन्धितृण, मञ्जीठ, पमाडके बीज, मुशली, फूलप्रियंगु, नीम, सरफोंका, क्षीरकंचुकी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इनके अलग २ दो २ पल भागोंको ले १ द्रोण जलमें पकावे । जब ४ सेर जल बाकी रहजाय तब उतारकर काथको छान लेवे ॥३६॥ पीछे ३००० भिलावाफलोंको काट छाटकर १ द्रोण जलमें पकावे जब चतुर्थांश रस रहे तब उसे उतारकर छान लेवे ॥ ३७ ॥ फिर दोनों काथोंको कपडछान करके एकसाथ मिलालेवे । इसमें १०० पल गुड और १००० भिलावाफलोंको डालकर पकावे । सिद्ध होनेके समय त्रिकटु, त्रिफला, मोथ, सेंधा, जवायन इनके एक २ पलभागोंको तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर इनके एक २ तोले भागोंको एवं चारपल जमीकन्दको चूर्ण करके उसमें डालदेवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सिद्ध होनेपर एक स्निग्धपात्रमें इसे रखदेय । यह महादेवजीका बनायाहुआ महाभल्लातकनामक गुड हुआ ॥ ४१ ॥ यह जगत्हितकारी गुड श्वित्रकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ट, दद्रु, ऋक्षजिह्व, काकण ॥ ४२ ॥ पुण्डरीक, चर्मकुष्ठ, विस्फोट, मण्डल, कण्डू, कपालकुष्ठ, खुजली, विमची आदि कुष्ठजातियोंको ॥ ४३ ॥ तथा वातरक्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमिरोग, छः प्रकारकी बवाशीर, कास, श्वास, भगन्दर ॥ ४४ ॥

आमवात, एवं वलिपलितादि वैरूप्यको जीतताहै। इसमें अनुपान गिलोयका क्वाथ वा दूध है ॥ ४९ ॥ इस गुडके सेवन करनेवालेको नित्य उष्णद्रव्य और उष्णभोजन करना उचित है॥४६॥

हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम् ॥ पिबेत्ततः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ४७ ॥ शोथपाण्ड्वामयहरं गुल्ममेहकफापहम् ॥ कच्छूपामाहरश्चैव गोमूत्रं हि वचान्वितम् ॥ ४८ ॥ पिबति सकटुतलं गन्धपाषाणचूर्णं रविकिरणसुतप्तं पामनो यः पलार्द्धम् ॥ त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं भवति कनकदीप्तिः कामरूपी मनुष्यः ॥ ४९ ॥ निशासुधारग्वधकाकमाचीधामार्गदार्वीप्रपुनाटबीजैः ॥ तक्रेण पिष्टैः कटुतैलमिश्रैः पामादिषूद्वर्तनमेतदिष्टम् ॥५०॥ मांसीचन्दनसम्पाककरञ्जारिष्टसर्षपम् ॥ शठीकुटजदार्व्यब्दं हन्ति कण्डूमयं गणः ॥ ५१ ॥ घर्मसेवी कटुस्नेहवारिणा वाकुचीं पचेत्॥क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात्कुष्ठरोगाद्विमुच्यते॥५२॥ एडगजातिलसर्षपकुष्ठं मागधिकारजनीद्वयमुस्तम् ॥ पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धन्ति सकुष्ठविचर्चिकदद्रुम् ॥ ५३ ॥ भल्लातकीद्वीपिसुधार्कमूलं गुञ्जाफलत्र्यूषणशंखचूर्णम् ॥ तुल्यं सकुष्ठं लवणानि पञ्च क्षारद्वयं लाङ्गलिकाञ्च पक्त्वा ॥ ५४ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थे शलाकया तद्विदधीत लेपम् ॥ कुष्ठे किलासे च कपालके च ह्यशेषदुर्नामसु नाम शस्तम् ॥ ५५ ॥ विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूमदनमरिचदूर्वाः क्षीरमर्कस्नुहीभ्याम् ॥ दहति तदतिमात्रं कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ ५६ ॥ त्रिफलापटोलरजनीमंजिष्ठारोहिणीवचानिम्बैः ॥ एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ५७ ॥

भा० टी०–२पल गोमूत्रमें हलदीके कल्कको मिलाय पीनेसे कुष्ठरोग नष्ट होकर मनुष्य कामचारी होताहै ॥ ४७ ॥ वचाके कल्कसे युक्त गोमूत्रको सेवन करनेवाले मनुष्यके शोथ, पांडु, गुल्म, मेह, कफ तथा कुष्ठरोग नष्ट होतेहैं ॥ ४८ ॥ कडुवे तैलमें गन्धकका चूर्ण मिलाकर धूपमें गरम करके आधापलके प्रमाणसे इसको पीनेवाले तथा शरीरपर मर्दन करनेवाले मनुष्यके पामारोग नष्ट होकर सुवर्णके समान कान्ति हो। परन्तु इसके सेवनकालमें क्षीरभोजन ही होना

उचित है ॥ ४९ ॥ हलदी, गिलोय, अमलतास, मकोय, चिरचिराके बीज, दारुहलदी, चकवडके बीज इनको छांछमें पीसकर कडुवे तैलमें मिलाय उवटन करना पामा आदि कुष्ठरोगोंमें अभीष्ट है ॥ ५० ॥ जटामासी, लालचन्दन, अमलतास, करञ्ज, नीम, सरसों, कचूर, कूडा, दारुहलदी, मोथा यह गण कुष्ठनाशक है ॥ ५१ ॥ कडुवे तैल और जलके संग बावचीको पकावे पीछे क्षीरभोजन और घर्मसेवन करताहुआ इसका प्रयोग करे इससे २१ ही दिनमें मनुष्य कुष्ठरोगसे निर्मुक्त होगा ॥ ५२ ॥ चकवड, तिल, सरसों, कूठ, जूही, हलदी, दारुहलदी, मोथ इनको तीन दिनतक बासी बनाय प्रयुक्त करनेसे कोढ, विचार्चिका और दाद नष्ट होतेहैं ॥ ५३ ॥ भिलावा, चीता, गिलोय, आककी जड, घुंघुची, त्रिकटु, शंखचूर, कूठ, पांचों लवण, जवाखार, सज्जीखार, पिठवन इनके कल्कको लोहेके पात्रमें थूहरके और आकके दूधमें पकाकर सिद्धहोनेपर शलाईके द्वारा शरीरपर लेप करनेसे कोढ, किलास, कापालिक कुष्ठ और सबप्रकारको बवाशीर नष्ट होतेहैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ विष, वरना, हलदी, चीतेकी जड, गृहधूमकी धूर, मैनफर, मरिच, दूर्वा, आकका दूध, थूहरका दूध इनको पीसकर लेप करनेसे सबप्रकारके कोढ कैसे भस्म होतेहैं जैसे इन्द्रके सकोप हस्तसे छूटेहुए वज्रसे वृक्ष ॥ ५६ ॥ त्रिफला, परवलपात, हलदी, मजीठ, मांसरोहिणी, वचा, नीम इनके कषायके अभ्यास करनेसे कफपित्तसे उपजाहुआ कुष्ठ नष्ट होताहै ॥ ५७ ॥

अथ महाकषायः ।

निम्बभूनिम्बपाठाब्दैः पटोलत्रिफलानतैः ॥ श्यामाश्यामकगायत्री-भार्ङ्गीवाशकचन्दनैः ॥ ५८ ॥ वचामृताकणाशुण्ठीतिक्तकेन्द्रानि-शाद्वयैः ॥ वत्सकत्वक्फलानन्तामूर्वात्रायन्तिपर्पटैः ॥ ५९ ॥ ऐन्द्रीव्याघ्रीगजाह्वैश्च विषाकम्यारिचन्दनैः ॥ महाकषायो मूत्रेण सर्वकुष्ठान्तकोऽर्कवत् ॥ ६० ॥

भा० टी०-नीम, चिरायता, पाठा, मोथ, परवल, त्रिफला, तगर, फूलप्रियंगु, गन्धेजवास, खैर, भारङ्गी, वांसा, लालचन्दन ॥ ५८ ॥ वचा, गिलोय, पिपली, शोंठ, कटुकी, फणिजूक, हलदी, कूडेकी छाल, इन्द्रजौ, गौरीसर, मूर्वा, त्रायमाण, पित्तपापड ॥ ५९ ॥ इन्द्रायण, कटेरी, चकवड, अतीस, वायविडङ्ग, कृष्णचन्दन इनकरके सिद्ध कियाहुआ महाकषाय गोमूत्रके संग उपयुक्त होनेसे सबप्रकारके कुष्ठोंको दूरकरताहै, जैसे सूर्य्य अन्धकारको ॥ ६० ॥

अथ प्रकारान्तरेण महाकषायः ।

निम्बैरण्डविडङ्गनागरवचामूर्वाहरिद्राद्वयत्रायन्तीत्रिफलापटोलदहन-द्रेकामृताभार्ङ्गिभिः ॥ काष्ठोदुम्बरिकाकरञ्जखदिरैः शाखोटस-

च्छदैर्व्याघ्रीमुस्तशिरीषवेतसकणाभूनिम्बशक्राह्वयैः ॥ ६१ ॥ चापुन्नाटकवाकुचीकुशजटामातङ्गकर्णेज्जलैः पाठापर्प्पटकेन्द्रवारुणि-विषादन्तीत्रिवृचन्दनैः ॥ मंजिष्ठामयवासवैः सकटुकाराजद्रुमग्रन्थि-कैस्तुल्यांशैः सुरभीजलेन पिबतां सिद्धं कषायं नृणाम् ॥ ६२ ॥ कृत्वा शोधनमौषधैः प्रथमतः पथ्याशिनां रोगिणां दद्रूदुम्बरपुण्डरी-ककिटिभाः कुष्ठामयाः पामया ॥ नश्यन्ति ध्रुवमेव दोषजनिताः प्रोद्भूयमानानलज्वालादग्धसुतप्तकाञ्चनसमान्यङ्गानि राजन्ति च ६३॥

भा० टी०–नीम, एरण्डकी जड, वायविडङ्ग, शौंठ, वचा, मूर्वा, हलदी, दारुहलदी, त्रायमाण, त्रिफला, परवलके पत्ते, चीता, बकायननीम, गिलोय, भारङ्गी, देवदार, गूलर, करंज, खैर, सहोरा, सतौना, कटेरी, मोथ, शिरस, वेत, पिपली, चिरायता, इन्द्रजौ ॥६१॥ चकवड, बावची, कुश, जटामांसी, हस्तिकर्ण, समुद्रफल, पाठा, पित्तपापड, इन्द्रवारुणी, अतीस, दन्ती, निसोत, लालचन्दन, मंजीठ, कूठ, कूडाकी छाल, कटुकी, अमलतास, गठिवन इनके समानभाग लेकर कषाय वनाय रक्खे ॥ ६२ ॥ अनन्तर प्रथम वमन विरेचनके द्वारा कोष्ठको शुद्ध करे तब इस महाकषायको गोमूत्रके संग पीवे और पथ्यभोजन करता रहे । इस प्रयोगसे मनुष्योंके दाद, उदुंवर, पुंडरीक, किटिभ, पामाप्रभृति कुष्ठरोग नष्ट होकर तप्तसुवर्णके समान उज्ज्वल अंग विराजने लगतेहैं ॥ ६३ ॥

छिन्नायाः स्वरसं चाऽपि पीत्वा रोगी यथाबलम् ॥ जीर्णे घृतेन भुञ्जीत स्वल्पमुष्णञ्च भोजनम् ॥६४॥ अपि पूतिशरीरोऽपि दिव्य-रूपो भवेन्नरः ॥ एतस्य सतताभ्यासात्कां सिद्धिं न व्रजेदिह ॥६५॥ पटोलखदिरारिष्टत्रिफलाकृष्णवेत्रकम् ॥ तिक्ताशनः पिबेत्क्वाथं कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥ ६६ ॥ विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम् ॥ हन्ति कुष्ठं कृमीन्मेहान्नाडीव्रणभगन्दरान् ॥ ६७ ॥ इन्द्रासनं समादाय प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ तच्चूर्णं मधुसर्पिर्भ्यां लिह्यात्क्षीरघृताशनः ॥ ६८ ॥ हत्वा च सर्वकुष्ठानि जीवेद्वर्षश-तत्रयम् ॥ यः खादेदभयारिष्टं शश्वचामलकानि च ॥ ६९ ॥

भा० टी०–गिलोयके स्वरसको अग्निबलके अनुसार पीकर जब वह रीझजाय तब घृतके संग गरम और थोडा भोजन करे ॥ ६४ ॥ इसप्रकार निरन्तर अभ्यास करनेसे मनुष्यका शरीर कुष्ठरोगसे कैसेही दुर्गन्धित क्यों न हो परन्तु वह भी दिव्यरूपी बनजाताहै ॥ ६९ ॥ परवलपात,

खैर, नीम, त्रिफला, कालावेत इनके क्वाथके सेवन करनेके समय तिक्तपदार्थोंको खाताहुआ कुष्ठी मनुष्य कुष्ठरोगसे निर्मुक्त होताहै ॥ ६६ ॥ वायविडंग, त्रिफला, पिपली इनके चूर्णको मधुके संग चाटनेसे कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, नाडीव्रण, भगंदर यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ६७ ॥ शुभमुहूर्त शुभदिनमें इन्द्राशन (घुंघुची वा संविदा) को उखाडकर लावे पीछे उसका चूर्ण बनाय मधु, घृतके संग खावे और दूध, घृतके संग पथ्यभोजन करे ॥६८॥ इसके अभ्याससे और बार २ अभयारिष्ट तथा आंवलेके सेवनसे सबप्रकारके कुष्ठोंसे निर्मुक्त होकर ३०० वर्षपर्यन्त जीवित रहे ॥ ६९ ॥

अथ पञ्चाङ्गनिम्बादिः ।

पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च ॥ सञ्चूर्ण्य पिचुमन्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ७० ॥ द्विपलानि समाहृत्य भागानेषाञ्च कल्पयेत् ॥ त्रिफला त्र्यूषणं भार्ङ्गीश्वदंष्ट्रापुष्कराग्निकम् ॥ ७१ ॥ विडङ्गोशीरवाराहीलोहचूर्णामृताभयाः ॥ निशाह्वयावल्गुजकव्याधिघाताः सशर्कराः ॥ ७२ ॥ कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसंयुतम् ॥ खदिरासननिम्बानां घनक्काथेन भावयेत् ॥ ७३ ॥ सप्तधा पञ्चनिम्बादिर्मार्कवस्वरसेन च ॥ स्निग्धसिद्धतनुः श्रीमान्योजयेत्तु शुभे दिने ॥ ७४ ॥ मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा ॥ लेह्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्ध्या पलं भवेत् ॥ ७५ ॥ जीर्णे च भोजनं कार्य्यं स्निग्धं लघु हितं भवेत् ॥ आस्तिकेनाऽप्यकोपेन भाव्यं वै रोगिणा स्वयम् ॥७६॥ विचर्च्चिकोदुम्बरपुण्डरीककपालदद्रूकिटिमालसानि ॥ पामाख्यविस्फोटविसर्पमालाकफप्रकोपान्विविधं किलासम् ॥ ७७ ॥ भगन्दरश्लीपदवातरक्तं निहन्ति नाडीव्रणशीर्षरोगान् ॥ सर्वप्रमेहान्प्रदराँश्च सर्वान्दंष्ट्राविषं मूलविषं तथैव ॥ ७८ ॥ स्थूलोदरः सिंहकृशोदरश्च सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात्॥जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः स्वभावतश्चन्द्रसमानकान्तिः ७९॥

भा० टी०-जिससमय नीम फूलताहै उससमय उसके फूलोंको और फलनेके समय उसके फलोंको तथा उसके पत्ते, छाल और जडको भी चुनकर चूर्ण बनालेवे ॥ ७० ॥ इसके प्रत्येक अंगका चूर्ण दो २ पलके प्रमाणसे होना उचित है । इसके अतिरिक्त त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखरु, पोहकरमूल, चीता ॥ ७१ ॥ वायविडंग, खश, वाराहीकन्द, मंडूर, गिलोय, अभया (हरड) हलदी, बावची, अमलतास, दारुहलदी ॥७२॥ कूठ, इन्द्रजौ, पाठा इन सबके उचित

प्रमाणसे समभाग लेकर चूर्ण बनावे; पीछे उस पंचाङ्गचूर्णको भी इसी चूर्णके संग मिलाय खैरके तथा विजयसारके एवं नीमके गाढे क्वाथमें और भृङ्गराजके स्वरसमें पृथक् २ सातवार भावना देवे, पीछे कोष्ठको स्निग्ध और शुद्ध बनाकर रोगी इस चूर्णको शुभदिनमें सेवनकरना आरम्भकरे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ मधु, तिक्तघृत, खैर और विजयसारका क्वाथ, गरमजल इनमेंसे किसीएकके संग एकतोलासे लेकर क्रमशः मात्रा बढा २ कर पलभर मात्रामें आकर चूर्णको समाप्त करे ॥ ७५ ॥ प्रत्येक दिन जब चूर्ण रीझजाय तब हलके और स्निग्ध पथ्यको खावे। इसके सेवनकालमें रोगीको आस्तिक और शांत होकर रहना उचित है ॥ ७६ ॥ इसप्रकार इस चूर्णके प्रयोगसे विचर्चिका, उदुंबर, पुंडरीक, कापालिक, दद्रु, किट्टिम, अलसक, पामा, विस्फोटक, विसर्प आदि कुष्ठरोगकी जाति, कफकोप, अनेकप्रकारका किलासरोग ॥ ७७ ॥ भगंदर, श्लीपद, वातरक्त, नाडीव्रण, शिरोरोग, सबप्रकारके प्रमेह, सबप्रकारके प्रदर, सर्पआदिके दाढका विष, स्थावरविष यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ७८ ॥ स्थूलोदर और विश्लिष्टसंधिवाला मनुष्य इसको मधुके संग प्रयुक्त करनेसे सिंहके समान कृशोदर और सुश्लिष्टसंधि होताहै एवं अनेक आधि, व्याधि और बुढापेसे निर्मुक्त होकर चन्द्रमाके समान कांतिको धारण किये चिरकालतक जीवता है ॥ ७९ ॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः।

चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजी कारवी वचा ॥ सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥ ८० ॥ विडङ्गान्यजमोदा च मुस्तान्यमरदारु च ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रो हि गुग्गुलुः ॥८१॥ संयोज्य सर्पिषा सार्द्धं गुटिकाः कारयेद्भिषक् ॥ प्रातर्भोजनकाले तु भक्षयेच्च यथाबलम् ॥ ८२ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि क्रमीन्दुष्टव्रणानि च ॥ ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखदोषगलग्रहान् ॥ ८३ ॥ गृध्रसीमथ भग्नञ्च गुल्मं शोथञ्च नाशयेत् ॥ व्याधीन्कोष्ठगतांश्चान्याञ्जयेद्विष्णुरिवाऽसुरान् ॥ ८४ ॥

भा० टी०-चीतेकी जड, हरड, बहेडा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिपली, कालाजीरा, अजवायन, वचा, सेंधानोन, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, जवाखार ॥ ८० ॥ वायविडंग, अजमोद, मोथ, देवदार, भद्रमोथ इनके समभाग लेकर जितना चूर्ण हो उतना ही गूगल लेकर घृतके संग खरड करके गुटिका बनावे, इनको प्रातःकाल भोजनके समयमें अग्निबलके अनुसार खावे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इनके सेवनसे अठारह प्रकारके कुष्ठ, कृमि, दुष्टव्रण, ग्रहणीदोष, बवासीर, मुखदोष, गलग्रह ॥ ८३ ॥ गृध्रसीवात, भग्न, गुल्मरोग, शोथ और कोष्ठके समस्तरोग कैसे नष्ट होतेहैं जैसे विष्णुदेवके शस्त्रसे दानवगण ॥ ८४ ॥

अथ तिक्तषट्पलघृतम् ।

निम्बपटोलकदार्वीदुरालभातिक्तरोहिणीत्रिफलाः ॥ कुर्य्यादर्द्धपलांशाः पर्प्पटकं त्रायमाणाश्च ॥ ८५ ॥ सिद्धां धात्रीं च वचां रसेऽर्द्धभागे क्षिपेत्पूते ॥ चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणाश्च ॥ ८६ ॥ मुस्तकवत्सकबीजं कल्कीकृत्याऽर्द्धकर्षांशम् ॥ नवसर्पिः षट्पलिकमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ ८७ ॥ कुष्ठासृग्दोषार्शोगलग्रहं शोथमपहरति ॥ पामाविसर्पपिडिकाः कण्डूमपरे च ये रोगाः ॥ ८८ ॥

भा० टी०-नीम, परवल, दारुहलदी, दुरालभा, कटुकी, त्रिफला इनके आधा २ पल भाग और पित्तपापड, त्रायमाण, ऋद्धि, आंवला, वचा इनके एक २ पल भाग लेकर क्वाथ बनावे, जब पकते २ आधा रस रहे तब उसे छानकर उसमें चन्दन, चिरायता, जूही, त्रायमाण, मोथ, इन्द्रजौ इनके आधा २ कर्ष भागोंका कल्क बनाय डालदेवे अनन्तर छःपल नवीन घृतको उसके संग पकावे । सिद्ध होनेपर इस घृतके पानसे कोढ, रक्तदोष, बवासीर, गलग्रह, शोथ, पामा, विसर्प, पिडिका, कण्डू और अन्यान्य रोग भी नष्ट होतेहैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ पञ्चतिक्तकं घृतम् ।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीश्च गुडूचीं वासकं तथा ॥ कुर्य्याद्दशपलान्भागान्प्रत्येकं च सुकुट्टितान् ॥ ८९ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं पचेत्पादावशेषितम् ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलाभागसंयुतम् ॥ ९० ॥ पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ॥ अशीतिवातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ॥ ९१ ॥ विंशतिश्लैष्मिकांश्चैव पानादेवाऽपकर्षति ॥ दुष्टव्रणकृमीनर्शःपञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ ९२ ॥

भा० टी०-नीम, परवल, कटेरी, गिलोय, वांसा इनके दश २ पल भागोंको कूटकर ॥ ८९ ॥ एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई रस रह जाय तब उसमें त्रिफलाका कल्क मिलाय १ प्रस्थ घी पकावे ॥ ९० ॥ सिद्ध होनेपर इसका नाम पञ्चतिक्त घृत है । यह घृत सब प्रकारके कुष्ठ, ८० प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, बीसप्रकारके कफरोग, दुष्टव्रण, कृमिरोग, बवाशीर, पांचप्रकारके कास इन सबको पान कियेजातेही नष्ट करता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ तिक्तकं घृतम् ।

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्प्पटमूलकान् ॥ त्रायन्तीकुष्ठनिम्बांश्च प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥ ९३ ॥ क्वथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण

तेन तु ॥ घृतप्रस्थं पचेद्वयक्षैः पिप्पलीघनचन्दनैः ॥ ९४ ॥ त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैः पीतं तत्तिक्तकं घृतम् ॥ हन्ति कुष्ठज्वरार्शांसि ग्रहणीशोथपाण्डुकान् ॥ ९५ ॥

भा० टी०-हरड, बहेडा, आंवला, हलदी, दारुहलदी, वांसा, जवासा, पित्तपापडेकी जड, त्रायमाण, कूठ, नीम इनके दो २ पलभागोंको ॥ ९३ ॥ एकद्रोण जलमें पकावे जब चतुर्थांश रस रहजाय तब उसमें पिपली, मोथ, चन्दन, त्रायमाण, कूडा, चिरायता इनके दो २ अक्ष-भागोंके कल्कको डालकर १ प्रस्थ घृत पकावे। इस तिक्तक घृतके पीनेसे कुष्ट, ज्वर, बवाशीर, ग्रहणी, शोथ, पाण्डुरोग यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ महातिक्तकं घृतम्।

सप्तच्छदप्रतिविषासम्पाकं तिक्तरोहिणीपाठा ॥ मुस्तमुशीरं त्रिफला-पटोलपिचुमन्दपर्पटकम् ॥ ९६ ॥ धन्वयवासकचन्दनमुपकुल्याप-द्मकं रजन्यौ च ॥ षड्ग्रन्था तिक्तयुता शतावरीसारिवे चोग्रा ॥ ॥९७॥ वत्सकबीजं वाशा मूर्वामृताकिराततिक्ताश्च ॥ कल्कान्कु-र्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वत्रायमाणाश्च ॥ ९८ ॥ कल्के च चतुर्भागे जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ॥ द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाच-येत्सिद्धम् ॥९९ ॥ कुष्ठानि रक्तपित्तं नाशयतेऽर्शांसि रक्तवाहीनि॥ विसर्पकाम्लपित्तौ वातासृग्ग्रन्थिरोगविस्फोटान् ॥ १०० ॥ पामो-न्मादविकारान्सज्वरकण्डूं च कामलां पाण्डुम् ॥ हृद्रोगगुल्मपिडिका असृग्दरं गण्डमालाश्च ॥ १०१ ॥ हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः॥ योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्बलात्कारैः॥१०२॥

भा० टी०-सतोंना, अतीस, अमलतास, कटुकी ॥ पाठा, मोथ, खश, त्रिफला, परवल, नीम, पित्तपापड ॥ ९६ ॥ कोह, जवासा, लालचन्दन, पिपली, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, कचूर, कूडा, शतावरी, दोनों सारिवा, वचा ॥९७॥ इन्द्रजौ, वांसा, मूर्वा, गिलोय, चिरा-यता, मुलहठी, त्रायमाण इनके समभागनिष्पन्न कल्कके चार भागोंको ३२ भाग जलमें पकावे, जब चौथाई रहजाय तब उसमें १ प्रस्थ घृत और २ प्रस्थ आंवलेका रस मिलाय पकावे ॥ ९८ ॥ ॥ ९९ ॥ सिद्ध होनेपर इस महातिक्तक घृतके प्रयोगसे सबप्रकारके कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तको बहाने वाले बवाशीर, विसर्प, अम्लपित, वातरक्त, गंठिया, विस्फोटक, पामा, उन्माद, ज्वर, कण्डू,

कामला, पाण्डुरोग, हृद्रोग, गुल्म, पिडका, असृग्दर, गंडमाला यह सब तत्काल नष्ट होते हैं। किं बहुना, जो उत्कट रोग सैकडों उपायोंसे नहीं जीतेजाते वे सब यथाशक्ति यथासमय इसके पानसे नष्ट होते हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथ महाखदिरघृतम् ।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले ॥ तुलार्द्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ १०३ ॥ पर्पटः कुब्जकश्चैव विषः कृमिहरस्तथा ॥ हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥ १०४ ॥ सप्तपर्णश्च सुक्षुण्णो दशद्रोणे तु वारिणः ॥ अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ १०५ ॥ धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत् ॥ महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः पलसम्मितैः ॥ १०६ ॥ निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणैः ॥ महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविकारनुत् ॥ १०७ ॥

भा० टी०–५०० पल खैर, १०० पल सीसम, १०० पल विजयसार, ५० पल करञ्ज, ५० पल नीम, ५० पल वेत, ५० पल पित्तपापडा, ५० पल कूजा, ५० पल विष, ५० पल वायविडङ्ग, ५० पल हलदी, ५० पल दारुहलदी, ५० पल अमलतास, ५० पल गिलोय, १५० पल त्रिफला सम, ५० पल निशोत, ५० पल सतौना इन सबको कूटछांटकर दशद्रोण-जलमें पकावे, जब अष्टमांश रस बाकीरहे तब उसमें चारप्रस्थ घृत और ४ प्रस्थ आंवलेका रस, एवं महातिक्तघृतमें कही औषधिओंके पल २ भर कल्कोंको भी डालकर विधिपूर्वक पकावे। इस महाखदिरघृतके पीने और मर्दन करनेसे सबप्रकारके कुष्ठविकार नष्ट होते हैं॥ १०३–१०७॥

अथ गुग्गुलपञ्चतिक्तकं घृतम् ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां भागान्पृथग्दशपलान्विपचेद् घटे तु ॥ अर्द्धांशशेषितरसेन सुनिश्चितेन प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पुरभागकल्कैः ॥ १०८ ॥ पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्याद्विक्षारनागरनिशानिशिचव्यकुष्ठैः ॥ तेजोवतीमरिचदीपकदीप्यकाग्निरोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ १०९ ॥ मञ्जिष्ठया च सहितैरथ सिद्धमेतत्कुष्ठानि सर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ॥ यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोषहृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ ११० ॥

भा० टी०–१० पल नीम, १० पल गिलोय, १० पल वांसा, १० पल कटेरी, १० पल पटोलपात इन सबको १ द्रोण जलमें पकावे जब आधा रस रहजाय तब उसमें १० पल गूगल और एक २ पलके प्रमाणसे पाठा, वायविडंग, देवदार, गजपिपली, जवाखार, सज्जीखार, शोंठ, हलदी, चव्य, कूठ, मालकांगनी, मरिच, अजवायन, अजमोद, चीता, कटुकी, भिलावा, वचा, पिपलीमूल, मंजीठ, इनके कल्कको डालकर १ प्रस्थ घृत पकावे । यह सिद्ध घृत सब-प्रकारके कुष्ठोंको तथा गुल्म, बवाशीर, प्रमेह, क्षय, अरुचि, श्वास, पीनस, कास, शोष, हृद्रोग, पाण्डुरोग, मदात्यय, विद्रधि और वातरक्तको नष्ट करता है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अथ वज्रकघृतम् ।

वासागूडूचीत्रिफलापटोलकरञ्जनिम्बार्ज्जुनकृष्णवेत्रम् ॥
क्राथेन कल्केन घृतं विपक्वं तद्वज्रकं कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ १११ ॥
विशीर्णकर्णांगुलिहस्तपादः कुष्ठेन दुष्टेन विभिन्नकण्ठः ॥
नरो निजां कान्तिमवाप्य जीवेदव्याहतं वर्षशतं तु कुष्ठी॥११२॥

भा० टी०--वांसा, गिलोय, त्रिफला, परवल, करञ्ज, नीम, कोह, कालावेत इनके क्राथ और कल्कमें पकायाहुआ घृत कुष्ठनाशक और वज्रकनामक कहा है ॥ १११ ॥ कुष्ठी मनुष्यके कान, अंगुलि, हाथ और पैर भी क्यों न विखरगयेहों, कण्ठ क्यों न फटगयाहो परन्तु इस घृतके प्रभावसे वह अपनी वास्तविक कान्तिको प्राप्तहोकर १०० वर्षपर्य्यन्त निर्विघ्न जीता है ॥ ११२ ॥

अथ तृणकतैलम् ।

मंजिष्ठारुग्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः ॥
तृणकस्य रसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं कटु ॥ ११३ ॥

भा० टी०–मंजीठ, कूठ, हलदी, चकवड, अमलतासके पत्ते इनके कल्कको सुगन्धि-तृणके काथमें मिलाकर कडुवे तैलको पकावे । यह तैल कुष्ठनाशक है ॥ ११३ ॥

अथ वज्रकतैलम्

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् ॥ मूलं तृणशिरीषाभ्यां तथा वह्निभवं भिषक् ॥ ११४ ॥ करञ्जबीजत्रिफलाकटुत्रिकनिशाद्व-यम् ॥ सिद्धार्थकं विडङ्गं च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ ११५ ॥ मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् ॥ अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ११६ ॥

भा० टी०-सतौना, करञ्जुवा, आक, मालती, कनेर, सुगन्धितृण, शिरस, चीता इन सबकी जड तथा करञ्जुवेके बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हलदी, दारुहलदी, सरसों, वायविडङ्ग, चकवड इन सबको गोमूत्रमें पीसकर कल्क बनावे । पीछे इस कल्कके द्वारा तैलको पकावे सिद्ध होनेपर यह वज्रकतैल हुआ । इस तैलको शरीरपर मलनेसे कुष्ठ, नाडीव्रण और दुष्टव्रण, नष्ट होते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

अथ महामरिचाद्यं तैलम् ।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्क्कं शकृद्रसः ॥ देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ११७ ॥ विशाला करवीरञ्च हरितालं मनःशिला॥चित्रको लाङ्गलीयाख्यं विडङ्गं चक्रमर्दकम्॥११८॥ शिरीषकुटजौ निम्बः सप्तपर्णः स्नुहामृता ॥ शम्याकनक्तमालाब्दखदिरं पिप्पली वचा ॥ ११९ ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषञ्च द्विपलं भवेत् ॥ आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥१२०॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत ॥ सिद्धमेतन्महातैलं लेपयेत्कौष्ठिकान्व्रणान् ॥ १२१ ॥ पामाविचर्चिकादद्रूकण्डूविस्फोटकानि च ॥वलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गं तथैव च ॥१२२॥ अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्य्यञ्च जायते ॥ चन्द्रमण्डलमध्याङ्गस्फुरत्पीयूषकान्तयः ॥ १२३ ॥ प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यन्तु दापयेत् ॥ परामपि जरां प्राप्य न स्तनो याति नम्रताम् ॥ १२४ ॥ बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा व्याधिपीडितः ॥ त्रिभिरभ्यञ्जनैरेव भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १२५ ॥

भा० टी०-मरिच, निशोत, दन्ती, आकका दूध, गोबर, देवदार, हलदी, दारुहलदी, मांसी, कूठ, चन्दन ॥ ११७ ॥ इन्द्रायण, कनेर, हरिताल, मनशिल, चीता, पिठवन, वायविडङ्ग, चकवड ॥ ११८ ॥ शिरस, कूडा, नीम, सतौना, थूहर, गिलोय, अमलतास, करञ्ज, मोथ, खैर, पिपली, वचा ॥ ११९ ॥ मालकांगुनी इन सबके एक २ पल भाग और दोपल विषका कल्क बनाय एकद्रोण गोमूत्रमें ४ प्रस्थ कडुवे तैलके संग ॥ १२० ॥ मिट्टीके वा लोहेके पात्रमें शनैः २ कोमल अग्निसे पकावे । सिद्ध होनेपर कोढीके घावोंपर प्रयुक्त करे ॥ १२१ ॥ इस तैलको शरीरपर मर्दन करनेसे पामा, विचर्चिका, दद्रू, विस्फोटक, कण्डू, वलिपडना, केशफूलना, बुढापा, छांहपडना, नीली, व्यङ्गदोष ॥ १२२ ॥ यह सब नष्ट होतेहैं और शरीरपर

सुकुमारता छा आतीहै एवं चन्द्रमंडलके समान कान्ति लहलहाने लगतीहै ॥१२३॥ जिन स्त्रियोंके पहली अवस्थामें यह तैल नस्यके द्वारा प्रयुक्त कियागया उनके स्तन अत्यन्त बुढापाके आनेपर भी नहीं झुकते ॥ १२४ ॥ यदि वायु आदि व्याधिसे पीडित बैल, घोडा और हाथीपर भी इसका तीन ही वार प्रयोग किया जाय तो वे नीरोग होकर वायुके समान पराक्रमी होतेहैं ॥ १२५ ॥

अथ विषतैलम्।

नक्तमालनिशायुग्ममर्कस्तगरमेव च ॥ करवीरवचाकुष्ठमास्फोतारक्तचन्दनम् ॥१२६॥ मालती सप्तपर्णश्च मञ्जिष्ठा सिन्दुवारकः ॥ एषामर्द्धपलान्भागान्विषस्य पलिकं तथा ॥ १२७ ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ श्वित्रं विचर्चिकाद्याश्च लूताविस्फोटकादयः ॥ १२८ ॥ कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणादिविदूषिताः ॥ विषतैलमिदं नाम सर्वानेतान्विशोधयेत् ॥ १२९ ॥

भा० टी०–करञ्ज, हलदी, दारुहलदी, आक, तगर, कनेर, वचा, कूठ, सारिवन, लालचन्दन ॥ १२६ ॥ मालती, सतौना, मंजीठ, मेउडी इनके आधा २ पल भाग और पलभर विषको पीसकर कल्क बनावे ॥ १२७ ॥ इसी कल्कके संग १ प्रस्थतैलको ४ प्रस्थ गोमूत्रके संग पकावे । इस तैलको मर्दन करनेसे श्वेतकोढ, विचर्चिका, लूता, विस्फोटक, कण्डू, कच्छूआदि रक्तविकार और सब प्रकारके व्रण शोधित होतेहैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अथ करवीराद्यं तैलम्।

श्वेतकरवीरमूलं विषेण संसाधितं गवां मूत्रे ॥ चर्मदलसिध्मकुष्ठपामाविस्फोटकाञ्जयेत्तैलम् ॥ १३० ॥ श्वेतकरवीरकरसो गोमूत्रं चित्रकं विडं तैलम् ॥ कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं सम्मतो भिषजाम् ॥ १३१ ॥

भा० टी०–सफेद कनेरकी जडको विषके संग गोमूत्रमें तैलसहित सिद्ध करके प्रयुक्त करनेसे चर्मदल, सिध्म, कुष्ठ, पामा, विस्फोटक आदि कुष्ठजाति नष्ट होतीहैं ॥ १३० ॥ दूसरा प्रकार–सफेद कनेरका रस, गोमूत्र, चीता, विडलोन, तैल इन सबको एकत्र पकाकर जो तैल सिद्ध होताहै वह कुष्ठरोगोंके ऊपर प्रसिद्ध और वैद्यसम्मत है ॥ १३१ ॥

अथ सिन्दूराद्यं तैलम्।

**सिन्दूरार्द्धपलं जीरपलं पिष्ट्वा पलाष्टकम् ॥
कटुतैलं पचेत्ताभ्यां सद्यः पामाहरं परम् ॥ १३२ ॥**

भा० टी०–आधापल सिन्दूर और पलभर जीरेको पीसकर इनके कल्कके संग ८ पल कडुवे तैलको पकावे । यह तैल तत्काल पामानाशक होताहै ॥ १३२ ॥

अथ महासिन्दूराद्यं तैलम् ।

सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रजनीद्वयम् ॥ प्रियङ्गु पद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठा खदिरं वचा ॥१३३॥ जात्यर्कत्रिवृतानिम्बकरंजं विषमेव च ॥ कृष्णाचित्रकलोध्रश्च प्रपुन्नाटश्च संहरेत् ॥१३४॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वा तु सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया ॥ अभ्यङ्गेन प्रयुञ्जीत सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ १३५ ॥ पामाविचर्चिकाकच्छूविसर्पादिहितं मतम्॥ रक्तोत्थितान्हन्ति रोगानपरान्विविधान्बहून् ॥ १३६ ॥

भा० टी०-सिन्दूर, चन्दन, मांसी, वायविडङ्ग, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगु, पद्माख, कूठ, मंजीठ, खैर, वचा ॥ १३३ ॥ जाती, आक, निसोत, नीम, करञ्ज, विष, पिपली, चीता, लोध, चकवड इन सबको एकत्रित करे ॥ १३४ ॥ और सबको बारीक पीसकर तैलके संग सिद्ध करे । रोगियोंके शरीरपर इसको मलनेसे सब प्रकारके कुष्ठ ॥ १३५ ॥ एवं पामा, विचर्चिका, कच्छू, विसर्प और अन्यान्यप्रकारके कितनेही रक्तविकार नष्ट होतेहैं ॥ १३६ ॥

अथ सिन्दूराद्यं तैलान्तरम् ।

सिन्दूरगुग्गुलुरसाञ्जनसिक्थतुत्थैः कल्कीकृतैश्च कटुतैलमिदं विपक्वम् ॥ कच्छूं सचित्रपिडिकामथवापि कुष्ठान्यभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ १३७ ॥

भा० टी०-सिन्दूर, गूगल, रसोत, मोम, तूतिया इनके कल्कद्वारा पकाए हुए कडुए तैलको शरीरपर एकवार ही मलनेसे कच्छू, चित्रपिडिका, कुष्ठ यह सब नष्ट होजातेहैं ॥ १३७॥

अथादित्यपाकतैलम् ।

मंजिष्ठात्रिफलालाक्षानिशाशैलेयगन्धकैः ॥
चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम् ॥ १३८ ॥

भा० टी०-मंजीठ, त्रिफला, लाख, हलदी, पत्थरफूल, गन्धक इनके चूर्णको तैलमें मिलाय सूर्य्यकिरणोंके द्वारा पकानेसे आदित्यपाकतैल सिद्ध होताहै यह भी पामानाशक है॥१३८॥

अथ दूर्वाद्यं तैलम् ।

स्वरसेन तु दूर्वायाः पचेत्तैलं चतुर्गुणम् ॥
कच्छूविचर्चिकापामा अभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ १३९ ॥

भा० टी०--दूर्वाके स्वरसमें पकायेहुए चौगुने तैलके अभ्यङ्गसे ही कच्छू, विचर्चिका, पामा दूर हों ॥ १३९ ॥

अथार्कतैलम्।

अर्कपत्ररसं पक्कं रजनीकल्कसंयुतम् ॥
कटुतैलं पचेत्पामाकच्छूवैचर्चिकापहम् ॥ १४० ॥

भा० टी०-आकके पत्तोंके रसमें हलदीकल्कके संग पकाहुआ कडुवा तैल पामा, कच्छू और विचर्चिकाका नाशक है ॥ १४० ॥

अथ गण्डीरिकातैलम्।

गण्डीरिकाचित्रकमार्कवार्ककुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः॥तैलं पचेन्मण्डलकुष्ठदद्रूदुष्टव्रणान्हन्ति च किट्टिमञ्च ॥१४१॥ शालिकोद्रवगोधूमयवमुद्गादयो हिताः ॥ पुराणाः कुष्ठिने तिक्तशाकजाङ्गलसंयुताः ॥ १४२ ॥ क्षतरोमनखो नित्यं नित्यमौषधतत्परः ॥ योषिन्मांससुरावर्ज्जी कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥ १४३ ॥

भा० टी०-सैंड, चीता, भृङ्गराज, आक, कूठकी छाल, सेंधानोंन इनके कल्कको गोमूत्रमें मिलाय तैलसहित पकावे। यह तैल मंडलकुष्ठ, दद्रू, दुष्टव्रण, और किट्टिम कुष्ठको भी नष्ट करता है ॥ १४१ ॥ कुष्ठरोगीके लिये पुराने शालिचावल, कोदों, गेहूं, जौ, मूंग, तीतिशाक, और जांगलामिष हित हैं ॥ १४२ ॥ समय २ में केश और नखोंको काटनेवाला, नित्य औषध सेवनमें तत्पर, एवं स्त्रीप्रसङ्ग और मद्य,मांसको त्यागनेवाले कुष्ठीका कुष्ठरोग दूर होता है॥१४३॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे कुष्ठरोगाधिकारः ॥ ५५ ॥

अथोदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः ५६.

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्ततः ॥ उदर्दे वमनं कार्य्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ १ ॥ त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चाऽत्र शस्यते ॥ त्रिफलां क्षौद्रसहितां पिबेद्वा नवकार्षिकीम् ॥ २ ॥ विसर्प्पोक्तक्रमं सर्वं भिषगत्राऽपि योजयेत् ॥ पिप्पलीवर्द्धमानं वा लशुनं वा प्रयोजयेत्॥३॥ सगुडं दीपकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ् नरः ॥ तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥ ४ ॥ सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सह ॥ कटुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ ५ ॥ दूर्वानिशापुनर्लेपः कच्छूपामाविनाशनः ॥ कृमिद-

द्रूहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः ॥ ६ ॥ कुष्ठोक्तञ्च क्रमं कुर्य्यादम्लपित्तघ्नमेव च ॥ सर्पिः पेयं महातिक्तं कार्य्यं रक्तविमोक्षणम् ॥ ७ ॥ निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथवोपयुञ्ज्यात् ॥ विस्फोटकोठक्षतशीतपित्तं कण्ड्वम्लपित्तं वमनञ्च हन्यात् ॥ ८ ॥ कर्षं गव्यघृतस्याऽपि कर्षार्द्धं मारिचस्य च ॥ एकीकृत्य पिबेत्प्रातः शीतपित्तविनाशनम् ॥ ९ ॥ कुष्ठं हरिद्रे सरसां पटोलं निम्बाश्वगन्धासुरदारु शिग्रु ॥ ससर्षपं तुम्बुरुधान्यचूर्णं संहृत्य चूर्णानि समानि कुर्य्यात् ॥ १० ॥ तैस्तक्रयुक्तैः प्रसभं शरीरं तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत ॥ ततोऽस्य कण्डूः पिडिकाः सकुष्ठाः कोठानि शोथाश्च शमं व्रजन्ति ॥ ११ ॥ तैलोद्वर्तनयोगेन योज्य एलादिको गणः ॥ भोजनं सर्वदा कार्य्यं लावतित्तिरजेन च ॥ १२ ॥ शीतलान्यन्नपानानि बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ उष्णानि वा यथाकामं शीतपित्ते प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

भा० टी०–कफकी अधिकतावाले शीतपित्तविकारको उदर्द, और वातकी अधिकतावाले शीतपित्तको शीतपित्तरोग कहते हैं। और वमनके द्वारा निकलते हुए पित्तादिदोषोंको रोकलेनेसे जो रोग उपजता है उसको कोठरोग कहते हैं। इन तीनोंकी चिकित्सा कहीजाती है। कडुवे तैलसे अभ्यङ्ग करना, गरम जलका सेक तथा परवल और नीमके जलसे वमन लेना उदर्दरोगमें हित हैं ॥ १ ॥ इस रोगमें त्रिफला, गूगल, पिपली इनके द्वारा विरेचन लेना भी हित है। इसी प्रयोजनसे नौकर्ष त्रिफलाको मधुके संग चाटना भी गुणकारक होता है ॥ २ ॥ विसर्परोगमें कहेहुए क्रमको इसरोगमें भी करे। अथवा पिपली और एरंडीको वा लशुनको प्रयुक्त करे ॥ ३ ॥ जो मनुष्य पथ्यभोजन करताहुआ गुडसहित जवायनको सेवन करता रहे उसका एकही सप्ताहमें सर्वदेहव्यापी उदर्दरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥ सरसों हलदी, चकवड, तिल इनके कल्कको कडुवे तैलमें मिलाय उवटन करना उचित है ॥ ५ ॥ वार २ दूर्वा हरिद्राका लेप कच्छू पामा, कृमि, दद्रू और शीतपित्तका नाशक होता है ॥ ६ ॥ इसरोगमें कुष्ठनाशक और अम्लपित्तनाशक उपचार भी करने उचित हैं। अतः महातिक्तनामक घृत पिलाना और रक्तमोक्षणकर्म करना उचित है ॥ ७ ॥ अथवा आंवलेके चूर्णसहित नीमके पत्तोंको पीसकर नित्य घृतके संग चाटनेसे विस्फोटक, कोढ, सद्योव्रण, शीतपित्त, कण्डू, अम्लपित्त, छर्दी यह सब नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥ प्रातःकालमें प्रतिदिन १ कर्ष गोघृत और आधाकर्ष कालीमिरचको एकसंग सेवन करनेसे शीतपि-

त्तरोग नष्ट होय ॥९॥ कूठ, हलदी, दारुहलदी, सफेद पनिलर, परवल, नीम, असगन्ध, देवदार, सैंजन, सरसों, तुम्बुरु, धनियां इनके समभाग लेकर चूर्ण बनावे ॥ १० ॥ पीछे उस चूर्णको छांछमें मिलाय तैलाभ्यक्त शरीरपर उबटन करे ऐसा करनेसे कंडू, पिडिका, कोढ, कोठ, शोथ यह सब शांत होतेहैं ॥ ११ ॥ तैलके साथ एलादिचूर्णसे उबटन करना भी उपयोगी है। उक्त-प्रकारके रोगियोंको सर्वदा लावा और तीतरके मांसरसके संग पथ्यभोजन करने उचित हैं ॥१२॥ शीतपित्तरोगमें दोषके बलाबलको विचार कर शीतोष्ण पदार्थोंको प्रयुक्त करे ॥ १३ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्द उदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः ॥ ९६ ॥

अथाम्लपित्ताधिकारः ९७.

अम्लपित्तचिकित्सा।

वान्तिं कृत्वाऽम्लपित्तेषु विरेकं मृदु कारयेत् ॥ सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्याऽनुवासनम् ॥ १ ॥ दोषसंसर्गजा कार्य्या भेषजाहारकल्पना ॥ ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं वमनैर्हरेत् ॥ २ ॥ तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानञ्चाऽपि प्रकल्पयेत् ॥ यवगोधूमविकृतिं तीक्ष्णसंस्कारवर्ज्जिताम् ॥ ३ ॥ यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत्॥ तेनाऽस्य दोषो विषमः साम्यं याति न संशयः ॥ ॥ ४ ॥ कफपित्तवमीकण्डूज्वरविस्फोटदाहजित् ॥ पाचनो दीपनः क्काथः शृङ्गबेरपटोलयोः ॥ ५ ॥ पटोलं नागरं धान्यं क्कथयित्वा जलं पिबेत ॥ कण्डूपामार्तिशूलघ्नमम्लपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ ६ ॥ यवकृष्णापटोलानां क्काथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च अरुचिं च वमिं तथा ॥७॥ वाशामृतापर्पटकं निम्बभूनिम्बमार्कवैः ॥ त्रिफलाकुलकैः क्काथः सक्षौद्रो ह्यम्लपित्तजित् ॥८॥ फलत्रिकपटोलारुयतिक्ताक्काथः सितायुतः॥ पीतः क्कीतकमध्वाक्तो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥९॥ वासानिम्बपटोलत्रिफलासनयासयोजितो जयति॥ अधिककफमम्लपित्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमशः ॥ १० ॥ पटोलत्रिफलारिष्टशृतं मधुयुतं पिबेत् ॥ पित्तश्लेष्महरं छर्दिदाहशूलोप-

शामकम् ॥ ११ ॥ गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः ॥ पित्तश्लेष्मापहः प्रोक्तो मन्दमग्निञ्च दीपयेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०-विरुद्ध, गरिष्ठ, दुष्ट, खट्टे और विदाही पदार्थोंके सेवनसे वर्षाकालमें बिगडा हुआ पित्त अम्लपित्तरोगको उत्पन्न करताहै। कडवी और खट्टी डकार आना, हाथ पैरोंमें दाह, अग्निमान्द्य आदि अम्लपित्तके चिह्न हैं, अम्लपित्तरोगमें पहिले वमन और पीछे हलका दस्त देवे। जब भलीभांति वमन विरेचन होचुके तब रोगीके स्निग्ध बनाय स्नेहबस्तिकर्म करे ॥ १ ॥ अम्लपित्तमें वातकफका संसर्ग भी हुआकरताहै। अतः दोषबलके अनुसार ही औषधी और पथ्य होने उचित हैं। जब यह ऊर्ध्वसञ्चारी होताहै तब वमन और जब अधःसंचारी होताहै तब विरेचन देना उचित है ॥२॥ इस रोगमें प्रायः कटुताकी अधिकतावाले खान पान होने योग्य हैं। तीक्ष्णसंस्कारसे रहित जौ और गेहूंके पदर्थोंको सेवे किंवा, शक्कर और मधुसे मिश्रित लाजासत्तूको पीवे। इससे विषमदोष सम होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ सोंठ और परवलका क्वाथ इसमें पाचक और दीपन होताहै तथा कफपित्त, वमन, कण्डू, ज्वर, विस्फोटक और दाहको जीतताहै ॥ ५ ॥ परवल, सोंठ, धनियां इनका क्वाथ बनाय पीनेसे कण्डू, पामा, शूल, पीडा, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ६ ॥ एवं इन्द्रजौ, पिपली, परवल इनके क्वाथमें मधु मिलाय पीनेसे अम्लपित्त, अरुचि, छर्दी यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ७ ॥ वांसा, गिलोय, पित्तपापडा, नीम, चिरायता, भृङ्गराज, त्रिफला, परवल इनके क्वाथमें मधु मिलाय पीनेसे अम्लपित्त दूर हो ॥ ८ ॥ अथवा त्रिफला, परवल, कटुकी इनके क्वाथमें शक्कर, मुलहठी और मधु मिलाय पीनेसे ज्वर, छर्दी और अम्लपित्त नष्ट होतेहैं ॥ ९ ॥ वांसा, नीम, परवल, त्रिफला, बिजयसार, जवासा इनके क्वाथके संग क्रमशः प्रयुक्त कियाहुआ गूगल कफकी अधिकतावाले अम्लपित्तको जीतताहै ॥१०॥ परवल, त्रिफला, नीम इनके क्वाथको मधुके संग पीनेसे कफ, छर्दी, दाह और शूल शांत होतेहैं ॥ ११ ॥ गुड, पिपली, हरड इनके समभागोंसे बनायाहुआ मोदक पित्तकफका नाशक और मंद हुए अग्निका वर्द्धक है ॥ १२ ॥

एकांशः पञ्चनिम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः ॥ सक्तुर्दशगुणो देयः शर्करामधुरीकृतः ॥ १३ ॥ शीतेन वारिणा पीतं शूलपित्तकफान्तकम् ॥ निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ १४ ॥ पिष्ट्वाऽजाजीं च धान्याकं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कफपित्तारुचिहरं वमिं मन्दानलं जयेत् ॥ १५ ॥

भा० टी०-१ भाग नीमका पञ्चाङ्ग, २ भाग विधारा, १० भाग शक्करयुक्त सत्तू इनके चूर्णको ठण्ढे जलके संग पीनेसे शूल, पित्त, कफ नष्ट होते और मधुके संग सेवनेसे दारुण अम्ल-

पित्त नष्ट होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ कालीजीरे और धनियांके कल्कद्वारा विधिपूर्वक १ प्रस्थ घृत पकावे यह घृत कफ, पित्त, अरुचि, छर्दी, मन्दाग्नि इन सबका नाशक है ॥ १५ ॥

पटोलशुण्ठीकल्काभ्यां केवलं कुलकेन वा ॥ घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कफपित्तहरं परम् ॥ १६ ॥ पिप्पलीक्वाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम् ॥ प्रातः समुत्थाय पिबेदम्लपित्तनिवृत्तये ॥ १७ ॥ द्राक्षामृताशक्रपटोलकल्कैः सौवीरधात्रीघृतचन्दनैश्च ॥ त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥ १८ ॥ युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन बलासपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धाम् ॥ कासाग्निमान्द्यज्वरमम्लपित्तं सर्वं निहन्त्याशु सुधोपमं हविः ॥ १९ ॥ शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयःसमम् ॥ पचेन्मृद्वग्निना सम्यक्क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २० ॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च वातपित्तोद्भवा रुजः ॥ रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ २१ ॥ अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः ॥ गुडकूष्माण्डकश्चैव तथा खण्डामलक्यपि ॥ ॥ २२ ॥ गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्रापि योजयेत् ॥ ज्वलन्तमिव चात्मानं मन्यते ह्यम्लपित्तवान् ॥ २३ ॥ तस्य संशोधनं पैत्तं न शान्तिः शोधनं विना ॥ अचिरोत्थे चिरोत्थे वा वमनं तत्र कारयेत् ॥ २४ ॥

भा० टी०–परवल और सोंठके कल्कद्वारा वा केवल परवलकेही कल्कसे १ प्रस्थ घृत पकावे। यह घृत कफपित्तका नाशक है ॥ १६ ॥ पिपलीके क्वाथ और कल्कके द्वारा सिद्ध कियेहुए घृतमें मधु मिलाय प्रातःकाल उठकर सेवन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होताहै ॥ १७ ॥ दाख, गिलोय, इन्द्रजौ, परवल, सौवीर, आंवला, सरलका गोंद, लालचंदन, त्रायमाण, पद्माख, चिरायता, धनियां इनके कल्कद्वारा घृतको पकाय ॥ १८ ॥ भोजनके साथ मात्राप्रमाणके अनुसार सेवन करनेसे बलास, पित्त, ग्रहणीदोष, कास, अग्निमान्द्य, ज्वर, अम्लपित्त यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १९ ॥ शतावरीके कल्कके संग १ प्रस्थ घृत १ प्रस्थ जल और चारप्रस्थ दूधको मंद आंचसे पकावे ॥ २० ॥ सिद्ध होनेपर यह घृत अम्लपित्त, वातपित्तजन्यरोग, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा, श्वास, संताप इन सबको नष्ट करताहै ॥ २१ ॥ इसके अतिरिक्त कफपित्तनाशक विधान और गुडकूष्मांडकयोग तथा खण्डामलकयोगका भी प्रयोग करना रक्तपित्तमें उचित है ॥ २२ ॥ गुड, दूध और पिपलीके द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृत भी इस रोगमें प्रयोजनीय है क्योंकि अम्लपित्ती

मनुष्य अपनेको अग्निज्वलित जैसा समझताहै ॥ २३ ॥ अम्लपित्तीका पित्तसंशोधन होना बहुत आवश्यक है, विना शोधनके शांति नहीं होती। अतः रोग नवीन हो वा जीर्ण हो परन्तु उसमें वमन करना ही उचित है ॥ २४ ॥

अथ क्षीरपिप्पली।

कणाचूर्णस्य कुडवं षट्पलं हविषस्तथा ॥ शतावरीरसस्याऽष्टौ पलान्यत्र प्रदापयेत् ॥ २५ ॥ खण्डप्रस्थौ समादाय क्षीरप्रस्थद्वयं पचेत् ॥ त्रिजातमुस्तधान्याकशुण्ठीमांसीद्विजीरकम् ॥ २६ ॥ अभयामलकञ्चैतच्चूर्णं द्वादशमाषिकम् ॥ मरिचं नागपुष्पञ्च सारं खादिरमेव च ॥ २७ ॥ शूलारोचकहृद्दाहछर्दिपित्ताम्लपित्तनुत् ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं क्षीरपिप्पलिकाभिधः ॥ २८ ॥

भा० टी०-३२ तोला पिपलीका चूर्ण, छःपल घृत, ८ पल शतावरीरस, २ प्रस्थ खांड, दो प्रस्थ दूध इन सबको एकपात्रमें पकावे। सिद्धहोनेके पूर्व इसमें इलायची, दालचीनी, तेजपात, मोथ, धनियां, सोंठ, जटामांसी, दोनों जीर, हरड, आंवला, मरिच, नागकेशर, खैरका गोंद इन सबका १२ मासा चूर्ण मिलालेवे ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस क्षीरपिप्पलीयोगके प्रयोगसे शूल, अरोचक, हृदयदाह, छर्दी, पित्त, अम्लपित्त यह सब नष्ट होतेहैं और जठराग्नि बढतीहै ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्देऽम्लपित्ताधिकारः ॥ ५७ ॥

अथ विसर्पविस्फोटाधिकारः ५८.

विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ॥ उपाचरेद्यथादोष विसर्पान-विदाहिभिः ॥ १ ॥ पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन वा ॥ विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥ २ ॥ त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ॥ प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥ ३ ॥ रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ तृणवर्ज्जं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूलचतुष्टयम् ॥ ४ ॥ शताह्वामुस्तवाराहीवंशार्तगलधान्यकम् ॥ सुराह्वा कृष्णगन्धा च कुष्ठं लेपोऽनिलात्मके ॥ ५ ॥ प्रपौण्डरीकमं-जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ॥ सयष्टीन्दीवरैः पित्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेप-येत् ॥ ६ ॥ प्रदेहः परिषेकश्च शस्यते पञ्चवल्कलैः ॥ पद्मकोशीर-

शंबूकचन्दनैर्वा प्रशस्यते ॥ ७ ॥ पद्मिनीकर्द्दमः शीतः पिष्टं मौक्तिकमेव वा ॥ शंखः प्रवालं शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम्॥ ॥ ८ ॥ न्यग्रोधपादा गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च ॥ विषग्रन्थिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः ॥ ९ ॥ हरेणुयवशूराश्च मुद्गाश्चैव सशालयः ॥ पृथक्पृथक्प्रदेहाः स्युः सर्वे वा सर्पिषा सह ॥ १० ॥ द्राक्षारग्वधकाश्मर्य्यत्रिफलाखण्डपीलुभिः॥ त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधनं हितम् ॥ ११ ॥ गायत्रीसप्तपर्णाब्दवाशारग्वधदारुभिः ॥ कुटन्नटैर्भवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसंभवे ॥ १२ ॥

भा० टी०–अग्निदग्धकी भांति शरीरपर फुकने उठतेहैं और जहांतहां सर्पने लगते हैं इसीका नाम विसर्परोग है। विसर्परोगमें दोषबलके अनुसार वमन, विरेचन, सेचन, लेपन, रक्तमोक्षण आदि अविदाही उपायोंके द्वारा चिकित्सा करे ॥ १ ॥ परवल, नीम, पिपली, मैनफल, इन्द्रजव इनके द्वारा विसर्परोगमें वमनदेना उचित है ॥ २ ॥ निसोत और त्रिफलारससे युक्त घृतको विरेचनकेलिये देवे जिससे विसर्पज्वरकी शांति हो ॥३॥ किंवा, घृतमिश्रित आंवलारसको वा तृणको छोडकर पञ्चमूलकी शेष चार औषधियोंके रसको देवे ॥ ४ ॥ वातजन्य विसर्पमें सौंफ, मोथा, वाराहीकन्द, वांसा, नीलीकटसरैया, धनियां, हलदुआ, सैंजन, कूठ इनका लेप करे ॥ ५ ॥ पित्तजन्य विसर्पमें चकवड, मंजीठ, पद्माख, खश, चन्दन, मुलहठी, नीलकमल इनको दूधमें पीसकर लेप करे ॥ ६ ॥ पञ्चवल्कलके कल्कसे लेप और सेक दोनों कर्म भलेहैं। एवं पद्माख, खस, जलसीपी और चन्दनसे यह दोनों कर्म होतेहैं ॥७॥ किंवा, कमलिनीके नीचेका ठंढा २ कीचड, मोतीचूर वा शंखचूर, मूंगाचूर, जलसीपीका चूर्ण, गेरु इनमेंसे किसीएकमें शुद्ध घृत मिलाय लेप करे ॥ ८ ॥ किंवा, वटकी जटा, भद्रमोथ, केलेकी भीतरी नाल, कमलनालकी गांठ इनके कल्कको सौवार धोयेहुए घृतसे भिगोकर लेप करना उचित है ॥ ९ ॥ रेणुका, जौ, मसूर, मूंग, शालिधान्य इनमेंसे किसीएकके वा सबोंके कल्कसे घृतके संग लेप करे ॥ १० ॥ दाख, अमलतास, गंभारी, त्रिफला, खांड, पीलु वा निसोत, हरड इनके द्वारा पित्तज विसर्पमें विरेचनादि शोधन कर्म करना उचित है ॥ ११ ॥ कफजन्य विसर्पमें खैर, सतौना, मोथ, वांसा, अमलतास, देवदार, केवटीमोथ इनका लेप करे ॥ १२ ॥

अजाश्वगन्धा सरलाऽथ काला सकेशिका चाऽप्यथवाऽजश्रृङ्गी ॥
गोमूत्रपिष्टा विहितः प्रदेहो हन्याद्विसर्पं कफजं तु शीघ्रम् ॥ १३ ॥
मदनमधुकनिम्बवत्सकफलैः कफजविसर्पे वमनं शस्तम् ॥ १४ ॥
त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ॥ नलमूलमनन्ता च लेपः

श्लेष्मविसर्पहा ॥ १५ ॥ आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मान्तकोद्भवाः ॥ शिरीषपुष्पं काकाख्या हिता लेपेषु चूर्णिताः ॥१६ ॥ मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् ॥ धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंयुतः ॥ १७ ॥ अमृतविषपटोलं निम्बपत्रैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातश्च तुल्यम् ॥ क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोर्भागयुक्तं जयति विषविसर्पान्कुष्ठमष्टादशाङ्गम् ॥ १८ ॥ अमृतविषपटोलं मुस्तकं सप्तकश्च खदिरमसितपत्रं निम्बपत्रं हरिद्रा ॥ विविधविषविसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तज्वरञ्च ॥ १९ ॥ पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः ॥ खदिराब्दयुतः क्वाथो विस्फोटार्तिज्वरापहः ॥ २० ॥ पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः ॥ समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥ २१ ॥ कषायं पाययेदेतच्छ्लेष्मपित्तज्वरापहम् ॥ कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविसर्पविषनाशनम् ॥ २२ ॥ भूनिम्बवासाकटुकीपटोलफलत्रिकैश्चन्दननिम्बसिद्धः॥विसर्पदाहज्वरवक्त्रशोषविस्फोटतृष्णावमिजित्कषायः २३॥ सकफे पित्तयुक्ते तु त्रिफलां योजयेत्पुरैः ॥ दुरालभा पर्पटकं पटोलकटुकं तथा ॥ २४ ॥ कोष्णं गुग्गुलुसंमिश्रं पिबेद्वा खदिराष्टकम् ॥ कुण्डलीपिचुमन्दाम्बुखदिरेन्द्रयवैः शृतम् ॥ २५ ॥ विस्फोटं नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव ॥ रोगिणं कुरुते दीप्तं दीपो गृहमिवांऽशुमान् ॥ २६ ॥

भा० टी०–सोनामाखी, असगंध, त्रिधारा वा मंजीठ, शतावरी वा मेंढाशिङ्गीको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कफजन्य विसर्परोग नष्ट होय ॥ १३ ॥ मैनफल, मुलहठी, नीम, इन्द्रजौ इनके द्वारा कफजन्य विसर्पमें वमन लेना भलाहै ॥ १४ ॥ त्रिफला, पद्माख, खस, मंजीठ, कनेर, नरसलकी जड, दूब इनके लेप करनेसे कफजन्य विसर्परोग नष्ट होताहै ॥ १५ ॥ अमलतासके पत्ते, लिसोडाकी छाल, शिरसके फूल, कौआठोडी इनका कल्क बनाय लेप करना विसर्पमें हित है ॥ १६ ॥ मोथ, नीम, परवल इनका काथ वा आंवला, पटोलपात और मूंगका काढा घृतके संग उपयुक्त होनेसे सवप्रकारके विसर्परोगोंको दूर करताहै ॥ १७ ॥ गिलोय, अडूसा, पटोलपात, नीमके पत्ते, त्रिफला, खैरका गोंद, अमलतास इनके समभाग निष्पन्न काथमें गूगल डाल-

कर पान करनेसे विष, विसर्प और अठारह प्रकारके कोढ नष्ट होतेहैं ॥ १८ ॥ गिलोय, अडूसा, पटोलपात, मोथ, सतौना, खैर, नीलके पत्ते, नीमके पत्ते, हलदी इनका क्वाथ पीनेसे नानाप्रकारके विष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोटक, कण्डू, मसूरीरोग तथा शीतपित्तज्वर यह सब दूर होतेहैं ॥ १९ ॥ पटोलपात, गिलोय, चिरायता, बांसा, नीम, पित्तपापडा, खैर, मोथा इनका क्वाथ विस्फोटक संबन्धी पीडा और ज्वरका नाशक है ॥ २० ॥ पटोलपात, त्रिफला, नीम, गिलोय, मोथ, चन्दन, मूर्वा, कटुकी, पाठा, हलदी, दुरालभा ॥ २१ ॥ इनका कषाय कफपित्तज्वरका नाशक तथा कण्डू, त्वचादोष, विस्फोट, विष, विसर्प इनका हारक है ॥ २२ ॥ चिरायता, बांसा, कटुकी, परवल, त्रिफला, चन्दन, नीम इनका कषाय विसर्प, दाह, ज्वर, मुखशोष, विस्फोटक, तृष्णा, छर्दी इनको जीतता है ॥ २३ ॥ कफपित्तसे उपजेहुए विसर्पमें गूगलके संग त्रिफलाको प्रयुक्त करे वा दुरालभा, पित्तपापड, परवल, कटुकी इनके मन्दोष्ण क्वाथमें वा खदिराष्टकक्वाथमें गूगल मिलाय पीवे । गिलोय, नीम, खैर, इन्द्रजव इनका कषाय विस्फोटकको कैसे नष्ट करताहै जैसे वायु मेघोंको एवं रोगीकी कांति कैसे बढाताहै जैसे दीपक गृहकी ॥२४-२६॥

शुकतरुरुवुनतमांसीरजनीपद्मानि तुल्यानि॥ पिष्टानि शीततोये लेपः स्यात्सर्वविस्फोटे ॥२७॥ शिरीषमूलमञ्जिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः॥ सजातीपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहाः ॥ २८ ॥ शिरीषोदुम्बरौ जम्बूः सेकालेपनयोजिताः॥ श्लेष्मान्तकत्वचा वापि प्रलेपश्च्योतने हिताः ॥२९॥ शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहारिद्रायवकुष्ठवालैः ॥ लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो विसर्पकण्डूज्वरसर्पिहारी ॥ ३० ॥ शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपयेद्द्रुतम् ॥ विसर्पविषविस्फोटाः प्रणश्यन्ति न संशयः ॥ ३१ ॥ विषखदिरपटोलपत्रनिम्बत्वगमृतकामलकीकषायकल्कैः ॥ घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति विसर्पमहास्रकुष्ठगुल्मान् ॥ ३२ ॥ पटोलसप्तच्छदनिम्बवाशाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्कम् ॥ तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्ति त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ ३३ ॥

भा० टी०-शिरस, एरण्डी, तगर, जटामांसी, हलदी, कमल इनके समभागोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे सबप्रकारके विस्फोटक दूर होतेहैं ॥ २७ ॥ शिरसकी जड, मंजीठ, चव्य, आंवला, मुलहठी, जातीके पत्ते, मधु इनका कवल लेना विस्फोटक रोगमें भला है ॥ २८ ॥ शिरस, गूलर, जामुन वा लिसोडाकी छालके द्वारा प्रलेप करना तथा सेचन करना विस्फोटकमें उत्तम है ॥ २९ ॥ शिरस, मुलहठी, तगर, चन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, इन्द्रजौ,

कूठ, सुगन्धवाला इन दश वस्तुओंको पीसकर घृतके संग लेप करनेसे विसर्प, ज्वर, कण्डू, विस्फोटक यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ३० ॥ शिरस, खस, नागकेशर, बालछड इनको लेप करनेसे तत्काल विसर्प, विष, विस्फोटक नष्ट होतेहैं ॥ ३१ ॥ बांसा, खैर, पटोलपात, नीमकी छाल, गिलोय, आंवला इनके कषायमें इन्हींका कल्क मिलाय नवीन गोघृत पकावे । यह घृत विसर्प, विस्फोटक, कुष्ठ और गुल्मरोगको जीतताहै ॥ ३२ ॥ पटोलपात, सतौना, नीम, बांसा, त्रिफला, गिलोय इनके द्वारा सिद्धहुआ पंचतिक्त घृत तत्काल त्रिदोषविस्फोटक, विसर्प, कंडू, इन सबको नष्ट करताहै ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे विसर्पविस्फोटाधिकारः ॥ ६८ ॥

अथ मसूरिकारोगाधिकारः ६९.

मसूरिकारोगचिकित्सा ।

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवाशकैः ॥ कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ १ ॥ सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्म्या रसं वा हैलमोचिकम् ॥ वान्तस्य रेचनं कार्य्यं ततः कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ २ ॥ सुषवीपत्रनिर्य्यासं हारिद्राचूर्णसंयुतम् ॥ रोहन्तीं ज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ ३ ॥ उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुद्ध्यन्ति मसूरिकाः ॥ निर्विकाराश्चाऽल्पपूयाः पच्यन्ते स्वल्पवेदनाः ॥ ४ ॥ काश्चिद्विनापि क्रियया सिध्यन्त्याशु मसूरिकाः ॥ काश्चित्क्रियाकलापेऽपि न सिध्यन्ति मसूरिकाः ॥ ५ ॥ कृष्णाः कृष्णोत्तराः काश्चिद्घनाः सिध्यन्ति वा न वा ॥ काश्चिन्नैव हि सिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः ॥ ६ ॥ निशाद्वयोशीरशिरीषमुस्तकैः सलोध्रभद्रश्रियनागकेशरैः ॥ संस्वेदविस्फोटविसर्पकुष्ठदौर्गन्ध्यरोमाञ्चहरः प्रदेहः ॥ ७ ॥ निम्बातिमुक्तकास्फोताचिञ्चावेतसवल्कलम् ॥ शृतशीतं प्रयोक्तव्यं स्रावप्रक्षालने सदा ॥ ८ ॥ पटोलतण्डुलीमुस्तवृषधान्ययवासकैः ॥ भूनिम्बनिम्बकटुकापर्प्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ९ ॥ मसूरीशान्तये दद्यात्पक्वाश्चैव विशोषयेत् ॥ नाऽतः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये ॥ १० ॥

भा० टी०—अपने कारणोंसे कुपित हुए वातादिदोष, रुधिरको दूषित करके शरीरमें मसूरकी भांति अनेक फुन्सियोंको उत्पन्न करतेहैं इसीका नाम मसूरिकारोग है। सबप्रकारके मसूरिका रोगोंमें परवल, नीम, वांसा इनके कषायको वचा, कूडा, मुलहठी, मैनफल इनके कल्कसे युक्तकरके वमन देना अच्छा है ॥ १ ॥ किंवा, मधुसहित ब्राह्मीरसको वा हुलहुलके रसको वमनार्थ पिलावे। वमनके अनन्तर रेचन करावे तब चिकित्सा करे ॥ २ ॥ करेलाके पत्तोंको पकाकर काढा बनावे। तब उसमें हलदीका चूर्ण डालकर पीवे था रोहन्तीके क्काथको पीवे। इससे ज्वर, विस्फोटक, मसूरी यह सब रोग शान्त होते हैं ॥ ३ ॥ वमन विरेचनसे शुद्ध हुए मनुष्यकी मसूरिका निर्विकार तथा अल्पदोषयुक्त एवं अल्पपीडायुक्त होती और शीघ्र पकजाती हैं ॥ ४ ॥ कोई मसूरिकारोग उपाय किये विनाही शान्त होजाता है और कोई अनेक उपायोंके होतेभी शान्त नहीं होता ॥ ५ ॥ कोई फुन्सी स्वभावतः काली होती और कोई पीछे काली और संवनी होतीहैं, ऐसी फुन्सियोंका आराम होना संदिग्ध है ॥ कोई २ तो अनेक प्रयोगोंसे भी आराम नहीं होते ॥ ६ ॥ हलदी, दारुहलदी, खश, शिरस, नागरमोथा, लोध, चन्दन, नागकेशर इनका लेप करनेसे स्वेद, विस्फोट, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्धि, रोमाञ्च यह सब उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ नीम, तिरिच्छ, सालसा, इमली, वेत इनके वल्कलोंसे कढे हुए जलको शीतल होनेपर फुन्सियोंके छालनेमें प्रयुक्तकरे ॥ ८ ॥ परवल, तंडुली मोथा, वांसा, धनियां, जवासा, चिरायता, नीम, कटुकी, पित्तपापड इनसे कढे हुए जलको पीनेसे मसूरिका, विस्फोटक और ज्वर शान्त होता है। पकनेपर मसूरिका रोगको सुखावे ॥ ९ ॥ १० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मसूरिकारोगाधिकारः ॥ ५९ ॥

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ६०.

तत्राऽजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ॥ शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षीरकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥ श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेच्चाऽनुशयीं भिषक् ॥ विवृतामिन्द्रगर्भाञ्च गर्दभीं जालगर्दभम् ॥ २ ॥ इरिवेल्लिकां गन्धमालां जयेत्पित्तविसर्पवत् ॥ मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा शमयेद्व्रणम् ॥ ३ ॥ रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरवतर्पणैः ॥ जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ ४ ॥ पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना जयेत् ॥ साधयेत्कठिनानन्याञ्छोथान्दोषसमुद्भवान् ॥ ५ ॥ अन्धालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ॥ सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥ कफमारुतशोथघ्नो

लेपः पाषाणगर्द्दभे ॥ शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ ७ ॥ मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ८ ॥ वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ पाददारीषु तु शिरां वेधयेत्तलशोधिनीम् ॥९॥ स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥ मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतक्षीरैर्विमिश्रितैः ॥ १० ॥ सर्पाह्वसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ॥ निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्ज्जने ॥ ११ ॥ उपोदिकासर्षपनिम्बमोचकर्कारुकेर्वारुकभस्मतोये ॥ तैलं विपक्वं लवणं सकल्कं तत्पाददारीं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥ १२ ॥ अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत् ॥ पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥ करञ्जबीजं रजनीं काशीसं मधुकं मधु ॥ रोचना हारितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १४ ॥ दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ चिप्यमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याऽभ्यज्य तं व्रणम् ॥ ॥ १५ ॥ दत्त्वा सर्ज्जरसं चूर्णं बुद्ध्या व्रणवदाचरेत् ॥ बुद्धिपूर्वं कृतं कर्म किन्न सिद्ध्यति भूतले ॥१६॥ स्वरसेन हारिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ॥ घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्य मुहुर्मुहुः ॥१७॥

भा० टी०—अनेक प्रकारके छोटे २ रोग हुआ करते हैं उनमेंसे अजगल्लिकारोग (बालकोंके शरीरपर उपजनेवाली गांठसी वंधीहुई चिकनी फुन्सी) के प्रारंभमें जोंक लगाकर दूषितरक्तको निकालदेवे । तथा सीप और सोरठकी मट्टीको दूधमें पीसकर वार २ लेपकरे ॥ १ ॥ अनुशयीरोग (पैरमें उत्पन्न होकर भीतर ही पकनेवाली पिडिका) में कफजन्य विद्रधिकी भांति चिकित्सा करे । और विवृता (पके गूलरकी समान मंडलाकार फुन्सी), इन्द्रगर्भा (कमलके समान आकारवाली फुन्सी), गर्दभिका (मंडलाकार चारों ओर फुन्सियोंसे भराहुआ फोडा), जालगर्दभ (विसर्पके समान फैलनेवाली पाकहीन सूजन) ॥ २ ॥ इरिवेल्लिका (मस्तकमें उपजनेवाली गोल फुन्सी), गन्धमाला (त्वचामें उपजनेवाली एक बडी फुन्सी) इन सबको पित्तज विसर्पकी भांति उपचारित करे तथा मधुर औषधियोंके द्वारा सिद्धकिये घृतसे उनके व्रणोंको शान्तकरे ॥ ३ ॥ विदारिका (जांव वंक्षणकी संधिज विदारीकन्दके समान गोल फोडा) को रक्तावसेचन, स्वेदन, अवतर्पण, आदिकर्मोंसे तथा सैंजना और देवदारके लेपसे जीते ॥ ४ ॥ इसीप्रकार पनसिकानामक कर्णरोग और कच्छपिकानामक गठीली फुन्सियोंकी

चिकित्सा करे। तथा वातादिदोषोंसे उपजे हुए अन्यान्य कठिन शोथोंको साधे॥ ५॥ अजा-लजी नामक फुन्सीको तथा कच्छपिका और पाषाणगर्दभनामक चिबुकसन्धिरोगको स्वेदित-करके देवदार, मनसिल और कूठका लेप करे॥ ६॥ अथवा जो लेप कफवातजन्यशोथमें कहे हैं वही पाषाणगर्दभरोगमें भी करने उचित हैं। वल्मीकरोग (गरदन, कंधा, कोख, गला आदिकोंमें उपजनेवाली सर्पकी बंबईकी समान गांठ) को शस्त्रसे फाडकर क्षार और अग्निके प्रयोगसे साधे॥ ७॥ मनसिल, भिलावा, छोटी इलायची, अगरु, लालचन्दन और जातीके पत्तोंका कल्क बनाय उसके संग नीमके तैलको पकावे॥ ८॥ इस तैलके प्रयोगसे अनेक छिद्र और उपद्रवोंसे युक्त वल्मीकरोग नष्ट होता है। पाददारीनामक रोगों (पैरके तलुवेका फट-जाना) में तलुवेको शोधनेवाली शिराको भेदे॥ ९॥ तथा पैरोंको स्निग्ध और स्वेदित करके मोम, चर्बी, मज्जा, घी और जवाखारका लेप करे॥ १०॥ नागकेशर और सेंधानमकके चूर्णको मधु, घृत और कटुतैलके संग मथकरके पादप्रक्षालनमें प्रयुक्त करे॥ ११॥ पोईके पत्ते, सफेद सरसों, नीमके पत्ते, केलेका मोचा, पेठा, ककडी इनका भस्म बनाकर क्षारजल बनावे। उस क्षार-जलके द्वारा नमकके संग तैलको पकाकर लेप करनेसे पाददारीरोग नष्ट होता है॥ १२॥ अलसकरोग (कीचडके संसर्गसे पैरकी अंगुलियोंके नीचे अधिक खुजलाहट वा खारुआ) में रोगीके दोनों पावोंको बहुत समयतक कांजीमें डुबोयरक्खे फिर पटोलपत्र, नीम, कसीस, त्रिफला इनको पीसकर लेप करे॥ १३॥ करञ्जके बीज, कासीस, हलदी, मुलहठी, मधु, रोचना, हरिताल इनका लेप अलसकरोगमें हित है॥ १४॥ कदररोग (ठेंठ अर्थात् कंटक आदिसे छिदनेके अनन्तर पैरमें कीलबंधना) को शस्त्रसे चीरकर उष्णतैल या अग्निसे दग्ध करे। चिप्प नामक नखरोगको गरमजलसे स्वेदित करके तथा उस स्थानको छेदित तथा तैलादिसे लिप्त करके रालके चूर्णको बुरकदेवे, और व्रणशोथकी भांति चिकित्सा करे। ध्यानरहे कि, बुद्धिपूर्वक किये हुए सब कर्म सिद्ध होते हैं॥ १५॥ १६॥ लोहेके पात्रपर हलदीके रसमें हरडको घिसकर वार २ लेप करनेसे चिप्परोग दूर होता है॥ १७॥

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम्॥ निम्बोदकशृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते॥ १८॥ निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम्॥ अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत्॥ १९॥ त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा॥ करञ्जत्रिफलाकल्कैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्॥ २०॥ रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपन-योर्हितम्॥ गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याऽऽशु प्रवेशयेत्॥ २१॥ प्रविष्टं स्वेदयेच्चापि बद्धं गोष्फणया भृशम्॥ कोमलं पद्मिनीनालं यः खादेच्छर्कराऽन्वितम्॥२२॥ एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य

गुदनिर्गमः ॥ वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीविश्वपाठायवाग्रजम् ॥ २३ ॥ तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ गोतैलाभ्यञ्जनाच्छीघ्रं प्रविशेन्निर्गतो गुदः ॥ २४ ॥ मूषिकानां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्प्रलेपनम् ॥ स्विन्नमूषिकमांसेन ह्यथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ २५ ॥ चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ॥ घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥२६॥ क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जितम् ॥ पक्त्वा तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसाधितम् ॥२७॥ गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गाच्छमं नयेत् ॥ रोगिणं कुरुते वर्णवपुर्बलधरं नरम् ॥ ॥ २८ ॥ स्नेहस्वेदैस्तथैवैनां चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् ॥ २९ ॥ उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ तरुणापीडिकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्क्कराः ॥ ३० ॥ शिरावेधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ॥ लोध्रधान्यवचालेपस्तरुणापीडिकापहः ॥ ३१ ॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ॥ वसनश्च निहन्त्याशु पिडिकां यौवनोद्भवाम् ॥३२॥ व्यङ्गेषु चाऽर्ज्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका॥ लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजामसी ॥ ३३ ॥

भा० टी०–पद्मिनीकण्टकरोग (चारों ओरसे कमलकंटकाकार कांटोंसे व्याप्त गोलमंडलाकार पीला फोडा) में नीमके जलसे वमन लेना तथा नीमके काढेमें पकेहुए घृतको पीना अभीष्ट है ॥ १८ ॥ किंवा, नीम और अमलतासके कल्कसे उबटन करना उचित है। अहिपूतनकरोग (बालकोंकी मलिन गुदापर उत्पन्न होकर बढनेवाली छत्राकार फुन्सी) में प्रथम धायके दूधको शुद्ध बनावे ॥ १९ ॥ पीछे त्रिफला और खैरके क्काथसे घावको नित्य धोता रहे और करञ्ज तथा त्रिफलाके कल्कमें घृतको सिद्ध करके बालकके लिये प्रयुक्त करे ॥ २० ॥ विशेषकरके अहिपूतनारोगमें रसोतका पान और लेप करना हित है। गुदभ्रंशरोग (कांच वा गुदाका बाहर निकलना) में प्रथम गुदाको स्नेह (तैल) से अभ्यक्त करके भीतरको ढकेले ॥ २१ ॥ जब गुदा भीतर धस जाय तब उसको कौपीनसे अडाकर स्वेदित करे। जो मनुष्य कोमल २ कमलिनीनालमें शक्कर मिलाय खावे ॥ २२ ॥ उसकी गुदा फिर कभी बाहर न निकले और जठराग्नि भी बढजाय। अमलवेंत, चीता, अम्लिलोना, शोंठ, पाठा, यवाग्रज ॥ २३ ॥ इनको

तक्रके संग सेवन करनेवाले गुदभ्रंशीका जठराग्नि बढता है । गौकी चर्बीको गुदापर मलनेसे बाहर निकली हुई गुदा भी भीतर जम जाती है ॥ २४ ॥ किंवा, मूसकोंकी चर्बीसे गुदा पर भले प्रकार लेप करना और पकते हुए मूसकमांसके द्वारा गुदा पर स्वेद देना भी अभीष्ट है ॥ २५ ॥ अम्लिलोना, बेर, काञ्जी, शोंठ, जवाखार इनके कल्कके संग पकाया हुआ घृत गुदभ्रंशका नाशक है ॥२६॥ बृहत्पञ्चमूलको और आंतडे रहित मूसकको दूधमें पकाकर उसके संग वातनाशक औषधोंसे सिद्धकिये तैलको पकावे॥२७॥इस तैलके पीने और मर्दन करनेसे गुदभ्रंशरोग शान्त होता और रोगी भी बल वर्णसे सम्पन्न रहता है ॥२८॥ अवपाटिका नामक रोग (लिङ्गाच्छादक चर्मके प्रान्तोंमें फटजाना) में स्नेह और स्वेदके द्वारा चिकित्सा करे । एवं चर्मकीलरोग और जन्तुमणिरोग (शरीरपर स्वाभाविकचिह्नविशेष) तथा मशकरोग (मस्से) और तिलकालकरोग (शरीरके तिल) में उन्हें शस्त्रसे चीर कर क्षार और अग्निके प्रयोगसे जडसे दग्ध कर देवे । तरुणपिडिकारोग, न्यच्छरोग, नीलीरोग, व्यङ्गरोग (छायापडना), शर्करारोग, इन सबको शिरावेध, लेप और अभ्यङ्ग आदि उपायोंसे उपचारित करे । लोध, धनियां, वचा इनको पीसकर लेप करनेसे तरुणपिडिकारोग नष्ट होताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एवं सरसों, वचा, लोध, सेंधानोन इनके द्वारा लेप करने और वमन लेनेसे भी यौवनमें उपजी हुई पिडिका नष्ट होतीहैं ॥ ३२ ॥ व्यङ्गरोगोंमें अर्ज्जुनकी छाल वा मंजीठको मधुके संग और सफेदघोडेके खुरकी भस्मको नैनीघीमें मिलाकर लेप करे ॥ ३३ ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः ॥ वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ३४ ॥ व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य वा ॥ केवलान्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्शाल्मलिकण्टकान् ॥ ३५ ॥ आलिप्य त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ प्रियायाः सत्त्वसम्पन्नोदरभारभृतः क्षणात् ॥ ३६ ॥ मसूरैः सर्पिषा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयोन्वितैः ॥ सप्ताहात्प्रभवेद्व्यक्तं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ३७ ॥ कालीयकोत्पलामदधिसरबदरास्थिमध्यफलिनीभिः ॥ लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ३८ ॥ रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यबस्तपयः ॥ एतैः प्रलिप्तमाननमुद्यत्पूर्णेन्दुवद्भाति ॥३९॥ परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः ॥ मुखकमलकान्तिकारी भ्रुकुटीतिलकालकान्क्षिपति ॥ ४० ॥ हारिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयकटुचन्दनैः॥प्रपौण्डरीकमंजिष्ठापद्मपद्मककुङ्कुमैः॥४१॥

कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोन्वितैः ॥ लेपयेत्कलितैरेतैस्तैरेवाऽ-भ्यञ्जनं चरेत् ॥ ४२ ॥ विप्लवं नीलिकाव्यङ्गतिलकान्मुखदूषकान् ॥ निहत्य सुतरामेष मुखं कुर्य्यान्मनोरमम् ॥ ४३ ॥ मधुकस्य कषायेन तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ कल्कैः प्रियङ्गुमंजिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः ॥ ४४ ॥ कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् ॥ विक्लेदनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्चितम् ॥ ४५ ॥ मंजिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम् ॥ कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥ ४६ ॥ आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ४७ ॥ मुखं प्रसादोपचितं वलीपलितवर्ज्जितम् ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसन्निभम् ॥ ४८ ॥ कुङ्कुमं चन्दनं लाक्षामंजिष्ठामधुयष्टिकाः ॥ कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ ४९ ॥ अजाक्षीरं तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ सम्यक्पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसाधनम् ॥ ५० ॥ नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ५१ ॥

भा० टी०—लालचन्दन, मंजीठ, कूठ, लोध, फूलप्रियंगु, बडके अंकुवे, मसूर इनको पीसकर लेप करनेसे व्यङ्गरोग नष्ट होकर मुखकी कांति बढतीहै ॥ ३४ ॥ किंवा, व्यंगरोग पर खरहेके लोहूका लेप करना वा केवल सेमलके तीखे कांटोको पीस कर लेप करना भी उत्तम है॥३५॥ इस लेपको तीनदिन तक प्रयुक्त करनेसे गर्भवती स्त्रीका मुख छांहसे निर्मुक्त होकर कमलके समान होताहै ॥ ३६ ॥ मसूरके कल्कको दूधके संग घीमें भून कर सात दिन तक मुखपर लेप करनेसे मुखकी कांति कमलदलके समान होतीहै ॥ ३७ ॥ कालीअगर, नीलकमल, कच्चेदहीकी मलाई, बेरकी गुठली, फूलप्रियंगु इनको पीस कर लेप करनेसे सात ही दिनमें मुखकी शोभा चन्द्रमाके समान होतीहै ॥ ३८ ॥ सफेदसरसों, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, गेरु, बकरीका दूध इन करके लिप्तकिये हुए मुखकी शोभा पूर्णचन्द्रमाके समान होतीहै ॥ ३९ ॥ पक्के दहीकी मलाई, नीलकमलके पत्ते, कूठ, चन्दन, खस इनका लेप मुखकमलकी शोभा बढाता और भृकुटीतिलोंको नष्ट करताहै ॥ ४० ॥ हलदी, दारुहलदी, मुलहठी, कालीअगर, कटुचन्दन, चकवड, मंजीठ, कमल, पद्माख, कुंकुम, कैथ, तेन्दुआ, पाकर और वट इनके पत्तोंको दूधमें पीस कर लेप और मर्दन करनेसे विप्लव, नीलिका, व्यङ्ग, तिल इन सब मुखदूषक रोगोंका नाश होकर मनोहर

मुख बनताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ फूलप्रियंगु, मंजीठ, चन्दन, कमल, केशर इनके कल्क-द्वारा मुलहठीके क्वाथमें ३२ तोले तैलको पकावे ॥ ४४ ॥ सिद्ध होनेपर इसका नाम कनकतैल हुआ। इसके अभ्यङ्गसे विक्केद, नीलिका, व्यङ्ग यह सब शुद्ध होकर मुखकी कांति बढतीहै ॥४५॥ मंजीठ, मुलहठी, लाख, विजोरानीबू इनके एक २ कर्ष कल्कोंके द्वारा ३२ तोले तैलको ॥४६॥ और ६४ तोले बकरीके दूधको मंद आंचसे पकावे इसतैलके अभ्यंगमात्रसे नीली, तरुणपिडिका, व्यङ्ग यह सब नष्ट होते ॥ ४७ ॥ और मुखकी छवि प्रसन्न एवं वलिपलितादि वैरूप्यसे रहित होतीहै। किं बहुना, सात ही दिनमें सुवर्णके समान मुख बनताहै ॥ ४८ ॥ कुंकुम, लालचन्दन, लाख, मंजीठ, मुलहठी इनके अलग २ कर्षप्रमाण कल्कोंके संग ३२ तोले तैल ॥ ४९ ॥ और ६४ तोले बकरीदूधको मंद आंचसे पकावे भलेप्रकार पक जानेपर इस कुंकुमादि तैलके प्रयोगसे मुखकी कांति प्रसन्न होतीहै ॥ ५० ॥ और नीलिका, पिडिका व्यंग यह सब नष्ट होतेहैं इस तैलको पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने रचा था ॥ ५१ ॥

अथ द्विनिशाद्यं तैलम्।

निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलञ्च मनःशिला ॥ काकोल्यादिसमायुक्तै-रेभिरक्षसमैर्भिषक् ॥ ५२ ॥ लाक्षारसपयोभ्याञ्च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ द्विनिशाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपमम् ॥ ५३ ॥ करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम् ॥ सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ अरूंषिकायां रुधिरावसेकैः शिराव्यधेनाऽथ जलौकसा वा ॥ निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयोऽश्ववर्च्चोरससैन्धवाढ्यम् ॥ ५५ ॥ पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ॥ मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरूंषिकाम् ॥ ५६ ॥ हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः ॥ एतत्तैलमरूंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ५७ ॥ दारुणे तु शिरां विध्येत्स्निग्धस्विन्नां ललाटजाम् ॥ अवपीडशिरोवस्तीनभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥ ५८ ॥ कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने ॥ कार्य्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ ५९ ॥ मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ॥ तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ॥ ६० ॥ स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गलीविषम् ॥ मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्तिका

सेन्द्रवारुणी ॥ ६१ ॥ सैद्धार्थकं तीक्ष्णतैलं गर्भं दत्त्वा विपाच- येत ॥ वह्निना मृदुना पक्वं तैलं लेहत्वमागतम् ॥ ६२ ॥ कूर्म्मपृष्ठसमानापि रूक्षा या रोमतस्करी ॥ क्षीयते तेन दिग्धा सा ऋक्षशावा च लोमशा ॥ ६३ ॥ त्रिफलाऽयोरजो मांसी मार्क्क- वोत्पलसारिवैः ॥ ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गात्केशरोहणम् ॥६४॥ चित्रकं दन्तिमूलञ्च कोशातकिसमन्वितम् ॥ कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशशत्रुनिषूदनम् ॥६५॥ गुञ्जाफलैः पचेत्तैलं भृङ्गराजरसेन तु ॥ कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ ६६ ॥ भृङ्गरजस्त्रिफ- लोत्पलसारि लोहपुरीषसमन्वितवारि ॥ तैलमिदं किल दारुणहारि कुञ्चितसान्द्रशिरोरुहकारि ॥ ६७ ॥ प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीच- न्दनोत्पलैः ॥ कार्षिकैस्तैलकुडवस्तद्विरामलकीरसः ॥ ६८ ॥ साध्योऽभ्यञ्जनतो नित्यं सर्वशीर्षगदापहः ॥ वलीपलितसम्भूतिपरा- भवहरःपरः ॥ ६९ ॥

भा० टी०–हलदी, दारुहलदी, गोलोचन, कमल, नीलकमल, मनसिल, काकोल्यादिगण इनके अक्षप्रमाण कल्कोंको ॥ ९२ ॥ लाखके रसमें और दूधमें मिलाकर १ प्रस्थ तैलको पकावे । यह द्विनिशादि तैल मर्दन किये जानेसे मुखकी शोभा सुवर्णके समान होती तथा सौभाग्य और श्री बढतीहै सच तो यह है कि, यह तैल एक उत्तम वशीकरण है ॥९३॥९४॥ अरूंषिकारोगमें प्रथम शिराको भेद कर वा जोंक लगा कर रक्तमोक्षण करावे, पीछे नीमके क्वाथसे शिरको धोकर घोडेकी लीदका रस और सेंधा एकत्र मिलाकर लेप करे ॥ ९५ ॥ पुराने सरसोंका पिण्याक और कुक्कुटपक्षीकी विष्टाको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे शीघ्र अरूंषिकारोग (मस्तकमें अनेक मुखवाली फुन्सियां) नष्ट होतीहैं ॥ ९६ ॥ हलदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीम, चन्दन इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल मर्दन किये जानेसे अरूंषिकारोगमें हितकारी होताहै ॥ ९७ ॥ दारुणरोगमें ललाटकी शिराको स्निग्ध और स्वेदित करके भेदित करे और अवपीड, शिरोवस्ति, तथा अभ्यंग आदि उपचारोंको करे ॥ ९८ ॥ दारुणरोगमें कोदोंके पत्तोंकी क्षारको पानीमें मिलाय शिरको धोवे और मधुके संग शिर पर लेप करे ॥९९॥ मालती, कनेर, चीता, करञ्ज इनके द्वारा पकाये हुए तैलको मर्दन करनेसे इन्द्रलुप्तानामक रोग नष्ट होताहै ॥६०॥ थूहरका दूध, आकका दूध, भृंगराज, पिठवन, विष, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, राई, इन्द्रायण ॥ ६१ ॥ इनके कल्कद्वारा सरसोंके तैलको मंद आंचसे तवतक पकाता रहे जब

तक वह लेहभावको प्राप्तहो ॥ ६२ ॥ इस तैलके लेपसे कूर्मपृष्ठकी समान रूखी और कठिनरूप-वाली भी रोमतस्करी (बालोंको चोरनेवाली कूरी) नष्ट होतीहै और अधिकरोमजनक रूक्षशा-बारोग भी दूर होताहै ॥ ६३ ॥ त्रिफला, मंडूर, जटामांसी, भृंगराज, कमल, सारिवा, सेंधानोन इनके द्वारा पकाये हुए तैलको मर्दन करनेसे शिरके बाल जम आतेहैं ॥ ६४ ॥ चीता, दंतीजड, तोरई इनके कल्कद्वारा पकायाहुआ तैल केशनाशक रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ६५ ॥ भृंगराजके रसमें गुंजाफलों (रत्ति) का कल्क मिलाय तैल पकावे। यह तैल कण्डू, दारुणरोग, कुष्ट तथा कपालरोगोंका नाशक है ॥ ६६ ॥ भृंगराजका चूर्ण, त्रिफला, नीलकमल, सारिवा, मंडूर, जल इनके द्वारा सिद्ध किये हुए तैलके प्रयोगसे दारुणरोग और रोमनाशकरोग नष्ट होकर शिरके बाल सघन और कुंचित होतेहैं ॥ ६७ ॥ पुंडरिया, मुलहठी, पिपली, लालचन्दन, नीलकमल इनके एक २ कर्ष कल्कोंके द्वारा ३२ तोले तैल और ६४ तोले आंवलेके रसको पकाना। इस तैलके मर्दनसे सब प्रकारके शिरके रोग नष्ट होकर वलिपलितादि वैरूप्यका नाश होताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ॥ अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायता मृदवः ॥७०॥ चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नील-मुत्पलम् ॥ कान्ता वटप्ररोहश्च गुडूची विषमेव च॥७१॥लोहचूर्णं तथा केशी सारिवे द्वे तथैव च ॥ मार्कवस्य रसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ७२ ॥ शिरस्सु पतिताः केशा जायन्ते कुटिला घनाः॥ दृढमूलान्विताः स्निग्धास्तथा भ्रमरसन्निभाः॥७३॥तैलं सयष्टीमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः शृतम् ॥ नस्ये दत्तं जनयति केशाञ्श्मश्रूणि चाप्यथ ॥७४॥हस्तिदन्तमसीं कृत्वा दार्व्वीस्वरसभाविताम्॥ लोमान्यनेन जायन्ते हस्तपादतलेष्वपि ॥७५॥ त्रिफलानलिनीपत्रलोहभृङ्गरजः समम् ॥ अजामूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ७६ ॥ त्रिफ-लाचूर्णसंयुक्तं लोहचूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ ईषत्पक्वे नारिकेले भृङ्गरा-जसमन्विते ॥ ७७ ॥ मासमेकन्तु निक्षिप्य सम्यगार्तं समुद्धरेत् ॥ ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दत्त्वा पुनः पुनः ॥ ७८ ॥ संवेष्टय कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने ॥ क्षालयेत्त्रिफलाक्वाथैः क्षीरमांसरसा-शिनः ॥ ७९ ॥ कपालरजतश्चैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत् ॥ ८० ॥ केशानां कृष्णकरणं

स्नेहनं च विधीयते॥एतत्परतरं नास्ति पलितस्य विनाशनम्॥८१॥ लोहमलामलकल्कैः सजयाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी ॥ पलितं निहत्य सुतरां गङ्गास्नायीव कान्तिमान्भवति ॥ ८२ ॥ निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेवं नस्ये प्रयुक्तं विधिना यथावत् ॥ मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य जराप्रसूतं पलितं निहन्ति ॥ ८३ ॥ क्षीरं समार्कवरसं द्विप्रस्थं मधुकोत्पलैः ॥ तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥ ॥ ८४ ॥ काशीसरोचनातुल्यहरितालरसाञ्जनैः ॥ अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं वृषकण्डूहिपूतयोः ॥ ८५ ॥ पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जन-विपाचितम् ॥ पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ ८६ ॥

भा० टी०–मुलहठी, नीलकमल, मूर्वा, तिल, घृत, गोदुग्ध, भृंगराज इनको पीस कर लेप करनेसे शिरके बाल थोडे कालमें सघन और कोमल तथा दृढ हो आतेहैं ॥ ७० ॥ चन्दन, मुलहठी, मूर्वा, त्रिफला, नीलकमल, फूलप्रियंगु, वटके अंकुवे, गिलोय, मीठाविष, मंडूर, भूतकेश, दोनों सारिवा इनके कल्क द्वारा भृंगराजके रसमें मन्द आंचसे तैलको पकावे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इस तैलके अभ्यंगसे शिरके बिखरे हुए बाल फिरसा उपजकर सान्द्रस्निग्ध और दृढ कुंचित तथा भ्रमरके समान काले होतेहैं ॥ ७३ ॥ मुलहठी और आंवलेके कल्क द्वारा दूधमें पकाये हुए तैलको नास लेनेसे शिरके बाल और दाढी उत्पन्न होतीहै ॥ ७४ ॥ हाथीदांतकी मसी (भस्म) को दारुहलदीके रसमें भावना देकर लेप करनेसे हाथ पैरके तलुवेमें भी बाल उग आतेहैं॥ ॥७५॥ त्रिफला, कमलिनीके पात, मंडूर, भृंगराज इनको बकरीके मूत्रमें पीस कर लेप करना । यह बालोंको काला बनानेका उत्तम उपाय है ॥७६॥ त्रिफलाचूर्ण और मंडूरको तथा भृंगराजको कुछ पके हुए नारियलके भीतर बन्द करके एक मास पर्य्यन्त रक्खे रहे भलीभांति आकुलित होने पर उसे निकाल लेवे तब शिरका मुंडन करके उसका लेप करे और लेपके ऊपर केलेके पत्ते लपेट देवे पीछे सातवें दिन इस बंधाको उतार कर त्रिफलाक्काथसे उस शिरके लेपको धो देवे और इतने दिनों रोगी दूध और मांसरसको सेवता रहे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ यह बालोंको काला बनानेका एक उत्तम उपाय है । नीलकमलको दूधके संग एक मास तक भूमिमें गडाये रक्खे पीछे उसका लेप करे । बालोंको काला और स्निग्ध बनानेका उपाय इससे दूसरा नहीं ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ जो मनुष्य लोहकीट और आंवलेका कल्क तथा जयाफूलोंके कल्कसे नित्य स्नान करे वह पलितरोग (केशोंकी सफेदी) से निर्मुक्त होकर गंगास्नायीकी भांति कान्तिमान् होताहै ॥८२॥ सुन्दर सिद्ध हुए नीमके तैलको विधिपूर्वक नास लेनेसे एक मासमें क्षीरभोजी वृद्धमनुष्यका पलितरोग नष्ट होताहै ॥ ८३ ॥ १ प्रस्थ भृंगराजके रसमें और १ प्रस्थ दूधमें मुलहठी और

नीलकमलका कल्क मिलाय ३२ तोले तैलको पकावे। इस तैलको नास लेनेसे भी पलितरोग दूर हो ॥ ८४॥ कसीस, गोलोचन, हरिताल, रसोत इनके समभाग लेकर लेप करनेसे वृषकंडूरोग और अहिपूतनरोग नष्ट होतेहैं ॥ ८५ ॥ पटोलपात, त्रिफला, रसोत इनके संग घृतको पका कर पीनेसे कठिनरूप अहिपूतनरोग भी नष्ट होताहै ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे क्षुद्ररोगाधिकारः ॥ ६० ॥

अथ मुखरोगाधिकारः ६१.

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे साल्वनेनोपनाहनम् ॥ मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः शृतम् ॥ १ ॥ स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते ॥ देशकालानुसारेण चिकित्सेत भिषग्वरः ॥ २ ॥ श्रीवेष्टकः सर्ज्जरसो गुग्गुलुः सुरदारु च ॥ यष्टीमधुकचूर्णञ्च विदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ ३ ॥ वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनञ्च ॥ शीतान्प्रलेपान्परिषेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥४॥ रक्तपित्ताभिघातोत्थाञ्जलौकोभिरुपाचरेत ॥ पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्य्यादशेषतः ॥ ५ ॥ शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ॥ हृतरक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ६ ॥ त्रिकटुस्वर्जिकाक्षारः क्षारश्च यवशूकजः ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥७॥ मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः ॥ प्रियंगुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥८॥ हितं च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम् ॥ शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ॥९॥ निष्क्वाथ्य त्रिफलां चापि कुर्य्याद्गण्डूषधारणम्॥ प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ १० ॥ कुष्ठं दार्व्वी लोध्रमब्दं समंगा तिक्तायुक्तं तेजनी नीलिका च ॥ चूर्णं शस्तं घर्षणेन द्विजानां रक्तस्रावं हन्ति कण्डूरुजश्च ॥ ११ ॥ भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः ॥ गोमूत्रपिष्टां गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥१२॥ तां निधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तातुरो नरः ॥ नातः परतरं किञ्चिच-

लदन्तस्य भेषजम् ॥ १३ ॥ दन्तपुप्पुटके कार्य्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ सपञ्चलवणक्षारं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ १४॥ माक्षिकं पिप्पलीसर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे ॥ दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ॥ १५ ॥ विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणञ्च प्रतिसारयेत् ॥ लोध्रैः पतंगमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥ १६ ॥ गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ शौशिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः॥१७॥ सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ क्रियां परिदरे कुर्य्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥ १८ ॥ संशोध्योभयतः कार्य्यं शिरश्चोपकुशे ततः ॥ काकोदुम्बरिका गोजीपत्रैर्निस्रावयेदसृक् ॥ ॥ १९ ॥ क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत ॥ पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेताः नागरं नैचुलं फलम् ॥ २० ॥ सुखोदकेन संमर्द्य कवलं तस्य योजयेत् ॥ एतेनैव प्रयोगेण नश्येदुपकुशाभिधः॥२१॥

भा० टी०–वात दोषसे उपजे हुए ओष्ठप्रकोप (ओठोंका फटना) में सालकी रालसे लेप करना उचित है । एवं वातनाशक द्रव्योंसे शिद्ध किये तैलका नास लेना और उसे मस्तिष्क पर मर्दन करना ॥ १ ॥ तथा स्वेद, अभ्यङ्ग, स्नेहपान और रासायनिक योग भी इसमें अभीष्ट हैं । देश कालके अनुसार चिकित्सा करनेका ध्यान रहना सब ही रोगोंमें उचित है ॥ २ ॥ धूपसरल, सालकी राल, गोगल, देवदार, मुलहठी इनके चूर्णसे प्रतिसारण कर्म करे ॥ ३ ॥ पित्तदोषसे उपजेहुए ओष्ठकोपमें तो शिराभेदन, वमन, विरेचन, तिक्त औषधोंका पान, रसभोजन, शीतलप्रलेप, शीतलपरिषेक इत्यादि कर्मोंको करे ॥ ४ ॥ रक्तपित्त और अभिघातसे उपजे हुए ओष्ठकोपोंमें जोंक लगा कर दूषित रक्तको निकासे शेष क्रिया पित्तविद्रधिरोगकी भांति करे ॥५॥कफदोषसे उपजे हुए ओष्ठकोपमें जोंक लगा कर दूषित रक्तके निकालनेके अनन्तर शिरका विरेचन, धूम, स्वेद और कवलग्रह आदिकर्म करने उचित हैं ॥ ६ ॥ त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार इनके द्वारा मधुके संग प्रतिसारण कर्म करना योग्य है ॥ ७ ॥ मेदसे उपजे हुए ओष्ठकोपमें शोधन, स्वेदन कर्मोंके अनन्तर अग्निकर्म करना और फूलप्रियंगु, त्रिफला, लोध इनके द्वारा मधुके संग प्रतिसारण कर्म करना उचित है ॥ ८ ॥ इसके अतिरिक्त मधुके संग त्रिफलाचूर्णका लेप करना भी आवश्यक है । शीतादरोग (दन्तमूलसे रक्त निकलना और मसूढोंका पकना) में रक्तशोधनके अनन्तर शोंठ, सरसों ॥ ९ ॥ और त्रिफलाके क्वाथसे गण्डूषक्रिया (कुल्ला) करावे और फूलप्रियंगु, मोथ, त्रिफला इनके द्वारा लेप करे ॥ १० ॥ कूठ, दारुहलदी, लोध, मोथा, मंजीठ, कटुकी, चुरनहार, नीलिका इनके चूर्णसे दन्तमञ्जन करनेसे दन्तमूलसे रक्त निकलना खुजली

तथा पीडा यह सब शान्त होतेहैं ॥ ११ ॥ चलदन्तरोग (दांतोंका हिलना) से पीडित हुए मनुष्यको उचित है कि, भद्रमोथ, अभया (हरड) त्रिकटु, वायविडंग, नीमके पत्ते इनको गोमूत्रमें पीस कर गुटिका बनाय छायामें सुखा लेवे। पीछे एक गुटिकाको मुखमें रख कर सोजावे। चलदन्तरोगकी औषध इससे दूसरी नहीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ तरुणरूप दन्तपुप्पुटकरोग (दो या तीन दांतोंमें बडी सूजन होना) में प्रथम रक्तमोक्षण और पीछे पञ्चलवणक्षारके द्वारा मधुके संग प्रतिसारण कर्म करे ॥ १४ ॥ पिपली और घृतसे युक्त मधुको मुखमें धारण किये रहना ही दन्तशूलकी परम औषध है ॥ १५ ॥ दन्तवेष्टरोग (दांतोंसे रुधिर वा राधका बहना और दांत हिलना) के होते भलीभांति राध निकाल कर लोध, पतङ्ग, मुलहठी, लाख इनके चूर्ण द्वारा मधुके संग घावको प्रतिसारित करे ॥ १६ ॥ और क्षीर बहाने वाले बनस्पतियोंके द्वारा कुल्ला करावे। शैशिररोग (दांतोंकी जडमें पीडायुक्त सूजन होकर लार बहना) में रक्तशोधनके अनन्तर लोध, मोथा, रसोत ॥ १७ ॥ इनके द्वारा मधुके संग लेप करे और क्षीरवाले बनस्पतियों द्वारा कुल्ला करावे। परिदरनामक रोग (दांतोंके मूलमांसका गलना और वहांसे थूकते समय रक्त निकलना) में शीतादरोगकी भांति चिकित्सा करे ॥ १८ ॥ उपकुशरोग (मसूडोंपर दाहयुक्त सूजन होना) में वमन, विरेचन और नस्यके द्वारा शरीर और शिरको शोधित करके गूलरके पत्ते और गोजियाके पत्तोंको मसूडों पर घिस कर रुधिर निकाले ॥ १९ ॥ और पंच-लवण तथा त्रिकटुके द्वारा मधुके संग व्रणको प्रतिसारित करे। तथा पिपली सफेद सरसों शोंठ, समुद्रफल इनको कुछेक गरम जलमें मर्दन करके रोगीकि कवलग्रह करावे, इसी प्रयोगसे उपकुशरोग नष्ट होताहै ॥ २० ॥ २१ ॥

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ॥ ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ २२ ॥ उद्धृत्य विचलं दन्तं ततोऽधि-मवधारयेत्॥कृमिदन्तकवद्वापि विधिः कार्य्यो विजानता ॥ २३ ॥ छित्त्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् ॥ तेजोवती वचा पाठा स्वर्ज्जिका यवशूकजः ॥ २४ ॥ क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः शस्यन्ते कवलग्रहे ॥ पटोलनिम्बत्रिफलाकषायेणाऽत्र धावनम् ॥ २५ ॥ शिरोविरेके च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ नाडीव्रणहरं कर्म दन्त-नाडीषु कारयेत् ॥ २६ ॥ कषायजातीमदनकटुकस्वादुकण्टकैः॥ लोध्रखदिरमंजिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥ २७ ॥ तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ शंखिनीकोटिसुमनाकरवीरसुव-र्चलाः ॥ २८ ॥ सुखोष्णः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य वा ॥

निर्य्यूहाश्चाऽनिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्द्दनाः ॥ २९ ॥ स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च॥ अहिंस्यदन्तमांसानि शर्कररामुद्धरेद्भिषक् ॥ ३० ॥ लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ दन्तहर्षक्रियाश्चापि कुर्य्यान्निरवशेषतः ॥ ३१ ॥ कपालिका कृच्छ्रसाध्या तत्राप्येषा हिता क्रिया ॥ जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् ॥ ३२ ॥ तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ भद्रदार्व्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ॥३३॥ हिङ्गु सोष्णन्तु मतिमान्कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥ कृमयस्तेन नश्येयुः सुखिनः सन्तु रोगिणः ॥ ३४ ॥ बृहतीभूकन्दाभ्यां पञ्चाङ्गकण्टकारिकाक्वाथः॥ गण्डूषस्तैलयुक्तः कृमिदन्ते शस्यते नृणाम् ॥३५॥ नीलीवायसजङ्घासम्भूतं मूलमेकैकम् ॥ दशनधृतं झाक्कुरुते दन्तकृमीणां निशातमित्याहुः ॥ ३६ ॥ चलमुद्धृत्य च स्थानं दहेत्तु शुषिरस्य वा ॥ ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककशेरुभिः ॥ ३७ ॥ तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं नस्ये तु पूजितम् ॥ हनुमोक्षे समुद्दिष्टां कुर्य्यादर्दितवत्क्रियाम् ॥ ३८ ॥ फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्॥ तथातिकठिनान्भक्ष्यान्दन्तरोगी विवर्ज्जयेत् ॥३९॥ ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ॥ कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्य्यं भिषजा खलु ॥ ४० ॥ पित्तजेषु निघृष्टेषु निःस्रुते दुष्टशोणिते ॥ प्रतिसारणगण्डूषं नस्यञ्च मधुरं हितम् ॥ ४१ ॥ कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ॥ पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्य्यस्तु प्रतिसारणः ॥ ४२ ॥ गृह्णीयात्कवलांश्चापि गौरसर्षपसैन्धवैः ॥ पटोलनिम्बवार्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ ४३ ॥ जिह्वाजाड्यं मानकभस्मलवणतैलघर्षणं हन्ति ॥ ईषत्स्नुक्क्षीराढ्यं जम्बीराद्यम्लचर्वणञ्चापि ॥ ४४ ॥ क्षीरपक्वः कर्कटाङ्घ्रिः प्रलेपात्कड्मडीहरः॥सुप्तस्य रात्रौ पदयोर्नियुक्तो वा रदान्तरे॥४५॥

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ शिरोविरेकगण्डूषधूमै-श्चैतामुपाचरेत् ॥ ४६ ॥ व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ॥ उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतत्तैलं विपाचयेत् ॥ ४७ ॥

भा० टी०–दन्तवैदर्भरोग (चोटलगनेसे मसूडों पर शोजा चढकर दांत हिलना) में शस्त्रसे दन्तमूलको शुद्ध करके क्षारप्रयोग करे और सर्वथा शीतल उपचारोंको प्रयुक्त करे ॥ २२ ॥ तथा हिलते हुए दांतको उखाड कर अग्नि प्रयोग करे शेष क्रिया कृमिदन्तरोगकी भांति प्रयोजनीय हैं ॥ २३ ॥ अधिमांसनामक रोग (पीछेकी डाढके नीचे पीडायुक्त महासूजन होकर लार गिरना) में उस स्थानको शस्त्रसे छील कर तेजवल, वचा, पाठा, सज्जीखार, जवाखार इनके चूर्णको मधुके संग घाव पर प्रयुक्त करे ॥ २४ ॥ और मधुयुक्त पिपलियोंको कवलग्रहमें प्रयुक्त करे। तथा परवल, नीम, त्रिफला इनके कषायसे कुल्ला करे ॥२५॥ इसके अतिरिक्त रेचक द्रव्योंके धूमका नस्य लेवे। दन्तसंबन्धी नाडीव्रणों (नासूर) में भी पूर्वोक्त नाडीव्रणकी भांति चिकित्सा करे ॥ २६ ॥ चमेलीके पत्ते, मैनफल, कटुकी, कटाई, लोध, खैर, मंजीठ, मुलहठी इनके क्वाथ कल्कोंके द्वारा सिद्धकिया हुआ तैल दन्तनाडीव्रणको नष्ट करता है। दन्तहर्षरोग (दांतोंसे शीत, वात और रूक्ष वस्तुका सहन न होना) में चोरहुली, असवरग, मालती, कनेर, असगन्ध इनको स्निग्ध और मन्दोष्ण बनाय कवल लेवे वा त्रैवृतघृतका कवलग्रह करे। एवं वातनाशक द्रव्योंके काथोंको सेवे ऐसा करनेसे दन्तहर्ष रोग नष्ट होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ दन्तहर्षमें स्नेहयुक्त धूमपान और स्नेहयुक्त नस्य भी हित है। दन्तशर्करारोग (पित्तवातके योगसे दांतोंका मैल सूख कर रेतेकी भांति खरखराहोना) में दांतके मसूडोंको बचाकर उस रेतको उखाडलेवे ॥ ३० ॥ पीछे लाक्षाचूर्णके द्वारा मधुके संग वहां प्रतिसारण करे और दन्तहर्षमें कहे हुए विधानके अनुसार सब क्रिया करे ॥ ३१ ॥ कपालिका रोग (मलिन हुए दांतोंका खिपडेकी भांति टूटना और फटना) में भी दन्तशर्कराकी भांति चिकित्सा करे। कपालिका रोग कष्टसाध्य है। कृमिदन्तरोग (घुनदांत) में दांतोंपर स्वेददेना ॥ ३२ ॥ वातनाशक अवपीड और स्नेहकर्म, वातनाशक द्रव्योंका कुल्ला तथा पुनर्नवा, देवदारु आदि द्रव्योंका लेप करना और स्निग्ध भोजन इन उपायोंसे कृमिदन्त रोगको जीते ॥ ३३ ॥ एवं हींगको गरम करके कृमिदन्तमें रखे रहनेसे कृमि नष्ट होकर रोगी सुखी होते हैं ॥ ३४ ॥ कटेरी, जमीकन्द और कण्टकारी पञ्चाङ्गके काथमें तैल मिलाय कुल्ला करना भी कृमिदन्तमें भला है ॥ ३५ ॥ नीलकी जड वा काकजंघाकी जडको दांतमें रखे रहनेसे तत्काल कृमि दांतसे अलग गिरजाती हैं ॥ ३६ ॥ शुषिर रोगमें हिलते हुए दांतोंको उखाड कर उस स्थानको अग्निदग्ध करे फिर विदारीकन्द, मुलहठी, सिंहाडे, कसेरु ॥ ३७ ॥ इनके कल्क द्वारा दशगुने दूधमें तैलको पकाकर नास लेवे। हनुमोक्ष रोग (वातके द्वारा हनुसन्धियोंमें अभिघात लगनेसे दांत हिलना) में अर्दित नामक वातरोगमें कहेहुए उपचार करने उचित है ॥ ३८ ॥ दन्तरोगीको उचित है

कि, खट्टे फल ठण्ढा जल, रूखा अन्न, दन्तधावन, कठिन भोजन इनको त्यागे रहे ॥ ३९ ॥ वातजन्य ओष्ठकोपमें जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा वातजन्य कण्ठरोगोंमें करनी ॥ ४० ॥ पित्तजन्य कण्ठरोगोंमें दुष्ट रुधिर निकालकर मधुर औषधियोंके द्वारा घर्षण, गंडूष और नस्योंका प्रयोग करे ॥ ४१ ॥ कफजन्य कण्ठरोगमें रक्तमोक्षणकर्म, मधु युक्त पिपली चूर्णके द्वारा घर्षण, सफेदसरसों और सेंधा नोनके द्वारा कवल धारण तथा पटोल, नीम, बैंगन और क्षार यूषका भोजन यह सब हित हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यदि जिह्वामें जडता होय तो मानकन्दकी भस्म, लवण तथा तैल इनके द्वारा जिह्वाको घिसने और किञ्चित् थूहरके दूधके संग जंबीरी आदि खटाई चाबनेसे जिह्वाकी जडता नष्ट होती है ॥ ४४ ॥ केंकडेके दोनों पावोंको पीसकर दूधमें पकाय सोतेसमय पैरोंपर लेपकरने वा दन्तमध्यमें नियुक्त करनेसे दांतोंकी कडमडी नष्ट होती है ॥ ४५ ॥ उपजिह्वारोग (जीभके नीचे दूसरी जीभ निकलना) में उस स्थानको शस्त्रसे छील कर क्षारके द्वारा घिसे और शिरोविरेचन, नस्य, गंडूष, धूम आदि उपायोंका प्रयोग करे ॥ ४६ ॥ तथा त्रिकटु, जवाखार, हरड और चीतेकी जड इन सब औषधियोंसे उपजिह्वाको घिसे तथा इन्हीं द्रव्योंके द्वारा तैलको पका कर उपजिह्वामें लेप करे ॥ ४७ ॥

तालुमूले कफासृग्भ्यां जायते गलशुम्भिका॥छित्त्वा तां व्योषसिन्धू-त्थवचाक्षौद्रैः प्रसारयेत् ॥ ४८ ॥ गलशुम्भीं समं जाती वक्री-क्षीरेण लेपयेत् ॥ कुष्ठोषणावचापाठाकणासिन्धुप्लवैरपि ॥ ४९ ॥ सक्षौद्रैर्भिषजा कार्य्यं गलशुम्भ्याः प्रघर्षणम् ॥ एतेनैव प्रयोगेण गलशुम्भी विनश्यति ॥ ५० ॥ वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् ॥ निष्क्वाथ्य पिचुमर्दञ्च कवलं तत्र योजयेत् ॥ ॥ ५१ ॥ तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तशोधनम् ॥ स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चाऽनिलनाशनः ॥ ५२ ॥ साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम् ॥ छर्द्दनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ ५३ ॥ वातिकीं तु गते रक्ते लवणैश्च प्रसारयेत् ॥ सुखोष्णाँस्तैलकवलान्धारयेच्चाऽप्यभीक्ष्णशः ॥ ५४ ॥ पतङ्गश-र्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ॥ द्राक्षापरूषकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ॥ ५५ ॥ आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ श्वेताविडङ्गदन्तीषु तैलं सिद्धंससैन्धवम् ॥ ५६ ॥ नस्यकर्म्मणि योक्तव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ॥ पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्त-

सम्भवाम् ॥ ५७ ॥ विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत्॥ एककालं यवान्नञ्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ५८ ॥ उपजिह्वकव-च्चापि साधयेदिरिवेल्लिकाम् ॥ उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाऽधि-जिह्वकम् ॥ ५९ ॥ छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥ अल्पं रक्तञ्च विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥ ६० ॥ कर्णरोगे-ष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च ॥ क्काथः पेयस्तु दार्व्वीत्वगमृता-क्षकलिङ्गजः ॥ ६१ ॥ हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः॥ कटुकातिविषापाठादारुमुस्तकलिङ्गकाः ॥ ६२ ॥ गोमूत्रक्कथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ जीर्णज्वरहरा रक्तदोषकुष्ठनिसू-दनाः ॥ ६३ ॥ गृहधूमो यवक्षारपाठाव्योषरसाञ्जनम् ॥ तेजोव-त्रिफलालोहचित्रकञ्चेति चूर्णितम् ॥ ६४ ॥ सक्षौद्रं धारयेदेतद्ग-लरोगविनाशनम् ॥ कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ॥६५॥ मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ॥ दार्व्वीत्वक्चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समन्वितम् ॥६६॥ मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठ-रोगेषु धारयेत् ॥ मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम्॥६७॥ क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ विदध्यात्कवलान्वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ॥ ६८ ॥ पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः ॥ पलाशमधुकक्षीरयवक्षाराश्च चूर्णिताः ॥ ६९ ॥ गुडे पुराणे क्कथिते द्विगुणे गुटिकाः कृताः ॥ कण्ठरोगेषु मधुना धार्य्याः स्युरमृतो-पमाः ॥ ७० ॥ वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ७१ ॥ पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ॥ सर्वः पित्तहरः कार्य्यो विधिर्मधुरशी-तलः ॥ ७२ ॥ प्रतिसारणगण्डूषान्धूमान्संशोधनानि च ॥ कफा-त्मके सर्वसरे क्रमं कुर्य्यात्कफापहम् ॥७३ ॥ पटोलनिम्बजम्ब्वा-म्रमालतीनवपल्लवैः ॥ पञ्चपल्लवकः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने॥७४॥

पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफलाकाथ एव वा ॥ मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥ ७५ ॥

भा० टी०–कफके और रक्तके दोषसे तालुमूलमें गलशुम्भिका रोग (कंठशुण्डी) उत्पन्न होता है उसको शस्त्रसे फाड कर त्रिकटु, सेंधानोन, वचा, मधु इन करके घावको घिसे ॥ ४८ ॥ मालतीको बकरीके दूधमें पीसकर गलशुंभीपर लेप करे और कूठ, शोंठ, वचा, पाठा, पिपली, सेंधानोन, केवटीमोथा ॥ ४९ ॥ इनके द्वारा मधुके संग गलशुंभीको घिसे ऐसे प्रयोगसे गलशुम्भी नष्ट होती है ॥५०॥ वचा, अतीस, पाठा, रासन, कटुकी, नीम इनका काथ बनाय गलशुंभी रोगीको कवल देवे ॥ ५१ ॥ तालुपाक रोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करे। तालुशोषमें स्नेहविधि, स्वेदविधि और वातनाशक क्रिया करनी उचित है ॥ ५२ ॥ उपायसाध्य रोहिणीरोगों (गलेमें मांसके अंकुरोका उपजना) में रक्तमोक्षण, वमन, गंडूषधारण, धूमपान और नस्य ग्रहण करे ॥ ५३ ॥ वातजन्य रोहिणीमें रक्तमोक्षणके अनन्तर पञ्चलवणके द्वारा प्रतिसारण (घिसनेका काम) करे और वार २ मन्दोष्णरूप तैलकवलोंको धारण करे ॥ ५४ ॥ पित्तजन्य रोहिणीमें पतङ्ग, शक्कर और मधुके द्वारा प्रतिसारण करे और दाख तथा फालसेका काथ बनाय कवल धारण करे ॥ ५५ ॥ कफजन्य रोहिणीमें गृहधूमकी धूर और त्रिकटुचूर्णके द्वारा प्रतिसारण करे और चोरहुली, बायविडङ्ग, दन्ती इन करके सिद्ध हुए तैलमें सेंधा मिलाय नास लेवे और कवल धारण करे। रक्तजन्य रोहिणीमें पित्तज रोहिणीकी भांति चिकित्सा करे ॥५६॥५७॥ कंठशाल्लूक रोग (कंठमें बेरकी गुठलीकी समान कांटेदार गुठलीका उपजना) में दूषित रक्तको निकाल कर तुण्डिकेरी रोगकी समान चिकित्सा करे और एकवेला कुछ थोडासा जौ का भोजन करे ॥ ५८ ॥ इरिवेल्लिका रोगमें उपजिह्वा रोगकी भांति चिकित्सा करे। अधिजिह्वा रोगमें जिह्वाके ऊर्द्धभागको वडिश यंत्रसे खींच करके मंडलाग्र शस्त्रसे रोगके स्थानको छेद कर तीक्ष्ण और उष्ण औषधियोंसे घिसे तथा थोडासा रक्त निकाल कर शोधनविधिभी करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ कर्णरोगोंमें रक्तमोक्षण और तीक्ष्ण द्रव्योंसे नस्य आदि क्रिया करे। दारुहलदीकी छाल, गिलोय, बहेडा, इन्द्रजौ इनका काथ पीवे ॥ ६१ ॥ किंवा हरडके कषायमें मधु मिलाय पीवे। एवं कटुकी अतीस पाठा देवदार मोथ इन्द्रजौ इनको गोमूत्रमें पका कर पीनेसे कण्ठरोग, जीर्णज्वर, रक्तदोष, कुष्ठ यह सब नष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३॥ गृहधूमकी धूर, जवाखार, पाठा, त्रिकटु, रसोत, तेजवल, त्रिफला, लोह, चीता॥६४॥ इनका चूर्ण बनाय मधुके संग मुखमें धारण किये रहनेसे गलरोग नष्ट होते हैं इसका नाम कालक चूर्ण है इसके प्रयोगसे दन्तरोग, मुखरोग, कंठरोग सब दूर होते हैं ॥ ६५ ॥ मनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानोन, दारुहलदी, दालचीनी इनके मधुमिश्रित चूर्णको नवघृतके फेनसे मूर्च्छित करके कंठरोग और मुखरोगोंमें मुखमें धारण किये रहे इसका नाम पीतक चूर्ण है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ मुखसम्बन्धी रोगोंमें दोष बलके अनुसार दूध, इक्षुरस, गोमूत्र, दधि, दधिजल, छांछ, काञ्जी वा शास्त्रोक्त

तैल, घृत इनके द्वारा कवल धारण करावे ॥ ६८ ॥ पञ्चकोल, तालीशपत्र, इलायची, मरिच, दालचीनी, पलाश, मुलहठी, दूध, जवाखार इनका चूर्ण बनाय ॥६९॥ पकाये हुए पुराने दुगुने गुडके संग गुटिका बनावे इन्हें मधुके संग मुखमें धारण किये रहे यह गुटिका कण्ठरोगोंमें अमृतके समान हैं ॥ ७० ॥ वातजन्य सर्वसररोग (चारों ओरसे फैलनेवाले वातादि दोषोंसे मुखके भीतर घावोंका होना) में पञ्चलवणके चूर्णसे प्रतिसारण करे तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध हुए तैलका नास लेवे और कवल धारण करे ॥ ७१ ॥ पित्तजन्य सर्वसर रोगमें विरेचन आदिसे शोधित शरीरवाले रोगीके सब प्रकार मधुर और शीतल द्रव्योंके द्वारा पूर्णतया पित्तनाशक उपचार करे ॥७२॥ कफजन्य सर्वसरमें प्रतिसारण, गंडूष, धूम, वमन और नस्य आदि कफनाशक विधान करे ॥७३॥ मुखपाकमें परवल, नीम, जामुन, आम, मालती इन पांचोंके नवीन २ पत्तोंका कषाय बनाय मुखको धोवे अर्थात् कुल्ला करे ॥ ७४ ॥ किंवा, पञ्च वल्कलके कषायमें वा त्रिफलाके क्वाथमें मधु मिलाके मुखको धोवे ॥ ७५ ॥

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ॥ कार्य्यश्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य घर्षणम् ॥७६॥ जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्व्वीफलत्रिकैः ॥ क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषे मुखपाकनुत् ॥ ७७ ॥ सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ॥ यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ७८ ॥ पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्तद्विनिशामृतानाम् ॥ पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितानास्यगदानशेषान् ॥ ७९ ॥ क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ॥ रोगिभिर्भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा ॥ ८० ॥ तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ॥ सक्षौद्रो दग्धवक्त्राणां गण्डूषो दाहपाकनुत् ॥८१॥ घनकुष्ठैलाधान्यकयष्ट्याह्वैलवालुकाकवलः ॥ वदनोरुपूतिगन्धं हरति सुरालशुनगन्धश्च ॥ ८२ ॥

भा० टी०–मुखपाक रोगमें शिराभेदन, शिरका और शरीरका शोधन और अनेकवार जायपत्रीका घर्षण करे ॥७६॥ जायपत्री, गिलोय, दाख, जवासा, दारुहलदी, त्रिफला इनके शीतल क्वाथमें मधु मिलाय कुल्ला करनेसे मुखपाक रोग दूर होता है ॥ ७७ ॥ सतौना, खश, परवलपात, मोथ, हरड, कटुकी, मुलहठी, अमलतास, चन्दन इनके क्वाथको पीनेसे मुखपाक रोग दूर होता है ॥७८॥ परवल, शोंठ, त्रिफला, विशाला, त्रायमाण, नीम, हलदी, दारुहलदी, गिलोय इनके कषायको मधुके संग पीनेसे मुखसम्बन्धी समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ७९ ॥ त्रिफला,

पाठा, दाख जायपत्री इनको कथित करके वा केवल त्रिफलाको सेवन करनेसे मुखपाक नष्ट होता है ॥ ८० ॥ तिल, नीलकमल, घृत, शक्कर, दूध इनका मधुके संग कुल्हा लेनेसे दग्ध-मुखवाले मनुष्योंके मुखदाह और मुखपाक दूर होवे हैं। मोथ, कूठ इलायची, धनियां, मुलहठी, एलुआ इनका कवल लेनेसे रोग, मद्य, लशुन इनसे उपजी हुई मुखदुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथ महासहाचरादितैलानि ।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संस्रपयेद्यथावत् ॥ पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलं प्रयुक्तैः ॥ ८३ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ॥ तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्य्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ८४ ॥ अरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा ॥ तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्काथ्य चतुर्थशेषेण ॥ ८५ ॥ क्वाथेन तेन मतिमांस्तैलस्यार्द्धाढकं शनैर्विपचेत् ॥ कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठालोध्रमधुकानाम् ॥ ८६ ॥ अरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधसूक्ष्मैलाः ॥ कर्पूरागरुपद्मलवङ्गकङ्कोलजातीनाम् ॥ ८७ ॥ त्रिफलापतङ्गगैरिकवराङ्गगजकुसुमधातकीनाञ्च ॥ सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥ ८८ ॥ कृमिदन्तदलनचलितप्रहृष्टमांसावकीर्णेषु ॥ दौर्गन्ध्येषु च कार्य्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम् ॥ ८९ ॥ तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थं समं पचेत् ॥ एभिश्चतुर्गुणैः क्वाथैर्द्रव्यैश्च पलसम्मितैः ॥ ९० ॥ लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः ॥ चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषधारणम् ॥ ९१ ॥ दालनं दन्तचालञ्च दन्तमोक्षं कपालिकाम् ॥ शीतादं पूतिवक्त्रञ्च ह्यरुचिं विरसास्यताम् ॥ ९२ ॥ हन्यादाशु गदानेतान्कुर्य्याद्दन्तानपि स्थिरान् ॥ अस्य प्रसादान्मनुजो मुखरोगैर्विहीयते ॥ ९३ ॥ वकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरंटकम् ॥ चतुरंगुलबब्बोलवाजिवर्णारिनाशनम् ॥ ९४ ॥ एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् ॥ स्थैर्य्यं करोति चलतां

दन्तानां धावनेन च ॥ ९५ ॥ खदिरस्य तुलां सम्यग्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ शेषेऽष्टमांशे तत्रैव प्रतिवापेः प्रदापयेत् ॥ ९६ ॥ जातीकर्पूरपूगानि कक्कोलकफलानि च ॥ इत्येषां गुटिका कार्य्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी ॥ ९७ ॥ दन्तोष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च ॥ खादिरी गुटिका ह्येषा पूजनीयाऽऽस्यरोगिणाम् ॥ ९८ ॥ गायत्रिसारतुलयोः शरवल्कलानां सार्द्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः॥ निष्क्वाथ्य पादमवशेष्य च वस्त्रपूतं भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ ९९ ॥ तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवलग्रहभागिकानाम् ॥ एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बुश्यामातमालविकसाघनलोहयष्टि ॥ १०० ॥ लाक्षाफलत्रयरसाञ्जनधातकीभिः श्रीपुष्पगैरिककटंकटिकट्फलानाम् ॥ पद्माह्वलोध्रवटरोहयवासकानां मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ १०१ ॥ कक्कोलजातिफलकोललवङ्गकानां चूर्णं शुभं हि विदधीत पलांशिकानां शीतेऽवतार्य्य घनसारचतुष्पलञ्च ॥ १०२ ॥ क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्गुटिकाः प्रकुर्य्याच्छुष्का मुखे विनिहिता विनिवारयन्ति ॥ रोगान्गलोष्ठरसनाद्विजतालुजातान्कुर्य्युर्मुखं सुरभितं स्थिरतां रदानाम् ॥ १०३ ॥

भा० टी०–१०० पल नीली कटसरैयाको एकद्रोण जलमें पकावे जब चौथाई रस रहे तब उसे छान कर उसमें गौरीसर, खैर, दुर्गन्धिखैर, जामन, आम, मुलहठी, नीलकमल इनके कल्कको आधा २ पलके प्रमाणसे डाल कर तैल पकावे सिद्ध होने पर इस तैलको मुखमें धारण किये रहनेसे हिलते हुए दांत तत्काल स्थिर होते हैं॥ ८३ ॥८४॥ १०० पल दुर्गंधखैरकी नवीन छालको कूट छांटकर एकद्रोण जलमें पकावे जब चौथाई रस रहे ॥ ८५ ॥ तब उसमें मंजीठ, लोध, मुलहठी, दुर्गन्धखैर, खैर, कायफर, लाख, वटकी छाल, छोटी, इलायची, कपूर, अगर, पद्माख, लौंग, शीतलचीनी, जायफल, त्रिफला, पतङ्ग, गेरु, दालचीनी, नागकेशर, धायके फूल इनके दो २ तोले कल्कको मिलाय २ प्रस्थ तैलको पकावे। यह तैल सब प्रकारके मुखरोगोंमें प्रसिद्ध है॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ अर्थात् कृमिदन्त, दांतोंका टूटना, दांतोंका हिलना, मुखके मांसका गलना और मुखकी दुर्गन्धि आदि पूर्वोक्त मुखरोगोंमें यह अरिमेदादि तैल अत्यन्त

हितकारक है ॥८९॥ एक प्रस्थ तैल, १ प्रस्थ लाखका रस, १ प्रस्थ दूध तथा लोध, कायफल, मञ्जीठ, कमलकेशर, पद्माख, लालचन्दन, नीलकमल, मुलहठी इनका चौगुना क्वाथ और इन्हीं-द्रव्योंका आधसेर कल्क लेकर विधिपूर्वक तैल पकावे। इस तैलका मुखमें गंडूष धारण करनेसे ॥९०॥९१॥ दालन, दन्तचलन, दन्तमोक्ष, कपालिका, शीताद, मुखदुर्गन्धि, अरुचि, मुखवैरस्य यह सब नष्ट होते और दांत दृढ होतेहैं. किंबहुना, इसके प्रभावसे मनुष्य मुखरोगोंसे निर्मुक्त होता-है ॥९२॥ ॥ ९३ ॥ मौलसिरीके फल, लोध, हडसंघारी, नीली कटसरैया, अमलतासके पत्ते, बबूरकी छाल, सालकी छाल, खैर इनके कल्क और क्वाथके द्वारा तैलको पका कर मुखमें धारण करनेसे वा दांतोंको धोनेसे हिलते हुए दांत स्थिर होते हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ १०० पल खैरको एकद्रोण जलमें भलीभांति पकावे। अष्टमांश रस रहने पर उसे नितार कर उसमें ॥९६॥ जाती, कपूर, सुपारी, शीतलचीनीके फल इनका कल्क मिलाय गाढा होने पर गुटिका बना-लेवे। यह खदिरगुटिका मुखके सौभाग्यको बढाती और दन्तरोग, ओष्ठरोग, मुखरोग, जिह्वारोग, तालुरोग इन सबोंमें मुखरोगियोंके लिये प्रशंसनीय है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ २०० पल खैर, २०० पल पञ्चवल्कल इनको चारद्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई रहे तब उसे वस्त्रसे छानकर फिर भी मन्द आंचसे पकावे ॥ ९९ ॥ जब पकते २ गाढा होजाय तब उसमें कवलग्रहोक्त द्रव्य और इलायची, मृणाल, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, सुगन्धवाला, श्यामा, तमाल, मंजीठ, मोथ, लोह, मुलहठी, ॥ १०० ॥ लाख, त्रिफला, रसोत, धाई, लौंग, गेरु, दारुहलदी, कायफल, पद्माख, लोध, वटप्ररोह, जवास, मांसी, हलदी, बडी इलायची ॥ १०१ ॥ शीतलचीनी, जायफल, चव्य, लौंग इनका एक२पल महीन चूर्ण डाल कर नीचे उतार लेवे। शीतल होने पर चार पल कपूर भी मिलादेवे ॥ १०२ ॥ अनन्तर मटरधानकी भांति गुटिका बनाय सुखा लेवे। इन महाखदि-रगुटिकाओंको मुखमें धारण किये रहनेसे कंठरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दंतरोग, तालुरोग यह सब नष्ट होकर मुख सुगंधित और दाँत दृढ होतेहैं ॥ १०३ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे मुखरोगाधिकारः ॥ ६१ ॥

अथ कर्णरोगाधिकारः ६२.

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृंगबेररसैः शुभैः ॥ सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ १ ॥ शृङ्गबेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेव च ॥ कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ २ ॥ लशुनार्द्रकशिग्रूणां स्वरसो मूलकस्य च ॥ कदल्याश्च तुलस्याश्च कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ॥ ३ ॥ अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणाऽन्यतमेन च ॥ कोष्णेन

पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ ४ ॥ महतः पञ्चमूलस्य काष्ठान्यष्टांगुलानि च ॥ क्षौमेनावेष्ट्य संसिच्य तैलेनाऽऽदीपयेत्ततः॥५॥ यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तं प्रयोजयेत् ॥ ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ६ ॥ एवं कुर्य्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ॥ मतिमान्दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम् ॥७॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं प्राज्यं प्रलिप्तं शिखिना प्रतप्तम् ॥ आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनाञ्च ॥ ८ ॥ तीव्रशूलातुरे कर्णे शब्दक्लेदवाहिनि॥वस्तमूत्रं पिबेत्कोष्णं सैन्धवेन समन्वितम्॥ ॥ ९ ॥ वंशत्वचा च संयुक्ते मूत्रे ह्याजाविके भिषक् ॥ तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥ १० ॥ हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलञ्च सार्षपम् ॥ कर्णशूलातुरे कर्णे पूरणं हितमुच्यते ॥ ११ ॥ शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु सनागरम् ॥ शतपुष्पावचाकुष्ठं दारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ १२ ॥ सौवर्चलयवक्षारं स्वर्जिकाविडसैन्धवम् ॥ भूर्जग्रन्थ्यग्न्ध्यजं मुस्तं शुक्तं मधु चतुर्गुणम् ॥ १३ ॥ मातुलुङ्गरसं चैव कदलीरसमेव च ॥ तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ १४ ॥ बाधिर्य्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः ॥ क्षिप्रं विनाशमायान्ति शशाङ्कधरशासनात् ॥ १५ ॥ यन्मस्त्वादिशुचौ भाण्डे सक्षौद्रगुडकांजिकम् ॥ धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चूक्तं तदुच्यते ॥ १६ ॥ कर्णक्ष्वेडे कर्णनादे सार्षपं तैलमुत्तमम् ॥ नादबाधिर्य्ययोः कुर्य्याद्वातशूलोक्तमौषधम् ॥ १७ ॥ शैखरिकक्षारजलैस्तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम्॥अपहरति कर्णनादं बाधिर्य्यं चापि पूरणतः ॥ १८ ॥ स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगुकृष्णामहौषधम् ॥ शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तं चतुर्गुणम् ॥ १९ ॥ कर्णनादञ्च बाधिर्य्यं कर्णस्रावं व्यपोहति ॥ अस्य योगात्सुखं शेते कर्णरोगातुरो नरः ॥ २० ॥ दशमूलीकषायेण तैलप्रस्थं विपाच-

येत् ॥ एतत्कल्कं प्रदायैव बाधिर्य्ये परमौषधम् ॥ २१ ॥ एरण्ड-शिग्रुवरुणमूलकात्पत्रजे रसे ॥ चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाऽष्टगुणोन्मिते ॥ २२ ॥ यष्ट्याह्वक्षीरकाकोलीकल्कयुक्तं निहन्ति तत् ॥ नादबाधिर्य्यशूलानि नावनाभ्यङ्गपूरणैः ॥ २३ ॥ लशुनं मानकं तालं पिष्ट्वा तैले चतुर्ग्गुणे ॥ तैलाच्चतुर्ग्गुणं क्षीरं पाच्यं तैलावशेषितम् ॥ २४ ॥ तत्तैलं पूरयेत्कर्णे बाधिर्य्यस्य प्रशान्तये ॥ बाधिर्य्यं वर्ज्जयेद्बालवृद्धयोश्चिरजं च यत् ॥ २५ ॥ कर्णस्रावोदितं कुर्यात्पूतीकृमिकर्णयोः॥पूरणं कटुतैलेन विशेषात्कृमिकर्णके॥ २६॥ वमिपूर्वा हिता कर्णविद्रधौ विद्रधिक्रिया ॥ स विधिः कर्णशूलोक्तः कर्तव्यः क्षतविद्रधौ ॥ २७ ॥ पालीशोषेऽनिलश्रोत्रशूलवन्नस्यलेपनम् ॥ स्वेदं च कुर्यात्स्विन्नाञ्च पालीमुद्वर्त्तयेत्तिलैः ॥ २८ ॥ प्रियालबीजयष्ट्याह्वहयगन्धायवान्वितैः ॥ ततः पुष्टिकरैः स्नेहैरभ्यङ्गं नित्यमाचरेत् ॥ २९ ॥ कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम् ॥ आनूपमांसक्वाथे च पालीपोषणवर्द्धनम् ॥ ३० ॥ पालीं छित्त्वाऽतिसंक्षीणां शेषां सन्धाय पोषयेत् ॥ साध्यैवं तन्त्रिकाख्यापि परिपोटेऽप्ययं विधिः ॥ ३१ ॥ उत्पाते शीतलैर्लेपो जलौकोहृतशोणिते॥जम्ब्वाम्रपल्लवबलायष्टीरोध्रतिलोत्पलैः ॥३२॥ सधान्याम्लैः समञ्जिष्ठैः सकदम्बैः ससारिवैः ॥ सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं विसर्पोक्तघृतानि च ॥ ३३ ॥

भा० टी०–कैथ, बिजोरानींबू, कांजी, अदरख इनके रसको मन्दोष्ण बनाय कानमें भरदेनेसे कर्णशूलरोग दूर होताहै ॥ १ ॥ अदरखका रस, मुलहठी, सेंधा, तैल इनको मन्दोष्ण बनाय कानमें भरदेनेसे कानोंकी पीडा नष्ट होतीहै ॥ २ ॥ अथवा लहशुन, अदरख, सैंजन, मूली, केला, तुलसी इनका मन्दोष्ण स्वरस भी कानमें भरदिये जानेसे श्रेष्ठ है ॥३॥ आठप्रकारके मूत्रों (बकरी, भेड, गाय, स्त्री, घोडी, ऊंटिनी, हथिनी, भैंस इनके मूत्र) मेंसे किसीएक मूत्रको मन्दोष्ण बनाय कानको भरदेनेसे कर्णशूल शांत होताहै ॥ ४ ॥ बृहत्पञ्चमूलकी आठ अंगुलप्रमाण लकडी लेकर पट्टवस्त्रसे बांध और तैलमें भिगोकर दीपकके योगसे जलावे ॥ ५ ॥

उनमेंसे जो तैल टपक २ कर गिरे उसे सुहाता २ कानमें डाले इस दीपिकातैलके प्रयोगसे तत्काल कानोंकी पीडा दूर होतीहै ॥ ६ ॥ इसीप्रकार देवदार, कूठ और सरलकाष्टसे दीपिकातैल बनाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल दूर होताहै ॥ ७ ॥ आकके परिपक्व पत्तेको पुटपाककी भांति पकाकर उसे निचोड कानमें डालनेसे कर्णशूलजन्य पीडा नष्ट होतीहै ॥ ८ ॥ जब तीव्र शूलसे आतुर हुए कानसे वार २ रक्तस्राव होरहाहो तब सेंधानोनके संग मंदोष्ण बकरीमूत्रको पीवे ॥९॥ अथवा बकरीके मूत्रमें बांसकी छालका कल्क मिलाय तैलको पकावे । इसको कर्णशूलीके कानमें भर देवे ॥ १० ॥ किंवा, हींग, तुमुरु, शोंठ इनके कल्क द्वारा तैलको सिद्ध करके कानोंमें भर देनेसे श्रेयस्कर है ॥ ११ ॥ सूखी मूलीका खार, शोंठका खार, हींग, शोंठ, सौंफ, वचा, कूठ देवदार, सैंजन, रसोत ॥ १२ ॥ कालानोन, जवाखार, सज्जी, विडलोन, सेंधानोन, भूर्जपत्र, गठिवन, समुद्रीनोन, मोथा इनके समभाग कल्क और मधु, कांजी, विजोरानीबूका रस तथा केलेका रस इनको चौगुना लेकर यथाविधि तैलको पकावे । यह तैल कर्णशूलका नाशक है ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ इसके अतिरिक्त बाधिर्य्य, कर्णनाद, पूयस्राव यह सब शिवके शासनानुसार नष्ट होतेहैं ॥ १५ ॥ दधिजल आदिसे शुद्ध हुए पात्रमें मधु, गुड और कांजीको एक साथ रखकर तीन दिनतक उसीमें पर्य्युषित करनेसे शुक्त नामकी कांजी बनतीहै ॥ १६ ॥ कर्णक्ष्वेड और कर्णनाद रोगमें सरसोंका तैल श्रेयस्कर है । कर्णनाद और बाधिर्य्यरोगमें वातनाशक औषधि करनी॥१७॥ चिरचिराके क्षारजलमें चिरचिराका ही कल्क मिलाय तिलका तैल पकावे । यह तैल कानमें भर-दियेजानेसे कर्णनाद और बाधिर्य्यरोगको हरताहै ॥ १८ ॥ सज्जीखार, सूखीमूलीका क्षार, हींग, पिपली, शोंठ, सौंफ इनके कल्कद्वारा चौगुनी कांजीमें पकायेहुए तैलको कानमें भर देनेसे कर्ण-नाद, बाधिर्य्य और कर्णस्रावरोग नष्ट होकर रोगी सुखसे सोताहै ॥ १९ ॥ २० ॥ दशमूलके कषायमें दशमूलका ही कल्क देकर १ प्रस्थ तैलको पकावे यह तैल बाधिर्य्यरोगकी परम औषध है ॥ २१ ॥ एरण्डी, सैंजन, वरना, मूली इनके चौगुने रसमें और आठगुने दूधमें मुलहठी और क्षीरकाकोलीका कल्क मिलाय तैलको पकावे । इस तैलके नस्यलेने तथा मालिश करने और कानमें भरदेनेसे कर्णनाद, कर्णशूल, कर्णबाधिर्य्य यह सब नष्ट होतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ लशुन, मानकन्द, हरिताल इनका समभाग कल्क और कल्कसे चौगुना तिलका तैल और तैलसे चौगुना दूध लेकर एकत्र पकावे । जब पकते २ तैल ही बाकी रहजाय तब उसे बाधिर्य्यरोगकी शांतिके लिये कानमें भरदेवे । ध्यान रहे कि, वृद्ध और बालकके बाधिर्य्यकी चिकित्सा न करे ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ पूतीक और कृमिकर्ण नामक रोगमें कर्णस्राव रोगमें कही औषधी करे । अथवा विशेष करके कृमिकर्ण रोगमें कडुवे तैलसे कानको भरदेना ही श्रेयस्कर है ॥ २६ ॥ कर्णविद्रधि रोगमें प्रथम वमन देवे तत्पश्चात् विद्रधिरोगमें कही क्रियाको करे। क्षतजन्य कर्णविद्रधिमें कर्णशूलोक्त चिकित्सा करे ॥ २७ ॥ पालीशोष रोग (कर्णपालीका सूखना) में वातजकर्णशूलोक्त नस्योंको और लेपोंको करे तथा स्वेद देवे । स्वेदके अनंतर तिलोंके द्वारा उबटन करे ॥ २८ ॥ और चिरौंजी, मुलहठी, असगंध, जौ इनके कल्कसे युक्त पुष्टिकारक तैलोंके द्वारा मालिश करे ॥२९॥

जीवनीयगणके कल्क द्वारा अनूपदेशीय मांसके क्वाथमें और दूधमें विधिपूर्वक पकाया हुआ तैल सूखती हुई कर्णपालीको पुष्टकरके बढाताहै ॥ ३० ॥ अत्यन्त क्षीणप्राय कर्णपालीको छेदित करके और शेषरहीको जोडकरके पोषित करे । इसीप्रकार तंत्रिकारोग और परिपोट रोगकी चिकित्सा करे ॥ ३१ ॥ उत्पातनामक कर्णरोगमें प्रथम जोंक लगाकर दुष्ट रक्तको निकासे । पीछे शीतल औषधियोंका लेप करे तथा जामुन, आमके पत्ते, खिरेंटी, मुलहठी, लोध, तिल, नीलकमल, ॥ ३२ ॥ कांजी, मंजीठ, कदम, अनन्तमूल इनके कल्क द्वारा सिद्ध किया तैल मालिशमें हित है । एवं विसर्प रोगमें कहे हुए घृत भी हित जानने ॥ ३३ ॥

अथ कर्णच्छेदनक्रिया तदुपचारश्च ।

छिन्नन्तु कर्णं शुद्धस्य बन्धमालोच्य यौगिकम् ॥ सन्दध्यात्शुद्धमालग्ने सद्यश्छिन्ने च शोधनम् ॥ ३४ ॥ केशावधि ग्रथित्वा च कृत्वा छेदनलेखनम् ॥ निवेश्य सन्धिं सुषमं न निम्नं न समुन्नतम् ॥ ३५ ॥ अभ्यज्य मधुसर्पिर्भ्यां पिचुप्लोतावगुण्ठितम् ॥ सूत्रेणागाढशिथिलं बद्ध्वा चूर्णैरवाकिरन् ॥ ३६ ॥ शोणितस्थापनैः पश्चादाचारं व्रणयमादिशेत ॥ सप्ताहादामतैलाक्तं शनैरपनयेत्पिचुम् ॥ ३७ ॥ सुरूढं जातरोमाणं श्लिष्टसन्धिसमस्थिरम् ॥ सुवर्ष्माणं सुरागं च शनैः कर्णं विवर्द्धयेत् ॥ ३८ ॥

भा० टी०–शोधित मनुष्यके शुद्धरक्तवाले छिन्न किये कानके यौगिक बन्धको विचार करके संधान करे । और जुडे हुए कानमें तथा तत्काल छिन्न किये कानमें शोधन कर्म करे ॥ ३४ ॥ तथा केशपर्यंत ग्रथित करके छेदन और लेखन कर्म करे । अनंतर समानरूपसे संधिको स्थापन करके ॥ ३५ ॥ मधु और घृतसे लिप्त करे पीछे रुईके फोहेसे संधिस्थानको अवगुंठित करके न बहुत कडी न बहुत शिथिल इसप्रकार सूत्रसे बांध देवे । अनंतर रक्तको स्थापन करनेवाले चूर्णोंको उस स्थानपर बुरबुरा देवे । इसके पीछे व्रणशोधक क्रिया करे । सातदिनोंके बाद उस रुईके फोहेको कच्चे तैलसे भिगोकर धीरे २ दूर करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जब घाव भलेप्रकार जमआवे और जोड जुडकर ऊपरसे बाल उग आवें और सर्वथा दृढरूप रागसम्पन्न कान होजाय तब उसको धीरे २ बढावे ॥ ३८ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे कर्णरोगाधिकारः ॥ ६२ ॥

अथ नासिकारोगाधिकारः ६३.

पञ्चमूलशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी ॥ सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च पूज्यः पीनसशान्तये ॥ १ ॥ व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ २ ॥ व्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् ॥ पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ३ ॥ व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैन्धवैः ॥ पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदं हरेत् ॥ ४ ॥ त्रिकटुकविडङ्गसैन्धववृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीभिः ॥ तैलं गोरससिद्धं नस्ये योज्यन्तु पूतिघ्नम् ॥५॥ कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः कुष्ठोग्रशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ ६ ॥ तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपाचयेत् ॥ पीनसे पूतिनस्ये च शमनं कीर्तितं परम् ॥ ७ ॥ बाह्यमाभ्यन्तरं चेति विधानं पित्तनाशकम् ॥ नासापाके विधातव्यं विधिविद्भिर्भिषग्वरैः ॥ ८ ॥ प्रयोज्या हृतरक्तस्य क्षीरिवृक्षत्वचस्तथा ॥ सेके लेपे तु सर्पींषि नासापाकप्रशान्तये ॥ ९ ॥ शुण्ठीकुष्ठकणाविल्वद्राक्षाकल्ककषायवत्॥ साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवथुरुक्प्रणुत्॥ १०॥दीप्ते रोगे पैत्तिके पैत्तिकन्तु कार्य्यं कुर्य्यान्माधुरं शीतलञ्च ॥ नासादाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धे धूमो मूर्द्धवस्तिश्च नित्यम्॥ ११॥ वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम्॥ पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन वा ॥ १२ ॥ पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥ परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्य्यादपि च शीतलान् ॥१३॥ कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपकया ॥ यवाग्वा सहितं वापि कफघ्नं क्रममाचरेत् ॥ १४ ॥ घृततैलेन संयुक्तं सक्तुधूमं पिबेन्नरः ॥ प्रतिश्यायहरं युक्तं कासहिक्कानिवारणम् ॥१५॥ प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिश्वासमुद्भवः ॥ ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ॥ १६ ॥ यः पिबति शयनकाले शयनारूढः

सुशीतलं सलिलम् ॥ पीनसयुक्तः स नरो विमुच्यते तेन रोगेण ॥ ॥ १७ ॥ पुटकञ्च जयापत्रं सिन्धुतैलसमन्वितम् ॥ प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ १८ ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्य-कट्वम्लभोजनैः ॥ वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ १९ ॥ ऊषणागुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम् ॥ नवप्रतिश्यायहरं विशेषात्कफपाचनम् ॥२०॥ भक्षयति भुक्तमात्रे सलवणसुस्विन्नमाषम-त्युष्णम् ॥ स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातञ्च प्रतिश्यायम् ॥२१॥ पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गमरिचानि च ॥ अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ॥ २२ ॥ समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत् ॥ धावनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥ शेषाणां तु विकाराणां स्वंस्वं कार्य्यं चिकित्सितम् ॥ वीक्ष्य दोषबलं सम्यग्भिषजा विधिवेदिना ॥ २४ ॥

भा० टी०–पीनसरोग (विकृतकफका नासिकाके द्वारा निकलना) की शांतिके लिये पञ्चमूलमें कढा हुआ दूध, चित्रकहरीतकीयोग और पूर्वोक्त सर्पिर्गुडयोग तथा षडङ्गयोग भी श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ त्रिकटु, चीतेकी जड, तालीसपत्र, इमली, अमलवेत, चव्य, कालीजीर इनके एक २ तोला भाग और इलायची, दालचीनी, तेजपात इनके दो २ मासे भाग तथा ८ तोला ६ मास पुराने गुडको लेकर चूर्ण बनाय सेवन करनेसे पीनस, श्वास, कास यह सब नष्ट होते और रुचि, स्वर बढतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥ कटेरी, दंती, वचा, सैंजन, तुलसी, त्रिकटु, सेंधानोन इनके कल्क द्वारा तैलको पकाकर नास लेनेसे पूतिनामक नासारोग (नाककी दुर्गन्ध) दूर होताहै ॥४॥ त्रिकटु, वायविडंग, सेंधा, कटेरी, मैनफल, सैंजन, तुलसी, दंती इनके कल्क द्वारा गोदुग्धमें सिद्ध किये तैलका नास लेनेसे भी पूतिरोग नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ इन्द्रजौ, हींग, मरिच, लाख, तुलसी, कायफल, कूठ, वचा, सैंजन, वायविडङ्ग इनका रस निचोडकर नासलेने वा इन्हींके कल्क द्वारा गोमूत्रके संग पकाये हुए कडुवे तैलका नास लेनेसे पीनस और पूतिरोग शांत होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥ नासापाक (नाकका पकना) रोगमें रोगीके बाहरी और भीतरी औषधि केवल पित्तनाशक ही होने उचित हैं ॥ ८ ॥ तथा नासापाकीके रक्तशोधनके अनन्तर वटप्रभृति दूधवाले वृक्षोंकी छाल पीसकर परिषेक और घृतके द्वारा लेप करे ॥ ९ ॥ शोंठ, कूठ, पिपली, बेलगिरी, दाख इनके कल्क और कषायके द्वारा पकाये हुए तैल वा घृतका नास लेनेसे क्षवथुरोग (कफ वातके कारण वार २ छींक आना) दूर होताहै ॥ १० ॥ पित्तजन्य दीप्तरोग (दाहयुक्त

नासिकासे धूमके समान वायु निकलना) में पित्तनाशक शीतल मधुर उपचार करे । नासादाहके होने पर स्नेहपान, धूम और शिरोवस्ति आदि कर्म करने उचित हैं ॥ ११ ॥ वातजन्य प्रतिश्यायरोग (एक प्रकारका पीनस) में पञ्चलवण वा प्रथमगणीय द्रव्योंके संग विधिपूर्वक पकायेहुए घृतको पीवे ॥ १२ ॥ पित्त वा रक्तके प्रकोपसे उपजेहुए प्रतिश्यायमें शीतल परिषेक और शीतल लेपादिकोंको करे ॥ १३ ॥ कफजन्य प्रतिश्यायमें तिल और उडदके संग पकी हुई यवागू सहित वा घृतसे स्निग्ध कफनाशक उपचार करे ॥ १४ ॥ घृत तैलसे युक्त सत्तूके धूमको पीनेवाले मनुष्यके प्रतिश्याय, कास, हिक्का यह सब दूर होतेहैं ॥ १५ ॥ नवीन प्रतिश्यायमें इमलीका यूष हित है । परिपक्व कफको शिरके विरेचनसे जीते ॥ १६ ॥ सोते समय पर्य्यङ्कमें बैठ कर ठण्ढा जल पीनेवाला मनुष्य भी पीनसरोगसे मुक्त होताहै ॥ १७ ॥ कमल और जयन्तीके पातमें सुहागा और तैल मिलाय सेवन करनेसे सब प्रकारके प्रतिश्याय दूर होतेहैं ॥ १८ ॥ कफनाशक तैलादिकसे शिरको मलना, स्वेदकर्म, कटु और खट्टे पदार्थोंका भोजन एवं वमन, घृतपान आदि उपायोंसे सबप्रकारके प्रतिश्यायोंको उपचारित करे ॥ १९ ॥ दधि आदि खट्टे पदार्थोंसे युक्त स्निग्धरूप भोजनमें पिपली और गुड मिलाकर खानेसे नवीन प्रतिश्याय दूर होता और विशेष करके कफका पाक होताहै ॥ २० ॥ भोजनके अनंतर ही भलेप्रकार उबाले हुए गरम २ उडदोंमें लोन डाल कर खानेवाले मनुष्यके सबप्रकारके चिरकालिक प्रतिश्याय दूर होतेहैं ॥२१॥ पिपली, सैंजनके बीज, वायविडंग, मरिच इनका रस निचोडकर नास लेनेसे भी प्रतिश्याय दूर होताहै ॥ २२ ॥ नाकके कृमियोंमें कृमिनाशक पूर्वोक्त द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर प्रयुक्त करे । कृमिस्थानको धोनेके लिये भी कृमिनाशक उपचार करे ॥ २३ ॥ शेष नासारोगों (जो इस ग्रंथमें अनुक्त हैं) की चिकित्साको दोषबलके अनुसार शास्त्रविधिपूर्वक करे ॥ २४ ॥

अथ करवीराद्यं तैलम् ।

रक्तकरवीरपुष्पं सजात्यसनमल्लिकोत्थश्च ॥
एतैः समन्तु तैलं नासार्शोनाशनं पक्वम् ॥ २५ ॥

भा० टी०–लाल कनेरके फूल, चमेलीके फूल, विजयसारके फूल, मोतियाके फूल इनके कल्कसे समानांश तैलको पका कर नास लेनेसे नासार्शरोग (नाककी बवाशीर) दूर हो ॥२५॥

अथ चित्रकहरीतकीयोगः ।

चित्रकस्याऽऽमलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम् ॥ शतंशतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ २६ ॥ शतं पचेद्घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत् ॥ व्योषत्रिजातयोः क्षारात्पलार्द्धमपरेऽहनि ॥ २७ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाऽग्न्यद्यादयन्त्रणः ॥ वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं

पीनसं दुस्तरं कृमिम् ॥ २८ ॥ गुल्मोदावर्तदुर्नामश्वासान्हत्वा सुदारुणान् ॥ योगोऽयं राजते गर्ज्जन्भूतले क्षेमकारणम् ॥२९॥ गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ॥ सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ ३० ॥

भा० टी०–१०० पल चीतेकी जडका रस, १०० पल आंवलेका रस, १०० पल गिलोयका रस, १०० पल दशमूलका क्वाथ, ४ प्रस्थ हरडका चूर्ण और १०० पल गुड इन सबको एकत्रित करके पकावे जब पकते २ गाढा होजाय तब उसमें १२ पल त्रिकटु और त्रिसुगंधको तथा दो तोले जवाखारको मिलालेवे। दूसरे दिन आधेप्रस्थ मधुको मिलाय अग्निबलके अनुसार इसे सेवन करे। इस योगसे अग्नि बढती और क्षय, खांसी, पीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त, बवाशीर, श्वास यह सब नष्ट होतेहैं। किंबहुना, रोगियोंके कल्याणकेलिये यह योग भूलोकमें गर्ज रहाहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ घरका धूँआ, पिपली, देवदार, जवाखार, हलदी, सेंधानोन, चिरचिराके बीज इनके द्वारा तैलको पकाकर नास लेनेसे नासार्शरोग नष्ट होताहै ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे नासिकारोगाधिकारः ॥ ६३ ॥

अथ नेत्ररोगाधिकारः ६४.

लंघनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ॥ उपाचरेदभिष्यन्दमञ्जनैश्चोत्तमैर्हितैः ॥ १ ॥ अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायारुचिज्वराः ॥ पंचैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लंघनात् ॥ २ ॥ स्वेदः प्रलेपः स्निग्धान्नं सेको दिनचतुष्टयम् ॥ लंघनञ्चाऽक्षिरोगाणामतीक्ष्णं पाचनानि षट् ॥ ३ ॥ श्रीवासातिविषालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः ॥ अव्यक्तेऽक्षिगदे कार्य्यं प्रतिस्थैर्गुण्डनं बहिः ॥ ४ ॥ अञ्जनं पूरणं क्वाथं नाऽऽमनेत्रे प्रशस्यते ॥ वेदनानिग्रहार्थञ्च कुर्यादाश्च्योतनन्तु सत् ॥ ५ ॥ आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः ॥ कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ ६ ॥ एरण्डपल्लवे मूले त्वचि बीजे पयःशृतम् ॥ कण्टकार्य्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचनं हितम् ॥ ७ ॥ ततः संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ॥ हेमन्ते

शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ ८ ॥ पूर्वाह्णे चाऽपराह्ने च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ प्रायो वर्षास्वयोग्यन्तद्वसन्ते तु सदैव हि ॥ ॥ ९ ॥ हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक् ॥ वैरेचनश्च तच्चूर्णं शलाकान्तं विधीयते ॥ १० ॥ प्रथमं सव्यमभ्यज्यं ततोऽभ्यज्यन्तु दक्षिणम्॥ शलाकांगुष्ठदेशिन्या न चाऽन्तर्नयनं स्पृशेत्॥ ॥ ११ ॥ बृहदेरण्डमूलत्वक्शिग्रुमूलं ससैन्धवम् ॥ अजाक्षीरेण निष्पिष्य वर्तिः स्यादक्षिरोगनुत् ॥ १२ ॥ हरिद्रे मधुकं द्राक्षा देवदारु च पेषयेत् ॥ आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ ॥ १३ ॥ प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः ॥ शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत् ॥ १४ ॥ द्राक्षामधुकमंजिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः ॥ प्रातराश्च्योतनं पथ्यं शोथशूलाक्षिरोगिणाम्॥ ॥ १५ ॥ कफजे लंघने स्वेदो नस्यं तिक्तादिभोजनम् ॥ तीक्ष्णैः प्रसेचनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम् ॥ १६ ॥

भा० टी०–लंघन, लेपन, स्वेदन, शिरावेध, विरेचन, अञ्जन इत्यादि उत्तम उपायोंके द्वारा अभिष्यन्दनामक नेत्ररोग (आंख कटना और उनका सूजना पीव वहना) की चिकित्सा करे ॥ १ ॥ सबप्रकारके नेत्ररोग, कुक्षिरोग, प्रतिश्यायरोग, अरुचि, ज्वर यह पांचरोग, प्रायः पांच रात्रिके लंघनसे नष्ट होतेहैं ॥ २ ॥ चार दिन पर्य्यन्त स्वेदन, लेपन, स्निग्ध भोजन, परिषेक, लंघन, नमक, मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थोंका न सेवना इन छः उपायोंसे नेत्र रोग (अभिष्यन्द) परिपक्व होताहै ॥ ३ ॥ सरलका गोंद, अतीस, लोध इनके चूर्णमें थोडासा सेंधा मिलाय पोटली बांध कर नेत्रोंके बाह्यभागमें गुंडन देवे जब कि नेत्र रोगकी प्रारंभिक दशाहो ॥ ४ ॥ आंखोंमें अञ्जनभरना, दारुहलदी आदिके क्राथसे सेककरना इत्यादि उपाय कच्चे नेत्ररोगमें भले नहीं । किन्तु वेदनाकी शांतिके लिये उचित द्रव्योंके द्वारा आश्च्योतनकर्म (नेत्रविरेचन) करनाही उचित है ॥ ५ ॥ वेलगिरी, एरण्डीजड, कटेरी, जयन्ती, मधु, सैंजन इनके मन्दोष्ण क्राथके द्वारा वातज अभिष्यंदमें आश्च्योतन करना उचित है ॥ ६ ॥ एरण्डीके पात, जड, छाल और बीजोंके कल्कमें तथा कण्टकारीके जडमें पकाहुआ मन्दोष्ण दूधका परिषेक वाताभिष्यन्दमें हितकर है ॥ ७ ॥ जब दोष भली भांति परिपक्व होचुका तब अञ्जनकर्म करे । ध्यान रहे कि हेमन्त, शिशिरमें मध्याह्नकालिक अञ्जन गुणकारी होताहै ॥ ८ ॥ ग्रीष्म और शरदमें प्रातःकालिक और सायंकालिक अञ्जन शुभ हैं । वसन्तमें सबकाल अञ्जन करना गुणकारी है । वर्षाकालमें

प्रायः अञ्जन करना अयोग्यहै ॥ ९ ॥ रेणुका तृणकी भांति सूक्ष्मवर्ति (शलाका) अञ्जनकार्य्यमें शुभ होतीहै । नेत्रविरेचक चूर्णको शलाकाके अन्तिम भागतक भर दे ॥ १० ॥ पहिले वाम नेत्रको और पीछे दाहिने नेत्रको अञ्जन देवे । नेत्राञ्जनके समयमें अंगुष्ठ और तर्जनीसे शलाकाको पकडे । और इसप्रकार युक्तिसे अञ्जन देवे कि जिससे भीतर नेत्र में स्पर्श न आवे ॥ ११ ॥ बडी एरंडीकी जड और छाल, सैंजनेकी जड, सेंधानोन इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर नेत्राञ्जन करनेसे नेत्ररोग दूर होता है ॥ १२ ॥ हलदी, दारु-हलदी, मुलहठी, दाख, देवदार इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर वाताभिष्यन्दमें नेत्राञ्जन करनेसे गुण होता है ॥ १३ ॥ पुंडरिया, मुलहठी, हलदी, आंवला, पद्माख इनके शीतल कल्कमें मधु मिलाय सेक करनेसे पित्तजन्य अभिष्यन्द दूर होता है ॥ १४ ॥ शोथ, शूल और नेत्ररोगवाले मनुष्योंके लिये दाख, मुलहठी, मंजीठ और जीवनीयगणके द्रव्यों द्वारा पके हुए दूधसे प्रातः-कालमें आश्च्योतन कर्म करनेसे गुण होता है ॥ १५ ॥ कफजन्य अभिष्यन्दमें लंघन, स्वेदन, नस्य, तिक्त (कटुक) पदार्थोंका भोजन एवं तीक्ष्ण द्रव्योंके द्वारा सेचन और लेपन-कर्मभी पथ्य हैं ॥ १६ ॥

कनिष्ठकास्फोतकपित्थविल्वपत्तूरपीलुसुरसार्कभृङ्गैः॥ स्वेदं विदध्या-दथवा प्रलेपं वर्हिष्ठशुण्ठीसुरकाष्ठकुष्ठैः ॥ १७ ॥ शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डं सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः॥ धार्य्यं चक्षुषि शूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥१८॥ ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्॥ आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्य्यात्कण्डूश्च दाहश्च रुजंनिहन्यात्॥१९॥ निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेदाग्निना चूर्णमथापि कल्कम् ॥ आश्च्योतनं मानुषदुग्धयुक्तं पित्तास्रदाहापहमग्र्यमुक्तम् ॥ २० ॥ स्निग्धोष्णैर्वातजः पित्तरक्तजो मृदुशीतलैः ॥ तीक्ष्णरूक्षोष्णविषदैः प्रशाम्यति कफात्मकः ॥२१॥ शीतोष्णमृदुशीतानां पर्य्यायात्सान्निपातिकः॥ तस्य कालो दिवा सर्वो यामश्च प्रथमो निशि॥२२॥ प्रकुञ्चः श्लैष्मिके तद्वत्पाणिशुक्ती च वातिके ॥ आश्च्योतनप्रमाणं स्याद्वे शुक्ती चापि पैत्तिके ॥ २३ ॥ अथवाऽऽश्च्योतनं यावद्दीय-मानं सहेत सः ॥ अहोरात्रं तच सकृद्द्वित्रिर्वा देयमुच्यते ॥ २४ ॥

भा० टी०–शूकडितृण, नेवारी, कैथ, वेलगिरी, शान्तिशाक, पीलु, आक, भृङ्गराज इनके द्वारा स्वेद देवे । और सुगन्धवाला, शोंठ, देवदार, कूठ इनके द्वारा लेप करे॥ १७ ॥ शोंठ

और नीमके पत्तोंके कल्कमें थोडा सा सेंधा मिलाय पकावे पीछे उसकी पिण्डी बनाय सुहाते २ नेत्रके ऊपर सेक देवे इससे नेत्र रोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे वज्रसे वृक्ष ॥ १८ ॥ लोधकी छालमें सेंधा मिलाय घृतमें भूने फिर सौवीर काञ्जीमें उसे पीस कर वस्त्रकी पोटलीमें बांध नेत्रों पर आश्च्योतन करे । इससे नेत्रकी खुजली, दाह, पीडा यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १९ ॥ नीमपत्रके कल्कसे लोधकी छालको लीप कर पुटपाककी भांति पकावे फिर उसका चूर्ण वा कल्क बनाय उसमें मानुषी स्त्रीका दूध मिलाय आंखों पर आश्च्योतन करनेसे पित्तदोष, रक्तदोष और दाह यह सब नष्ट होते हैं ॥ २० ॥ वाताभिष्यन्दमें स्निग्ध और उष्ण उपचार, पित्ताभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्दमें हलके और मधुरशीतल उपचार, एवं कफाभिष्यन्दमें तीक्ष्ण, रूक्ष और उष्ण, विमल उपचार करनेसे शान्ति होती है ॥ २१ ॥ त्रिदोषसे उपजे हुए अभिष्यन्दमें मिश्रितही उपचार करे । अभिष्यन्दरोगके बाहुल्यका समय समस्त दिन और रात्रिका प्रथम प्रहर है ॥२२॥ कफाभिष्यन्दमें ८ तोले द्रव्यको वाताभिष्यन्दमें भी वही ८ तोले,पित्ताभिष्यन्दमेंभी आठ ही तोले द्रव्यको आश्च्योतन कर्ममें समाप्त करे ॥२३॥ अथवा जबतक आश्च्योतनविधिको रोगी सहनकर रहा है तबतक रात दिन वा एकबार वा दो बार वा तीनवार आश्च्योतन कर्म करे ॥ २४ ॥ (आश्च्योतनका तात्पर्य्य नेत्रोंसे औषधद्वारा पानी निकालना है) ।

लेखने सप्त चाऽष्टौ वा बिन्दवः स्नैहिका दश ॥ आश्च्योतने प्रयोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे ॥ २५ ॥ सम्यगाश्च्योतने जाते वैमल्यं नेत्रयोर्भवेत् ॥ वेदनोपशमो व्याधिनिवृत्तिर्नेत्रलाघवम् ॥ २६ ॥ मिथ्याकृते व्याधिवृद्धिर्गौरवाविलनेत्रता ॥ अतीवाश्च्योतिते नेत्रे वैमनस्यं प्रजायते ॥ २७ ॥ तिरीटत्रिफलायष्टीशर्क्कराभद्रमुस्तकैः ॥ पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥२८॥ कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसम्भृतम् ॥ न्यस्तमप्स्वन्तरे दृष्टेर्हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥ २९ ॥ तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ॥ अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनं हि जलौकसाम् ॥ ३० ॥ पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चेहोपसादितः ॥ पञ्चपत्ररसैः स्वेदः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ ३१ ॥ पथ्यागैरिकसिन्धूत्थदार्व्वीतार्क्ष्यैः समांशिकैः ॥ जलपिष्टैः प्रलेपोयं सर्वनेत्रामयापहः ॥ ३२ ॥ पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रैरन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुटिका घृष्टलोध्रेण लिप्ता ॥ तूलैः सौवीरकार्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ता-

चक्षुः कोपप्रशान्तिं चिरमुपरिदशां भ्राम्यमाणा करोति ॥ ३३ ॥ यथोक्तौषधचूर्णस्य मात्रां बदरसम्मिताम्॥ विशुद्धे मृदुनि क्षौद्रे बद्ध्वा चाऽक्षि स्पृशेत्पुनः ॥ ३४ ॥ तेन दाहोऽश्रुपातश्च रागः शोथश्च शाम्यति ॥ बिल्वपत्ररसः पूत आज्यसिन्धुसमन्वितः ॥ ३५ ॥ ताम्रे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना ॥ पयसाऽऽलोडितश्चाऽक्ष्णोः पूरणाच्छोथशूलनुत् ॥ ३६ ॥ अभिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रागे च शस्यते ॥ सर्वोपद्रवनिर्मुक्तः सुखं शेते ह्यवो जनः ॥ ३७ ॥ सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे निहितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ ॥ सनयनकफकोपं छागदुग्धाज्यसिक्तं जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ३८ ॥ अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते ॥ अशान्ते सर्वथा रोगे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ ३९ ॥ विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः ॥ क्वाथो गुग्गुलुना लेपः शोथपाकाक्षिशूलनुत् ॥ ४० ॥

भा० टी० लेखन कर्ममें सात वा आठ बिन्दु तैलके प्रयोजनीय होते हैं। एवं आश्च्योतन कर्ममें दश बिन्दु और रोग निर्मुक्तिके समयमें बारह बिन्दु तैलके प्रयोजनीय हैं ॥ २५ ॥ उचित प्रमाणसे आश्च्योतन कर्मके निष्पन्न होनेपर नेत्र निर्मल होते और वेदना शान्त होती, रोग दूर होता और नेत्र हलके होते हैं ॥ २६ ॥ अनुचित आश्च्योतनसे नेत्र रोगकी वृद्धि, भारीपन, कलुषता यह दोष उपजते हैं। अधिक आश्च्योतनसेभी प्रायः उदासीनता फैलती है॥२७॥ लोध, त्रिफला, मुलहठी, सक्कर, भद्रमोथा इनको ठण्डे जलमें पीसकर सेक करनेसे रक्तजन्य अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ २८ ॥ कसेरु, मुलहठी इनके चूर्णकी वस्त्रमें पोटली बांधकर नेत्रमण्डलमें सेक देनेसे गुणकारी आश्च्योतन होता है ॥ २९ ॥ रक्ताभिष्यन्दमें रोगीको तिक्त घृत पान कराना, अनेकवार विरेचन देना, नेत्रोंके चारों ओरसे जोंक लगाना और पित्ताभिष्यन्द नाशक उपचार करनाभी हित है। पञ्चपल्लवके[1] रससे स्वेद देनाभी सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाशक है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हरड, गेरू, सेंधानोन, दारुहलदी, साल इनको मधुके संग जलमें पीस कर नेत्रों पर लेप करनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥ नीमके निर्मल पत्ते और जाति तथा सेंधानोनको पीसकर गुटिका बनावें पीछे लोध की छालको घिसकर उस गुटिकाके चारों ओर लेप देवे। ऐसी गुटिकाको काँजीमें भिगोई हुई रुईके फोहेके भीतर रखकर नेत्रमंडलके ऊपर चारों ओर घुमावे, ऐसा करनेसे नेत्रकोप दूर होता है ॥ ३३ ॥

१ आम्रजम्बुकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः—इति इमे पञ्चपल्लवाः ॥

उक्त औषधीके २ तोला चूर्णको शुद्ध और कोमल मधुके संग बांध कर नेत्र पर छुवावे॥ ३४॥ ऐसा करनेसे नेत्रदाह, अश्रुपात, नेत्रोंकी लालिमा और सूजन शान्त होती है। एवं बेलपत्रीके रसको छानकर उसमें घृत और सेंधानोन मिलाय तांबेके पात्रमें रख ऊपरसे कौडीको घिसे पीछे गोबरके धुआंसे उस रसको धूपित करके तथा दूधके संग औटाकर नेत्रोंमें भर देनेसे नेत्रोंका शूल और सूजन दूर होती है॥ ३५॥ ३६॥ यह योग अभिष्यन्द, अधिमन्थ, नेत्रस्राव और नेत्र रोगमें भी प्रशंसनीय है, इसके प्रभावसे रोगी सुख पूर्वकसोता है॥ ३७॥ सेंधानोन और कडुवे तैल सहित कांजीको कांसीके पात्रमें रख कर ऊपरसे उपलको घिसे पीछे उस रसको गोबरके धुआंसे धूपित करनेके अनंतर बकरीके दूध और घृतमें औटाकर नेत्रोंमें भरदेनेसे नेत्रकोप, कफकोप, नेत्रशूल, नेत्रस्राव, नेत्रशोथ यह सब उपद्रव नष्ट होते-हैं॥ ३८॥ इसीप्रकार मंथादिरोगोंकी भी चिकित्सा करे। यदि मन्थरोग किसीप्रकार शान्त न हो तो भ्रूमण्डलके ऊपर अग्निदग्ध करे॥ ३९॥ बहेडा, हरड, आंवला, परवल, नीम, बांसा इनके क्राथको गोगलके संग लेप करनेसे नेत्रशोथ, नेत्रशूल और नेत्रपाक भी दूर होता है॥४०॥

अव्रणं सव्रणं शुक्रं रागादीनपि नाशयेत्॥ एतैरेव घृतं पक्वं रोगाँस्ताँस्ता ञ्जयेद्भृशम्॥ ४१॥ आटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूटकाः॥ रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम्॥ ४२॥ वासाघनं निम्बपटोलपत्रतिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक्॥ कलिङ्गदार्व्वीदहनं च शुण्ठीभूनिम्बधात्रीविजयाविभीतकम्॥ ४३॥ तथा यवाः क्राथमथाऽष्टभागिकं पिबेद्धिमं पूर्वदिने कषायम्॥ तैमिर्य्यकण्डूपटलार्ब्बुदश्च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणञ्च॥ ४४॥ निहन्ति दाहं सरुजं सरागं नेत्रोत्थरोगान्सकलान्क्रमेण॥ ४५॥ पटोलवासकारिष्टगुडूचीत्रिफलाघनम्॥ पञ्चमूलं सयष्ट्याह्वं चन्दने विश्वभेषजम्॥ ४६॥ पटोलादिर्गणः प्रोक्तः सर्वनेत्ररुजापहः॥ वातपित्तकफोत्थाँश्च निहन्यात्सान्निपातिकम्॥ ४७॥ पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः शुद्धान्त्यो द्वादशेति च॥ प्रस्थार्द्धे सलिले क्राथमष्टभागावशेषितम्॥ ४८॥ पीत्वाऽभिष्यन्दमास्रावं रागं च तिमिरं जयेत्॥ अन्यानपि गदाञ्जित्वा प्रसादयति लोचने॥ ४९॥ दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्य्यात्स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः॥ स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाक्षितापैरभ्याहतानपि तथैव भिषक्चिकित्सेत्॥ ५०॥ आमं तु दोषं प्रसमीक्ष्य

कुर्य्याद्रक्तोष्मणा स्वेदमुदारबुद्धिः ॥ आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो यच्चापि तात्कालिकयोग्यवस्तु ॥ ५१ ॥ सूर्य्योपरागानलविद्युदादिविलोकने नोपहतेक्षणस्य ॥ सन्तर्पणं स्निग्धहिमादिकार्य्यं सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥ ५२ ॥ निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुता ॥ इत्कटांकुरजस्तद्वत्स्वरसो नेत्रपूरणे ॥ ५३ ॥ आजं घृतं क्षीरपात्रे मधुकं चोत्पलानि च ॥ जीवकर्षभकौ चैव कल्कैरेतैर्विपाचयेत् ॥ ५४ ॥ सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ क्षये कार्श्ये तथाङ्गानां हितकारकमुच्यते ॥ ५५ ॥ प्रथमे पटले दोषः साध्यः स्यादभिघातजः ॥ द्वितीये पटले याप्यस्तृतीये तु न सिद्धयति ॥ ५६ ॥ सैन्धवं दारुशुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् ॥ स्तन्यार्द्धकार्द्धं कर्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ॥ ५७ ॥ वाताभिष्यन्दवच्चाऽन्यवाते मारुतपर्यये ॥ पूर्वं भुक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजनात् ॥ ५८ ॥ वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ॥ सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चापि पिबेद् घृतम् ॥ ५९ ॥ अम्लाध्युषितशान्तर्थं कुर्य्यात्लेपान्सुशीतलान् ॥ तैल्वकं च घृतं सर्पिजीर्णं वा केवलं पिबेत् ॥ ६० ॥ शिराभेदं विना कार्य्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ ससर्पिः क्षौद्रबाहुल्यं शिरोत्पातस्य भेषजम् ॥ ६१ ॥

भा० टी०--इस पूर्वोक्त योगसे व्रणसहित वा व्रणरहित शुक्ररोग (नेत्रोंका फूला) एवं लालिमा आदि नेत्रदोष दूर होतेहैं । बहेडा, हरड आदि उक्त द्रव्योंके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत भी इन पूर्वोक्त रोगोंका नाशक है॥४१॥ वसौंटा, हरड, नीम, आंवला, मोथ, बहेडा, कपूरकचरी यह वासकादिगण नेत्रहितकारी और रक्तस्राव तथा कफका नाशक है ॥ ४२ ॥ वांसा, मोथ, नीम, परवल, कटुकी, गिलोय, लालचन्दन, कूडेकी छाल, इन्द्रजौ, दारुहलदी, चीता, शोंठ, चिरायता, आंवला, विजया (हरड), बहेडा, जव, इस बृहद्वासकादिगणके अष्टमांशशेषित क्वाथको शीतल बनाय प्रातःकालमें पीनेसे तिमिर, अंजना, नेत्रकण्डू, पटल, अर्बुद, सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र, नेत्रदाह, नेत्रपीडा, नेत्रराग आदि नेत्ररोग नष्ट होतेहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ परवल, बांसा, नीम, गिलोय, त्रिफला, मोथ, पञ्चमूल, मुलहठी, लालचंदन, सफेदचन्दन, शोंठ॥४६॥

यह पटोलादिगण सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाशक एवं वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उपजे हुए रोगोंका हारक है॥ ४७॥ तीन हरडें, तीन बहेडे और बारह आंवले फलोंको आधा प्रस्थ जलमें क्वथित करे जब अष्टमांश बाकी रहे तब उसे छानकर पीनेसे आस्राव, राग और तिमिर आदि नेत्ररोग नष्ट होकर नेत्र निर्मल होतेहैं॥ ४८॥ ४९॥ स्निग्ध, शीतल और मधुर द्रव्योंके द्वारा नेत्रोंको निर्मल बनावे। इसी भांति स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक आदि कारणोंसे उपजे हुए नेत्ररोगवालोंकी चिकित्सा करे॥ ५०॥ जबतक नेत्रदोष कच्चा है तबतक मुखकी भाफसे नेत्रोंपर स्वेद देवे और स्त्रीके दूधसे आश्च्योतनकरे एवं उस समयके अन्यान्य योग्य उपचार भी किये जायं॥ ५१॥ जिस मनुष्यके नेत्रोंकी ज्योति ग्रहणकालिक सूर्यके देखने एवं अग्नि और बिजुली आदिके देखनेसे उपहत हुईहै उसकेलिये स्निग्ध, मधुर, शीतल द्रव्योंके द्वारा नेत्रतर्पण करना, एवं सायंकालमें त्रिफलाका सेवन करना उचित है॥५२॥ हलदी, मोथ, त्रिफला, दारुहलदी वा इत्कटके अंकुवोंके स्वरसमें सक्कर और मधु मिलाय नेत्रमें भर देनेसे गुण होताहै॥ ५३॥ ८ सेर दूधमें मुलहठी, नीलकमल, जीवक, ऋषभक इनका कल्क डालकर बकरीका घृत पकावे॥ ५४॥ यह घृत सब प्रकारके नेत्राभिघातोंमें क्षय तथा शरीरकी कृशतामें भी उत्तम कहागयाहै॥ ५५॥ नेत्रके प्रथम पटलमें अभिघातजन्य वातादि दोष साध्य होतेहैं और द्वितीय पटलका दोष कष्टसाध्य, एवं तृतीयपटलका दोष असाध्य कहाहै॥ ५६॥ सेंधानोन, देवदार, शोंठ, बिजोरा नींबूका रस, घृत यह सब एकभाग और दूध एकभाग इन सबको सिद्ध करके शुष्कपाक हुएमें अञ्जन करे॥५७॥ अन्यतोवातनामक नेत्ररोग (घाटी, कान, शिर आदि स्थानोंमें स्थित हुए वायुके द्वारा नेत्र और भौंओंपर पीडा) में वाताभिष्यंदकी भांति चिकित्सा करे। इस रोगमें भोजनसे पहिले दूध वा घृत सेवना पथ्य है॥ ५८॥ किंवा, विदारीकन्द, कैथ, बृहत्पञ्चमूल और ककडासिंगीके रसमें दूधके संग पकाये हुए घृतको पीवे॥ ५९॥ अम्लाध्युषित नामक नेत्ररोग (खट्टे पदार्थोंके खानेसे नेत्रोंके मध्यमें पीडायुक्त नीली और प्रांतमें ललाई होना) की शांतिकेलिये शीतल लेप करे और जीर्णघृत पीवे॥ ६०॥ इस रोगमें शिराभेदनके अतिरिक्त शेष उपचार पित्ताभिष्यंदकी भांति करे। शिरोत्पातनामक नेत्ररोग (नेत्रोंकी नसोंका लाल होना) में प्रायः मधु, घृतकी अधिकतासे युक्त उपचार करने॥ ६१॥

तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम्॥ शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्य्यान्नेत्रशोणितशोधनम्॥ ६२॥ मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम्॥ वेतसाम्लं स्तन्ययुक्तं फाणितं तु ससैन्धवम्॥६३॥ गव्यक्षीरोत्थितं सर्पिस्तर्पणार्थं विधीयते॥ दृष्टिप्रसादनं श्रेष्ठं तिमिरस्याऽपकर्षणम्॥ ६४॥ अभिष्यन्दाधिमन्थाभ्यां कर्षिवाक्षिबलावहम्॥ बहुदोषाञ्जयत्याशु तथैवाशु नियच्छति॥६५॥

उत्तानशायिनः कार्य्यं निश्चलस्य यथासुखम् ॥ तर्पणाख्यं विधानं तद्भिषजा विधिवेदिना ॥ ६६ ॥ चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालती-कलिकान्विता ॥ व्रणशुक्रहरा वर्तिः शोणितस्य प्रसारणी॥६७॥ धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरस्तिलाश्च ॥ क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ ६८ ॥ तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्यक्षिपूरणात् ॥ समुद्रफेनदक्षाण्ड-त्वक्सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः ॥ ६९ ॥ शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रघ्ना शिग्रुवारिणा ॥७०॥दक्षाण्डत्वक्छिलाशङ्खकाचचन्दनगैरिकैः॥ तुल्यं रसाञ्जनं योगोऽयं पुष्पादिविलेखनः ॥ ७१ ॥ शिरीषबी-जमरिचैः पिप्पलीसैन्धवैरपि ॥ शुक्रे प्रघर्षणं कार्य्यमथवा सैन्धवे-न हि ॥ ७२ ॥ गृहीत्वा नक्तमालस्य फलचूर्णं तु बुद्धिमान् ॥ रसेन हि पलाशस्य कुशमौल्येन भावितम् ॥ ७३ ॥ वर्तिर्नेत्राञ्जने योज्या सर्वशुक्रव्रणापहा ॥ सैन्धवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खना-भयः ॥ ७४ ॥ सताम्ररजसः पिष्टा वर्तिः शुक्रविनाशिनी ॥ शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मनःशिला ॥ ७५ ॥ मनः-शिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥ एवं चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयो-स्तिमिरेषु च ॥ ७६ ॥ ताप्यं मधूकसारो वा बीजं चाक्षस्य सैन्धवम् ॥ मधुनाऽञ्जनयोग्याः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥७७॥ वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः ॥ क्षिप्रमंजनतो हन्ति शुक्रं व्रणसमन्वितम् ॥७८॥ तालस्य नालिकेरस्य तथैवातिरसस्य च ॥ करीरस्य च वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥ ७९ ॥ करभास्थि-कृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम् ॥ सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥८०॥ एतच्छुक्रेषु साध्येषु कृषीकरणमुत्तमम् ॥ यान्ति शुक्राणि साध्यत्वं तेषां परमभेषजम् ॥ ८१ ॥

भा० टी०–इसीप्रकार सेंधानोन और कसीसको दूधमें पीस कर अञ्जन करना भी शिरोत्पातमें गुणकारी है, शिराहर्ष नामक नेत्ररोग (शिरोत्पातके बिगडनेसे रक्ताश्रुओंका निकलना) में

रक्तशोधक अञ्जन करे ॥ ६२ ॥ मधु सहित रसोत वा मधुसहित कसीस वा दूध सहित अम-लवेत वा सेंधानोन सहित राव वा गायके सद्यः दुग्धसे निकला हुआ घृत नेत्ररोगियोंके तर्पणार्थ होताहै । इन पूर्वोक्त प्रयोगोंका तर्पण नेत्रोंको निर्मल बनाता, तिमिर रोगको खींचता, एवं अभिष्यंद और अधिमन्थसे पीडित हुए नेत्रोंको सुख देता और अनेक प्रकारके नेत्रदोषोंको जीत कर निगृहीत करताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ यह तर्पणविधान सुखपूर्वक उत्तानशायी और निश्चल हुए मनुष्यके करना उचित है ॥ ६६ ॥ चन्दन, गेरु, लाख, मालतीकी कली इनके द्वारा विधिपूर्वक अञ्जन करनेसे व्रणशुक्र (नेत्रका फूला) रोग नष्ट होता और रक्तशोधन होताहै ॥ ६७ ॥ आंवला, नीम, कैथके पत्ते, मुलहठी, लोध, खैर, तिल इनके शीतल काथसे नेत्रमें सेक करनेसे सब प्रकारका शुक्ररोग नष्ट होताहै ॥ ६८ ॥ तूतियाको जलके संग पीस कर नेत्रमें भर देनेसे नेत्रका फूला नष्ट होताहै । समुद्रफेन, मुरगीके अंडेकी छाल, सेंधानोन, मधु, ॥ ६९ ॥ सैंजनेके बीज इन सबको सैंजनेके रसमें पीस कर अंजन करनेसे भी नेत्रका फूला नष्ट होताहै॥७०॥ किंवा,मुरगीके अंडेकी छाल,मनशिल, शंख, कांच (एकप्रकारकी मिट्टी), चन्दन, गेरु इन सबका एक भाग और एकभाग रसोतको लेकर अंजन करनेसे नेत्रका फूला कटताहै ॥७१॥ इसीप्रकार शिरसके बीज, मरिच, पिपली, सेंधानोन इनके द्वारा वा केवल सेंधानोनसे फूलापर घर्षण करनेसे भी गुण होताहै ॥७२॥ किंवा, करंजफलके चूर्णको लेकर कुशमूल और पलाशके रसमें उसे भावना देवे पीछे उसके द्वारा नेत्रको आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होतेहैं ॥ ७३ ॥ अथवा सेंधानोन, त्रिफला, पिपली, कटुकी, शंखनाभि, ताम्रधूर इन सबको पीस कर अञ्जन करनेसे भी सव्रण फूला नष्ट होताहै ॥७४॥ ४ भाग शंखचूर, २ भाग मनसिल, एक भाग मरिच, आधा भाग सेंधानोन इन सबका चूर्ण बनाय अंजन करनेसे सव्रणशुक्र अव्रणशुक्र और सब प्रकारके तिमिर नष्ट होतेहैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ सोनामाखी वा महुआका सार वा बहेडेका बीज वा सेंधानोनको मधुके संग नेत्रमें आंजनेसे फूला नष्ट होताहै ॥ ७७ ॥ महीन कपूरकी धूलीमें वटका दूध मिलाय अंजन करनेसे शीघ्र ही सव्रणशुक्र नष्ट होताहै ॥ ७८ ॥ हरताल, नारियल, मुलहठी, कनीर, वांस इन सबके खारको जलके द्वारा नितार रक्खे । अनंतर हाथीके बच्चेकी हड्डीके चूरको उस क्षार जलमें सात वा आठ वार भावना देकर महीन चूर्ण बनावे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ यह चूर्ण साध्यरूप शुक्ररोगका उच्छेदक एवं असाध्य शुक्ररोगको भी साध्यभावमें पहुंचानेवाला है ॥८१॥

अथ पटोलादिघृतम्।

पटोलकटुकादार्वीनिम्बवासाफलत्रिकम्॥ दुरालभापर्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥ ८२ ॥ प्रस्थमामलकानाञ्च क्वथयेन्नल्वणेऽम्भसि ॥ पादशेषे कृते तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ कल्कैर्भूनिम्बकुटजकुष्ठयष्ट्याह्वचन्दनैः ॥ सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं

शुक्रयोर्हितम् ॥ ८४ ॥ घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम् ॥ कामलाह्वविसर्पघ्नं गण्डमालापहं च तत् ॥ ८५ ॥

भा० टी०–परवल, कटुकी, दारुहलदी, नीम, वांसा, त्रिफला, दुरालभा पित्तपापडा, त्रायमाण इन सबके एक २ पलभाग ॥ ८२ ॥ और एक प्रस्थ आंवला लेकर एक द्रोण जलमें क्वथित करे। जब चतुर्थांश रस रहे तब उसमें एक प्रस्थ घृत पकावे ॥ ८३ ॥ साथ ही चिरायता, कूठ, मुलहठी, लालचंदन, पिपली इनके कल्कको भी पकावे, सिद्ध होनेपर यह घृत नेत्रहितकारी एवं सव्रणशुक्र और अव्रणशुक्रका भी नाशक है ॥ ८४ ॥ इसके अतिरिक्त इस घृतके प्रयोगसे नासारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, वर्त्मरोग, त्वचारोग, मुखरोग, व्रण, कामला, विसर्प, गंडमाला यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ८५ ॥

अथ कृष्णाद्यं तैलम् ।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्मविश्वौषणैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः ॥ तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोक्षिशूलपाकात्ययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥८६॥ सैन्धवाजाजिपादश्च गोरोचनसमन्वितम् ॥ शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाऽजकापहम् ॥ ८७ ॥ शशकस्य कषायेण सर्पिषः कुडवं पचेत् ॥ यष्टीप्रपौण्डरीकस्य कल्केन मधुना समम् ॥ ८८ ॥ छगल्याः पूरणाच्छुक्रं क्षतपाकं तथाऽजका ॥ हन्ति भ्रूशंखशूलञ्च दाहरोगं विशेषतः ॥ ८९ ॥ नवीनाच्छोणिताच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः ॥ भवन्ति रुधिरं तेषां जलौकोभिरतो हरेत् ॥ ९० ॥ मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् ॥ ऋषिभिस्त्वरितं तस्मात्तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥९१॥ एकदेशे तु यो दोषो दृष्टौ तिष्ठति पीडितः ॥ यत्संस्थानः स भवति तादृशं तेन पश्यति ॥ ९२ ॥ तृतीये पटले कौश्चश्चतुर्थे नीलिकाह्वयम् ॥ साध्यमप्राप्तरागं स्यात्तिमिरं तु क्रियावतः ॥ ९३ ॥ याप्यं सम्प्राप्तरागं स्याद्वर्ज्यं पटलतां गतम् ॥ भिषगित्थं विचार्य्यैव तिमिरे भेषजं चरेत् ॥ ९४ ॥

भा० टी०–पिपली, वायविडङ्ग, मुलहठी, सेंधानोन, सोंठ, मिरच इनके कल्क द्वारा करीके दूधमें तैलको पकावे। सिद्ध होने पर इस तैलका नास लेनेसे तिमिर, शुक्र आदि नेत्र

रोग, शिरका शूल, नेत्रशूल, नेत्रपाक, नेत्रात्यय यह सब उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ८६ ॥ सेंधा-नोन और कालीजीरमें गोलोचन मिलाय लिसोडाकी छालके रसके संग नेत्रमें भर देनेसे अजका-रोग (नेत्रकी कनीनिकामें बकरीके मेंगनकी समान पीडायुक्त लाल फूला) नष्ट होता है ॥ ८७ ॥ खरहा, मृगमांसके कषायमें मुलहठी और पुंडरियाके कल्कको डालकर ३२ तोले बकरीके घृतको पकावे । सिद्ध होने पर मधुके संग नेत्रमें भर देनेसे शुक्र, क्षतपाक, नेत्रात्यय, अजका और भ्रूमंडलकी हड्डीका शूल तथा नेत्रदाह यह सब नष्ट होते हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ शुक्र, क्षतपाक, अत्यय, अजका यह रोग नवीन रक्तके विकारसे होते हैं अतः इन रोगोंमें जोंक लगाकर दूषित रक्तको निकाल देवे ॥ ९० ॥ नेत्रोंके नष्ट होनेका आदि कारण ऋषियोंने तिमिर रोग कहा है अतः तिमिररोगकी चिकित्सा करनेमें विलंब न करे ॥ ९१ ॥ जब नेत्रके एक भागमें वातादि दोषोंमेसे कोई एक दोष संकुल होकर टिकता है तब तिमिररोगकी प्रारम्भिक दशा जाननी । इस दशामें रोगी मनुष्य वातादि दोषोंके अनुसार काला, लाल, पीला आदि वर्णको देखता-है ॥९२॥ तीसरे पटलमें दोषके पहुंचनेसे क्रौञ्चनामक और चौथे पटलमें नीलिका नामक तिमिर रोग होता है । जबतक तिमिररोगमें ललाई नहीं आई तबतक यह रोग क्रियाशील पुरुषके साध्य होता है ॥ ९३ ॥ और जब ललाई छागई तब यह कष्टसाध्य होता और पटलभावको प्राप्त होनेसे असाध्य और त्याज्य है, साध्यासाध्यके विचारानन्तर ही इसमें चिकित्सा करे ॥ ९४ ॥

जीवंतिशाकं घृतसाधितं स्यादतण्डुलीयं वरवास्तुकञ्च ॥ चिल्ली तथा मूलकपोतिकाश्च दृष्टेर्हितं शाकमजाङ्गलञ्च ॥ ९५ ॥ पटोल-कर्कोटककारवेल्लवार्ताकुतर्कारिकरीरजातिः ॥ शाकानि हन्ताऽऽर्त-गलानि चैव हितानि दृष्टेर्घृतसाधितानि ॥ ९६ ॥ तिमिरं रागमा-प्नोति रागात्काचत्वमेति तत् ॥ काचात्सञ्जायते नीली तदाऽ-न्धो जायते नरः ॥ ९७ ॥ लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णीकृतां प्रगाढां तिमिरे तु पित्तजे ॥ समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ ९८॥ कल्कः क्वाथोऽथ वा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ॥ मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥ ९९ ॥ यस्त्रैफलं चूर्णमपास्य बालां सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम् ॥ स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो नरेन्द्रः ॥ १०० ॥ जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन॥ त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥ १०१ ॥ जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशः सम्पूर्य

मुखरन्ध्रम् ॥ निर्दयमभ्यज्याक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः ॥ ॥ १०२ ॥ भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ॥ अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १०३ ॥ रविरिव भूगततिमिरं तिमिरं विनिहन्ति नावनात्सर्पिः ॥ शतवर्षस्थितकठिनं सप्ताहादञ्जनं नियतम् ॥ १०४ ॥ कनकस्य फलं शंखसैन्धवं त्र्यूषणं सिता ॥ फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥ १०५ ॥ सर्वमेतत्समं कृत्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ तिमिरं पटलं काचं मर्मशुक्रं व्यपोहति ॥ १०६ ॥

भा० टी०–जीवन्ती शाक, वेथुआ शाक, चिल्ली शाक, मूली, पोई और जांगलदेशीय शाकोंके अतिरिक्त शाकोंको भी घृतमें पका कर खानेसे नेत्ररोगमें गुण होताहै॥९५॥पटोल,ककोडा, करेले, वैंगुन, जयन्ती, बांसका अंकुआ, नीली कटसरैया इनके शाक भी घृतमें पकाये जानेसे नेत्रहितकारक होतेहैं ॥ ९६ ॥ प्रथम तिमिरमें ललाई और फिर काचरोग तथा इसके पीछे नीलिका उत्पन्न होकर मनुष्य अन्धा होजाताहै ॥ ९७ ॥ पित्तदोषसे उपजे हुए तिमिररोगमें त्रिफलाके महीन चूर्णको मधुके संग चाटे एवं वातजन्य तिमिररोगमें त्रिफलाको तैलके संग और कफजन्य तिमिरमें मधुके संग सेवन करता रहे ॥ ९८ ॥ त्रिफलाके कल्कको वा क्वाथको वा चूर्णको मधु वा घृतके संग सेवन करनेसे सब प्रकारके तिमिर नष्ट होतेहैं ॥ ९९ ॥ जो मनुष्य स्त्रीभोगसे विरक्त होकर त्रिफलाके चूर्णको मधु घृतके संग सायंकालमें सेवन करताहै उसको सब प्रकारके नेत्रविकार कैसे छोड चलतेहैं जैसे निर्धन राजाको सेवक लोग ॥ १०० ॥ त्रिफलाके कषायसे प्रतिदिन प्रातःकालमें नेत्रोंको धो देनेसे नेत्र रोग नष्ट होते और फिर नहीं उपजते ॥ १०१ ॥ प्रतिदिन प्रातःकालमें उठते ही मुखमें कुल्ला भर कर जलके द्वारा नेत्राञ्जन करनेसे भी मनुष्यके तिमिररोग तत्काल नष्ट होतेहैं ॥१०२॥ अथवा भोजन करके हाथ छालनेके अनंतर ही दोनों करतलोंको नेत्रों पर मलनेसे थोडे ही कालमें तिमिर रोग नष्ट होतेहैं ॥ १०३ ॥ किंवा, अनेक वार धोये हुए घृतसे नेत्राञ्जन करनेसे सात ही दिनमें सैकडों वर्षसे संचित हुआ कठिनरूप तिमिर भी नष्ट होताहै ॥ १०४ ॥ जमालगोटा, शंख, सेंधानोन, त्रिकटु, सक्कर, समुद्रफेन, रसोत, मधु, वायविडङ्ग, मनसिल ॥ १०५ ॥ इन सबके समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीस कर नेत्रांजन करनेसे तिमिर, पटल, काच और मर्मस्थानका फूला भी नष्ट होताहै ॥ १०६ ॥

अथ चन्द्रोदया वर्तिः ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ विभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनःशिला ॥ १०७ ॥ सर्वमेतत्समं कृत्वा छागीक्षीरेण

पेषयेत् ॥ नाशयेत्तिमिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च ॥ १०८ ॥ अधिकानि च मांसानि यस्तु रात्रौ न पश्यति ॥ अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन शातयेत् ॥ १०९ ॥ वर्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥ ११० ॥ दिवा नैव प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णमंजनम् ॥ विरेकदुर्बला दृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति॥१११॥ तस्माद्धि स्वापावसरे नक्तमंजनमिष्यते ॥ रात्रौ स्वप्नगुणादक्षि प्रसीदत्येभिरञ्जनैः ॥ ११२ ॥ हरीतकी हरिद्रा च पिप्पली लवणानि च ॥ कण्डूतिमिरजिद्वर्तिर्न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ११३ ॥

भा० टी०—हरड, वचा, कूठ, पिपली, मरिच, बहेडेकी मज्जा, शंखनाभि, मनसिल॥१०७॥ इन सबके समभागोंको बकरीके दूधमें पीस कर नेत्राञ्जन करनेसे तिमिर, कण्डू, पटल, अर्बुद, नेत्रप्रान्तमें अधिकमांसका होना, रतन्धा इन सब नेत्ररोगोंको नष्ट करता है। तथा बहुत पुराने फूलाको एक ही मासमें काटता है इस योगका नाम चन्द्रोदया वर्ति है॥१०८॥१०९॥११०॥ तीक्ष्ण अञ्जनको नेत्रोंमें दिनमें प्रयुक्त नहीं करना, नहीं तो नेत्रोंसे अधिक जल टपकनेके कारण दुर्बल हुई दृष्टि सूर्यकी चौंधसे नष्ट होती है ॥ १११ ॥ अतः ऐसे तीक्ष्ण अञ्जनोंको रात्रिमें सोते समय प्रयुक्त करे क्योंकि अञ्जनके अनन्तर नींद आनेसे गुण प्राप्त होकर नेत्र प्रसन्न होतेहैं॥ ११२ ॥ हरड, हलदी, पिपली, लवण इनको पीस कर अञ्जन करनेसे कण्डू और तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ ११३ ॥

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसं चाप्ययोरजः ॥ नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनश्चापि सरित्पतेः ॥ ११४ ॥ आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने ॥ सप्तरात्रिस्थितं भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्तयेत ॥ ॥११५॥ एषा दृष्टिप्रदा वर्तिरन्धस्य क्लिष्टचक्षुषः ॥ अशीतितिलपुष्पाणि षष्टिपिप्पलितण्डुलाः ॥११६॥ जातीपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि च षोडश॥ एषा कुसुमिका वर्तिर्गतचक्षुषि वर्त्यते॥११७॥ व्योषोत्पलाभयाकुष्ठताक्ष्यैर्वर्तिः कृता हरेत् ॥ अर्बुदं पटलं काचं तिमिराण्यश्रुविस्रुतिम् ॥११८॥ कुंकुमागरुकर्पूरकुष्ठैलापत्रकेशरैः ॥ रक्तचन्दनतुल्यांशैः सममेभिः सुवीरकम् ॥ ११९ ॥ चूर्णाञ्जनमिदं श्रेष्ठं नराणां तिमिरापहम् ॥ सर्वनेत्रामयान्हन्ति चूर्णाञ्जनमनु-

त्तमम् ॥ १२० ॥ एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी ॥ सलिलैः पिष्ट्वा वर्तिरियं तिमिरार्मपटलकाचघ्नी ॥ १२१ ॥

भा० टी०–त्रिफला, मुरगीके अण्डेकी छाल, कसीस, मंडूर, नीलकमल, वायविडंग, समुद्रफेन इन सबको बकरीके दूधमें पीस कर सात रात्रितक तांबेके पात्रमें बकरीके ही दूधमें भावना देवे फिर पहिलेकी भांति उसे पीस कर नेत्राञ्जन करे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ यह अंजनवर्ति अन्धे और पीडित नेत्रवाले मनुष्यके लिये दृष्टिप्रदा है । ८० फूल तिलोंके, ६० पिपली, तण्डुल, ५० फूल जातीके, १६ काली मिरच इन सबको पीस कर कुसुमिकावर्ति सिद्ध होतीहै । यह अंजनवर्ति नष्ट नेत्रवाले मनुष्यके नेत्रमें वरती जातीहै ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ त्रिकटु, नीलकमल, अभया (हरड), कूठ, रसोत इनको पीस कर नेत्रांजन करनेसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर और आंसुओंका निकलना यह सब उपद्रव दूर होतेहैं ॥ ११८ ॥ कुंकुम, अगर, कपूर, कूठ, इलायची, तेजपात, केशर इन सबके सम भाग और इनके समान लालचन्दन तथा सबोंके समान सफेद सुर्माको लेकर चूर्णाञ्जन सिद्ध होताहै । यह अञ्जन तिमिरनाशक तथा अन्यान्य नेत्ररोगोंका भी नाशक है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ एक भाग पिपली और दो भाग हरडको जलमें पीस कर नेत्राञ्जन करनेसे तिमिर, अर्म, पटल, काच यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १२१ ॥

अथ चन्द्रप्रभा वर्तिः ।

अंजनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका ॥ विभीतकस्य मध्यन्तु शंखनाभिर्मनःशिला ॥ १२२ ॥ एतानि समभागानि छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ छायाशुष्कां कृतां वर्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥ ॥ १२३ ॥ अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम् ॥ अधिमांसार्मणी चैव यश्च रात्रौ न पश्यति ॥ १२४ ॥ वर्तिश्चन्द्रप्रभा नाम सर्वानेतान्प्रसाधयेत् ॥ प्रसादयेच्च नेत्राणि कुर्य्यात्पद्मोपमानि च ॥ १२५ ॥

भा० टी०–अञ्जन, सफेद मिरच वा सहिजनेके बीज, पिपली, मुलहठी, बहेडेकी मज्जा, शंखनाभि, मैनशिल इन सबके समभागोंको बकरीके दूधमें पीस कर वर्तिका बनाय छायामें सुखावे । इस वर्तिकाके प्रयोगसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, अर्म, रतन्धा यह सब रोग नष्ट होकर नेत्र निर्मल और कमलके समान होतेहैं ॥ १२२–१२५ ॥

अथ नागार्ज्जुनवर्तिः ।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टीतुत्थरसांजनम् ॥ प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश ॥१२६॥ द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्तिः कार्य्या

नभोम्बुना ॥ नागार्ज्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके॥ १२७॥ नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां विशेषतः ॥ सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥ १२८ ॥ किंशुकस्वरसेनाऽथ पैन्यपुष्पं च रक्तताम् ॥ अंजनाल्लोधतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ १२९ ॥ चिरं संछादिते नेत्रे वस्तमूत्रेण संयुता ॥ उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥ १३० ॥ पिप्पलीं सनगरोत्पलपत्रां वर्तये-त्समधुकां सहरिद्राम् ॥ एतया सततमञ्जयितव्यं यः सुवर्णसम-मिच्छति चक्षुः ॥ १३१ ॥ व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलांजनसं-स्कृता ॥ गुटिका जलपिष्टेयं कोकिलातिमिरापहा ॥ १३२ ॥ चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः ॥ जलपिष्टैरियं वर्तिरशेषति-मिरापहा ॥ १३३ ॥ त्र्यूषणत्रिफलावल्कसैन्धवानि मनःशिला॥ क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्तिः शस्ता कफापहा ॥ १३४ ॥ हरिद्रानि-म्बपत्राणि पिप्पलीमरिचानि च ॥ विडङ्गं भद्रमुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम् ॥१३५॥ सर्वाणि समभागानि गवां मूत्रेण पेषयेत्॥ कोलास्थिमात्रगुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ १३६॥ वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा ॥ सिद्धाम्भसा च कण्डूञ्च स्त्रीस्तन्येन तु वेदनाम् ॥ १३७ ॥

भा० टी०–त्रिफला, त्रिकटु, सेंधानोन, मुलहठी, तूतिया, रसोत, पुंडरिया, वाय-विडङ्ग, लोध, तामा ॥ १२६ ॥ इन चौदह वस्तुओंको वर्षाके जलमें पीस कर वर्तिका बना लेवे इस वर्तिकाका यह विधान पाटलिपुत्र नगरमें एक स्तंभपर नागार्ज्जुनका लिखा हुआ था ॥ १२७ ॥ यह वर्तिका विशेष कर तिमिर और पटलोंका नाशक है किन्तु स्त्रीके दूधके संग इसके प्रयोगसे तात्कालिक नेत्रकोप और ढांकके स्वरसमें घिस कर प्रयुक्त करनेसे पैन्यपुष्प और नेत्रोंकी ललाई दूर होतीहै, एवं लोधके क्वाथके संग इसे प्रयुक्त करनेसे तत्काल तिमिर रोग दूर होताहै ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इसी भांति वकरीमूत्रके संग इस वर्तिके अञ्जन करनेसे नेत्राच्छादित रोग तथा कठिनाईसे नेत्रोंको मीचना दूर होता है॥ १३०॥ पिपली, शोंठ, नील कमलके पत्ते, मुलहठी, हलदी इनकी वर्तिकासे नित्य नेत्रोंको आंजता रहे यदि नेत्रोंकी कान्ति सुवर्णके समान बनाना चाहे ॥ १३१ ॥ त्रिकटु, मण्डूर, सेंधानोन, त्रिफला,

अञ्जन इनके द्वारा बनाई हुई गुटिकाको जलमें पीस कर अञ्जन करनेसे कोकिला और तिमिर-रोग नष्ट होतेहैं ॥ १३२ ॥ चन्दन, त्रिफला, सुपारी, ढांकका गोंद इन सबके समभागोंको जलमें पीस कर बत्ती बनाय नेत्राञ्जन करनेसे तिमिररोग नष्ट होता है ॥ १३३ ॥ त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, सेंधानोन, मैनशिल इन सबके समभागोंको पीस कर बत्ती बनाय नेत्राञ्जन करनेसे क्लेद, उपदेह, कण्डू, और कफ यह सब नष्ट होते हैं ॥ १३४ ॥ हलदी, नीमके पत्ते, पिप्ली, मरिच, वायविडंग भद्रमोथ, शोंठ इन सबके समभागोंको गोमूत्रमें पीस कर बेरकी गुठलीकी समान गुटिका बनावे। पीछे उन्हें छायामें सुखा कर जलमें घिस कर अञ्जन करनेसे तिमिर नष्ट होता और मधुके संग प्रयुक्त करनेसे पटलरोग एवं काञ्जीके संग प्रयुक्त करनेसे कण्डू और स्त्रीके दूधके संग प्रयुक्त करनेसे नेत्रशूल दूर होताहै ॥१३५॥१३६॥१३७॥

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि द्वे रजनी सहसैन्धवकानि ॥ बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥ १३८ ॥ अञ्जनकं जनरञ्जनमेतद्धन्ति तमस्तिमिरं पटलश्च ॥ विच्चटशुक्रमथार्ज्जुनकं च दृष्टिः पश्यति वृद्धजनानाम् ॥१३९॥ नीलोत्पलं विडङ्गानि पिप्पली रक्तचन्दनम्॥अञ्जनं सैन्धवं चैव सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥१४०॥ पत्रगैरिककर्पूरयष्टीनीलोत्पलाञ्जनम्॥ नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम् ॥१४१॥ त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयांसि गोमूत्रे॥ नागं सप्त निषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः॥१४२॥ दद्यादुशीरनिर्य्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ॥ तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं क्षिपेद् घने ॥ १४३ ॥ शीते चाऽस्मिन्हितमिदं सर्वजे तिमिरे ध्रुवम् ॥ नेत्रसौभाग्यजननं महोत्साहविवर्द्धनम् ॥ १४४ ॥ धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रैः सर्पिषा च रसक्रिया ॥ पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्य्यपटलापहा ॥ १४५ ॥ शृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् ॥ नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १४६ ॥ सर्वेषां रूपलिङ्गानां नाशनाल्लिङ्गनाशकः॥ श्लैष्मिकस्तत्र वेध्यः स्यात्षडुपद्रववर्ज्जितः ॥ १४७ ॥ कासश्वासक्षतक्षीणकर्णशूलाक्षिरोगिणाम् ॥ गर्भिणीक्षामभीरूणां तृष्णाकुलितचेतसाम् ॥१४८॥ भयलोलमनस्कानां जराजीर्णात्मनां नृणाम् ॥ न विध्येदशिराहार्णां लिङ्ग-

नाशं भिषग्वरः ॥ १४९ ॥ अथ दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः॥ पटोलाद्येन सन्नह्य त्रिफलाद्येन सर्पिषा ॥ १५० ॥ निवाते च निराबाधे शयने शाययेच्च तम् ॥ सर्पिषाऽभ्यक्तवस्त्रान्तोपगूढनयनं नरम् ॥ १५१ ॥ क्षवथुं कासमुद्गारं ष्ठीवनं पानमम्भसः ॥ अधोमुखस्थितिं स्नानं दन्तधावनभक्षणम् ॥ १५२ ॥ सप्ताहं नाऽऽचरेत्स्नेहपीतवच्चाऽत्र यन्त्रणा ॥ शक्तितो लंघयेत्सेको रुजि कोष्णेन सर्पिषा ॥ १५३ ॥ सव्योषामलकं वाट्यमश्नीयात्सघृतं द्रवम् ॥ विलेपीं वा त्र्यहाच्चाऽस्य क्वाथैर्मुक्ताक्षि सेचयेत् ॥ १५४ ॥ वातघ्नैः सप्तमे त्वह्नि सर्वथैवाऽक्षि मोचयेत्॥ पथ्यमेवाऽऽचरेत्तावद्यावत्स्थैर्यं दृशोर्भवेत् ॥ १५५ ॥ रागस्तथाऽर्बुदः शोफो बुद्बुदः केकराक्षिता॥अधिमन्थादयोऽप्यन्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः॥ १५६॥ अहिताहारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ रुजायामक्षिरागे च भूयो योगान्निबोध मे ॥ १५७ ॥ कल्किताः सघृता दूर्वा यवगैरिकसारिवाः ॥ मुखालेपे प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥ १५८॥ वयस्थासारिवानन्तामञ्जिष्ठामधुकैरपि॥आजक्षीरयुतो लेपः सुखोष्णः सुखदायकः ॥ १५९ ॥ वातघ्नसिद्धे पयसि श्रृतं सर्पिश्चतुर्गुणे ॥ काकोल्यादिप्रतीवापं सर्वकर्मसु शस्यते॥ १६०॥ शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धैरुष्णैश्च भोजनैः ॥ ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान्कीर्तितं यथा ॥ १६१ ॥

भा० टी०–त्रिकटु, करञ्जुवेके फल, हलदी, दारुहलदी, सेंधानोन, बेलकी जड, वरनाकी जड, वारिचर इन १० वस्तुओंके अञ्जनसे तिमिर, पटल, शुक्र, अर्जुनक यह सब नष्ट होकर बुड्ढोंकी आंखे भी देखने लगती हैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ नीलकमल, वायविडंग, पिपली, लालचन्दन, अंजन, सेंधानोन इनको पीसकर नेत्राञ्जन करनेसे तत्काल तिमिर नष्ट होता है॥ १४० ॥ तेजपात, गेरु, कपूर, मुलहठी, नीलकमल, अंजन, नागकेशर इनको पीस कर नेत्राञ्जन करनेसे सब प्रकारके तिमिर नष्ट होते हैं ॥ १४१ ॥ त्रिफला, भृङ्गराज, शोंठ, मधु, घृत, नागकेशर इनको गोमूत्रके संग नेत्रमें सेचित करनेसे गरुडके समान नेत्र बनते हैं॥१४२॥ खशके काढेमें पिपली और सेंधानोनका चूर्ण मिलाय पकावे और घृत डाल कर फिर भी पकावे।

जब पकते २ गाढा होजाय तब उसे उतार कर ठण्ढे होने पर उसमें मधु मिला देवे ॥ यह योग सब प्रकारके तिमिर रोगोंमें गुणकारी एवं नेत्रोंका सौभाग्यजनक और उत्साहवर्द्धक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ आंवला, रसोत, मधु, घृत इनके द्वारा रसक्रिया करनेसे पित्तवात-जन्य नेत्ररोग और तिमिर, पटल नष्ट होते हैं ॥ १४५ ॥ अदरख और भृङ्गराजके चूर्णमें मुलहठीके तैलको मिलाय नास लेनेसे महापटल नष्ट होता है ॥ १४६ ॥ सब प्रकारके लाल पीली वस्तुओंके स्वरूप और चिह्नोंकी पहिचान जब नेत्रोंसे नष्ट होती है तब जानना कि, अब लिङ्गनाश नामक रोग (बादल सरना) उत्पन्न हुआ । कफसे उपजा हुआ लिङ्गनाशरोग यदि आवर्तकी आदि छः उपद्रवोंसे रहित हो तो उसे शलाकासे वेध देना । शेष दोषोंमें यह क्रिया नहीं ॥ १४७ ॥ परन्तु ध्यान रहे कि, कास श्वास वाले, क्षतक्षयी, कर्णशूली, अन्य नेत्ररोगी, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल, डरपोक, लोभी, मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध और शिराकर्मके अयोग्य मनुष्योंके लिङ्गनाशको न वेधे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ भेदन करने पर यदि रोगी लाल पीली आदि वस्तुओंको देखने लगे तो तत्काल शलाकाको धीरे २ निकाल लेवे और उसी समय पटोलादि वा त्रिफलादि घृतके द्वारा व्रणका उपनाहन करे ॥ १५० ॥ घृतसे अभ्यक्त किये हुए नेत्रों पर वस्त्र लपेट कर रोगीको ऐसे स्थान पर शयन करावे जहां किसी भांतिका खटका वा वायुका सञ्चार न हो ॥ १५१ ॥ ऐसे विद्धनेत्रवाले मनुष्योंको उचित है कि, सात दिन तक छींक लेना, कास, डकारना, थूंकना, ठण्ढे जलको पीना, नीचे मुख करके बैठना, स्नान करना, दन्त-धावन, कठिन पदार्थोंको चबाना इत्यादि कर्म न करै । यथाशक्ति लंघन करावे और यदि नेत्रोंमें पीडा हो तो कुछ गरम घृतसे सेक करे ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ और त्रिकटु, आंवला, पोहकरमूल इनके द्रवको घृतके संग तीन दिन तक खावे किंवा, विलेपीको सेवें । एवं प्रति तीसरे दिन नेत्र खोल कर वातनाशक द्रव्योंसे सेक करे । सातवें दिन सर्वथा नेत्रको खोल देवे किन्तु तब तक पथ्यसे ही रहे जब तक दृष्टि स्थिर होती है ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ अयोग्य वेधसे राग, कोप, अर्बुद, बुद्बुद, केकराक्षिता (टेढा देखना), तथा अधिमन्थ आदि नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं ॥ १५६ ॥ इसीभांति अपथ्य भोजनसे भी उक्त रोगोंकी संभूति जाननी अतः यथाशक्ति उपचार करने उचित हैं, विद्धदशामें नेत्रोंमें पीडा और राग उपजें तो इसका उपाय सुनो ॥ १५७ ॥ दूध, जौ, गेरू, अनन्तमूल इनके कल्कमें घृत मिलाय मुखपर लेप करे तो नेत्रपीडा और नेत्ररोग शान्त होता है ॥ १५८ ॥ दूधी, अनन्तमूल, धमासा, मंजीठ, मुलहठी इनके कल्कमें बकरीका दूध मिलाय मन्दोष्ण करके लेप करनेसे परम सुख मिलता है ॥ १५९ ॥ वातनाशक द्रव्योंमें सिद्ध किये हुए चौगुने दूधमें काकोल्यादिगणीय द्रव्योंका कल्क मिलाय घृत पकावे । यह घृत सब कर्मोंमें श्रेष्ठ है ॥ १६० ॥ इसप्रकार उपाय करने और स्निग्धोष्ण भोजनोंसे भी यदि नेत्रपीडा शान्त न होय तो अधिमन्थकी तरह शिरादाह करे ॥ १६१ ॥

दृष्टेरतः प्रसादार्थमञ्जनं शृणु मे शुभे ॥ मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरी-षस्य द्वयोरपि ॥ १६२ ॥ मालत्याश्चैव तुल्यानि भङ्क्त्वा वैडूर्य्य-मेव च ॥ अजाक्षीरेण निष्पिष्य ताम्रे सप्ताहमाचरेत् ॥ १६३ ॥ प्रविधाय ततो वर्त्तिं योजयेदञ्जने भिषक् ॥ स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला ॥१६४॥ मरिचानि च तावन्ति कारयेद्वापि पूर्ववत् ॥ रसाञ्जनघृतक्षौद्रतालीसस्वर्णगैरिकैः ॥ १६५ ॥ गोश-कृद्रससंयुक्तैः पित्तोपहतदृष्टये ॥ नलिन्युत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रस-संयुतम् ॥ १६६ ॥ गुटिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्योर्द्वयोर्हितम् ॥ नदीजशंखत्रिकटून्यञ्जनं च मनःशिला ॥ १६७ ॥ रजन्यौ द्वे चन्दनञ्च गोशकृद्रसनिर्मिता ॥ गुटिकाऽञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्योर्द्व-योर्हितम् ॥ १६८ ॥ शफरीमत्स्यक्षारैर्नक्तान्ध्यमञ्जनं हन्ति ॥ तद्वद्रामठकञ्च कर्णमलश्चैकशोऽञ्जनाद्धन्ति ॥ १६९ ॥ कणा-छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता ॥ अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ १७० ॥

भा० टी०–अब तुम मेरेसे नेत्रोंको निर्मल बनानेवाले अञ्जनोंको सुनो । मेषशृङ्ग, (अमृतविषवङ्ग), शिरस, ॥ १६२ ॥ मालती इन सबके समभाग फूलोंको और कायफलको बकरीके दूधमें पीस कर सात दिन तक तामेंके पात्रमें रखे रहे ॥ १६३ ॥ पीछे उसकी वर्त्ति बनाय नेत्राञ्जन करे, एवं काला सुरमा, मूंगा, समुद्रफेन, मैनशिल इन सबके सम भाग॥१६४॥ और इतनीहीं काली मिरचोंको लेकर पूर्ववत् बकरीके दूधमें पीस कर अञ्जनवर्ति बनावे ॥ किंवा, रसोत, घृत, मधु, तालीसपत्र, नागकेशर, गेरु ॥ १६५ ॥ इनके योगमें गोवरका रस मिलाय नेत्राञ्जन करनेसे पित्तज रोगसे पीडित हुए नेत्रोंको गुण होताहै । एवं कमल और नील कमलके केशरमें गोवरका रस मिलाय गुटिकाञ्जन बनावे ॥ १६६ ॥ यह अञ्जन रात दिन प्रयोजनीय है। इसी भांति काला सुर्मा, शंख, त्रिकटु, अञ्जन, मैनशिल ॥१६७॥ हलदी, दारुहलदी, चन्दन इनको गोवरके रसमें पीस कर गुटिका बनाय नेत्राञ्जन करना रातदिन भला है ॥ १६८ ॥ सहरी मछ-लीकी खार बनाय नेत्राञ्जन करनेसे रतन्धा रोग नष्ट होताहै । इसी प्रकार हींग और कर्णमलके अञ्जनका फल जानिये ॥ १६९ ॥ बकरीके यकृत् (हृदयके दाहिनी ओरका मांसपिंड) में पिपलीको पकावे पीछे उसीमांसके रसमें उसे पीस कर नेत्राञ्जन करनेसे भी रतन्धारोग नष्ट होताहै । इसी भांति मधु सहित कालीमिरचका फल जानिये ॥ १७० ॥

अथ त्रिफलामोदकम् ।

कुडवार्द्धं हरीतक्यास्ततोऽर्द्धेन विभीतकम् ॥ धात्रीफलानां कुडवं शतावर्य्याः पलद्वयम् ॥ १७१ ॥ लोहचूर्णञ्चैकपलं मधुयष्ट्याः पलद्वयम् ॥ रङ्गसैन्धवकृष्णानां पलार्द्धन्तु पृथक्पृथक् ॥ १७२ ॥ चूर्णितं तुल्यसितया मोदितं मधुसर्पिषा ॥ यथाग्नि भक्षयेत्प्रातः सायं मितहिताशनः ॥ १७३ ॥ तिमिरं पटलं काचं पिल्लं नक्तान्ध्यमर्ज्जुनम् ॥ स्रावार्मरक्तराजीश्च पीडां क्लेदं व्यपोहति ॥ १७४ ॥ हन्ति नेत्राञ्जनं शोथं दाहरागपरिस्रवान् ॥ दुःखिकां सव्रणां शुक्रं वर्त्मरोगाँश्च नाशयेत् ॥ १७५ ॥

भा० टी०–१६ तोले हरड, ८ तोले बहेडे, ३२ तोले आंवला, २ पल शतावरी, ॥ १७१ ॥ एक पल मंडूर, २ पल मुलहठी, २ तोले सुहागा, २ तोले सेंधा, २ तोले पिपली ॥ १७२ ॥ और इन सबके समान सक्करको एक साथ चूर्णित करके मधु घृत मिलाय मोदक बनावे । प्रति दिन पथ्यभोजन करता हुआ प्रातःकाल और सायंकालमें अग्निबलके अनुसार इन मोदकोंको खावे ॥ १७३ ॥ इससे तिमिर, पटल, काच, पिल्ल, रतौंधी, अर्ज्जुनस्राव, अर्म, रक्तराजी, वेदना, क्लेद, शोथ, दाह, राग, परिस्रव, दुःखिका, सव्रणशुक्र, वर्त्मरोग यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

अथ त्रिफलाघृतानि ।

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ॥ तिमिराण्यचिराद्धन्यात्पानमेतन्निशामुखे ॥ १७६ ॥ त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ॥ वृषस्यैव रसप्रस्थं शतावर्य्याश्च तत्समम् ॥ १७७ ॥ अजाक्षीरगुडूच्योश्च ह्यामलक्या रसं तथा ॥ प्रस्थंप्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ १७८ ॥ कल्कः सिताकणाद्राक्षात्रिफलानीलमुत्पलम् ॥ मधुकं क्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका ॥ १७९ ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ऊर्द्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते ॥ १८० ॥ यावन्तो नेत्ररोगास्तान्पानादेवाऽपकर्षति ॥ अरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ १८१ ॥ रक्ताख्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥ अभिष्यन्देऽधिमन्थे च

पक्ष्मकोपे च दारुणे ॥१८२॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च॥ अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिकाम् ॥१८३॥ स्रवतो वातपित्ताभ्यां पाकश्चैवाप्यदूरदृक् ॥ गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥१८४॥ सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥ पूजितं सर्वथा लोके भिषग्भिरनुमोदितम् ॥ १८५ ॥

भा० टी०–त्रिफलाके क्काथ और कल्कके द्वारा दूधके संग पकाहुआ घृत सायंकालमें उपयुक्त होनेसे शीघ्र ही तिमिरनाशक होताहै ॥ १७६ ॥ त्रिफलाका रस १ प्रस्थ, भृंगराजका रस १ प्रस्थ, वांसेका रस १ प्रस्थ, शतावरीका रस १ प्रस्थ ॥ १७७ ॥ बकरीका दूध १ प्रस्थ, गिलोयका रस १ प्रस्थ, आंवलेका रस १ प्रस्थ इन सबको एकत्र करके घृत पकावे ॥ १७८ ॥ पकाते समय शक्कर, पिपली, दाख, त्रिफला, नील कमल, मुलहठी क्षीरकाकोली, गिलोय, कटेरी इनके कल्कको उसमें डाल देवे ॥ १७९ ॥ जब घृत भलीभांति सिद्ध होजाय तब उसे एक सुन्दर पात्रमें रखदेवे । इसको भोजनके आदि, मध्य और अन्तमें पीनेसे ही सब प्रकारके नेत्ररोग खींच आतेहैं और रक्तयुक्त नेत्ररोग, अतिरक्तयुक्त, दुष्टरक्तयुक्त, अतिस्रुत, रात्र्यन्ध, तिमिर, काच, नीलिका, पटल तथा वात, पित्त, कफसे उपजेहुए नेत्ररोग, अदृष्टि, मन्ददृष्टि, कफवातदूषित दृष्टि, नेत्रस्राव, वातपित्तजन्य नेत्रकण्डू, नेत्रपाक, दूरकी वस्तुको न देखना इन सब रोगोंको यह घृत नष्ट करताहै और दृष्टिको गृध्रदृष्टिकी समान बनाय बल, वर्ण और जठराग्निको बढाताहै, अतएव लोकमें वैद्योंने इसका अनुमोदन और पूजन कियाहै ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

अथ त्रैफलं घृतम् ।

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ॥ प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥ १८६ ॥ नीलोत्पलं सारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्॥कार्षिकं पयसा तुल्यं कमिन्नं त्रिफलांशिकम्॥१८७॥ घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ॥ तिमिरं त्रिदोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥ १८८ ॥ विसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च ॥ नीलित्वं पलितश्चैव केशानां पतनं तथा ॥ १८९ ॥ विषमं ज्वरमर्माणि शुक्रं चाऽऽशु व्यपोहति ॥ अन्ये च सहजा रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मना ॥ १९० ॥ तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ न चैवाऽस्मात्परं किञ्चिद्यथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ १९१॥

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधु प्रमेलयेत् ॥ तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिप्रसादनम् ॥ १९२ ॥ गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं हितञ्च तैलं तिमिरेषु नस्यम् ॥ घृतं शृतं केवलमेव पैत्तिके तथानुतैलं पवनासृगुत्थयोः ॥ १९३ ॥ जीवकर्षभकमेदा द्राक्षासुमति निदिग्धिका वृहती ॥ मधुकं बला विडङ्गं मंजिष्ठा शर्क्करा रास्ना ॥ ॥ १९४ ॥ नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् ॥ पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ १९५ ॥ तैलं वा यदि सर्पिर्दत्त्वा क्षीरे चतुर्गुणे पक्वम् ॥ मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितं चाऽकालजं हनुस्तम्भम् ॥ १९६ ॥ कासं श्वासं शोषं ग्रीवास्तम्भं तथा व्ययं नेत्रे ॥ अन्यान्वातविकारान्नेत्रविकारान्निहन्त्याशु॥ १९७॥ पिप्पली त्रिफला लाक्षा लोहचूर्णं ससैन्धवम् ॥ भृङ्गराजरसे घृष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १९८ ॥ भ्रमं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रमथाऽर्ज्जुनम् ॥ अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ १९९ ॥ गैरिकं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम् ॥ क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रादौ सुविलेखनम् ॥ २०० ॥ पुष्पञ्च तार्क्ष्यजशितोदधिफेनशंखसिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः सुपिष्टैः ॥ कार्य्या हि माक्षिकरसेन रसक्रियेह हन्त्यर्मकाचतिमिरार्ज्जुनवन्धरोगान् ॥ २०१ ॥ प्रवालमुक्तावैडूर्य्यशंखस्फटिकचन्दनम् ॥ सुवर्णरजतं क्षौद्रमञ्जनं शुक्रनाशनम् ॥ २०२ ॥

भा० टी०–त्रिफला, त्रिकटु, दाख, मुलहठी, कटुकी, पुंडरिया, छोटी इलायची, वायविडङ्ग, नागकेशर ॥ १८६ ॥ नील कमल, दोनों सारिवा, चन्दन, दोनों हलदी इन सबके एक२ कर्ष प्रमाण भाग लेवे किन्तु वायविडङ्गको त्रिफलाके समान (३ कर्ष भाग) लेवे और इन सबके कल्कके द्वारा १ प्रस्थ दूधमें एक प्रस्थ घृत पकावे । यह घृत त्रिदोषजन्य तिमिर, स्राव, कामला, काच, अर्बुद आदि नेत्ररोगोंका नाशक है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ तथा विसर्प, प्रदर, कण्डू, दूषित रक्त, शोथ, नीलिका, केशोंका पकना वा गिरना ॥ १८९ ॥ विषम ज्वर, अर्मरोग, नेत्रका फूला एवं वर्त्म आदि अन्यान्य प्रकारके नेत्रविकारोंको ॥ १९० ॥ ऐसा दुराताहै

जैसे सूर्य्य अन्धकारको, नेत्रोंका हितकारी जिस प्रकार यह त्रैफल घृत है तैसा और कोई नहीं ॥ १९१ ॥ भृंगराजके १ प्रस्थ रसमें मुलहठीके कल्क द्वारा पकायाहुआ तैल तत्काल नेत्रोंको निर्मल बनाताहै ॥ १९२ ॥ एवं गोबरके क्वाथमें पकेहुए तैलका वा घृतका नास लेनेसे तिमिरमें गुण होताहै । परन्तु यहां तैल घृतमें इतना अन्तर है कि, घृत तो केवल पित्तज तिमिरमें गुणकारी है और तैल वात वा रक्तसे उपजेहुए तिमिर रोगोंमें हित है॥१९३॥ जीवक, ऋषभक, मेदा, दाख, मालती, कटेरी, कंटकारी, मुलहठी, खिरेंटी, वायविडङ्ग, मंजीठ, शर्करा, रासना ॥ १९४ ॥ नील कमल, गोखरु, पुंडरिया. विषखपरा, सेंधानोन, पिपली इनके एक २ अक्ष प्रमाण भागोंके कल्कद्वारा चौगुने दूधमें तैल वा घृत पकावे । इसके प्रयोगसे मुख और नासिकाकी दुर्गन्धि, असमयमें केशोंका पकना, हनुस्तंभ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ कास, श्वास, शोष, ग्रीवास्तंभ, नेत्र-व्यय तथा अन्यान्य प्रकारके वातविकार और नेत्रविकार थोडे कालमें नष्ट होतेहैं ॥ १९७ ॥ पिपली, त्रिफला, लाख, लोहचूर्ण, सेंधानोन इन सबको भृंगराजके रसमें पीसकर गुटिकाञ्जन बनाना कहाहै ॥ १९८ ॥ इस अञ्जनसे भ्रम, तिमिर, काच, कण्डू, शुक्र, अर्ज्जुन, अजका आदि नेत्ररोग निर्मूल होतेहैं ॥ १९९ ॥ गेरु, सेंधानोन, हरड, ढांकका गोंद इनके एकोत्तरवृद्धि-क्रमसे बढायेहुए भागोंका चूर्ण बनावे । यह नेत्रके फूलाको काटताहै ॥ २०० ॥ नागकेशर, रसोत, शक्कर समुद्रफेन, शंख, सेंधानोन, गेरु, मैनशिल, मरिच इनको पीसकर मधुरसके द्वारा रसक्रिया करनेसे अर्म, काच, तिमिर आदि नेत्ररोग नष्ट होतेहैं ॥ २०१ ॥ मूंगा, मोती, वैडूर्यमणि, शंख, स्फटिक चन्दन, सोना, चांदी, मधु इनके द्वारा विधिपूर्वक अञ्जन करनेसे नेत्रका फूला नष्ट होताहै ॥ २०२ ॥

अर्ज्जुने सेचनं मस्तु क्षौद्रैश्चाऽऽश्च्योतनं हितम् ॥ पैत्तं विधिमशेषेण कुर्य्यादर्ज्जुनशान्तये ॥ २०३ ॥ शंखः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन च ॥ सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्ज्जुने ॥ २०४ ॥ वैदेही श्वेतमरिचं नागरं सैन्धवं समम्॥ मातुलुङ्गरसैर्घृष्टमञ्जनं पिडिकापहम् ॥२०५॥ भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवम् ॥ विलिपेन्मण्डलाग्रेण प्रक्षयेद्वा समन्ततः ॥ २०६ ॥ पथ्याक्षधात्री-फलमध्यबीजस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्तिम् ॥ तया जयेदस्रयुगं प्रतीक्ष्णैर्हरेत्तथा कृच्छ्रमपि प्रकोपम् ॥२०७॥ क्षीरेष्टत्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् ॥ क्षौद्रेणाऽऽज्येन पिप्पल्ल्या मिश्रैर्वाऽक्षिशिराव्यधः ॥ २०८ ॥ त्रिफलामूत्रकासीससैन्धवैश्च रसाञ्जनैः ॥ रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥ २०९ ॥ पिल्ली-

भूतेषु सामान्यादथ पिल्लाक्षिरोगिणः ॥ स्निग्धस्य छर्दितवतः शिरावेधहतासृजः ॥ २१० ॥ विरिक्तस्य च वर्त्मानुविलिखेदा-विशुद्धितः ॥ शिलारसांजनव्योषगोपित्तैश्चक्षुरंजयेत् ॥ २११ ॥ अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ॥ भावितं वस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ॥२१२॥ रसांजनं सर्ज्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ॥ समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ २१३ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रच्छन्नचर्म्मणि ॥ अंजनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ २१४ ॥ ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थमरिचानि च॥ आरनालेन संघृष्य चांजनं पित्तनाशनम् ॥ २१५ ॥ हरिद्रे त्रिफलालोध्रमधुकं रक्तचन्दनम् ॥ भृंगराजरसे पिष्ट्वा घर्षयेल्लोहभाजने ॥ २१६ ॥ तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्तिं रजोऽथ वा ॥ अंजनान्नस्यतो वापि सर्वनेत्रामयाञ्जयेत् ॥ २१७ ॥ मञ्जिष्ठामधुकोत्पलोदधिमलत्वक्शेषगोलोचनामांसीचन्दनशंखपत्रगिरिजैस्तालीशपुष्पांजनैः ॥ सर्वैरेव समांशमंजनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः कण्डूक्लेदमलाश्रुशोणितरुजापिल्लार्मशुक्रापहम् ॥२१८॥ तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः॥ त्रिशता कांजिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥ २१९ ॥ पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ॥ तत्सेकेनोपदेहाच्च कण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥२२०॥ करंजबीजं सुरसं सुमनःकोरकाणि च ॥ संक्षुद्य साधयेत्काथे पूते तत्र रसक्रिया ॥ अंजनं पिल्लभैषज्यं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥२२१॥ पुष्पकासीसचूर्णं वा सुरसारसभावितम् ॥ ताम्रे दशाहं तत्पैल्ल्यपक्ष्मशातजिदंजनम् ॥ २२२ ॥ वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम् ॥ पुनःपुनर्विरेकश्च नित्यमाश्च्योतनांजनम् ॥ २२३ ॥ नावनं धूमपानं च पिल्लरोगातुरो भजेत ॥ पूयालसे त्वशान्तेऽन्तर्दाहः सूक्ष्मशलाकया ॥ २२४ ॥ त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं सिद्धं पिबेन्नरः ॥ चक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफनाशनम् ॥ २२५ ॥

भा० टी०–अर्जुन रोगमें दधिजलके द्वारा सेचन और मधुके द्वारा आश्च्योतन कर्म करना उचित है एवं अर्जुनकी शान्तिके लिये सब प्रकार पित्तदोषोक्त उपचार करे ॥ २०३ ॥ मधुयुक्त शंखचूरसे वा सेंधानोन सहित निर्मलीसे वा सक्कर सहित समुद्रफेनसे, अर्जुनरोगमें अञ्जन करना हित है ॥ २०४ ॥ गोलोचन, सैंजनेके बीज, शोंठ, सेंधानोंन इन सबके सम-भागोंको बिजोरा नीबूके रसमें घिसकर अञ्जन करना पिडिका रोगका नाशक है ॥२०५॥ कफ-जन्य उपनाह रोग (नेत्रकी सन्धिमें थोडा २ पकनेवाली खुजली सहित गांठका उपजना) में मंडलाग्र शस्त्रसे भेदन करनेके अनन्तर पिपली, मधु और सेंधानोनके द्वारा लेप करे वा केवल चारों ओरसे उसे छीलता रहे ॥ २०६ ॥ ३ भाग हरडके बीज, २ भाग बहेडेके बीज, एक भाग आंवलेके बीज इनको पीसकर वर्ति बनावे। इसके द्वारा रक्त प्रतिरक्त नामक रोगोंको जीते और नेत्रप्रकोपको तीक्ष्ण उपचारोंसे दूर करे ॥ २०७ ॥ श्रीवेष्ट (सरलका गोंद) और त्रिफलाके क्वाथको वातादिदोषोंके अनुसार मधु वा घृत वा पिपली वा इन सबके मिश्रयोगके द्वारा प्रयोजित करे ॥ २०८ ॥ भेदित कियेहुए कृमिग्रन्थरोगमें त्रिफला, गोमूत्र, कसीस, सेंधानोन, रसोत इनके द्वारा रसक्रिया करनेसे बावका प्रतिसारण होता है ॥ २०९ ॥ पिल्ल नामक अनेक रोगोंके समुदायमें संक्षित चिकित्सा कहते हैं, पिल्लरोगीको स्निग्ध बनाय वमन करावे अनन्तर शिराभेदन करके दूषित रक्तको निकाले ॥ २१० ॥ पीछे विरेचन कराय शुद्धि होने पर्यन्त वर्त्मको छीलता रहे और मैनशिल, रसोत, त्रिकटु, गोलोचन इनके द्वारा नेत्राञ्जन करे ॥ २११ ॥ अथवा अभया (हरड)के रसमें तगरको पीस कर अञ्जन करना पिल्लनाशक है, एवं स्नेह सहित देवदारुको बकरीके मूत्रमें भावना देकर अञ्जन करनेका गुण है ॥२१२॥ रसोत, राल, जातीका फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, लवण, गेरु, मिरच ॥ २१३ ॥ इनके समभागोंको मधुके संग पीसकर प्रच्छन्नचर्म नामक पिल्लरोग (पलकोंका चिपकना और पलकोंके बालोंका उखडना) में अंजन करनेसे क्लेद और कण्डू नष्ट होकर पलकोंके बाल जम आतेहैं ॥ २१४ ॥ शालपर्णीकी जड, सेंधानोन, मरिच इन सबको तांबेके पात्रपर कांजीके संग पीस कर अञ्जन करनेसे पित्तज पिल्ल नष्ट होताहै ॥ २१५ ॥ हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, लोध, मुलहठी, लाल-चन्दन इन सबको भृंगराजके रसमें पीस कर सात दिन तक लोहेके पात्रपर घिसता रहे ॥२१६॥ और सात ही दिनों तक तांबेके पात्रपर भी घिसे अनन्तर उसकी वर्ति वा चूर्ण बनाय नेत्राञ्जन करने वा नास लेनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होतेहैं ॥ २१७ ॥ मंजीठ, मुलहठी, नील कमल, समुद्रफेन, गोलोचन, मासी, लालचन्दन, शंख तेजपात, गेरु, तालीस-पत्र, पुष्पाञ्जन इन सबके समभागोंसे सिद्ध कियाहुआ अञ्जन नेत्रोंके लिये सर्वदा भला है। क्योंकि यह अञ्जन कंडू, क्लेद, मल, अश्रु, रक्त, वेदना, पिल्ल, अर्म, फूला आदि नेत्रविकारोंका नाशक है ॥ २१८ ॥ पलभर नीलेथोथेको और २० सैंजनेके बीजोंको ३० पल कांजीमें पीसकर तांबेके पात्रमें स्थापित करदे ॥ २१९ ॥ पीछे इसके द्वारा सेक करनेसे बहुत वर्षोंसे उपजेहुए पिल्ल रोग नष्ट होतेहैं और लेप करनेसे कंडू और शोजा भी दूर होता–

है ॥ २२० ॥ करञ्जुवेके बीज, बीजाबोल, चमेलीकी कली इनको कूटकर इन्हींके काथमें सिद्ध करे । इसका अञ्जन पिल्लकी औषध है और पक्ष्मोंका जमानेवाला है ॥ २२१ ॥ हीरा कसीसके चूर्णको दश दिन तक तांबेके पात्रमें मूर्वाके रसमें भावना देकर अञ्जन करनेसे पिल्ल रोग और पक्ष्मशात (पलकोंका उखडना) नष्ट होताहै ॥ २२२. ॥ पिल्लरोगसे पीडित हुए मनुष्यको उचित है कि, नित्य वर्त्मका अवलेखन, रक्तका निकालना, वार २ विरेचन लेना, आश्च्योतन और अञ्जन करना, नास लेना, धुआं पीना आदि कर्म्मोंको करे । पूयालसके किसी प्रकार शान्त न होनेपर सूक्ष्म शलाकासे अन्तर्दाह करना उचित है ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ त्रिफला, त्रिकटु, सेंधानोन इनके द्वारा घृतको सिद्ध करके पीवे । यह घृत नेत्रहितकारी, भेदन, हृद्य, दीपन और कफनाशक है ॥ २२५ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे नेत्ररोगाधिकारः ॥ ६४ ॥

अथ शिरोरोगाधिकारः ६५.

वातिके शिरसां रोगे स्नेहान्स्वेदान्सदाचरेत् ॥ अन्नपानादिकं स्निग्धं कुर्याद्वातामयापहम् ॥ १ ॥ कुष्ठमेरण्डमूलञ्च लेपात्काञ्जिकपेषितम् ॥ शिरोर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २ ॥ पञ्चमूलीशृतं क्षीरं नस्यं दद्याच्छिरोगदे ॥ आशिरो व्यायतं चर्म कृत्वाऽष्टांगुलमुच्छ्रितम् ॥ ३ ॥ तेनाऽऽवेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत् ॥ ४ ॥ धारयेदारुजाशान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥ शिरोवस्तिर्जयत्येषा शिरोरोगं मरुद्भवम् ॥ ५ ॥ हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं शीर्षकम्पनम् ॥ एष एव विधिः कार्य्यस्तथा कर्णाक्षिपूरणे ॥ ६ ॥ पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् ॥ मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरैर्घृतैरपि ॥ ७ ॥ शर्कराक्षीरसलिलैः शिरश्च परिषेचयेत् ॥ सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ ८ ॥ निमज्जनं च शिरसः शीतले शस्यतेऽम्भसि ॥ कुमुदोत्पलपद्मानामार्द्राणां चन्दनाम्बुभिः ॥ ९ ॥ स्पर्शाः सुखाश्च पवनाः सेव्या दाहार्तिशान्तये ॥ चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रीनलोत्पलैः ॥ १० ॥

क्षारपिष्टैः प्रदेहः स्यात्क्षारैर्वा परिषेचनम् ॥ मृणालबिसशालूकचन्दनोत्पलकेशरैः ॥ ११॥ स्निग्धः शीतैः शिरो दिह्यात्तद्वत्सामलकोत्पलैः ॥ यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धं हितं घृतम् ॥ १२ ॥ नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वापि पित्तजे ॥ रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ॥ १३॥ विधिपूर्वं जयत्याशु विशेषाद्रक्तमोक्षणम् ॥ कफजे लवणस्वेदरूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः ॥१४॥ तीक्ष्णैश्चाऽऽपीडधूमैश्च केवलं कवला हिताः ॥ मधूकसारेण शिरः स्विन्नश्चास्य विरेचनम् ॥ १५ ॥ कृष्णार्द्रशुण्ठीमधुकशताह्वोत्पलपाकलैः ॥ जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः ॥ १६ ॥ देवदारुजलं कुष्ठनलदं विश्वभेषजम् ॥ लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्तिनुत् ॥ १७ ॥ सन्निपातभवे कार्य्या दोषत्रयहिता क्रिया ॥ सर्पिःपानं विशेषेण पुराणं वा दिशन्ति हि ॥ १८ ॥ त्रिकटुकपुष्करबीजैः रजनीरास्नातुरङ्गगन्धानाम् ॥ क्वाथः शिरोर्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥ १९ ॥ नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम् ॥ नानादोषसमुत्थां शिरोरुजं हन्ति तीव्रतराम् ॥ २० ॥ शताह्वैरण्डमूलोग्राचक्रव्याघ्रीफलैः शृतम् ॥ तैलं नस्येन सश्लेष्मतिमिरोर्द्ध्वगदापहम् ॥ २१ ॥

भा० टी०–वातसे उपजेहुए शिरोरोगमें स्नेह, स्वेद और स्निग्धरूप वातनाशक अन्नपान आदि उपचारोंको नित्य करे॥ १ ॥ कूठ और एरण्डकी जडको वा मुचुकुन्दके फूलोंको काञ्जीमें पीसकर शिरपर लेप करनेसे तत्काल वातजन्य शिरोवेदना नष्ट होतीहै ॥ २ ॥ पञ्चमूलके द्वारा सिद्ध कियेहुए दूधका नास लेनेसे उक्त शिरोरोग दूर होताहै । आठ अंगुल चौडा और शिरके बराबर लंबा एक चमडेका टुकडा लेकर उससे शिरको वेष्टित करे और नीचे संधिभागमें उडदके कल्कसे लेप देवे, अनन्तर निश्चल होकर बैठे हुए रोगीके शिरके ऊपर गरम तैलसे पूरित करे॥ ३ ॥ ४ ॥ जबतक सहन होसके तबतक तैलको धारण किये रहे । अथवा रोगकी शान्ति होने पर्य्यन्त वा एक प्रहर वा आधा प्रहर पर्य्यन्त धारण करना कहाहै। इस योगका नाम शिरोवस्ति है, इससे वातजन्य शिरःपीडा, हनुस्तंभ, नेत्ररोग, कर्णरोग, अर्दितरोग और शिरःकम्प दूर होताहै । इसीभांति नेत्रपूर्ति और कर्णपूर्ति भी तैलके द्वारा करनी उचित

है ॥ ५ ॥ ६ ॥ पित्तजन्य शिरोरोगमें रोगीको स्निग्ध बनाय भलीभांति विरेचन करावे। विरेचनके लिये दाख, त्रिफला, इक्षुरस, दूध, घृत इतने पदार्थोंका होना उचित है ॥ ७ ॥ शक्कर, दूध और जलके द्वारा शिरको परिषिक्त करे। एवं शत वार धोये हुए घृतको शिरसे धारण करना भी पथ्य है ॥ ८ ॥ इसीभांति ठंढे जलमें शिरको डुबोये रखना भी भला है। तथा कुईके फूल, नील कमल और कमलोंको चन्दनजलसे गीला बनाय ॥ ९ ॥ शिरसे उनका स्पर्श करना एवं सुखदायक पवनोंका सेवन करना भी दाह और वेदनाकी शान्तिके लिये होता-है ॥ चन्दन, खश, मुलहठी, खिरेंटी, कटेरी, नरसल, कमल ॥ १० ॥ इनको क्षारजलमें पीस-कर शिरपर लेप करे। किंवा, केवल क्षारजलसे शिरपर सेचन करे। एवं कमलनाल, बिस-तन्तु, कमलकन्द, चन्दन, नीलकमल, केशर ॥ ११ ॥ इनको स्निग्ध और शीतल बनाय शिर-पर लेप करे। इसीप्रकार आंवला और नीलकमलका लेप करना भी पथ्य है। मुलहठी, चन्दन, गिलोय, इनके कल्कद्वारा चौगुने दूधमें सिद्ध कियाहुआ घृत भी इसमें गुणकारी है ॥ १२ ॥ किंवा, पित्तजन्य शिरोरोगमें शक्कर, दाख, मुलहठी इनके द्वारा सिद्ध हुए घृतका नास लेना पथ्य है। रक्तजन्य शिरोरोगमें पित्तज शिरोरोगकी भांति भोजन, लेपन, सेचन आदि क्रिया करनी ॥ १३ ॥ विशेष करके रक्तमोक्षण कर्म करनेसे रक्तजन्य शिरोरोग दूर होताहै। कफ-जन्य शिरोरोगमें स्वेदविधि तथा नमकीन, रूखे, गरम और पाचक पदार्थोंका सेवन ॥ १४ ॥ तथा तीक्ष्णरूप आपीड और धूमयोग एवं कवलग्रह करने उचित हैं। कफजन्य शिरोरोगीके शिरको महुवाके सारसे स्वेदित करके विरेचित करे ॥ १५ ॥ तथा पिपली, अदरख, सोंठ, मुलहठी, सौंफ, नीलकमल, कूठ इनको जलमें पीस कर लेप करनेसे कफजन्य शिरःशूल नष्ट हो ॥ १६ ॥ देवदार, सुगन्धवाला, कूठ, खश, शोंठ इनको काञ्जीमें पीसकर तैलमें मिलाय शिर पर लेप करनेसे कफजन्य शिरोवेदना दूर होती है ॥ १७ ॥ सन्निपातसे उपजे हुए शिरो-रोगमें मिश्रित क्रिया करनी अथवा प्राचीन घृतका पान करना भी इसमें गुणकारी कहा है॥१८॥ त्रिकटु, कमलके बीज, हलदी, रासना, असगन्ध इनके क्वाथको नास लेनेसे त्रैदोषिक शिरः-पीडा दूर होती है ॥ १९ ॥ सौंफ, एरण्डकी जड, वचा, तगर, कटेरी, त्रिफला इनके द्वारा सिद्धहुए तैलका नास लेनेसे कफसहित तिमिर और शिरोरोग दूर होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ बृहज्जीवकाद्यं तैलम् ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षा मधूकं मधुकं बला ॥ नीलोत्पलं चन्दनञ्च विदारी शर्करा तथा ॥ २२ ॥ तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे ॥ जाङ्गलस्य च मांसस्य तुलार्द्धस्य रसेन तु ॥ २३ ॥ सिद्धमेतद्भवेन्नस्यं तैलमर्द्धावभेदकम् ॥ बाधिर्य्यं कर्णशूलञ्च तिमिरं गलशुम्भिकाम् ॥२४॥ वातिकं पैत्तिकं चैव शीर्षरोगं नियच्छति ॥ दन्तजालं शिरःशूलमर्दितञ्चाऽपकर्षति ॥ २५ ॥

भा० टी०–जीवक, ऋषभक, दाख, महुआ, मुलहठी, खिरेंटी, नीलकमल, चन्दन, विदारीकन्द, शर्करा ॥ २२ ॥ इनके आधसेर कल्क द्वारा छःगुने दूधमें १ प्रस्थ तैल पकावे और साथ ही विधिपूर्वक जांगल मृगोंके ९० पल मांसरसको भी पकावे ॥ २३ ॥ सिद्ध होने पर इस तैलका नास लेनेसे अर्द्धावभेदक (आधाशीशी), बधिरता, कर्णशूल, तिमिर, गलशुंभी, वातज और पित्तज शिरोरोग, दन्तरोग, शिरःशूल तथा अर्दितरोग भी दूर होता है ॥ २४॥२५॥

अथ षड्बिन्दुतैलम्।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरास्ना सह सैन्धवञ्च॥ भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम्॥२६॥आजं पयस्तैल-चतुर्गुणञ्च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्॥षड्बिन्दवो नासिकया प्रयुक्ताः सर्वान्निहन्युः शिरसो विकारान् ॥२७॥ च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान्सुबद्धमूलान्सुदृढान्करोति ॥ सुपर्णदृष्टिप्रतिमञ्च चक्षुर्बाह्वो-र्बलं चाऽभ्यधिकं करोति ॥ २८ ॥ सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाऽम्लपेषितम् ॥ सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्य्यावर्तार्धभेदयोः॥२९॥ एष एव विधिः प्रोक्तः शिरोरोगे क्षयात्मके॥ पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेरजम् ॥ ३० ॥ क्षयजे क्षयसामान्यः कर्तव्यो बृंहणो विधिः ॥ पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥ ३१ ॥ अजामूत्रयुतं नस्यं कृमिजे कृमिजित्परम् ॥ नावनं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवा ॥ ३२ ॥ भुजस्तंभादिरोगेषु सर्वेषूर्द्ध्वगदेषु च ॥ सूर्य्यावर्ते निधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् ॥३३॥ सूर्य्यावर्ते विशेषेण नावनं क्षीरसर्पिषा ॥ हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चैव विरेचनम् ॥ ३४ ॥ क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ स्निग्धोष्णशीतलैर्लेपः कर्तव्यस्तस्य शान्तये ॥ ३५ ॥ सशर्करं कुंकुममाज्यमेतन्नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ॥ भ्रूशंखकर्णाक्षिशिरो-र्द्धशूले दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥३६॥ जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् ॥ तेनाऽस्य शाम्यते व्याधिः सूर्य्यावर्तः सुदा-रुणः ॥ ३७ ॥ महौषधस्य स्वरसं वचापिप्पलिभिर्युतम् ॥ अव-

पीडे प्रदातव्यं सूर्य्यावर्तनिषूदनम् ॥ ३८ ॥ अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्य्यावर्तहितो विधिः ॥ शिरावेधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ ३९ ॥ आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥ मधूकमधुसंयावहविःपूरैश्च यः क्रमः ॥ ४० ॥ सूर्य्यावर्ते हितस्तद्वच्छंखके स्वेदवर्ज्जितः ॥ क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति पयःपानं तु शंखके ॥ ॥४१॥ त्रिदोषजे शिरोरोगे हितं सर्वत्र लंघनम्॥ दशमूलोद्भवः क्वाथः कणाचूर्णेन संयुतः ॥ ४२ ॥ शतावरी कृष्णतिला मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ दूर्वा पुनर्नवा वापि लेपनं तत्र धारयेत् ॥ ४३ ॥

भा० टी०–एरंडकी जड, तगर, सोया, जीवन्ती, रासना, सेंधानोन, भांगरा, वायबिडङ्ग, मुलहठी, शोंठ इनके कल्क द्वारा काले तिलोंके तैलको ॥२६॥ चौगुने बकरीके दूधमें और चागुने भांगराके रसमें पकावे । इस तैलके छः बिन्दुओंको नासिकाके द्वारा ग्रहण करनेसे सब प्रकारके शिरके विकार नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥ तथा उखडे हुए केश, हिलते हुए दांत भी बद्धमूल और दृढ बनते हैं, एवं गरुडके समान नेत्र और भुजबलका आधिक्य होता है ॥ २८ ॥ अनन्तमूल, कमल, कूठ, मुलहठी इनको काञ्जीमें पीस कर घी और तैल मिलाय लेप करनेसे सूर्यावर्त रोग (दिनके साथ बढने वाली शिरःपीडा) और आधाशीशी नष्ट होती है ॥ २९ ॥ यही विधि क्षयजन्य शिरोरोगमें करना उचित है । किंवा, शक्कर युक्त दूधको वा नारियलके दूधको पीवे ॥ ३० ॥ अथवा क्षयजन्य शिरोरोगमें वही उपाय सामान्य रीतिसे करने जो क्षयरोगमें प्रयोजनीय तथा बृंहण हों । वातनाशक और मधुर द्रव्योंके द्वारा सिद्ध हुए घृतको पीना वा उसका नास लेना भी उचित है ॥ ३१ ॥ कृमिजन्य शिरोरोगमें बकरीके मूत्रके संग नस्ययोग करनेसे कृमि नष्ट होते हैं । गुड सहित शोंठ वा सेंधानोन सहित पिपली भी इसमें परम पावन है ॥ ३२ ॥ भुजस्तंभादि वातरोगोंमें और सब प्रकारके ऊर्द्ध्वरोगों तथा सूर्य्यावर्त रोगमें नस्य आदि कर्मोंको अवश्य करना ॥ ३३ ॥ सूर्य्यावर्तमें विशेष करके दूध घृतके द्वारा नावन कर्म करना वा दूध घृतका सेवन रखना और दूध घृतके द्वारा विरेचन लेना भी पथ्य है ॥ ३४ ॥ एवं तिल और जीवनीय गणके द्रव्योंको दूधमें पीस कर स्वेदविधि करना और स्निग्ध उष्ण तथा शीतल द्रव्योंसे लेप करना सूर्यावर्तमें उपयोगी है ॥ ३५ ॥ शक्कर, कुंकुम, घृत इनका नास लेनेसे वातरक्तसे उपजे हुए भ्रूशंखशूल, कर्णशूल, नेत्रशूल, शिरःशूल और सूर्य्यावर्त रोग भी नष्ट होता है ॥ ३६ ॥ जांगल पशुओंके मांस द्वारा उपनाहन कर्म करनेसे दारुण रूप सूर्य्यावर्त शान्त होताहै ॥ ३७ ॥ शोंठके स्वरसमें वचा और पिपली मिलाय अवपीडन कर्म करनेसे भी सूर्यावर्त नष्ट होता है ॥ ३८ ॥ अनन्तवात रोग (त्रिदोषसे गर्दनकी नसोंका

पीडित होना और भ्रुकुटी नेत्र कान आदिका दुखना) में भी सूर्य्यावर्तोक्त क्रिया करनी और उसकी शान्तिके लिये शिराभेदन भी करना ॥ ३९ ॥ तथा वातपित्त नाशक भोजन करने। पधूक, मधु, संयाव (घी, दूध, गुड, गोधूमचूर्ण आदिसे बना हुआ भोज्य विशेष) तथा घृत इनके द्वारा जो क्रिया होती है वह सूर्य्यावर्तमें हित है । सूर्य्यावर्तकी भांति शंखक रोग (रक्त, पित्त और वातके दोषसे कनपटीमें विषभरी लाल सूजनका उत्पन्न होना और समस्त शिरपर फैलना)की भी चिकित्सा करनी केवल यहां स्वेद विधान नहीं । विशेष करके शंखक रोगमें दूध घृतको वा केवल दूधको पीना उत्तम है । त्रिदोषसे उपजे हुए शिरोरोगोंमें सर्वत्र लंघन करना हित है । अथवा पिपलीचूर्णसे युक्त दशमूलका काथ, शतावरी, काले तिल, मुलहठी, नीलकमल, दूब, पुनर्नवा इनके द्वारा लेप करना चाहिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

शीततोयान्नपानीयं परिषेकाश्च शीतलाः ॥
कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखकस्य प्रलेपनम् ॥ ४४ ॥

भा० टी०–शंखक रोगमें शीतल अन्नपान और शीतल ही परिषेक करने योग्य हैं तथा क्षीरिवृक्षों (वट आदि) के कल्क द्वारा लेप करना उचित है ॥ ४४ ॥

अथ यष्ट्याद्यं तैलम् ।

यष्टीमधुबलारास्नादशमूलाम्बुसाधितम् ॥
मधुरैश्च घृतं सर्वान्मूर्द्धजान्तु गदान्क्षिपेत् ॥ ४५ ॥

भा० टी०–मुलहठी, खिरेंटी, रासना, दशमूल इनके रसमें, मधुरगणीय द्रव्योंके कल्क द्वारा पकाया हुआ घृत सब प्रकारके शिरोरोगोंको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥

अथ मयूराद्यं तैलम् ।

दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिफलैः सह ॥ मयूरं पक्षपित्तास्यशकृत्पादान्त्रवर्जितम् ॥ ४६ ॥ जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन्क्षीरं समं पचेत् ॥ मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ ४७ ॥ कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ॥ मयूराद्यमिदं ख्यातं मूर्द्धजातगदापहम् ॥ ४८ ॥

भा० टी०–दशमूल, खिरेंटी, रासना, मुलहठी, त्रिफला इनके कल्कके संग पंख, पित्त, मुख, विष्ठा, पैर, आंतडे इनसे रहित मोरके मांसको जलमें पका कर चतुर्थांश रसमें एकप्रस्थ घी और एकप्रस्थ दूध मिला कर पकावे, साथ ही मधुरगणीय द्रव्योंके एक २ कर्ष कल्कको पकावे, सिद्ध होने पर यह मयूरादिघृत सब प्रकारके शिरोरोगोंका तथा कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, मुखरोग और कण्ठरोगोंका नाशक है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

प्रपौण्डरीकं मधुकं पिप्पलीचन्दनोत्पलैः ॥ सिद्धं धात्रीरसैस्तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन च ॥ ४९ ॥ सर्वानूर्द्ध्वगदान्हन्ति पलितस्य च नाशनम् ॥ ५० ॥

भा० टी०-पुंडरिया, मुलहठी, पिपली, चन्दन, नीलकमल इनके कल्क द्वारा आंवलेके रसमें सिद्ध किये हुए तैलका नास लेने वा मर्दन करनेसे सब प्रकारके शिरोरोग और केशोंका पकना भी दूर होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे शिरोरोगाधिकारः ॥ ६९ ॥

अथ प्रदररोगाधिकारः ६६.

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम् ॥ पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १ ॥ पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ॥ वासकस्वरसे पैत्ते गुडूच्या रसमेव च ॥ २ ॥ रौहितं मूलकल्कं वा पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत् ॥ जलेनामलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् ॥ ३ ॥ धातक्या ह्यक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम् ॥ काकजानुकमूलं वा मूलं कार्प्पासमेव वा ॥ ४ ॥ पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ अशोकवल्कलक्काथशृतं दुग्धं सुशीतलम् ॥ ५ ॥ यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ बलवर्णकरं स्त्रीणामेतदभ्यासयोगतः ॥ ६ ॥ दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिरातविल्वभल्लातकैरिह कृतो मधुना कषायः ॥ पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ ७ ॥ कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ॥ एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरेण विमुच्यते ॥ ८ ॥

भा० टी०-वातादि दोषोंके अनुसार भिन्न २ रंगवाले शुक्रका स्राव होना, प्रदर कहाताहै, यह रोग स्त्रियोंको हुआ करताहै । वातजन्य प्रदरसे पीडित स्त्री कालानोन, कालीजीर, मुलहठी, नीलकमल इनको दधि और मधुके संग सेवे ॥ १ ॥ पित्तजन्य प्रदरमें काले हरिणके रक्तको वांसाके स्वरसमें मिलाय शक्कर और मधुके संग पीवे वा केवल गिलोयके रसको पीवे ॥ २ ॥ पाण्डुप्रदर (कफजनित श्वेतवर्णवाले प्रदर) में रोहिडाकी जडके कल्कको जलके संग

पीवे । वा आंवलाबीजके कल्कमें मधु शक्कर मिलाय खावे ॥ ३ ॥ धायके फूलोंके कल्कको वा आंवलेके कल्कको मधुके संग औटाकर २ तोलाके प्रमाणसे पीवे । वा काकजंघाकी जडको वा कपासकी जडको ॥ ४ ॥ तंडुलजलके संग पान करनेसे भी पाण्डुप्रदर शांत होताहै । इसी भांति अशोकके वक्कलोंके क्वाथमें पके हुए दूधको शीतल करके ॥ ५ ॥ प्रतिदिन प्रातःकालमें शक्ति भर पीनेसे तीव्र प्रदर नष्ट होता और कुछ ही कालमें स्त्रियां बल वर्ण संपन्न होतीहैं ॥ ६॥ दारुहलदी, रसोत, अडूसा, मोथा, चिरायता, बेल, भिलावा इनके क्वाथमें मधु मिलाय पीनेसे, अतिबलिष्ठ शूलयुक्त पीला, काला, गौर, लाल, नीला और श्वेत रंगका प्रदर नष्ट होताहै ॥ ७ ॥ कुशाकी जडको तंडुलजलमें पीसकर पीनेसे तीन ही दिनमें स्त्री प्रदररोगसे मुक्त होतीहै॥८॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काकोदुम्बरिजं पिबेत् ॥ असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोन्नभुक् ॥ ९ ॥ प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन मधुयुतं पीतम् ॥ कुशवाटयालकमूलं तंडुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ १० ॥ शमयति मदिरापानं तावुभयौ रक्तशुक्राख्यौ॥ विधिविहितं कृतलज्जावरयुवतीनां न सन्देहः ॥११॥ तरुण्या हितसेविन्यास्तदन्योपद्रवं भिषक् ॥ रक्तपित्तविधानेन प्रदरं समुपाचरेत् ॥ १२ ॥

भा० टी०—कठूमरके फलका रस निचोडकर प्रदरकी शांतिके लिये मधुके संग पीवे और दूध शक्करसे युक्त पथ्य भोजन खावे ॥ ९ ॥ खिरेंटीकी जडके चूर्णमें मधु मिलाय दूधके संग पीनेसे प्रदर नष्ट होताहै । कुशा और खिरेंटी जडको पीसकर तंडुल जलके संग पीनेसे रक्तप्रदर नष्ट होताहै ॥१०॥ शास्त्रोक्त औषधियोंसे निष्पन्न हुई मदिराको पीते रहनेसे रक्तप्रदर और शुक्रप्रदर दोनों नष्ट होतेहैं इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ वैद्यको उचित है कि, पथ्यसेविनी तरुणीके अनेकानेक उपद्रवोंसे युक्त प्रदरको, रक्तपित्तमें कहे हुए विधानसे उपचारित करे ॥ १२ ॥

अथ पुष्यानुगं चूर्णम् ।

पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदरसाञ्जनम् ॥ अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गा पद्मकेशरम् ॥ १३ ॥ बाह्लीकातिविषामुस्तं विल्वं लोध्रं सगैरिकम् ॥ कटफलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीकारक्तचन्दनम् ॥१४॥ कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकी मधुकार्ज्जुनम् ॥ पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १५ ॥ तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥१६॥ दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ॥ योनिदोषं रजोदोषं

श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ १७ ॥ स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्तयेत् ॥ चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १८ ॥ अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्ष्मणाम् ॥ १९ ॥

भा० टी०-पाठा, जामन और आमके गुठलीकी मींगी, भूरिछरीला, रसोत, मोइया, मोचरस, बडीखिरेंटी, कमलकेशर, ॥१३॥ केशर अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरु, कायफल, मिरच, शोंठ, दाख, लालचंदन ॥ १४ ॥ सोनापाठा, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलहठी, अर्ज्जुन इन सब औषधियोंको पुष्य नक्षत्रमें उखाड कर समभागिक चूर्ण बनावे ॥ १५ ॥ इस चूर्णको मधुमें मिला कर तंडुलजलके संग पीवे । यह पुष्यानुगचूर्ण बवाशीर, रक्तातिसार, रुधिरविकार, बालकोंके आगन्तुक दोष, योनिदोष तथा स्त्रियोंके श्वेत, नीले, काले, पील रंगवाले प्रदरको नष्ट करनेवाला आत्रेयजीसे पूजित है । यहां दक्षिणसे भिन्नदेशोंमें मोइयाके जगे सफेद कंटकारी लेतेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ मुद्गाद्यं घृतम ।

मुद्गमाषस्य निर्यूहे रास्नाचित्रकनागरैः ॥
सिद्धं पिप्पलिभिर्बिल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ २० ॥

भा० टी०--मूंग और उडदोंके क्वाथमें रासना, चीता, शोंठ, पिपली, बेलगिरी इनके कल्कद्वारा सिद्ध किया हुआ तैल प्रदरमें श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ बृहच्छतावरीघृतम् ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षोदयित्वाऽवपीडयेत् ॥ घृतप्रस्थसमायुक्तं द्विगुणक्षीरसंयुतम्॥२१॥ अतः कल्कानिमान्दद्यात्काकोदुम्बारिसंयुतान्॥ जीवनीयान्पलान्यष्टौ यष्टीचन्दनपद्मकैः ॥२२॥ श्वदंष्ट्राचाऽऽत्मगुप्ता च बला नागबला तथा ॥ शालपर्णी पृथक्पर्णी विदारी सारिवाद्वयम् ॥२३॥ शर्करा च समा देया काश्मर्याणि फलानि च ॥ सम्यक्सिद्धं तु विज्ञाय घृतं तदवतारयेत् ॥ २४ ॥ रक्तपित्तविकारेषु वातपित्तकृतेषु च ॥ दुष्टरक्तं क्षयं कासं हिक्कां श्वासं च दुस्तरम् ॥२५॥ अङ्गदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तसमुद्भवम् ॥ असृग्दरं सर्वभवं मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम् ॥२६॥ एतान्रोगान्प्रशमयति भास्करस्तिमिरं यथा॥समीरणो यथा मेघान्वोधो मायामयं यथा॥२७॥

भा० टी०–एकप्रस्थ शतावरीरसमें एक प्रस्थ घृत और दो प्रस्थ दूध मिलाकर, मथानीसे मथित करे ॥ २१ ॥ अनंतर कठूमर, जीवनीयगणके द्रव्य, मुलहठी, चन्दन, पद्माख, गोखरु, कौंछके बीज, खिरेंटी, गंगेरन, शालवन, पिठवन, विदारीकन्द, सरिवन इनके ८ पल कल्कके संग पकावे ॥ २२ ॥ २३ ॥ पकाते समय उचित प्रमाणसे शक्कर, गंभारी और त्रिफलाको भी मिलादेवे । जब पक कर भली भांति सिद्ध होजाय तब उसे उतार लेवे ॥ २४ ॥ इस घृतके सेवन करनेसे सब प्रकारके रक्तपित्तसंबन्धी विकार, वातपित्तसंबन्धी रोग, दुष्टरक्त, क्षय, कास, हिचकी, श्वास, अङ्गदाह, शिरोदाह, रक्तपित्तसे वा अन्यान्य दोषोंसे उपजा हुआ प्रदर रोग, मूत्रकृच्छ्र यह सब कैसे नष्ट होतेहैं जैसे सूर्य्योदयसे अंधकार और वायुवेगसे मेघ, एवं ज्ञानसे मायाबल नष्ट होताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ शीतकल्याणकं घृतम् ।

कुमुदं पद्मकोशीरगोधूमं रक्तशालयः ॥ मुद्गपर्णी वयस्था च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ २८ ॥ बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ॥ विदारी शतपुत्री च शालपर्णी सजीवका ॥ २९ ॥ फलं त्रपुषबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम् ॥ एषामर्धपलान्भागान्गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ३० ॥ पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ३१ ॥ बहुरूपं च यत्पित्तं कामलायाश्च शोणिते ॥ अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ३२ ॥ तरुणी याऽल्पपुष्पा च या च गर्भं न विन्दति ॥ अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ३३ ॥ शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०–कमोदिनी, पद्माख, खस, गेहूं, लाल शालिचावल, मुगवन, काकोली, कुंभेर, मुलहठी ॥ २८ ॥ खिरेंटीकी जड, कंघीकी जड, नीलकमल, ताडका मस्तक, विदारीकन्द, शतावरी, शालपर्णी, जीवक ॥ २९ ॥ त्रिफला, खीरेके बीज, केलेकी कची फली इनके आधा २ पल कल्कोंके संग चार प्रस्थ दूध और २ प्रस्थ जलमें १ प्रस्थ घृतको पकावे । यह घृत प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक ॥ ३० ॥ ३१ ॥ बहुरूपी पित्त, कामला, दुष्टरक्त, अरोचक, जीर्णज्वर, पांडु, मद, भ्रम इन सब रोगोंमें प्रयोजनीय है ॥ ३२ ॥ तथा जिन स्त्रियोंके अल्पपुष्प है और जो गर्भको ग्रहण नहीं कर सकतीं उनके लिये भी यह प्रतिदिन प्रीतिको बढाताहै ॥ ३३ ॥ इस शीतकल्याण नामक घृतको परम रसायन कहाहै ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे प्रदररोगाधिकारः ॥ ६६ ॥

अथ योनिव्यापदधिकारः ६७.

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ॥ वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १ ॥ वचोपकुञ्चिकाजाजीकृष्णावृषकसैन्धवम् ॥ अजमोदा यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ २ ॥ पिष्ट्वा प्रसन्नयालोड्य खादेत्तद्घृतभर्ज्जितम् ॥ योनिव्यापत्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ ३ ॥ गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ॥ नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ॥ ४ ॥ तैलात्प्रसाधितात्कार्य्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ५ ॥ शीताः पित्तहराः कार्य्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥ ६ ॥ पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः॥ वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्य्या योनिविशोधिनी ॥ ७ ॥ पुष्योद्धृतं लक्ष्मणया मूलं पिष्टं तु कन्यया ॥ ऋत्वन्ते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वाप्नोत्यबला सुतम् ॥८॥ क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः ॥ ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ ९ ॥

भा० टी०–विशेष करके योनिव्यापत्ति रोगोंमें वातनाशक क्रिया करनी कहीहै । तथा वस्ति, अभ्यंग, परिषेक, प्रलेप और योनिमें पिचु (फोहा) का धारण करना इत्यादि कर्म करने कहेहैं ॥१॥ वचा, कालीजीर, जीरा, पिपली, अडूसा, सेंधानोन, अजमोद, जवाखार, चीता, शकर ॥२॥ इन सबके चूर्णको घीमें भून कर सुरामंडके संग औटा कर पीनेसे योनिव्यापत् रोग, गुल्म, बवाशीर यह सब दूर होतेहैं ॥३॥ गिलोय, त्रिफला, दंती इनके क्काथोंसे योनिमें परिषेक करे और तगर, कटाई, कूठ, सेंधानोन, देवदार ॥४॥ इनके द्वारा सिद्ध किये हुए तैलसे रुईके फोहेको भिगो कर योनिमें रख देनेसे योनिरोग नष्ट होताहै, पित्तजन्य योनिरोगोंमें पित्तनाशक सेक, अभ्यंग और पिचुक्रिया करनी ॥ ५ ॥ तथा पित्तनाशक शीतल उपचार और स्नेहके लिये घृतप्रयोग करे । बलासरोगसे दुष्टहुई योनिरोगमें सब प्रकार रूक्ष और उष्णरूप कफनाशक उपचार करने ॥६॥

---

१ लक्ष्मणायाश्चक्रेणाङ्कितपत्राया मूलमासाद्य तच्च कन्यकापिष्टं गव्यदुग्धेन घृतेन वाऽऽलोड्य पेयम् ऋतुस्नानानन्तरं सुखेन । अथवा दक्षिणनासापुटेन चतुरो बिन्दून्नारी पुत्रार्थिनी पिबेद्दिनत्रयम्–इत्युपदेशात् ॥

कालीमिरच, पिपली, उडद, सोया, कूठ, सेंधानोन इनको पीस कर बत्ती बनाय योनिमें धारण करनेसे योनि शुद्ध होतीहै ॥ ७ ॥ पुष्य नक्षत्रमें लक्ष्मणाकी जडको उखाड कर कन्याके हाथसे पिसावे पीछे ऋतुस्नाता स्त्री पुत्रप्राप्तिके लिये गोदुग्ध और गोघृतके संग इसका सेवन करे ॥८॥ यदि ऋतुस्नाता स्त्री असगन्धके क्काथमें पकाये हुए घृतसहित दूधको पीवे तो निःसन्देह गर्भ धारण करतीहै ॥ ९ ॥

अथ फलघृतम्।

मंजिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्क्करा बला ॥ मेदा वयस्था काकोली मूलं चैवाऽश्वगन्धजम् ॥ १० ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गुकं कटुरोहिणी ॥ उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ११ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ या नार्य्यस्थिरगर्भा स्याद्या वा जनयते मृतम् ॥ १२ ॥ अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते ॥ १३ ॥ प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ नाम्ना फलघृतं ह्येवदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १४ ॥

भा० टी०- मञ्जीठ, मुलहठी, कूठ, त्रिफला, शर्करा, खिरेंटी, मेदा, दूधिया, काकोलीकी जड, असगन्धकी जड ॥ १० ॥ अजमोद, हलदी, दारुहलदी, हींग, कटुकी, नीलकमल, कुमुद, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, लालचंदन, सफेद चन्दन ॥ ११ ॥ इनके एक २ कर्ष प्रमाण भागोंके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। सिद्ध होने पर जिस स्त्रीके गर्भ स्थिर न रहे, किंवा, मृतजातक उपजे, यद्वा-अल्पजीवी पुत्र वा केवल कन्या उपजे उस स्त्रीको इस घृतका सेवन कराना। योनिदोष, रजोदोष, परिस्राव प्रभृति स्त्रीरोगोंमें भी यह उत्तम कहाताहै ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ किंबहुना, यह अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ फलघृत संततिवर्द्धक और सर्वग्रहोंका निवारक है ॥ १४ ॥

अथ प्रकारान्तरेण फलघृतम्।

कुष्ठमूलं हरिद्रे द्वे पिप्पली कटुरोहिणी ॥ काकोली क्षीरकाकोली विशाला त्रिफलोत्पलम् ॥ १५ ॥ मेदा रास्ना विडङ्गानि देवदारु सहिंगुकम् ॥ द्वे शारिवे शताह्वा च वचा यष्टी प्रियंगुका ॥ १६ ॥ अजमोदा महामेदा चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कटूफलं सितशर्क्करा ॥ १७ ॥ एतैरक्षसमैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥

चतुर्गुणेन पयसा शनकैर्गोमयाग्निना ॥ १८ ॥ शुभेऽह्नि पुष्यसंयुक्ते भाण्डे ताम्रमये दृढे ॥ कलशे हेमकल्याणे कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ॥ १९ ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ या च वन्ध्या भवेन्नारी या च कन्याप्रजातिनी ॥ २० ॥ या चाऽप्यस्थिरगर्भा स्याद्या वा जनयते मृतम् ॥ अल्पायुषं वा जनयेद्याच बीजं न धारयेत ॥ २१ ॥ सेदृशी जनयेत्पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ रूपलावण्यसम्पन्नं शतायुर्विगतज्वरम् ॥ २२ ॥ नाम्ना फलघृतं ह्येतद्भारद्वाजेन निर्मितम् ॥ अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र भिषग्वराः ॥ २३ ॥

भा० टी०-कूठकी जड, दोनों हलदी, पिपली, कटुकी, काकोली, क्षीरकाकोली, विशाला, त्रिफला, नीलकमल ॥ १९ ॥ मेदा, रासना, वायविडङ्ग, देवदार, हींग, दोनों सारिवा, सोया, वचा, मुलहठी, फूलप्रियंगु ॥ १६ ॥ अजमोद, महामेदा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, जातीपुष्प, वंशलोचन, कायफल, मिश्री॥१७॥इनके एक२अक्षप्रमाण भागोंके द्वारा१प्रस्थ घृतको चौगुने दूधके संग ओपलेकी आगमें पकावे ॥ १८॥ परन्तु पकानेके लिये शुभ दिन शुभ मुहूर्त और पुष्य नक्षत्रको निर्णीत करके देवपूजनोत्सवपूर्वक ताम्रपात्रमें पकावे ॥ १९ ॥ इस घृतको पान करनेसे मनुष्य स्त्रियोंके बीच हरवृषभ (सांड) की भांति उद्दीप्त रहताहै । तथा कन्याजननी, मृतजननी, वन्ध्या, चलगर्भा, अगर्भा आदि दुर्भगा स्त्रियोंके दीर्घजीवी, सर्वांगसुन्दर और वेद वेदांतके पारंगत तथा नीरोग पुत्र उत्पन्न होतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ यह दूसरी भांतिका फलघृत भरद्वाज ऋषिका बनाया हुआहै । इसमें यद्यपि लक्ष्मणाकी जड लेना नहीं कहा तथापि उसे यहां वैद्य लोग लेना स्वीकार करतेहैं ॥ २३ ॥

अथ सोमघृतम् ।

सिद्धार्थकश्चाब्राह्मीशंखपुष्पीविषाणिका ॥ वयस्था मधुकं कुष्ठं तथा कटुकरोहिणी ॥२४॥ सारिवा त्रिफला चैव चोरकं सुमनोलतम् ॥ वृषपुष्पं समञ्जिष्ठं देवदारु महौषधम् ॥ २५ ॥ पिप्पलीभृङ्गबीजं च निशा श्यामा सुवर्चला ॥ दशमूलाभया भार्ङ्गी चाश्वगन्धा शतावरी ॥ २६ ॥ जलद्रोणे पचेदेतद्भागान्द्विपलिकान्पृथक् ॥ पादस्थं तत्परिस्राव्य घृतस्यार्धाढकं पचेत ॥ २७ ॥ युक्त्या प्रदापयेदेतदपुत्र्याभिमतं तदा ॥ द्विमाषं गर्भिणी योषिदष्ट-

माषेन योजयेत् ॥ २८ ॥ सर्वथा जनयेत्पुत्रं सर्वामयविवर्ज्जितम् ॥ वन्ध्या प्रसूयते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् ॥ २९ ॥ योनिदुष्टाश्च या नार्य्यः शुक्रदुष्टाश्च ये नराः ॥ ते सर्वे खलु शुध्यन्ति पानादेवास्य सत्वरम् ॥ ३० ॥ जलगद्गदमूकत्वं पानादेवाऽपकर्षति ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण कुर्य्याच्छ्रुतिधरं नरम् ॥ ३१ ॥ नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमुपहन्ति च ॥ न तत्र बालो म्रियते यत्राऽऽस्ते सोमसंज्ञितम् ॥ ३२ ॥

भा० टी०–सफेद सरसों, वचा, ब्राह्मी, शंखाहुली, ककडासिंगी, काकोली, मुलहठी, कूठ, कटुकी ॥ २४ ॥ सारिवा, त्रिफला, असवण, पूतिकरंज, अडूसाके फूल, मंजीठ, देवदार, शोंठ ॥ २५ ॥ पिपली, भृंगराजके बीज, हलदी, फूलप्रियंगु, हुलहुल, दशमूल, अभया (हरड), भारङ्गी, असगन्ध, शतावरी ॥ २६ ॥ इनके दो २ पल भागोंको एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश रहने पर उसे नितार कर उसमें दो प्रस्थ घृत पकावे॥२७॥ सिद्ध होने पर अपुत्रा स्त्रीके लिये युक्तिपूर्वक दो मासाके प्रमाणसे देवे और गर्भिणी स्त्री आठ मासाके प्रमाणसे इसे प्रयुक्त करे ॥ २८ ॥ इसके सेवनसे सर्वथा नीरोग पुत्र उत्पन्न होगा, बांझ स्त्री भी शूर और पंडितमानी पुत्रको पैदा करतीहै ॥ २९ ॥ इसके अतिरिक्त जो स्त्रियां योनिदुष्ट हैं तथा जो पुरुष शुक्रदुष्ट हैं वे भी इस घृतके पानसे शुद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३० ॥ सात ही दिनके प्रयोगसे जडता, गद्गदता, मूकता यह सब नष्ट होकर मनुष्य, श्रुतिधर (एक वार सुने हुए विषयको याद रखनेवाला) होताहै ॥ ३१ ॥ जिस घरमें यह सोमघृत रहताहै वहां अग्नि, वज्र आदिकका भय नहीं और न वहां कोई अल्पायु होकर मरता ही है ॥ ३२ ॥

अथ नीलोत्पलाद्यं घृतम्।

नीलोत्पलोशीरमधूकयष्टीद्राक्षाविदारीकुशपञ्चमूलैः ॥ स्याज्जीवनीयैश्च घृतं विपक्वं शतावरीकारसदुग्धमिश्रम् ॥ ३३ ॥ तच्छर्करापादयुतं प्रशस्तमसृग्दरे मारुतपित्तरक्ते ॥ क्षीणे बले रेतसि संप्रनष्टे कृच्छ्रे च पित्तप्रभवे च गुल्मे ॥ ३४ ॥ आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं तत्तैले पाच्यं भवति नियतं यावदेतन्न सम्यक् ॥ तैलेनाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना हन्ति व्रीडाकरभगफलं नाऽत्र सन्देहबुद्धिः ॥ ३५ ॥

भा० टी०-नीलकमल, खश, मुलहठी, महुवा, दाख, विदारीकन्द, कुशादि पञ्चमूल, जीवनीयगणके द्रव्य इनके कल्क द्वारा शतावरीरस और दूधके संग पका हुआ घृत चतुर्थांश शक्करसे युक्त किये जाने पर वात, पित्त और रक्तसे उपजे हुए प्रदरमें, बलकी क्षीण दशामें, शुक्रभ्रंश और पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र तथा गुल्ममें भी प्रशस्त कहाहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मूसेके मांसका कल्क बनाय उसके द्वारा भली भांति तेलको पका कर उससे वस्त्रको भिगो कर योनिभागमें धारण किये रहनेसे स्त्रियोंका लज्जाकारक योनिकन्द रोग नष्ट होताहै ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे योनिव्यापदधिकारः ॥ ६७ ॥

अथ सूतिकारोगाधिकारः ६८.

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ॥ अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ १ ॥ वृक्षादनी वयस्था च तथैवोत्पलसारिवा ॥ अनन्तसारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ २ ॥ बृहतीद्वयकाश्मर्य्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम् ॥ पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ॥ ३ ॥ यथाक्रमं प्रयोक्तव्या रक्तस्रावे पयोन्विताः ॥ शृंगाटकबिसद्राक्षाकशेरुमधुकाः सिताः ॥ ४ ॥ कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः ॥ मूलानि क्षीरपिष्टानि दापयेदष्टमे भिषक् ॥ ॥ ५ ॥ नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ॥ पयस्तु दशमे शुण्ठ्या शृतं शीतं प्रशस्यते ॥ ६ ॥ सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ॥ एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक्च प्रशाम्यति ॥ ७ ॥ मधुकं छागिदुग्धेन कुलालकरकर्द्दमः ॥ अवश्यं स्थापयेद्गर्भं वलितं पानयोगतः ॥ ८ ॥ कुशकासोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ ॥ ९ ॥ कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्रपर्णीमधुकं सशर्करम् ॥ सशूलगर्भस्रुतिपीडिताङ्गना पयोविमिश्रं पयसाऽन्नभुक् पिबेत् ॥ १० ॥ पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः सह ॥ नाभिवस्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ॥ ११ ॥

भा० टी०—यदि गर्भिणीके रक्तस्राव हो तो पहिले महीनेमें मुलहठी,शागोनके बीज, क्षीरकाकोली, देवदार, दूसरे मासमें कुलथी, काले तिल, मंजीठ, शतावरी, तीसरे मासमें गिलोय, क्षीरकाकोली, नील कमल, सारिवा, चौथे मासमें अनन्तमूल, कालीसर, रासना, भारङ्गी, मुलहठी ॥ १ ॥ २ ॥ पांचवें मासमें कटाई, कटेरी, गंभारी, वडके अंकुर, दालचीनी, घृत, छठे मासमें पिठवन, खिरेंटी, सैंजनेके बीज, गोखरु, मुलहठी ॥ ३ ॥ सातवें मासमें सिंघाडे, मृणाल, दाख, कशेरू, शक्कर इनके क्राथमें दूध मिलाकर पान करनेसे रक्तस्राव दूर हो ॥ ४ ॥ आठवें मासमें कैथ, बेल, कटाई, परवल, ईख, कटेरी इन सबकी जडको दूधमें पीसकर पीवे ॥ ५ ॥ नवमें मासमें मुलहठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, कालीसर, इनको दूधके संग औटावे। दशवें मासमें शोंठको दूधमें औटा कर पीवे ॥ ६ ॥ अथवा शोंठ, मुलहठी, देवदार इनको दूधमें औटाकर पीवे। ऐसा करनेसे गर्भ आप्यायित होताहै और तीव्र पीडा भी शान्त होतीहै ॥ ७ ॥ मुलहठी और कुम्हारके हाथकी मिट्टीके लेहको बकरीदूधके संग पान करनेसे अवश्य गर्भ अनुकूल मार्गपर स्थित होताहै ॥ ८ ॥ कुश, कास, एरंडी, गोखरु इनके जडको शक्कर सहित दूधके संग औटा कर पीनेसे गर्भिणीका गर्भशूल दूर होताहै ॥ ९ ॥ कशेरु, सिंहाडे, पद्माख, नील कमल, मुगवन, मुलहठी, शक्कर इन सबको पीसकर दूधके संग औटाकर पीवे और दूधके ही संग भोजन भी करे ॥ १० ॥ पाठाकी जड, कलिहारीकी जड, अडूसेकी जड, चिरचिटाकी जड इन सबको पीसकर नाभिस्थान, वस्तिस्थान और भगमें लेप करनेसे गर्भिणीके सुख पूर्वक प्रसव होता है ॥ ११ ॥

परूषकशिफालेपः स्थिरामूलकृतोऽथवा ॥ नाभिवस्तिभगाद्येषु मूढगर्भोऽपि सूयते॥१२॥मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ॥ घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ १३ ॥ भूर्ज्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः॥पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम् ॥१४॥ कुष्ठतालीसकल्कं वा सुरामण्डेन पाययेत् ॥ यूषेण वा कुलत्थानां बिल्वजेनाऽऽसवेन वा ॥ १५ ॥ शताह्वासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः ॥ सहिंगुकुष्ठमदनैः मूत्रे क्षीरे च सार्षपम् ॥ १६ ॥ तैलं सिद्धं हितं पायौ योन्यां वाप्यनुवासनम् ॥ शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्कितः ॥ १७ ॥ निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणो जराम् ॥ तत्सङ्गे ह्यनिलो हेतुः सा निर्य्यात्याशु तज्जयात् ॥१८॥ सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मक्कलसंज्ञितम् ॥ यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ १९ ॥ पिप्पल्यादिगणक्वाथं पिबेद्वा लवणा-

न्वितम् ॥ प्रसूताशूलपीडाया निर्मूलनमनुत्तमम् ॥ २० ॥ अमृतानागरसहचरभद्रेत्कटपञ्चमूलजलदजलम्॥शृतशीतं मधुयुक्तं निवारयति सूतिकातङ्कम् ॥२१॥ पञ्चमूलस्य वा क्वाथं तप्तलोहेन संयुतम् ॥ सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वातच्छिदं सुराम् ॥२२॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यवानिका ॥ जीरके द्वे हरिद्रे द्वे सौवर्चलविडङ्गकम् ॥ २३ ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ॥ आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥ २४ ॥ काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणां स्तन्यविशोधनम् ॥ मल्लशूलोपशमनं परं क्षीराभिवर्द्धनम् ॥ २५ ॥ वनकर्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेन च ॥ विदारिकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ २६ ॥

भा० टी०–नाभि, वस्ति और भगस्थानमें फालसेकी जड वा शालवनकी जडको पीसकर लेप करनेसे मूढगर्भवाली स्त्री भी सुखसे प्रसव करतीहै ॥ १२ ॥ अथवा बिजोरा नीबूकी जड, मुलहठी, मधु इनको पीसकर घृतके संग पीनेसे भी स्त्री सुखपूर्वक प्रसूता होतीहै ॥ १३ ॥ भोजपत्र, कलिहारी और तुम्बीकी जड, सर्पकी केंचुली, कूठ, सरसों इनके द्वारा पृथक् २ वा दो २ द्रव्योंसे वा सवोंसे योनिपर धूप देने और लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होताहै ॥ १४ ॥ किंवा, सुखसे प्रसव होनेके लिये कूठ और तालीसपत्रके कल्कको सुरामंडके संग वा कुलथीके यूषके संग वा बिल्वजन्य आसवके संग सूतिकाको पिलावे ॥ १५ ॥ सौंफ, सरसों, कालीजीर, सैंजन, सफेदसरसों, चीता, हींग, कूठ, मैनफल इनके कल्कद्वारा गोमूत्र और दूधके संग सरसोंके तैलको ॥ १६ ॥ सिद्ध करके गुदद्वार और योनिमें अनुवासन वस्ति करना भी श्रेयस्कर है । सौंफ, वचा, कूठ, पिपली, सरसों इनके कल्कद्वारा ॥ १७ ॥ स्नेह और नोनके संग निरूहण वस्ति करनेसे जरा (जेर) गिर जातीहै । क्योंकि जेरको वायु जकड दिया करता है अतः वायुके जीते जानेसे ही वह बाहर निकल आती है ॥ १८ ॥ प्रसवके अनन्तर स्त्रियोंके हृदय, शिर और वस्तिस्थानमें मल्लक नामका शूल उत्पन्न हुआ करताहै इस दशामें घृतके संग वा गरम जलके संग जवाखारको पीना उचित है ॥ १९ ॥ किंवा, पिप्पल्यादिगणके क्वाथमें सेंधानोन मिलाकर पान करना भी प्रसूताके शूलको नष्ट करनेका एक उत्तम उपाय है ॥ २० ॥ गिलोय, शोंठ, कटसरैया, हलदी, इत्कट,पञ्चमूल,मोथा, सुगन्धवाला इनके काढेको शीतल होनेपर मधुके संग उपयुक्त करनेसे सूतिकाका आतंक (भय) दूर होताहै ॥ २१ ॥ सूतिकारोगके विनाशके लिये पञ्चमूलके क्वाथमें तपेहुए लोहको डालकर पीवे वा वातनाशक मदिराको पीवे ॥ २२ ॥ पिपली, पिपलीमूल, चव्य, शोंठ, जवायण, कालीजीर, सफेदजीर, हलदी,,

दारुहलदी, कालानोन, वायविडङ्ग ॥ २३ ॥ इनके कल्कद्वारा काञ्जीको पकावे। यह काञ्जी आमवात और कफको दुराती तथा जठराग्निको बढाती और धातुको पुष्ट बनातीहै ॥ २४ ॥ किंबहुना, यह वज्रक कांजी स्त्रियोंके दूषित दूधको शुद्ध बनाती, मल्लक शूलको शान्त करती और दूधको बढातीहै ॥ २५ ॥ अथवा वनकपास और ईखकी जडको पीसकर सौवीर कांजीके संग पीनेसे वा विदारीकन्दको मद्यके संग पीनेसे भी स्त्रियोंके दूध बढता है ॥ २६ ॥

अथ खण्डशुण्ठीयोगः।

विश्वादष्ट पलानि विंशति घृतात्प्रस्थद्वयं क्षीरतः खण्डस्याऽर्द्धशतं त्रिगन्धिककणाव्योषं पलांशं क्षिपेत् ॥ व्योषादन्यपृथक्पलद्वय-मिति क्षिप्रं निहन्त्यामयान्वातात्कान्तिबलोधसां प्रकटनं तत्सूति-कायै हितम् ॥२७॥ हारिद्रादिं वचादिं वा पिबेत्स्तन्यविशोधनम् ॥ तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत ॥ २८ ॥ पित्तदुष्टेऽमृ-ताभार्ङ्गीपटोलं निम्बचन्दनम् ॥ कुमारधात्री प्रपिबेत्कथयित्वा ससारिवम् ॥ २९ ॥ शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्वि-द्रधावपि हितं बहुधा विधानम् ॥ आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव च निर्दुहीत ॥ ३० ॥ विशाला-मूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् ॥ निशाकनकफलाभ्यां लेपश्चातिस्तनार्तिनुत् ॥ ३१ ॥

भा० टी०–आठ पल शोंठ, २० पल घृत, २ प्रस्थ दूध, ५० पल खांड, एक २ पलके प्रमाणसे इलायची, दालचीनी, तेजपात, जीर और एकही पल त्रिकटु इन सबको एकत्रित करके यथाविधि पकानेके अनन्तर सूतिकाके लिये प्रयुक्त करे यह खंडशुंठी योग वातरोगोंको शीघ्र ही नष्ट करता तथा कान्ति, बल और दुग्धको बढाताहै ॥ २७ ॥ दूषित दूधको शुद्ध करनेके लिये हरिद्रादिगण वा वचादिगणके क्काथको पीवे । वायुदूषित दुग्धके होते दशमूलके काढेको पीवे ॥ २८ ॥ पित्तदूषित दुग्धके होते गिलोय, भारंगी, परवल, नीम, चन्दन, गौरीसर इनका क्काथ बनाकर बालककी धाव पीवे ॥ २९ ॥ यदि प्रसूताके स्तनोंमें सूजन दिखाई दे तो विद्रधिरोगमें कहीहुई प्रलेपादि क्रिया करनी। तथा स्त्रियोंके अपक्व वा पक्वरूप स्तनगत सूजनकी चिकित्सा करते समय नित्य स्तनोंमेंसे दूध निकाललेवे ॥ ३० ॥ इन्द्रायणकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारके स्तनरोग नष्ट होतेहैं इसीभांति हलदी और धतूरेके फलोंको पीसकर लेप करनेसे स्तनोंकी पीडा दूर होतीहै ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे सूतिकारोगाधिकारः ॥ ६८ ॥

अथ बालरोगाधिकारः ६९.

कुष्ठं वचाभयाब्राह्मीकनकं क्षौद्रसर्पिषा ॥ वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य योजयेत् ॥ १ ॥ स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ तदौषधैः प्रलिप्ताग्रं स्तनं धात्र्यथ पाययेत् ॥ २ ॥ मृत्पिण्डेनाऽग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ॥ स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ३ ॥ नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः शृतम् ॥ तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यथ चूर्णनम् ॥ ४ ॥ हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ॥ शिशुज्वरातिसारघ्नः कषायः स्वन्यदोषहा ॥ ५ ॥ घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् ॥ शिशुज्वरातिसारघ्नं कासश्वासवमीहरम् ॥ ६ ॥ धातकीविश्वधान्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः ॥ लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिनुत् ॥ ७ ॥ रजनीदारुसरलाः श्रेयसी वृहतीद्वयम् ॥ पृश्निपर्णी शताह्वा च पलं माक्षिकसर्पिषा ॥ ८ ॥ ग्रहणीदीपनं वातार्तिघ्नं मलविशोधनम् ॥ ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित् ॥ ९ ॥ मिसीकृष्णाञ्जनं लाजाशृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ॥ लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः ॥ १० ॥ शृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ॥ कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां चाऽतिविषामथैकाम् ॥ ११ ॥ द्राक्षामधुककल्केन स्तनौ चाऽस्याः प्रलेपयेत् ॥ किराततिक्तकं वापि सामृतं क्वथितं पिबेत् ॥ १२ ॥ द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत् ॥ आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थलेहः क्षौद्रेण वान्तिनुत् ॥ १३ ॥ लेहस्तस्य सिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितैः ॥ कालेन रुंध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम् ॥ १४ ॥ गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ १५ ॥ कणोषणा सिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः ॥ मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः

शिशूनां लेह उत्तमः ॥ १६ ॥ घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिंगुभार्ङ्गी-रजःकृतः ॥ आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशोः ॥१७॥ हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ॥ पीत्वा कुमारस्तन्येन मुच्यते तालुजाद्व्रणात् ॥ १८ ॥ गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः ॥ लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १९ ॥ पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम् ॥ शृङ्गवेरेण संयुक्तं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत् ॥ २० ॥

भा० टी०–कूठ, वचा, अभया (हरड), ब्राह्मी, कसौंदी इनके लेहको मधु, घृतके संग प्रयुक्त करनेसे बालकके वर्ण, आयु और कांति उत्पन्न होतीहै ॥ १ ॥ यदि माताके स्तनमें दूध न हो तो बकरीका दूध वा गव्यदुग्धको बालकको पिलावे। किंवा, बालहितकारक और दुग्धशोधक द्रव्योंसे चूचुओं पर लेप करके धाव अपने स्तनको पिलावे ॥ २ ॥ यदि बालककी नाभि सूजनसे उठी हुई हो तो मिट्टीके पिण्डको अग्निमें तपा कर दूधका सेक देनेसे जो भाफ उठे उसके द्वारा-नाभि पर स्वेद देवे इससे सूजन शांत होगी ॥ ३ ॥ यदि नाभि पकने लगे तो हलदी, लोध, फूलप्रियंगु, मुलहठी इनके द्वारा सिद्धकिये हुए तैलका मर्दन करे वा उक्त द्रव्योंके चूर्णको प्रयुक्त करे ॥ ४ ॥ हलदी, दारुहलदी, मुलहठी, कटाई इन्द्रजौ इनके कषायको बालकके प्रयुक्त करनेसे ज्वरातिसार नष्ट होय और धावका दुग्धदोष भी दूर होय ॥ ५ ॥ मोथा, पिपली, अतीस, ककडासिंगी इनके चूर्णमें मधु मिलाय प्रयुक्त करनेसे बालकोंके ज्वरातिसार, कास, श्वास और छर्दी नष्ट होतीहै ॥ ६ ॥ धायके फूल, शोंठ, धनियां, लोध, इन्द्रजौ, सुगंधवाला इनके लेहको मधुके संग प्रयुक्त करनेसे बालकोंके ज्वरातिसार और छर्दी दूर होतेहैं ॥ ७ ॥ हलदी, देवदार, धूप-सरल, हरड, कंटकारी, कटेरी, पिठवन, सौंफ इनके समभागिक लेहको मधु घृतके संग प्रयुक्त करनेसे जठराग्नि दीप्त होता, वातपीडा नष्ट होती और मल शुद्ध होताहै, एवं ज्वरातिसार और पाण्डु नष्ट होते तथा बालकोंके सब प्रकारके रोग नष्ट होतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अजमोद, पिपली, रसोत, खीलें, ककडासिंगी, मिरच, मधु इनके लेहको प्रयुक्त करनेसे बालकके छर्दी, कास और ज्वर नष्ट होतेहैं ॥ १० ॥ ककडासिंगी, मोथा, अतीस इनका लेह बनाय मधुके संग कास, श्वास और ज्वर छर्दीसे पीडित हुए बालकोंके प्रयुक्त करे। किंवा, केवल अतीसको ही मधुके संग प्रयुक्त करे॥११॥दाख और मुलहठीके कल्कसे स्तनों पर लेप करने तथा चिरायता और गिलो-यके क्काथको पीनेसे दूषित दुग्धकी शुद्धि होतीहै ॥ १२ ॥ कटेरी और कंटकारीके फलरसको तथा पञ्चकोलको भी बालकको चटावे। एवं आमकी गुंठली, खीलें, सेंधानोन इनके लेहको मधुके संग प्रयुक्त करनेसे छर्दी दूर होतीहै ॥ १३ ॥ शक्कर, मधु, तिल, मुलहठी इनके कल्कका लेह बनाय सेवन करनेसे बालकोंका रक्तस्राव और प्रवाहिका रोग नष्ट होताहै ॥१४॥ बालकोंके गुदापाकमें सर्वथा पित्तनाशक उपचार करे, विशेष करके यहां पान और लेपन कर्ममें रसोतका उपयोग करना ॥ १५ ॥ सफेदजीरा, पिपली, शक्कर, मधु, छोटी इलायची, सेंधानोन इनके

लेहको बालकोंके मूत्रग्रहमें प्रयुक्त करना उचित है ॥ १६ ॥ सेंधानोन, शोंठ, इलायची, हींग, भारंगी इनके लेहको घृतके संग वा जलके संग प्रयुक्त करनेसे बालकोंके वातजन्य आनाह और शूल नष्ट होतेहैं ॥ १७ ॥ हरड, वचा, कूठ इनके कल्कमें मधु मिलाय मातृदुग्धके संग पीनेसे बालक तालुजन्य व्रणसे मुक्त होताहै ॥ १८ ॥ गृहधूमकी धूर, हलदी, कूठ, राई, इन्द्रजौ इनको छांछके संग पीसकर लेप करनेसे बालकके सिध्म, पामा, विचर्चिका आदि कुष्ठ प्रकार नष्ट होतेहैं ॥ १९ ॥ हिचकीसे पीडित हुए बालकको लघुपञ्चमूलके क्वाथमें घृत और दूधको पकाकर अदरख मिलाय शीतल होनेपर पिलावे ॥ २० ॥

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं माक्षिकसंयुतम् ॥ लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा ॥ २१ ॥ पौष्करातिविषाशृंगीमागधीधन्वयासकैः ॥ चूर्णं मधुयुतं लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥ २२ ॥ भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ॥ कार्यं तदेव बालानां तेषु दाहादिकं विना ॥ २३ ॥ दोषैर्वातादिभिः सर्वव्याधयः प्रभवन्ति हि ॥ अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी ॥ २४ ॥ सर्पत्वग्लशुनं मूर्वासर्षपारिष्टपल्लवैः ॥ विडालविष्ठालोमानि मेषशृङ्गीवचा मधु ॥ २५ ॥ धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥ महामुण्डितिकादिव्यक्वाथपानं ग्रहापहम् ॥ २६ ॥ बलिः शान्तिककर्म्माणि कार्य्याणि ग्रहशान्तये ॥ मन्त्रश्चाऽयं प्रयोक्तव्यस्तत्रादौ सार्वकामिकः ॥ २७ ॥ "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सत्यवस्तुतत्वात्मकाय स्वाहा" इति ॥ ॐ कटं वैनतेयाय नमः ॥ ॐ ह्रां ह्रीं क्षः ॥ बालदेहप्रमाणेन पुष्पमालां च सर्वतः ॥ प्रगृह्य मुष्टिकाभक्तबलिर्देयस्तु शान्तिकः ॥ २८ ॥ ॐ कामस्वर्णपक्षिणी शकुनि बालकं रक्ष स्वाहा ॥ अपरोऽप्ययं भक्तशरावदानमन्त्रः सद्भिः स्मृतः ॥ ॥ २९ ॥ दशमूलशरारिष्टब्राह्मीपाठाकटुत्रिकैः ॥ अंकोटकवनास्फोतशिरीषकटभीफलैः ॥ ३० ॥ कृमिघ्नमूलसम्पाकशिंशपामरदारुभिः ॥ प्रियंगुहिंगुमञ्जिष्ठासुमुखातण्डुलीयकैः ॥ ३१ ॥ गिरिकर्णवचाकुष्ठकंकुष्ठरजनीयुगैः ॥ मधूकसारसिन्धूत्थसितनीलोत्पलाम्बुभिः ॥ ३२ ॥ कटुतैलं समं चैभिः पक्कं क्षीरे चतुर्गुणे ॥ सोन्मादं हन्त्यपस्मारं पुंसां पानाक्षिनावनैः ॥ ३३ ॥ डाकिनी-

भूतवेतालानकामेयादिकान्ग्रहान् ॥ कृत्याभिचाररक्षांसि नाशयत्यपरानपि ॥ ३४ ॥ तथा क्षयज्वरश्वासकासमेहभगन्दरान् ॥ तैलमेतन्महेन्द्रेण नन्दस्य कथितं पुरा ॥ ३५ ॥ बालस्य किल रक्षार्थं विष्णोरमिततेजसः ॥ अभ्यज्य सर्वगात्राणि भोक्तव्यं रिपुवेश्मनि ॥ ३६ ॥

भा० टी०—दाख, जवास, हरड, पिपली इनके चूर्णको मधुके संग चाटनेसे बालकोंके श्वास, कास और तमक रोग नष्ट होतेहैं ॥ २१ ॥ पोहकरमूल, अतीस, ककडासिंगी, पीपली, जवास इनके चूर्णको मधुके संग चाटनेसे बालकोंके पांच प्रकारके कास दूर होतेहैं ॥ २२ ॥ ज्वर आदि रोगोंमें जो चिकित्सा पहिले बडोंके लिये कहीहै वही चिकित्सा बालकोंके ज्वरादिकोंमें भी करनी, केवल दाहादि क्रिया न करनी ॥ २३ ॥ सबके रोग वातादि दोषोंसे ही उपजतेहैं अतः सबकी एक समान चिकित्सा करनी केवल बालकोंके लिये मात्राका प्रमाण अल्प होना चाहिये ॥ २४ ॥ सर्पकी केचली, लहसुन, मरोरफली, सरसों, नीमके पत्ते, बिल्लीकी बीट और बाल, मेंढाशिंगी, वचा, मधु ॥ २५ ॥ इनका धूप देनेसे बालकका ज्वर और सब प्रकारकी ग्रहबाधा दूर होतीहै । एवं बडी गोरखमुंडी और गोगलके काथको पान करनेसे भी ग्रहबाधा नष्ट होतीहै ॥ २६ ॥ इसके अतिरिक्त बालकोंकी ग्रहशान्तिके लिये बलि और शान्तिक कर्म भी करने उचित हैं । बलि देनेके समयमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंको पढे ॥ २७ ॥ "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सत्यवस्तुतत्त्वात्मकाय स्वाहा" । "ॐ कटं वैनतेयाय नमः ॐ ह्रौं ह्रीं क्षः" । बलिदानका विधान यह है कि, बालकके शरीरको बराबर लंबी पुष्पमालाको एक हाथमें लेकर और दूसरे हाथकी मुष्टिपर भात लेकर पूर्वोक्त मंत्रोंको पढता हुआ शान्तिक बलि देवे ॥ २८ ॥ इस बलिदानका यह दूसरा मन्त्र भी पंडितोंने आगे कहा है "ॐ कामस्वर्णपक्षिणि शकुनि बालकं रक्ष स्वाहा" ॥ २९ ॥ दशमूल, रामशर, नीम, ब्राह्मी, पाठा, त्रिकटु, ढेरा, वनकपासकी जड, शिरस, कोयलके फल ॥ ३० ॥ वायविडङ्गकी जड, अमलतास, सीसम, देवदार, फूलप्रियंगु, हींग, मंजीठ, वनतुलसी, चौलाई ॥ ३१ ॥ जवासा, वचा, कूठ, कंकुष्ठ (एक प्रकारका पाषाणभेद), हलदी, दारुहलदी, महुवाका सार, सेंधानोन, श्वेतकमल, नीलकमल, सुगन्धवाला ॥ ३२ ॥ इनके कल्कके संग चौगुने दूधमें कडुवे तेलको पकावे । इस तैलके उचित प्रयोगसे उन्माद, मृगी, डाकिनी, भूत, वेताल, अकामेयादिग्रह, कृत्या, अभिचार (जादू), राक्षस, क्षय, ज्वर, श्वास, कास, प्रमेह, भगन्दर यह सब नष्ट होते हैं । पूर्वकालमें इन्द्रने बालकृष्णकी रक्षाके लिये नन्दगोपके पास इस तैलका विधान कहाथा । इस तैलसे समस्त गात्र पर अभ्यङ्ग करके बालक भी शत्रुके घर पर विलास कर सकता है॥३३॥ ३४॥ ३५ ॥३६॥

अथाष्टमङ्गलघृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा ॥ सारिवासैन्धवं चापि पिप्पली घृतमष्टमम् ॥ ३७ ॥ मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पाययेत दिने-

दिने ॥ धृतिस्मृतिकरं तेन कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥ ३८ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ॥ प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ ३९ ॥

भा० टी०-वचा, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सेंधानोन, पिपली, घृत इन आठ वस्तुओंको एकत्रित करके यथाविधिसे घृतको पकावे ॥ ३७ ॥ सिद्ध होने पर इस पवित्र घृतको प्रतिदिन बालकको पियावे। इसके प्रभावसे बालक धृति, स्मृति, बुद्धि संपन्न होता-है ॥ ३८ ॥ इस अष्टमङ्गल घृतको पान करते हुए बालकोंपर भूत, प्रेत, पिशाच और मातृका आक्रमण नहीं कर सकते हैं ॥ ३९ ॥

अथाश्वगन्धाद्यं तैलम्।

गन्धाकल्कैरष्टमांशैः क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम् ॥ ४० ॥

भा० टी०-असगन्धके अष्टमांश कल्कके द्वारा दशगुने दूधमें घृतको पकावे। यह घृत पुष्टिकारक और बलवर्द्धक होनेके कारण बालकोंके पान करने योग्य है ॥ ४० ॥

अथ लाक्षाद्यं तैलम्।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् ॥ रास्ना चन्दनकं कृष्णा-वाजिगन्धानिशायुतम् ॥ ४१ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ता-हरेणुभिः ॥ बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यंगाद्बलवर्द्धनम् ॥ ४२ ॥

भा० टी०-रासना, चन्दन, पिपली, असगन्ध, हलदी, सौंफ , देवदारु, मुलहठी, चुरनहार, कटुकी, रेणुका इनके अक्षप्रमाण कल्कोंके द्वारा १ प्रस्थ लाखके रसमें चार प्रस्थ दधि जल और १ प्रस्थ तैलको पकावे इस तैलके अभ्यङ्गसे बालकोंकी ज्वरबाधा, भूतबाधा नष्ट होकर बलवृद्धि होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे बालरोगाधिकारः ॥ ६९ ॥

अथ विषप्रतिषेधाधिकारः ७०.

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवम् ॥ उद्धृत्याऽऽकलितं सुयोगदिवसे तस्याऽहिभीतिः कुतः ॥ दर्पादेव यदा फणी दशति तं मोहान्वितो मूलकस्थाने तत्र तदैव याति नियतं सच्छासनात्तद्विषम् ॥ १ ॥ मसूरनिम्बपत्राभ्यां पिबेन्मेषगते रवौ॥ अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषस्य विषमस्य च ॥२॥ सर्वैरेवाऽऽदितः सर्पैः शाखादुष्टस्य देहिनः॥बध्नीयाद्गाढमुपरि दंशं तु चतुरंगुलम्॥ ३॥

प्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनाऽन्यतमेन च ॥ न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ ४ ॥ दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ॥ आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥ ५ ॥ प्रतिपूर्य्य मुखं वस्त्रैर्हितमाचूषणं भवेत्॥ स दष्टव्योऽथ वा सर्पो लोष्टश्चापि हि तत्क्षणात् ॥ ६ ॥ पानेनोष्णघृतस्यापि गव्यस्य मरिचैः सह ॥ शून्यताध्यानमात्रेण शून्यतां याति तद्विषम् ॥ ७ ॥ श्लेष्मणः कर्णभूतस्य वामानामिकया कृतः ॥ लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रैः सवनात्तथा ॥८॥ कुलकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ पिण्डीतगरजं मूलं पुष्येणोत्पाट्य योजितम् ॥ ९ ॥ चालयत्यत्र नो चित्रं नरं दंशमृतं खलु ॥ शिरीषपत्रस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ॥ १० ॥ भावितं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जनैर्हितम् ॥ नक्तमालफलं व्योषबिल्वमूलनिशाद्वयम् ॥ ११ ॥ सौरसं पुष्पमाजश्च मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥ वन्ध्याकर्कोटमूलं च छागीमूत्रेण भावितम् ॥ १२ ॥ नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसाम् ॥ श्रेयसे कथितं धीरैः शिवशासनतः परम् ॥ १३ ॥ त्रिवृद्विशाले मधुकं हरिद्रे मञ्जिष्ठवर्गो लवणाश्च सर्वे ॥ कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥ १४॥ एषोऽगदो हन्त्युपयुज्यमानः पानक्षताभ्यञ्जननस्ययोगैः ॥ अवार्य्यवीर्य्यो विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ॥ १५ ॥ आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ॥ लेपो जयत्याशु विषं कर्णिकायाश्च पातनः ॥ १६ ॥ यः काशमर्दपत्रं वदने प्रक्षिप्य कर्णफूत्कारम् ॥ मनुजो ददाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः॥ १७॥रजनीसैन्धवक्षौद्रान्वितं प्लुतमलं तथा ॥ पानं मूलविषार्त्तस्य दग्धविद्धस्य चेष्यते ॥१८॥ चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वा नखदन्तविषापहम्॥ गोजिह्वात्रिवृता चैवं विषोपविषनाशिनी॥१९॥ वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ॥ पाठा प्रतिविषा व्योषं कश्यपेन विनिर्मितम् ॥ २० ॥ दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ वितत्य छत्रं मनुजो दिवा गच्छति चेत्सदा ॥ २१ ॥

भ्रान्तो गरुत्मद्गरुता शंकितोऽधिपलायते ॥ विषवेगविनिर्मुक्तोऽनावसर्तुं क्षमो भवेत् ॥२२॥ विरुद्धमशनं क्रोधं क्षुद्भयायासमैथुनम् ॥ वर्ज्जयेद्विषमुक्तो हि दिवास्वप्नं विशेषतः॥२३॥लाङ्गलीभानुजामूलं गृहधूमाजमूत्रकम्॥धत्तूरस्य फलं पिष्ट्वा लेपो व्याधिविनाशकः ॥२४॥

भा० टी०–शिरसकी जडको तंडुलंजलके संग पीसकर आषाढमें शुभ दिन शुभ मूहूर्तमें पान करनेवाले मनुष्यको सर्पभय कहां ? । ऐसे मनुष्यको यदि सर्प दर्पसे वा मोहसे डांस भी देय तो उसी समय उसका विष शिवजीकी आज्ञानुसार शिरसे मूल स्थान पर जा पहुंचता है॥१॥ मसूर और नीमके पत्तोंके संग शिरसकी जडको पीसकर वैशाख मासमें पान करनेवाले मनुष्यके एक वर्ष पर्य्यन्त विष और विषमज्वरका भय नही रहता ॥ २ ॥ हस्त, पादादि अङ्गोंमें यदि सर्प काट खावे तो उसी समय कटे हुए स्थानके चार अंगुल ऊपर नरम चमडे या कपडे या वृक्षकी छालसे वा किसी और वस्तुसे दृढता पूर्वक बांध देवे, बांधनेसे विष शरीरमें नहीं फैलने पाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ जहां बन्ध नहीं होसकता वहां चीरकर दाग देवे, क्योकि घावपर दग्ध करना तथा चूसकर रक्तको निकालना एवं घावको चीरना यह सब कर्म सर्पदंशमें उपयोगी होते हैं ॥ ५ ॥ वस्त्रको मुखमें भरकर कटे हुए स्थानको चूसना उत्तम कहा है । कोई ऐसा भी कहते हैं कि, जो सांप काटे तो तत्काल उसी सांपको पकडकर काट खावे । किंवा,मट्टीके ढेलेको तत्काल काट खानेसे विष नहीं चढता ॥ ६ ॥ काली मिरचोंके संग गरम २ गोघृतको पीने वा शून्यताके ध्यान करनेसे भी सर्पका विष शून्यभावको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ वामहस्तकी अनामिका के द्वारा कर्णमलका लेप करनेसे भयंकर विष नष्ट होता है॥ ८ ॥ परवलकी जडको पीसकर नास देनेसे कालका काटाहुआ भी जी जाता है । पुष्य नक्षत्रमें पिण्डी तगरकी जडको उखाड कर नेत्रोंमें लगानेसे सांपके विष करके मरे हुए मनुष्य भी जीवित होते हैं । शिरसके पत्तोंके स्वरसमें सहिंजनेके बीजोंको सात दिनतक भावना देकर नस्य, पान, और अञ्जनमें प्रयुक्त करनेसे सांपका विष नष्ट होता है । करंजुवेके फल, त्रिकटु, बेलकी जड, दोनों हलदी, सुरसाका फूल इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर अंजन करना मूर्च्छासे बोध कराता है । बांझ ककोडेकी जडको बकरीके दूधमें भावना देकर कांजीमें पीसकर नस्य देनेसे विषसे व्याकुल हुए मनुष्योंको कल्याण होता है॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ निसोत, इन्द्रायन, बडी इन्द्रायन, मुलहटी, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, सब लवण, त्रिकटु इन सबको एकत्र महीन पीसकर सहतके संग मिलाकर गायके सींगमें भर देवे । इस औषधका पान, अञ्जन, अभ्यङ्ग और नस्यकर्ममें प्रयोग करनेसे महाविषका वेग नष्ट होता है । इस अवार्यशक्तियोगका नाम महागद है॥ १४ ॥ १५ ॥ गृहधूमकी धूर, मंजीठ, हलदी, सेंधानोन इनको पीसकर लेप करनेसे तत्काल विष नष्ट होता और लूतारोगकी कर्णिका भी गिरती है ॥ १६ ॥ कसौंदीके पत्तेको मुखमें चबाकर कानमें फूंक मारनेसे बिच्छूका विष दूर होता है ॥ १७ ॥ हलदी, सेंधानोन, मधु इनको औटाकर पान करना मूलविषसे व्याकुल हुए तथा दग्धविद्धमनुष्यके लिये उपयोगी होता है ॥१८॥ इसके अतिरिक्त श्वान आदि चतुष्पद और गोधा आदि द्विपदोंके नख दन्त आदिसे उपजाहुआ विष भी उक्त योगसे दूर होता है।

इसीप्रकार गोजिया और निसोतका उपयोग भी विष और उपविषका नाशक होता है ॥१९॥ वचा, हींग, वायविडङ्ग, सेंधानोन, गजपिप्ली, पाठा, अतीस, शोंठ, मिरच, पीपल इस दशाङ्ग-योगको कश्यप ऋषिने बनाया है। इसके सेवनसे सब प्रकारके कीटोंके विष दूर होते हैं। मध्याह्न कालमें छत्री ओढकर चलनेवाले मनुष्यसे गरुडकी शंका करके सर्प निर्विष होकर भाग चलता है और किसी प्रकार उसका सामना नहीं करता ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ विषसे निर्मुक्त हुए मनुष्यको उचित है कि, कुछ कालतक विरुद्ध भोजन, क्रोध, भूख, भय, परिश्रम, मैथुन और विशेषकरके दिवास्वापको त्यागदेवे ॥ २३ कलिहारीकी जड, आककी जड, गृहधूम, धतूरेका फल इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विषव्याधि (लूतारोग) नष्ट होता है ॥ २४ ॥

उत्पलं चन्दनं कुष्ठं जीवन्तीशुण्ठिपाटलम्॥मदनो विल्वनिर्गुण्डीमदनं ब्रह्मदण्डिका ॥ २५ ॥ नखं च तगरश्चैव तथा सम्बरणत्वचः ॥ जले पिष्ट्वा प्रलेपोऽयं वातलूतानिवारणः ॥ २६ ॥ चन्दनं सोत्पलं मुस्तालाङ्गलीशुण्ठिरेणुकाः ॥ वातकं मधुयष्टी च कौसुम्भं वल्कलान्वितम् ॥ २७ ॥ तुल्यं पिष्ट्वा जले लेपः पित्तलूताप्रशान्तये ॥ सोषणा सारिवा वह्निर्वरणं नागवल्लिका ॥ २८ ॥ वचापाटलपाठाश्च फलं वंशत्वचः समाः ॥ जले पिष्ट्वा प्रलेपोऽयं कफलूताप्रशान्तये ॥२९॥ भ्रुवोर्मध्ये गले हस्ते श्रवणे गण्डमूर्द्धनि॥ हृदि मर्म्मसु पृष्ठे च लूता सा स्यात्त्रिदोषजा ॥ ३० ॥ असाध्या कष्टसाध्या च ज्ञात्वा वैद्य उपाचरेत् ॥ विट् कुक्कुटानां वाराही-हिङ्गू मदनतालकम् ॥३१॥ वंशत्वग्गिरिकर्णी च रेणुकं च मनः-शिला ॥ जले पिष्ट्वा प्रलेपोऽयं लूतां हन्ति त्रिदोषजाम् ॥३२॥ ज्योतिष्मतीकर्कटिकापल्लवं पेषयेज्जले ॥ लेपो लूतां निहन्त्याशु सप्तरात्रान्न संशयः ॥ ३३ ॥ नरमूत्रेण सर्पाक्षीं पिष्ट्वा लेपं तु कारयेत् ॥ असाध्यां साधयेल्लूतां सप्ताहेन न संशयः ॥ ३४ ॥ गोजिह्वाकालिकयोर्मूलं तोयेन पेषयेत् ॥ लेपेन नाशयेच्छूलम-साध्यविषविह्वले ॥ ३५ ॥ "ॐ नमो भगवते रुद्राय। ॐ सुरा-देवी माता विषमाथाते हूँ हूँ हूँ सुर सुर अवर्हाकेफकेनाके वक्षे मा दह मा पच मा सर विष हूँ हूँ स्वाहा" अनेन मन्त्रेण सर्वौष-धानि देयानि ॥ कुंकुमं चन्दनं क्षीरे पिष्ट्वा मन्त्रमिदं लिखेत् ॥ भूर्ज्जपत्रेण बध्नीयाद्गले वा बाहुमूलके ॥ ३६ ॥ लूतां हन्ति न

सन्देहो वेष्टयेच्छणसूत्रकैः ॥ पक्वजम्बूफलाकारा दंशा रक्तं स्रवन्ति च ॥ ३७ ॥ दन्तोष्ठाः श्यामला यस्य लूता दृष्टा न जीवति ॥ तथापि विमलैर्योगैः कोपि भाग्येन जीवति ॥ ३८ ॥ गैरिकं स्त्रीपयःपिष्टं तेन यन्त्रं लिखेद्बुधः ॥ भूर्ज्जपत्रे पटे वापि शणसूत्रेण वेष्टितम् ॥ ३९ ॥ दिनानि त्रीणि सम्पूज्य यत्नतो बन्धयेद्गले ॥ विषलूतां निहन्त्याशु ह्यमृतेशेन भाषितम् ॥ ४० ॥

भा० टी०–नीलकमल, चन्दन, कूठ, जीवन्ती, शोंठ, पाटल, धतूरा, बेलगिरी, निर्गुंडी, मैनफल, ब्रह्मदंडी ॥ २५ ॥ नखी, तगर, बरनाकी छाल इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे वातजन्य लूता नष्ट होतीहै ॥ २६ ॥ चन्दन, नीलकमल, मोथा, कलिहारीकी जड, शोंठ, रेणुका, पटशरा, मुलहठी, कुसुम्भका फूल, पञ्चवल्कल ॥२७॥ इनके समभागोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे पित्तजन्य लूताका विदारण होताहै । शोंठ, मिरच, पिपली, सारिवा, चीता, बरना, पान, वचा, पाठा, पाटल, मैनफल, वांसकी छाल इनके समभागोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे कफजन्य लूता शान्त होकर आनन्द मिलताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ यदि भ्रूमध्य, कंठ, हाथ, कान, गंडस्थल, शिर, हृदय, मर्मस्थान, पीठ इतने अंगोमें लूता उपजे तो वह तीन दोषोंसे उपजी हुई समझनी ॥ ३० ॥ यह लूता असाध्य वा कष्टसाध्य होतीहै, विचारपूर्वक वैद्य इसका उपचार करे । कुक्कुटपक्षीकी वीट, वाराहीकन्द, हींग, मैनफल, हरताल ॥ ३१ ॥ वांसकी छाल, कोयल, रेणुका, मनसिल इन सबको जलमें पीसकर लेप करनेसे त्रिदोषजन्य मलिन लूता नष्ट होतीहै ॥ ३२ ॥ मालकांगुनी और कर्कटीके पत्तोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे एक ही सप्ताहमें लूता नष्ट होतीहै ॥ ३३ ॥ नाकुलीकन्दको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे एक ही सप्ताहमें असाध्य लूता भी साधित होतीहै ॥ ३४ ॥ गोजियाकी जडको वा कलिहारीकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे असाध्य विषसे विह्वल हुए मनुष्यके शूलको नष्ट करे ॥ ३५ ॥ "ॐ नमो भगवते रुद्राय" इत्यादि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके ही सब औषधी देनीं । दूधमें पीसे हुए कुंकुम चन्दनके द्वारा भूर्ज्जपत्रमें इन मन्त्रोंको लिखे पीछे शणसूत्रसे पोटली बांधकर उसे कंठ वा बाहुमूलमें बांध देवे । ऐसा करनेसे लूता निःसन्देह नष्ट होगी ॥ जिस लूतारोगीके व्रणस्थान पके हुए जम्बूफलोंकी भांति श्यामवर्ण युक्त होकर लोहूको झिराते रहें तथा जिसके दांत और ओठ भी श्यामल होगयेहों ऐसा रोगी कदाचित् भी नही जीवता । यह बात हमने देख लीहै तथापि विमल उपचार करने ही चाहिये शायद भाग्ययोगसे कोई बचभी जाय ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ स्त्रीके दूधमें पीसे हुए गेरुके द्वारा भूर्जपत्रमें मंत्रसहित शास्त्रोक्त यन्त्रको लिखकर शणसूत्रसे पोटली बांधकर तीन दिनतक उसकी पूजा करे, अनन्तर यत्नसे उसे रोगीके कण्ठपर बांध देवे । इससे विषलूता अवश्य नष्ट होगी, यह योग स्वयं धन्वन्तरि भगवान्ने अपने मुखारविन्दसे कहाहै ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे विषप्रतिषेधाधिकारः ॥ ७० ॥

अथ रसायनाधिकारः ७१.

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ॥ प्रभावर्णस्वरौदार्य्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ॥ १ ॥ वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात् ॥ लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥२॥

भा० टी०—मनुष्य चिरञ्जीवित्व (बहुतकालतक जीवन) स्मरणशक्ति, धारणावती बुद्धि, नीरोगता युवावस्था तथा शरीरमें कान्ति, सुन्दर वर्ण, सुस्वरता उदारता, शरीर और इन्द्रियोंमें बलकी प्राप्ति, वाणीकी सिद्धि, वीर्यपुष्टि और दैहिक कान्तिको रसायनके सेवनसे ही प्राप्त होता है क्योंकि श्रेष्ठ रसादिके लाभका उपाय रसायन ही है ॥ १ ॥ २ ॥

पूर्वे वयसि मध्ये वा तत्प्रयोज्यं जितात्मनः ॥
स्निग्धस्य स्रुतरक्तस्य विशुद्धस्य च सर्वथा ॥ ३ ॥

भा० टी०—पूर्व वा मध्य वयमें जितात्मा होकर दूपितरक्तको जुलावलेकर शुद्ध होकर औषधियोंको सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

हरीतकीमामलकं सैन्धवं नागरं वचाम् ॥
हरिद्रां पिप्पलीं वेल्लं गुडं चोष्णाम्बुना पिबेत् ॥
स्निग्धः स्विन्नो नरः पूर्वं तेन साधु विरिच्यते ॥ ४ ॥

भा० टी०—हरड,आमला,सेंधानोंन सोंठ,वच, पीपल, हल्दी, वायविडंग तथा गुड मिलाकर स्विन्न मनुष्य स्निग्ध (मुंजिस) होकर तप्तोदकके साथ पीवे इससे पेट बिलकुल साफ होजायगा ॥४॥

अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रासायनो विधिः ॥
वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रंग इवाफलः ॥ ५ ॥

भा० टी०—अशुद्ध (विना जुलाब लिये) शरीरमें रसायन सेवन करना व्यर्थ है, जैसे मैले कपडेको रंगनेसे रंगकी दमक नहीं आती ॥ ५ ॥

निर्वाते निर्भये हर्म्ये प्राप्योपकरणे पुरे ॥
दिश्युदीच्यां शुभे देशे त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—जहां जिस मकान (धवलगृह) में विशेष हवा न हो, निर्भय हो, समस्त सामग्रियां उपस्थित हों । मकान विशेषकर उत्तर दिशामें हो जिसपर मनोरम्य तीन साधारण खिडकियां हों ॥ ६ ॥

धूमातपरजोव्यालस्त्रीमूर्खाद्यविलंघिताम् ॥
सज्जां वैद्योपकरणां सुमृष्टां कारयेत्कुटीम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–जहां धुवां न हो, धूप न हो, गरदा न उडती हो, सर्पादि जीवोंसे रहित हो, स्त्री तथा मूर्ख मनुष्योंका गमनागमन न हो, ऐसे निराले मकानको सावधान वैद्य उत्तम तरहसे पोतवावे ॥ ७ ॥

अथ पुण्येऽह्नि सम्पूज्य पूज्यांस्तां प्रविशेच्छुचिः ॥
तत्र संशोधनैः शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ॥ ८ ॥

भा० टी०–मंगलविधान करके शुद्धाचरणपूर्वक पवित्र होकर शुभ दिनमें गुरु, मित्रकी पूजा करके उक्त कुटियामें प्रवेश करके औषध आरम्भ करे, तब उत्तम औषधसे सुखी और नवीन बलवाला–॥ ८ ॥

ब्रह्मचारी धृतियुतः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥
दानशीलदयासत्यव्रतधर्मपरायणः ॥ ९ ॥

भा० टी०–ब्रह्मचारी तथा धैर्य्यवान्, जितेन्द्रिय, दानशील, दयावान् तथा धर्मनिष्ठ होकर रहे ९

देवतानुस्मृतौ युक्तो युक्तस्वप्नप्रजागरः ॥
प्रियौषधः पेशलवाक्प्रारभेत रसायनम् ॥ १० ॥

भा० टी०–अपने पूज्य देवतोंके स्मरणसे युक्त शयन जागरण करनेवाला, औषधिपर प्रेम रखकर मधुरभाषी होकर रसायनको आरम्भ करे ॥ १० ॥

ततः शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ॥
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्ताहं वा घृतान्वितम् ॥ ११ ॥
दद्याद्यावकमाशुद्धेः पुराणशकृतोऽथ वा ॥ १२ ॥

भा० टी०–तब शुद्ध शरीरवाला भी पेया आदिको धारण करे और वह मनुष्य तीन वा पांच रात्रि पर्यन्त घृतसे संयुक्त हरडको खावे, पुराणी विष्ठाकी शुद्धिलों हरडको सेवन करे ॥ ११ ॥ १२ ॥

मधुकेन तवक्षीर्या पिप्पल्या सिन्धुजन्मना ॥ पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ॥ १३ ॥ सितया वा समायुक्ता समायुक्ता रसायनम् ॥ त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा ॥ १४ ॥

भा० टी०–मुलहठी, वंशलोचन, पीपल सेंधानमक, लोहा, चांदी, तांबा, सीसा, रांगा, सोना, वच, शहद तथा घृत इन पृथक् २ वस्तुओंको मिसरीके संग युक्त तथा त्रिफला सहित मात्रा बनावे । यह रासायनिक प्रयोग समस्त रोगोंको नाशताहै, परम रसायन है । बुद्धि, आयु, स्मृति तथा कान्तिको देनेवाला है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं यथाग्नि क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ॥ रसं गुडूच्याः सहमूलपुष्प्याः कल्कं प्रयुञ्जीत च शंखपुष्प्याः ॥ १५ ॥

आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण तु शंखपुष्पी ॥ १६ ॥

भा० टी०—मण्डूकपर्णीके स्वरसको प्रयुक्त करे वा अग्निबल (जाठराग्नि) के समान मुलहठीके चूर्णको दूधके संग पीवे या गिलोयके स्वरसको प्रयुक्त करे तथा शंखपुष्पीकी जड और उसीके फूलोंके कल्कको प्रयुक्त करे, उपरोक्त योग आयुको बढातेहैं, सर्वरोगोंका नाश करतेहैं, जाठराग्नि, स्वर तथा बलको वृद्धि देतेहैं। विशेष करके शंखपुष्पी धारणाशक्तिको प्रदान करतीहै॥१५॥१६॥

फलोन्मुखो गोक्षुरकः समूलश्छायाविशुष्कः सुविचूर्णितांगः ॥ सुभावितः स्वेन रसेन तस्मान्मात्रां परां प्रामृतिकीं पिबेद्यः ॥१७॥
क्षीरेण तेनैव च शालिमश्नञ्जीर्णे भवेत्स द्वितुलोपयोगात् ॥ शक्तः सुरूपः सुभगः शतायुः कामी ककुद्मानिव गोकुलस्थः ॥ १८ ॥

भा० टी०—फलके अभिमुख तथा जडसे युक्त और छायामें सुखाये हुए अच्छी रीतिसे चूर्ण किये हुए गोखरुओंको उसीके रससे भावित करके ८ तोला मात्राको दुग्धके साथ पीवे और दूधके संग शाली चावलोंका भात खावे, ऐसे ८ शत तोला चूर्णको सेवन करनेसे मनुष्य सामर्थ्यवान्, मनोहर रूपवाला, ऐश्वर्यशाली, शतवर्षकी आयु भोगनेवाला तथा ऐसा कामी होवे जैसे गौओंके बीच सांड होताहै॥ १७॥ १८॥

वाराहीकन्दमार्द्रं क्षीरेण क्षीरपः पिबेत् ॥
मासं निरन्नो मासं च क्षीरान्नादी जरां जयेत् ॥ १९ ॥

भा० टी०—कच्ची वाराहीकन्द (भिदारे) की जडको पीसकर दूधके संग पीवे तथा दूधका ही भोजन करे, इतने दिन अन्नको न खावे, एक मासके उपरान्त दुग्धके साथ ही कुछ दिनलों अन्नको खावे तो वह मनुष्य निश्चय जरा अवस्थाको प्राप्त नहीं होता॥ १९ ॥

तत्कन्दश्लक्ष्णचूर्णं वा स्वरसेन सुभावितम् ॥
घृतक्षौद्रप्लुतं लिह्यात्तत्पक्वं वा घृतं पिबेत् ॥ २० ॥

भा० टी०—या वाराहीकन्दके बारीक चूर्णको उसी वाराहीकन्दके स्वरसमें भावितकर घृत तथा शहदसे संयुक्त करके चाटे या वाराहीकन्दकी जडके संग पकाये हुए घृतको पीवे॥२०॥

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा ॥
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥

भा० टी०—पांच या सात या आठ अथवा दश पीपलोंको शहद तथा घृतके संग रसायनको चाहनेवाला एक वर्षतक सेवन करे॥ २१॥

ग्रीष्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वमंति यत् ॥
हेमादिषड्धातुरसं प्रोच्यते तच्छिलाजतु ॥ २२ ॥

भा० टी०-ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य्यसे तप्त हुए पर्वत लाखके तुल्य सोना आदि छः धातुओंके रसको उगलतेहैं वही पदार्थ शिलाजीत है ॥ २२ ॥

सर्वं च तिक्तकटुकं नात्युष्णं कटुपाकतः ॥
छेदनं च विशेषेण लोहं तत्र प्रशस्यते ॥ २३ ॥

भा० टी०-षट् धातुओंके रससे सम्मिलित शिलाजीत कटु है, साधारण उष्ण है, पाकके समय तिक्त है तथा विशेष करके छेदन है । लोहमय शिलाजीत विशेष श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

गोमूत्रगंधि कृष्णगुग्गुल्वाभं विशर्करं मृत्स्नम् ॥
स्निग्धमनम्लकषायं मृदु गुरु च शिलाजतु श्रेष्ठम् ॥ २४ ॥

भा० टी०-गोमूत्रके समान सुगंधिवाला, गुग्गुलुके सदृश काली कान्तिवाला, कंकर पत्थरसे रहित, मट्टी संयुक्त, स्निग्ध, कषाय, अनम्ल, कोमल तथा वजनदार शिलाजीत श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च ॥
योगयोग्यं ततस्तस्य कालापेक्षं प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

भा० टी०-त्रिफलाके क्वाथसे या पटोलके यूषसे अथवा मुलहठीके क्वाथसे तीन २ दिनतक भावित करके शिलाजीतको छान ले तो शुद्ध होजायगा ॥ २५ ॥

एकत्रिसप्तसप्ताहं कर्षमर्द्धपलं पलम् ॥
हीनमध्योत्तमो योगः शिलाजस्य क्रमान्मतम् ॥ २६ ॥

भा० टी०-पहले एक सप्ताहतक एक तोला, तीन सप्ताहतक दो तोले, और पीछे सात सप्ताहतक ४ तोले हीन, मध्य और उत्तम योगसे शिलाजीतको सेवन करे (देश काल विचार कर अनुपान करे) । रसायनके लिये धारोष्ण गायके दुग्धके साथ तथा वाजीकरणके लिये गोखरूके चूर्णके साथ खावे ॥ २६ ॥

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपो जत्वश्मजं यं न जयेत्प्रसह्य ॥
तत्कालयोगैर्विधिवत्प्रयुक्तं स्वस्थस्य रूपं विपुलं दधाति ॥ २७ ॥

भा० टी०-संसारमें कोई भी ऐसा साध्य रोग नहीं है जिसको विधिवत् प्रयुक्त किया हुआ शिलाजीत हठसे न जीत लेताहो । विपुल रूप और पराक्रमको देनेवाला है ॥ २७ ॥

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ॥
त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः ॥ २८ ॥

भा० टी०-ठंढापानी, दुग्ध, मधु (सहद), घृत इनमेंसे हरएक वा दो दो अथवा तीन वा सभी पदार्थोंको मिलाकर भोजनसे पहले पीवे तो अवस्था स्थापन होतीहै ॥ २८ ॥

गुडेन मधुना शुंठ्या कृष्णया लवणेन वा ॥
द्वे द्वे खादन्सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ २९ ॥

भा० टी०–जो मनुष्य नित्य दो २ हरडोंको गुडके संग वा शहदके साथ या पीपलके योगसे अथवा शोंठको मिलाकर या सेंधे नमकके साथ खावे तो वह सुखी होकर १०० वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहता है ॥ २९ ॥

हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य समश्नतस्तत्पिबतो घृतं च ॥
भवेच्चिरस्थायि बलं शरीरे सकृत्कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥ ३० ॥

भा० टी०–हरडोंको घृतमें अच्छीतरह भून ले, उपरान्त उस घृतको भोजनसे पहले पीवे तो उस मनुष्यका बल चिरकाल तक बना रहताहै, जैसे सज्जनोंके बीच उत्तम कार्य कियाहुआ चिरकाल तक कृतज्ञताके साथ याद रहताहै ॥ ३० ॥

धात्रीकृमिघ्नासनसारचूर्णं सतैलसर्पिर्मधुलोहरेणु ॥
निषेवमाणस्य भवेन्नरस्य तारुण्यलावण्यमविप्रनष्टम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०–आंवला, वायविडंग, असनाका सार इनके चूर्णमें तेल, घृत, शहद तथा लोहेका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेवाले मनुष्यकी नष्ट हुई तरुणाई तथा लावण्यता फिरसे प्राप्त होजातीहै ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्सदानन्दकृतप्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे रसायनाधिकारः ॥ ७१ ॥

अथ वाजीकरणाधिकारः ७२.

अल्पसत्त्वस्य तु क्लेशैर्बाध्यमानस्य रागिणः ॥ शरीरक्षयरक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते ॥ १ ॥ कल्पस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः ॥ सर्वेष्वृतुष्वहरहर्व्यवायो न निवार्यते ॥ २ ॥

भा० टी०–कमजोर मनुष्योंके दुःखनिवारणार्थ उनके प्रेमके निर्वाह तथा शरीररक्षाके अर्थ वाजीकरण औषध कहाजाताहै। सामर्थ्यवान् और यौवनावस्था वालेके और वाजीकरण औषधोंको सेवनेवालेके सब ऋतुओंमें नित्य मैथुन करते रहनेपर भी तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ २ ॥

अथ स्निग्धविशुद्धानां निरूहान्सानुवासनान् ॥ घृततैलरसक्षीर-शर्कराक्षौद्रसंयुतान् ॥ ३ ॥ योगविद्योजयेत्पूर्वं क्षीरमांसरसाशि-नम् ॥ ततो वाजीकरान्योगाञ्छुक्रापत्यविवर्द्धनान् ॥ ४ ॥

भा० टी०–स्निग्ध तथा शुद्ध मनुष्यको घृत, तैल, मांसका रस, दूध, खांड, शहद इनसे संयुक्त निरूह और अनुवासनको, योगको जाननेवाला चतुर वैद्य दुग्ध तथा मांसके यूष (रस) खानेवाले मनुष्यके अर्थ पहले प्रयुक्त करे तत्पश्चात् वीर्य्य तथा सन्तानको बढानेवाले वाजीकरण औषधियोंको करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अच्छायः पूतिकुसुमः फलेन रहितो द्रुमः ॥
यथैकश्चैकशाखश्च निरपत्यस्तथा नरः ॥ ५ ॥

भा० टी०--छायासे रहित, सुगंधित पुष्पोंसे वर्जित, एक शाखा वाला वृक्ष जैसे शोभित नहीं होता वैसे ही निस्सन्तान पुरुष है, याने सन्तान होनी चाहिये ॥ ५ ॥

स्खलद्गमनमव्यक्तवचनं धूलिधूसरम् ॥
अपि लालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकम् ॥ ६ ॥

भा० टी०-चंचल चालवाले, तूतली बोलीसे युक्त, धूलिसे धूसरमुख वा शरीरवाला तथा लारसे जिसका मुख व्याप्त है ऐसा सन्तान मनको परमानन्द देनेवाला है ॥ ६ ॥

अपत्यं तुल्यता केन दर्शनस्पर्शनादिषु ॥
किं पुनर्यद्यशोधर्ममानश्रीकुलवर्द्धनम् ॥ ७ ॥

भा० टी०-पुत्रकी बराबरीमें आनन्द देनेवाला किसका दर्शन, स्पर्शन करनेसे उतना आनन्द प्राप्त होसक्ताहै ? (यह तो धूलिधूसर पुत्रसे ही है) तब यश, धर्म, मान तथा शोभा और कुलको बढानेवाले पुत्रसे कितना आनन्द प्राप्त होगा ? ॥ ७ ॥

विदारीपिप्पलीशालीप्रियालेक्षुरकाद्रजः ॥ पृथक्स्वगुप्तामूलाच्च कुडवांशं तथा मधु ॥ ८ ॥ तुलार्द्धं शर्कराचूर्णात्प्रस्थार्द्धं नवसर्पिषः ॥ सोऽक्षमात्रमतः खादेद्यस्य रामाशतं गृहे ॥ ९ ॥

भा० टी०-विदारीकन्द, पीपल, चौलाई, चिरौंजी, ईख इनका चूर्ण और कौंचकी जड, शहद ये सब १६ तोले और २०० तोले खांड, ३२ तोले नवीन घृत इनका योग करके जिसके घरमें एक शत स्त्रियां हों वह एक तोलाकी मात्रा बनाकर खावे ॥ ८ ॥ ९ ॥

सालगुप्ताफलान्क्षीरे गोधूमान्साधितान्हिमान् ॥
मासान्वासघृतक्षौद्रान्खादन्गृष्टिपयोऽनुपः ॥
जागर्ति रात्रिं सकलामखिन्नः खेदयेत्स्त्रियः ॥ १० ॥

भा० टी०-दूधमें कौंचके बीजोंका चूर्ण मिलाकर स्वच्छ गेहूंका आटा या शीतलरूप उडदोंको साधित कर घृत और शहद मिलाकर उनका योग करे और प्रथम ब्याई गायके दुग्धके अनुपानसे खावे तो वह पुरुष समस्त रात्रिभर जागता (मैथुनमें प्रवृत्त) रहताहै और स्त्रियोंको पराजित करताहै ॥ १० ॥

वस्तांडसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ॥
यः खादेत्ससितान्गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ ११ ॥

भा० टी० बकरेके वृषण (अण्डे) से सिद्ध दूधमें वारंवार भावित काले तिलोंमें मिसरी मिलाकर जो खावे वह एक शत स्त्रियोंके संग अपूर्व भोग करताहै ॥ ११ ॥

चूर्णं विदार्या बहुशः स्वरसेनैव भावितम् ॥
क्षौद्रसर्पिर्युतं लीढ्वा प्रमदाशतमृच्छति ॥ १२ ॥

भा० टी०–विदारीकन्दके स्वरसमें भावित किये हुए उसी विदारीकन्दके चूर्णको शहद और घृतसे संयुक्त कर चाटनेसे मनुष्य १०० स्त्रियोंसे भोग कर सकता है॥ १२॥

कृष्णाधात्रीफलरजः स्वरसेन सुभावितम् ॥
शर्करामधुसर्पिर्भिर्लीढ्वा योऽनुपयः पिवेत् ॥
स नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ॥ १३ ॥

भा०टी०–आमलोंके स्वरसमें भावित किये पिप्पली और आमलोंके चूर्णको, खांड, सहद, घृतसे मिलाकर चाटे और ऊपरसे गायके दूधको पीवे तो ८० वर्षका बुड्ढा भी जवान मनुष्यकी तरह यौवनवान् होवे॥ १३॥

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥ १४ ॥

भा० टी०–एक कर्ष प्रमाण मुलहठीके चूर्णको घृत तथा शहदमें मिलाकर चाटे और दुग्धका अनुपान करे तो कामदेवका उद्वेगकारक वेग बढे॥ १४॥

कुलीरशृंग्या यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत् ॥
सिताघृतपयोन्नाशी स नारीषु वृषायते ॥ १५ ॥

भा० टी०–काकडासिंगीके कल्कको दूधमें अलोडित करके पीवे और मिसरी घृत तथा दुग्ध मात्रका भोजन करे तो वह पुरुष स्त्रियोंके समाजमें वृषभकी भांति सुख देवे॥ १५॥

यः पयस्यां पयःसिद्धां खादेन्मधुघृतान्विताम् ॥
पिबेद्बाष्कयणं चानु क्षीरं न क्षयमेति सः ॥ १६ ॥

भा० टी०–दुग्धमें क्षीरकाकोलीको सिद्ध करके घृत तथा सहद मिलाकर खावे और वाखडी गायका दुग्ध ऊपरसे पीवे तो वह क्षीणताको प्राप्त नहीं होता अर्थात् मैथुनमें प्रवृत्त रहता है॥१६॥

द्रव्यैरेवंविधैस्तस्माद्दर्पितः प्रमदां व्रजेत् ॥
आत्मवेगेन चोदीर्णस्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ १७ ॥

भा० टी०–इन द्रव्योंसे दर्पित हुआ पुरुष स्त्रियोंके प्रति गमन करनेसे अपने वेग करके स्त्रियोंको प्रसन्न करता है॥ १७॥

नामापि यस्या हृदयोत्सवाय यां पश्यतां तृप्तिरनाप्तपूर्वा ॥ सर्वेन्द्रियाकर्षणपाशभूता कांतानुवृत्तिव्रतदीक्षिता या ॥ १८ ॥ कला विलासांगवयोविभूषा शुचिः सलज्जा रहसि प्रगल्भा ॥ प्रियंवदा तुल्यमनःशया या सा स्त्री वृषत्वाय परं नरस्य ॥ १९ ॥

भा० टी०–हृदयके उत्सवके लिये जिसका नाम है, जिसको वार २ देखनेसे भी तृप्ति नहीं होती, जो समस्त इन्द्रियोंको खींचलेनेके लिये पाश (फांस) है, जो पतिके पास छन्दानुगामिनी

होकर रहनेको दीक्षित हुईहै, जो युवावस्थावाली कला विलाससे सम्पन्न है,जो पवित्र (पतिव्रता) है, लज्जासे युक्त, मैथुन समयमें प्रगल्भा तथा प्रिय वचनको बोलनेवाली है, जिसका तुल्य कामकलोल है, ऐसी सर्वांगसम्पन्ना बाला (स्त्री) पुरुषके वृषत्वपनेके लिये कल्पित कीगई है ॥ १८ ॥ १९ ॥

आचरेच्च सकलां रतिचर्य्यां कामशास्त्रविहितामनवद्याम् ॥
देशकालबलशक्त्यनुरोधाद्वैद्यतंत्रसमयोक्त्यविरुद्धाम् ॥ २० ॥

भा० टी०–शास्त्रमें कहीहुई कामदेवकी क्रीडाको, देश, काल, बल, शक्तिको विचारकर वैद्यशास्त्रके अनुकूल समस्त रतिचर्याओंको प्रसन्नतापूर्वक करे ॥ २० ॥

मधुसुखमिव सोत्पलं प्रियायाः कलरणनापरिवादिनी प्रियेव ॥
कुसुमचयमनोरमा च शय्या किसलयिनी लतिकेव पुष्पिताग्रा २१॥
देशे शरीरे च न काचिदर्तिरर्थेषु नाल्पोऽपि मनोविघातः ॥
वाजीकराः सन्निहिताश्च योगाः कामस्य कामं परिपूरयंति ॥ २२ ॥

भा० टी०–नायिकाको कमलसहित रतिसुखकके समान व नायकको मधुरशब्द करनेवाली प्रियाके समान और पल्लवित तथा पुष्पोंसे शोभित अग्रभागवाली लताके समान पुष्पोंसे सजी सेज, और देश तथा शरीरमें कोई पीडा न होना, अर्थके विषय कुछ भी मनोविघात न होना, समीपमें वर्तमान वाजीकर योग, यह सब कामके कामको भी पूरित करतेहैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

इति श्रीमन्महाराष्ट्रवंशावतंसकवीन्द्रचूडामणितिमलीग्रामनिवासिदामोदरसूनुपं० सदानन्दकृत-प्रसादभाषाटीकासहिते वृन्दे वाजीकरणाधिकारः ॥ ७२ ॥

समापिता मया भाषा प्रसादाख्या प्रसादतः ॥ देवस्य पादपद्मानां बदरीवनवासिनः ॥ १ ॥
तस्मै नमोऽस्तु देवाय यत्कृपापाङ्गमोक्षतः ॥ सिद्धिं यास्यति भाषेयं सदानन्दास्यनिर्गता ॥ २ ॥
अलौकिकींबुद्धिमदृष्टपूर्वांवहन्सदासज्जनतापहन्ता॥ग्रन्थंकिलाऽङ्गीकुरुतांमहेशानन्दःसकारुण्यपरोबुधाग्र्य

प्रार्थना ।

आर्षग्रन्थसमुद्रमन्थनभवां भव्यैकमात्रस्थलीम् ॥ सेवध्वंविबुधाग्रगण्ययशसः स्वान्तःसमाराधिताम् ॥
पैयूषं महिमानमेव दधतीं भाषां प्रसादाभिधाम् ॥ एतामासुरभावभुग्नहृदयास्तद्दूषनां प्राप्नुयुः ॥ १ ॥
ये चाऽल्पकारणपरार्थविदूषणोत्का भस्मीकरोतु मम ताञ्छ्रमवारिबिन्दुः ॥
चित्तोल्लसत्परपरिश्रममर्मबोधा दूर्वासमानमुपयान्तु भुवि प्ररोहम् ॥ २ ॥

॥ समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

पं० महेशानन्दशर्म्मा
नन्दप्रयाग–गढवाल.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.